भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ

(पांचवां भाग)

कर्नाटक

भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ

(पाँचवाँ भाग)

कर्नाटक

सामग्री-सकलन एवं लेखन
डॉ राजमल जैन

संशोधन-सम्पादन
लक्ष्मीचन्द्र जैन

नियोजक
भारतीय ज्ञानपीठ
18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड,
नयी दिल्ली-110003

प्रकाशक
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी,
हीराबाग, बम्बई-400004

आमुख

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी को इस बात की प्रसन्नता है कि सारे देश में स्थित दिगम्बर जैन तीर्थों का इतिहास, भूगोल, पौराणिक आख्यान, स्थापत्य, यात्रा-मार्ग तथा उपलब्ध साधनों आदि का परिचय देने वाली 'भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ' ग्रन्थमाला के अन्तर्गत यह पाँचवाँ भाग प्रकाशित हो रहा है।

इस भाग में दक्षिण भारत में कर्नाटक प्रदेश में स्थित दिगम्बर जैन तीर्थों और पुरातात्विक स्थानों का क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत किया गया है। पूर्व प्रकाशित चार भागों में क्रमशः उत्तर प्रदेश (दिल्ली तथा पोदनपुर-तक्षशिला सहित), 2—बिहार-बंगाल-उड़ीसा, 3—मध्यप्रदेश, 4—राजस्थान-गुजरात-महाराष्ट्र के तीर्थस्थानों का वर्णन है। पिछले भाग की भूमिका का निम्नलिखित अंश योजना के मूलभूत उद्देश्य और दृष्टिकोण पर प्रकाश डालता है—

"हमारी सद्-आस्था को आधार देने वाले, हमारे जीवन को कल्याणमय बनाने वाले, हमारी धार्मिक परम्परा की अहिंसामूलक संस्कृति की ज्योति को प्रकाशमान रखने वाले, जन-जन का कल्याण करने वाले हमारे तीर्थंकर ही हैं। जन्म-मरण के भवसागर से उबारकर अक्षय सुख के तीर पर ले जाने वाले हमारे तीर्थंकर प्रत्येक युग में तीर्थ का प्रवर्तन करते हैं अर्थात् मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते हैं। तीर्थंकरों की इस महिमा को अपने हृदय में बसाये रखने और अपने श्रद्धान को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए हमने उन सभी विशेष स्थानों को तीर्थ कहा जहाँ-जहाँ तीर्थंकरों के जन्म आदि 'कल्याणक' हुए, जहाँ से केवली भगवान्, आचार्य और साधु 'सिद्ध' हुए, जहाँ के 'अतिशय' ने श्रद्धालुओं को अधिक श्रद्धायुक्त बनाया, उन्हें धर्म-प्रभावना के चमत्कारों से साक्षात्कार कराया। ऐसे पावन स्थानों में से कुछ हैं जो ऐतिहासिक काल के पूर्व से ही पूजे जाते हैं और जिनका वर्णन पुराण-कथाओं की परम्परा से पुष्ट हुआ है। अन्य तीर्थों के साथ इतिहास की कोटि में आने वाले तथ्य जुड़ते चले गये हैं और मनुष्य की कला ने उन्हें अलंकृत किया है। स्थापत्य और मूर्तिकला ने एवं विविध शिल्पकारों ने इन स्थानों के महत्त्व को बढ़ाया है। अनादि-अनन्त प्रकृति का मनोरम रूप और वैभव तो प्रायः सभी तीर्थों पर विद्यमान है।

ऐसे सभी तीर्थस्थानों की वन्दना का प्रबन्ध और तीर्थों की सुरक्षा का दायित्व समाज की जो संस्था अखिल भारतीय स्तर पर वहन करती है, उसे गौरव की अपेक्षा अपनी सीमाओं का ध्यान अधिक रहता है, और यही ऐसी संस्थाओं के लिए शुभ होता है; यह ज्ञान उन्हें सक्रिय रखता है।

इस समय भी तीर्थक्षेत्र कमेटी के सामने इन पवित्र स्थानों की सुरक्षा, पुनरुद्धार और नव-निर्माण की दिशा में एक बड़ा और व्यापक कार्यक्रम है। इसे पूरा करने के लिए हमारे प्रत्येक भाई-बहन को यथा सामर्थ्य योगदान करने की अन्तःप्रेरणा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यह

प्रेरणा मूर्त रूप ले और यात्री भाई-बहनों को तीर्थ-वन्दना का पूरा सुफल, आनन्द और ज्ञान प्राप्त हो, तीर्थक्षेत्र कमेटी का इस ग्रन्थमाला के प्रकाशन में यह दृष्टिकोण रहा है।"

जैसा कि इस ग्रन्थ के सम्पादकीय वक्तव्य में विस्तार से स्पष्ट किया गया है, दक्षिण भारत में स्थित तीर्थों की प्रकृति और महत्त्व तीर्थंकरों के पंचकल्याणक-परम्परा से भिन्न प्रकार का है। यही कारण है कि ग्रन्थ के संयोजन, लेखन, सम्पादन और सामग्री के संकलन में समय लगा है।

ग्रन्थमाला का अन्तिम, छठा भाग तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश और केरल में स्थित जैनतीर्थों (पुरातात्विक स्थानों) का परिचय प्रस्तुत करेगा। यह भाग संकलन और लेखन की प्रक्रिया में है। प्रयत्न है कि यह जल्दी ही प्रकाशित हो जाए।

तीर्थक्षेत्र कमेटी और भारतीय ज्ञानपीठ के इस संयुक्त प्रयास की सफलता में जिन-जिन महानुभावों ने योगदान किया है उन सबके प्रति हम कृतज्ञ हैं।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी समाज की सर्वमान्य संस्था है, जिसकी सेवाएँ तीर्थों की सुरक्षा, सुप्रबन्ध और उनकी वन्दना की भावना को प्रोत्साहित करने के लिए समर्पित हैं। तीर्थ-वन्दना रथ का आयोजन धर्म-चक्र की महिमा का गुणगान है; वह अहिंसा, शान्ति सद्भाव और तीर्थंकरों के लोकहितकारी उपदेशों के प्रचार-प्रसार का महिमामय माध्यम है।

अक्षय तृतीया
19 अप्रैल 1988

जयचन्द डी० लोहाड़े
महामन्त्री

अशोक कुमार जैन
अध्यक्ष

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन, तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई

सम्पादकीय

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई, द्वारा आयोजित 'भारत के दिगम्बर जैन-तीर्थ, शृंखला में अब तक निम्न प्रकार चार भाग छप चुके हैं :

भाग 1—उत्तरप्रदेश के जैन तीर्थ (दिल्ली और पोदनपुर-तक्षशिला सहित)

भाग 2—बिहार, बंगाल, उड़ीसा के जैन तीर्थ

भाग 3—मध्यप्रदेश के जैन तीर्थ

भाग 4—राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र के जैन तीर्थ

यह पाँचवाँ भाग कर्नाटक के जैन तीर्थों से सम्बन्धित है। भारतवर्ष के सांस्कृतिक इतिहास में कर्नाटक का महत्त्व अद्वितीय और विलक्षण है। कर्नाटक का स्मरण करते ही गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबली की विश्व प्रसिद्ध मूर्ति आँखों के आगे उद्भासित हो जाती है। बन्दना के लिए शीश स्वत: झुक जाता है। दृष्टि आकाश का छोर छूने को उठती है। संसार की कला को उदात्त स्तर देने वाली इस मूर्ति का चमत्कारी तक्षण किन शिल्पियों के हाथों हुआ है—कौन था उनका मार्गदर्शक शिल्पी आचार्य जिसकी कल्पना में यह भव्यता रूपाकार हो गयी ? इस भाग में श्रवणबेलगोल के विषय में जो सामग्री दी गयी है वह संक्षिप्त और सारगर्भित है। विस्तार से इसलिए बचा गया है कि भगवान बाहुबली की मूर्ति की प्रतिष्ठापना के एक हज़ार वर्ष पूरे होने पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का महामस्तकाभिषेक आयोजन 1981 ईस्वी में सम्पन्न हुआ था, उस अवसर पर श्रवणबेलगोल मुज़रई संस्थान, तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई और भारतीय ज्ञानपीठ के संयुक्त प्रयास से अनेक प्रकार का, अनेक विधाओं में, महत्त्वपूर्ण साहित्य प्रकाशित हुआ है जो ऐतिहासिक, धार्मिक, साहित्यिक और कलापक्ष का प्रामाणिक दस्तावेज-पुंज है, जिसने ज्ञान, भावना और श्रद्धा को सबल बनाया है। संयुक्त तत्वावधान में प्रकाशित-प्रचारित उस साहित्य को इस पाँचवें भाग का सन्दर्भ-अंग मानकर पाठक यदि अध्ययन करेंगे, या कम-से-कम अपने भण्डारों और निजी तथा सार्वजनिक पुस्तकालयों में रखेंगे तो स्वाध्याय में रुचि रखने वाले व्यक्तियों और शोधार्थियों को दुर्लभ सामग्री प्राप्त हो जायेगी। इन प्रकाशनों में से कुछ का उल्लेख कर देना प्रासंगिक होगा। इनके सम्बन्ध में पूरी सूचना भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, से प्राप्त की जा सकती है।

(1) जैन आर्ट एण्ड आर्कीटेक्चर (अंग्रेज़ी, तीन खण्डों में)—सम्पादक : अमलानन्द घोष

(2) जैन कला एवं स्थापत्य (हिन्दी अनुवाद, तीन खण्डों में)—संपादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ

(3) पेनोरामा ऑफ जैन आर्ट (टाइम्स ऑफ इंडिया द्वारा प्रकाशित)
—सम्पादक : डॉ. शिवराम मूर्ति

(4) महोत्सव दर्शन (श्रवणबेलगोल मुज़रई इंस्टीट्यूट)—नीरज जैन

(5) होमेज टु श्रवणबेलगोल—सरयू दोशी

(6) सेक्रेड श्रवणबेलगोल—डॉ० विलास ए. संगवे (भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित)
(7) अन्तर्द्वन्द्वों के पार (ऐतिहासिक उपन्यास)—लक्ष्मीचन्द्र जैन ,,
(8) गोमटेश गाथा (उपन्यास)—नीरज जैन ,,
(9) सत्ता के आर-पार (नाटक)—विष्णु प्रभाकर ,,
(10) महाप्राण बाहुबली (नाट्य-काव्य)—कुन्था जैन ,,
(11) महामस्तकाभिषेक स्मारिका—मुज़रई इंस्टीट्यूट श्रवणबेलगोल से प्रकाशित (हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड में)
(12) बाहुबली-चित्रकथा (टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन)
(13) जय गोमटेश्वर—अक्षय कुमार जैन
(14) तपोमूर्ति बाहुबली—कमला जैन
(15) स्मरण संचिका (कन्नड)—ए० आर० नागराज

इसके अतिरिक्त जो अन्य अनेक प्रकार का भव्य साहित्य अन्य अनेक संस्थाओं या व्यक्तियों द्वारा प्रकाशित हुआ है वह भी कम मूल्यवान नहीं।

जिस समय तीर्थक्षेत्र कमेटी द्वारा कर्नाटक और केरल से सम्बन्धित इस पाँचवें भाग की योजना बनी उस समय उक्त विपुल साहित्य में से बहुभाग प्रकाशित नहीं हुआ था। पाँचवें भाग के आयोजन और सम्पादन का दायित्व तीर्थक्षेत्र कमेटी ने ज्ञानपीठ को दिया। कमेटी की ओर से डॉ० राजमल जैन को विशेष अनुबंधित व्यवस्था के अन्तर्गत सामग्री-संकलन और लेखन का दायित्व दिया गया। सम्पादन का दायित्व निर्वाह करते समय मुझे लगा कि पाण्डुलिपि को अनावश्यक विस्तार से बचाना आवश्यक है। सम्पादन की प्रक्रिया में कठिनाइयाँ भी अनेक आयीं। सौभाग्य से वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली के उपाध्यक्ष डॉ० गोकुल प्रसाद जैन का सहयोग प्राप्त हुआ। वह स्वयं अनुभवी हैं, विद्वान हैं और प्रकाशन-कार्यों को गति देने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। पृष्ठभूमि में कहीं-न-कहीं जुड़े हैं—पं० बलभद्र जी, धर्मराज जी के रूप मे वर्तमान भट्टारक स्वामी मूडबिद्री और स्वर्गीय श्री गुरुराज भट्ट। योजना की नींव डाली समाज के यशस्वी नेता, अनभिषिक्त सम्राट्, दानवीर, श्रावकशिरोमणि स्व० श्री साहू शांतिप्रसाद जी ने। उसके बाद इसका दायित्व लिया श्रद्धेय साहू श्रेयांस प्रसाद जैन ने जिनकी निष्ठा, भावना और लगन का कोई दूसरा उदाहरण नहीं है।

भारत के दिगम्बर जैनतीर्थ ग्रन्थमाला के अन्तर्गत पिछले चार भागों के नियोजन व सम्पादन के लिए हमारे सामने निश्चित स्थिति थी कि तीर्थक्षेत्रों में कल्याणक क्षेत्र कौन से हैं, सिद्ध क्षेत्र कौन से हैं और अतिशय क्षेत्र कौन से हैं। दक्षिण भारत के तीर्थस्थानों के सम्बन्ध में इस प्रकार का विभाजन सम्भव नहीं है। यहाँ की विशेषताओं का दृष्टिकोण और परिदृश्य दूसरे प्रकार का है। जिन भगवान बाहुबली की चरण-वन्दना से यह आलेख प्रारम्भ हुआ है, वह तीर्थंकर नहीं हैं, दक्षिण भारत में उनका जन्म भी नहीं हुआ। किन्तु यह कैसी शुभ स्थिति है कि वह भगवान आदिनाथ से पहले मोक्षगामी हुए। जिन परम पूज्य आचार्य भद्रबाहु ने ७०० से अधिक दिगम्बर मुनियों के साथ दक्षिण भारत की धरती को अपनी चरणरज से पवित्र किया, उनका अनुगामी दिगम्बर शिष्य था एक ऐसा सम्राट् जिसके शौर्य और युद्ध-चातुर्य का

बखान विश्व इतिहास चन्द्रगुप्त मौर्य के नाम से करता है। भगवान महावीर के तत्त्वज्ञान और लोकोपकारिणी वाणी को जिन्होंने अक्षरों के माध्यम से अक्षय बनाया उन भगवान कुन्दकुन्द स्वामी की साधना-भूमि यही अंचल था। 'शौरसेनी प्राकृत' का नामकरण उनके इतिहास की किन यवनिकाओं के पार का आलोक है ? पूज्यपाद आचार्य नेमिचन्द्र, महामहिमामयी काललदेवी, वीरमार्तण्ड चामुण्डराय, दानशीला अक्कनदेवी तथा कला, सौन्दर्य, आत्म-साधना और त्याग की तेजस्वी मूर्ति पट्टमहादेवी शान्तला, सब अलग-अलग तथा अन्य अनेक-अनेक विभूतियाँ ऐसी हैं जिनका एक-एक नाम एक तीर्थ है। क्षेत्रकाल और इतिहास के प्रवाह का निर्माण संस्कृति के जिन उपादानों से यहाँ हुआ है, वह यहाँ जीवन्त है। कर्नाटक में उनकी पहचान और परिचय ही इस पाँचवें भाग के प्रकाशन का उद्देश्य है। जिन परिस्थितियों से गुज़रकर इस भाग का प्रकाशन हो रहा है, और जो विशाल सामग्री अन्यत्र उपलब्ध है उसके परिप्रेक्ष्य में इसे एक ऐसा चित्राकार मानना चाहिए जिसके रंग एक झलक दिखा देते हैं। संस्कृति का रूप और श्रद्धा की सुरभि यदि पाठकों को इतना आकर्षित कर सके कि उनमें यात्रा की इच्छा जाग्रत हो जाय तो प्रारम्भिक प्रयत्न के रूप में यह प्रकाशन सार्थक होगा।

दक्षिण की तीर्थयात्रा का अर्थ है वे तमाम जिनालय, बसदियाँ, मठ, मानस्तम्भ, शिलालेख, शास्त्र-भण्डार, गिरि-श्रृंग, उपत्यकाएँ, गुफाएँ, प्रपात, कला-सौन्दर्य, भित्तिचित्र, शिल्प-साधना और उत्तुंग मूर्तियाँ जो 'जैनों' की ही नहीं, 'जनों' की हैं। ऐसा चमत्कार और कहाँ मिलेगा ! कहाँ है ऐसी भक्ति जो पारदर्शी हीरों और नगों की करोड़ों रुपयों की लघुकाय-सम्पदा में से छनकर छोटी-बड़ी रत्न-प्रतिमाओं का रूप ले रही है ?

अन्य भागों में क्षेत्रों का विभाजन भौगोलिक आधार पर, प्राचीन अंचलों के नाम पर निश्चित था। अतः प्रत्येक अंचल या जनपद का नक्शा देना आसान था। प्रदेशों का विस्तार बड़ा था। यहाँ हमने कर्नाटक के जैन तीर्थस्थलों का एक ही नक्शा दिया है जो बड़े आकार का है। तीर्थस्थलों के वर्णन-क्रम में यात्रा के मार्ग को ही प्रायः ध्यान में रखा है अतः ज़िले का विभाजन-क्रम कहीं-कहीं नहीं सध पाया है। फिर भी तीर्थस्थानों को ज़िला-क्रम से 'अनुक्रम' में दर्शाया गया है।

आज चित्रों के प्रकाशन का जो स्तर कला-जगत् में है वह बहुत ऊँचा है। किन्तु उतना ही वह व्यय-साध्य है। ज्ञानपीठ के कलासंग्रह में जो चित्र उपलब्ध थे, मुख्य रूप से उन्हें ही माध्यम बनाया है। यदि वे उतने परिष्कृत नहीं लगते जितने नये चित्र, तो हस्तगत सामग्री का उपभोग और मूल्यवृद्धि को बचाना ही स्पष्ट उद्देश्य है।

योजनानुसार इस ग्रन्थमाला का छठा भाग आयोजित है जिसका सम्बन्ध तमिलनाडु, आन्ध्र और केरल के तीर्थस्थानों से है। प्रयत्न होगा कि इस भाग की सामग्री का संयोजन जल्दी पूरा हो जाय, ताकि सम्पादन और मुद्रण के लिए पर्याप्त समय मिल सके।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की अध्यक्षता का दायित्व समाज ने साहू अशोक कुमार जैन को सौंपा है। यह सौभाग्य की बात है कि उन जैसा कुशल और बड़ी-से-बड़ी योजनाओं को दूरदर्शिता तथा व्यावहारिक बुद्धि से चलाने वाला, धार्मिक निष्ठा से सम्पन्न व्यक्ति समाज को मिला है। दायित्व हाथ में लेते ही श्री साहू अशोककुमार जी तीर्थक्षेत्र

कमेटी के निवर्तमान अध्यक्ष अपने पूज्य ताऊ, पद्मभूषण, जैनरत्न, श्रावकशिरोमणि, श्री साहू श्रेयांसप्रसाद जी के मार्गदर्शन में अनेक बड़ी और महत्त्वपूर्ण योजनाओं को निश्चित करके उन्हें स्वयं अग्रसर करने में व्यस्त हो गये हैं। जिन योजनाओं को उन्होंने साहस के साथ तत्काल हाथ में लिया है, उनमें से मुख्य हैं : (1) लगभग सभी तीर्थों के विकास की योजनाओं का सम्पूर्ण परिदृश्य सामने रहे और अगले पाँच वर्षों में उन पर क्रमशः कार्यान्विय हो, (2) मध्यप्रदेश में बड़वानी या बाबनगजा जी में विश्व की सबसे ऊँची 84 फुट की भगवान आदिनाथ की प्रतिमा को क्षरण और ध्वंस से बचाने की बारह लाख रुपये की योजना पर कार्य का शुभारम्भ। दो साल बाद अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशाल महामस्तकाभिषेक का आयोजन, (3) भगवान महावीर की जन्मस्थली वैशाली (बिहार) में लगभग पन्द्रह लाख की लागत से भव्य स्मारक का निर्माण, (4) जरा-जीर्ण मन्दिरों और मूर्तियों का प्राथमिकता के आधार पर संरक्षण कार्यक्रम। (5) क्षेत्रों पर आवास, बिजली, पानी, यातायात, भोजनालय, आदि के योजना-बद्ध कार्यक्रमों की सम्पूर्ति, (6) देवगढ़, गोपाचल, शौरीपुर-बटेश्वर तथा दक्षिण के अनेक जैन क्षेत्रों के जीर्णोद्धार का कार्य, (7) सूचना-संग्रह, सर्वे और ऐतिहासिक सामग्री के संकलन का देशव्यापी कार्यक्रम, (8) समस्त भारत में तीर्थवन्दना रथ के प्रवर्तन द्वारा जैनधर्म की प्रभावना, धार्मिक श्रद्धा का संचार और तीर्थरक्षा के लिए एक राशि-संग्रह का उपक्रम आदि।

अभी तक प्रकाशित इन पाँच भागों के अगले संस्करणों के लिए भी कमेटी प्रयत्नशील है कि ये हर प्रकार से प्रामाणिक, निर्दोष और स्तरीय हों। पाठकों से अनुरोध है कि जहाँ जो कमियाँ नजर आयें या जो सुझाव उपयोगी लगें उन्हें अवश्य प्रेषित करें।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई, के महामन्त्री श्री जयचन्द लोहाड़े से और ज्ञानपीठ के सहकर्मियों से जो सहयोग प्राप्त हुआ उसके लिए आभार व्यक्त करना मेरा कर्तव्य है।

अक्षय तृतीया
19 अप्रैल 1988

—लक्ष्मीचन्द्र जैन

अनुक्रम

कर्नाटक में जैन धर्म

कर्नाटक तथा दक्षिण भारत में जैनधर्म के प्रसार और प्रभाव पर पुरातत्त्वविदों, इतिहासज्ञों और जिज्ञासु मनीषियों ने भी गम्भीर अध्ययन और विचार किया है तथा उसके प्रभाव को धर्म, कला और संस्कृति की दृष्टि से व्यापक एवं महत्त्वपूर्ण माना है। कर्नाटक में जैनधर्म के इतिहास पर विचार करने से पहले कुछ महत्त्वपूर्ण मनीषियों के विचारों का जान लेना होगा :

श्री एम. एस. रामास्वामी अय्यंगार ने लिखा है—

"No topic of ancient South Indian History is more interesting than the origin and development of Jains, who in times past, profoundly influenced the political, religious and literary institutions of South India."[1]

अर्थात् "दक्षिण भारत के प्राचीन इतिहास का कोई भी विषय इतना अधिक रुचिकर नहीं है जितना कि जैनों की उत्पत्ति और विकास से सम्बन्धित विषय। क्योंकि प्राचीन काल में जैनों ने दक्षिण भारत की राजनीतिक, धार्मिक और साहित्यिक संस्थाओं को बहुत अधिक प्रभावित किया था।"

इसी प्रकार सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् श्री सी. शिवराममूर्ति ने लिखा है—

"South India has been a great seat of the Digambara Jain faith."[2] अर्थात् दक्षिण भारत दिगम्बर जैनधर्म का एक बड़ा केन्द्र रहा है।

श्री शिवराममूर्ति की पुस्तक की भूमिका में स्व. प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने लिखा था—

"Jainism embodies deep investigations into the nature of reality. It has given us the massage of non-violence. It was born in the heart land of India but its influence pervaded all parts of the country. Some of the earliest literature of the Tamil region, is of Jain origin. The great Jain Temples and sculptured monuments of Karnataka, Maharashtra, Gujarat and Rajasthan are world-renowned."

"Some historians tend to classify the cultural and political development of India into water-tight religious groupings. But a little analysis will show that the evolution of Indian culture was by the union of many streams which make up the might river which it has become."[3]

अर्थात् "जैनधर्म में सत् की प्रकृति का गम्भीर अन्वेषण निहित है। उसने हमें अहिंसा का सन्देश दिया

---

1. M.S. Ramaswami Ayyangar : Studies in South Indian Jainism, Part I, p. 3, Second Edition, 1982 (First Edition 1922, Delhi, Sri Satguru Publications).
2. C. Shivaramamurti—Panorama of Jain Art, p. 15, Times of India, New Delhi, 1983.
3. Ibid., foreword.

है। उसका उदय भारत के हृदय-प्रदेश में हुआ था किन्तु उसका प्रभाव देश के समस्त भागों में फैल गया। तमिल प्रदेश के बहुत प्राचीन साहित्य के बहुत कुछ अंश का मूल जैन है। कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान के सुन्दर जैन मन्दिर और मूर्तियों सम्बन्धी स्मारक तो विश्वप्रसिद्ध हैं।"

"कुछ इतिहासकार भारत के सांस्कृतिक तथा राजनीतिक विकास को संकीर्ण धार्मिक समूहों में वर्गीकृत करने की प्रवृत्ति रखते हैं। किन्तु यदि थोड़ा-सा भी विश्लेषण किया जाए तो यह बात सामने आएगी कि भारतीय संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास अब अनेक धाराओं के संगम से हुआ है जिसने कि एक विशाल महानद का रूप ले लिया है।"

इन उद्धारणों से यह स्पष्ट है कि कर्नाटक में जैनधर्म की स्थिति पर विचार के लिए सबसे पहली आवश्यकता है निष्पक्ष दृष्टि और गहरे अध्ययन-मनन की।

दूसरी आवश्यकता इस बात की भी है कि कर्नाटक में जैनधर्म के अस्तित्व का निर्णय केवल शिलालेखों या साहित्यिक सन्दर्भों के आधार पर ही नहीं किया जाए और न ही यह दृष्टि ही अपनाई जाए कि शिलालेख आदि लिखित प्रमाणों के अभाव में जैनधर्म का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। वास्तव में हमारे देश में मौखिक परम्परा बहुत प्राचीन काल से सुरक्षित रही आई है। जो कुछ प्राचीन इतिहास हमें ज्ञात होता है वह या तो मौखिक परम्परा से या फिर पुराणों के रूप में रहा है। ये पुराण जैन भी हैं और वैदिकधारा के भी। इनमें कहीं तो महापुरुषों की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के विवरण हैं तो कहीं संकेत मात्र। ये भी सुने जाकर ही लिखे गए हैं। यदि इन्हें सत्य नहीं माना जाए तो रामायण या महाभारत अथवा राम या कृष्ण सबका अस्तित्व अस्वीकार करना होगा और तब तो किसी तीर्थंकर का अस्तित्व भी सिद्ध नहीं हो सकेगा। अतः आइये, हम भी परम्परागत या पौराणिक इतिहास पर एक दृष्टि डालें।

परम्परागत इतिहास

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने कर्मयुग की सृष्टि की थी और इस देश की जनता को कृषि करना सिखाया था। वे प्रथम सम्राट् भी थे। जब उन्होंने राज्य की नींव डाली, तब उन्होंने ही इस देश को मण्डलों, पुरों आदि में विभाजित किया था। इस देश-विभाजन में कर्णाट देश भी था। ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को लिपि (ब्राह्मी) का ज्ञान दिया था। उसी लिपि से कन्नड़ लिपि के कुछ अक्षर निकले हैं। जब वे मुनि हो गए तो उन्होंने सारे देश में विहार किया और लोगों को धर्म की शिक्षा दी। भागवतपुराण भी इस बात का समर्थन करता है कि उनके धर्म का प्रचार कर्णाट देश में अधिक हुआ था (देखिए 'श्रवणबेलगोल' प्रकरण में 'ऋषभदेव')।

चक्रवर्ती भरत—ऋषभदेव के पुत्र के नाम पर यह देश भारत कहलाता है। जैन पुराणों के अतिरिक्त वैदिकधारा के चौदह पुराण इस तथ्य का समर्थन करते हैं। वैदिक-जन आज भी 'जम्बूद्वीपे भरतखण्डे'''का नित्य पाठ करते हैं। भरत ने छह खण्डों की दिग्विजय की थी। उनके समय में भी कर्नाट देश में जैनधर्म का प्रचार था।

ग्यारह और चक्रवर्ती—जैन परम्परा के अनुसार भरत के बाद ग्यारह चक्रवर्ती और हुए हैं। ये जैन धर्मावलम्बी थे और उनका समस्त भारत पर शासन था।

किष्किन्धा के जैन धर्मानुयायी विद्याधर—बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत के तीर्थकाल में रामायण की

घटनाएँ घटी हैं। राम-चरित से सम्बन्धित जैन पुराणों में उल्लेख है कि हनुमान् विद्याधर जाति के वानरवंशी थे। वे वानर नहीं थे, उनके वंश का नाम वानर था और उनके ध्वज पर वानर का चिह्न होता था। हनुमान् किष्किन्धा के थे। यह क्षेत्र आजकल के कर्नाटक में हम्पी (विजयनगर) कहलाता है। जैन साहित्य में हनुमान् के चरित्र पर आधारित अंजना-पवनंजय नाटक बहुत लोकप्रिय है।

नेमिनाथ का दक्षिण क्षेत्र पर विशेष प्रभाव—बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म शौरिपुर में हुआ था किन्तु अपने पिता समुद्रविजय के साथ वे भी द्वारका चले गए थे। श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव समुद्रविजय के छोटे भाई थे। श्रीकृष्ण ने प्रवृत्तिमार्ग का उपदेश दिया और नेमिनाथ ने निवृत्तिमार्ग का। नेमिनाथ ने गिरनार (सौराष्ट्र) पर तपस्या की थी और, डॉ. ज्योतिप्रसाद के जैन अनुसार, "तीर्थंकर नेमिनाथ का प्रभाव विशेषकर पश्चिमी एवं दक्षिणी भारत पर हुआ। दक्षिण भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त जैन तीर्थंकर मूर्तियों में नेमिनाथ की प्रतिमाओं का बाहुल्य है जो अकारण नहीं है। इसके अतिरिक्त कर्नाटक प्रदेश में नेमिनाथ की यक्षी कूष्माण्डिनी देवी की आज भी व्यापक मान्यता इस तथ्य की पुष्टि करती है। श्रवणबेलगोल में गोमटेश्वर मूर्ति की प्रतिष्ठा के समय इस देवी के चमत्कार की कथा बहुत प्रसिद्ध है।

ऐतिहासिक युग

पार्श्वनाथ और नाग-पूजा

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे। उनकी ऐतिहासिकता तो सिद्ध ही है। उन्होंने अपने जीवन में 70 वर्षों तक विहार कर धर्म का प्रचार किया था। उन पर कमठ नामक बैरी ने घोर उपसर्ग किया था। सम्भवतः यह आश्चर्यजनक ही है कि कर्नाटक में कमठान (कमठ स्थान ?) कमटगी जैसे स्थान हैं और कमथ या कामठ उपनाम आज भी प्रचलित हैं। वैसे ये उपसर्ग उत्तर भारत में हुए बताए जाते हैं किन्तु स्थान-भ्रम की सम्भावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ नागजाति की एक शाखा उरगवंश के थे (उरग-सर्प)। उनकी मूर्ति पर सर्पफणों की छाया होती है। कुछ विद्वानों का मत है कि पार्श्वनाथ के समय में नाग-जाति के राजतन्त्रों या गणतन्त्रों का उदय दक्षिण में भी हो चुका था और उनके इष्टदेवता पार्श्वनाथ थे।

कर्नाटक में यदि जैन बसदियों (मन्दिरों) का वर्गीकरण किया जाए तो पार्श्वनाथ मन्दिरों की ही संख्या सबसे अधिक आएगी। इसी प्रकार पार्श्व-प्रतिमा स्थापित किए जाने के शिलालेख अधिक संख्या में हैं।

एक तथ्य यह भी है कि कर्नाटक में पार्श्वनाथ के यक्ष धरणेन्द्र और यक्षी पद्मावती की मान्यता बहुत ही अधिक है। कुछ क्षेत्रों में पद्मावती की चमत्कार पूर्ण प्रतिमाएँ हैं।

कर्नाटक के समान ही केरल में नाग-पूजा सबसे अधिक है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि केरल में यह पूजा बौद्धों के कारण प्रचलित हुई। अन्य विद्वान् इसका खण्डन कर कथन करते हैं कि यह तुलु प्रदेश (मूडबिद्री के आस-पास के क्षेत्र) से केरल में आई और वहाँ तो जैनधर्म और पार्श्वनाथ की ही मान्यता अधिक थी। कर्नाटक के दक्षिणी भाग में नाग-पूजा भी पार्श्वनाथ के प्रभाव को प्रमाणित करती है।

महावीर और हेमांगद शासक जीवंधर

चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर, जिनका निर्वाण आज (1988 ई.) से 2515 वर्ष पूर्व हुआ

था, के धर्म का प्रचार अश्मक देश (गोदावरी के तट का प्रदेश), सुश्मक देश (आन्ध्र-पोदनपुर) तथा हेमांगद देश (कर्नाटक) में भी था। हेमांगद देश की स्थिति कर्नाटक में बतायी जाती है। यहाँ के राजा जीवंधर ने भगवान महावीर के समवसरण में पहुँच कर दीक्षा ले ली थी। संक्षेप में, जीवंधर की कथा इस प्रकार है—जीवंधर के पिता सत्यंधर अपनी रानी में बहुत अधिक आसक्त हो गए। इसलिए मन्त्री काष्ठांगार ने उनके राज्य पर अधिकार कर लिया। सत्यंधर युद्ध में मारे गए किन्तु उन्होंने अपनी गर्भवती रानी को केकियन्त्र में बाहर भेज दिया था। शिशु ने बड़ा होने पर आचार्य आर्यनन्दि से शिक्षा ली और अपने राज्य को पुनः प्राप्त किया। काफी वर्ष राज्य करने के बाद उन्हें वैराग्य हुआ और वे भगवान महावीर के समवसरण में जाकर दीक्षित हो गए।

सन् 1982 ई. में प्रकाशित 'Karnataka State Gazeteer' Vol- I में लिखा है—

"Jainism in Karnataka is believed to go back to the days of Bhagawan Mahavir. Jivandhara, a prince from Karnataka is described as having been initiated by Mahavir himself."

अर्थात् विश्वास किया जाता है कि कर्नाटक में जैनधर्म का इतिहास भगवान महावीर के युग तक जाता है। कर्नाटक के एक राजा जीवंधर को स्वयं महावीर ने दीक्षा दी थी ऐसा वर्णन आता है।

संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश में तो लगभग एक हज़ार वर्षों तक जीवंधरचरित पर आधारित रचनाएँ लिखी जाती रहीं। तमिल और कन्नड़ में भी उनके जीवन से सम्बन्धित रचनाएँ हैं। जीवकचिन्तामणि (तमिल), कन्नड़ में—जीवंधरचरिते (भास्कर, 1424 ई.), जीवंधर-सांगत्य (बोम्मरस, 1485 ई.) जीवंधर-षट्पदी (कोटीश्वर, 1500 ई.) तथा जीवंधरचरिते (बोम्मरस)।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष सुविचारित एवं सुपरीक्षित नहीं लगता कि कर्नाटक में जैनधर्म का प्रचार ही उस समय प्रारम्भ हुआ जब चन्द्रगुप्त मौर्य और श्रुतकेवली भद्रबाहु श्रवणबेलगोल आए। कम-से-कम भगवान महावीर के समय में भी जैनधर्म कर्नाटक में विद्यमान था यह तथ्य हेमांगदनरेश जीवंधर के चरित्र से स्वतः सिद्ध है।

बौद्धग्रन्थ 'महावंश' का साक्ष्य

श्रीलंका के राजा पाण्डुकाभय (ईसापूर्व 377 से 307) और उसकी राजधानी अनुराधापुर के सम्बन्ध में चौथी शताब्दी के बौद्ध ग्रन्थ 'महावंश' में कहा गया है कि श्रीलंका के इस राजा ने निगंथ जोतिय (निगंथ=निर्ग्रन्थ-जैनों के लिए प्रयुक्त नाम जो कि दिगम्बर का सूचक है) के निवास के लिए एक भवन बनवाया था। वहाँ और भी निर्ग्रन्थ साधु निवास करते थे। पाण्डुकाभय ने एक निर्ग्रन्थ कुंभण्ड के लिए एक मन्दिर भी बनवा दिया था। इस उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि ईसा से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व श्रीलंका में जैनधर्म का प्रचार हो चुका था और वहाँ दिगम्बर जैन साधु विद्यमान थे। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि वहाँ जैनधर्म दक्षिण में पर्याप्त प्रचार के बाद ही या तो कर्नाटक-तमिलनाडु होते हुए या कर्नाटक-केरल होते हुए एक प्रमुख धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ होगा।

महावंश में उल्लिखित जैनधर्म सम्बन्धी तथ्य को प्रसिद्ध इतिहासकार श्री नीलकण्ठ शास्त्री ने भी स्वीकार करते हुए 'दी एज ऑफ नन्दाज़ एण्ड मौर्याज़' में लिखा है कि राजा पाण्डुकाभय ने निर्ग्रन्थों को भी दान दिया था।

नन्द-वंश

महावीर स्वामी के बाद पाटलिपुत्र में नन्दवंश प्रतिष्ठित हुआ। यह वंश जैन धर्मानुयायी था। यह तथ्य सम्राट् खारवेल के लगभग 2200 वर्ष पुराने उस शिलालेख से स्पष्ट है जिसमें उसने कहा है कि कलिंगजिन की जो मूर्ति नन्द राजा उठा ले गया था, उसे वह वापस लाया है। इस वंश का राज्य पूरे भारत पर था। कर्नाटक के बीदर को महाराष्ट्र से जोड़ने वाली सड़क नांदेड जाती है। विद्वानों के अनुसार 'नव (नौ) नन्द देहरा' उस स्थान का प्राचीन नाम है जो घिसकर नान्देड हो गया है। 'देहरा' जैन मन्दिर के लिए आज भी राजस्थान-गुजरात में प्रयुक्त होता है। नांदेड वह स्थान था जहां नन्दों ने जैन मन्दिर बनवाया था और (शायद) नगर बसाया था। इस बात के प्रमाण हैं कि कुंतल देश नन्द राजाओं की सीमा में था। श्री एम. एस. रामास्वामी अय्यंगार 'कुंतल' देश को roughly Karnataka (मोटे तौर पर कर्नाटक) मानते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ तमिल ग्रन्थों में अन्तिम नन्द राजा धननन्द के अपार खजाने, उसके गंगा में गड़े होने या बह जाने का, उसके लालच का उल्लेख करते हैं। आशय यह कि तत्कालीन तमिल देश भी नन्दों के अधीन था और इन शासकों के सम्बन्ध में चर्चा यहाँ के लोगों-लेखकों में भी अक्सर होती रहती थी।

प्राचीन भारतीय इतिहास के विशेषज्ञ श्री हेमचन्द्रराय चौधरी ने 'इण्डिया इन द एज़ ऑफ नन्दाज़' नामक अध्याय में लिखा है—

"Jain writers refer to the subjugation by Nanda's minister of the whole country down to the seas."

अर्थात् "जैन लेखक इस बात का उल्लेख करते हैं कि नन्द के मन्त्री ने समुद्र पर्यन्त सारे देश को अधीन कर लिया था।" यदि इन जैन लेखकों के कथन में कुछ भी सच्चाई नहीं होती, तो श्री राय चौधरी उसका उल्लेख नहीं करते।

मौर्य-वंश

ऊपर जो तथ्य दिये गये हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि कर्नाटक में जैन धर्म का प्रसार चन्द्रगुप्त मौर्य और आचार्य भद्रबाहु के श्रवणबेलगोल आने से पूर्व ही हो चुका था। यदि ऐसा नहीं होता तो चन्द्रगुप्त मौर्य बारह हजार मुनियों (उनके साथ एक लाख जैन श्रावक भी रहे होंगे) को अपने साथ लेकर कर्नाटक नहीं आते। यह तथ्य इस बात का भी खण्डन करता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने दक्षिण पर भी विजय की थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र बिन्दुसार और पोते सम्राट् अशोक ने भी श्रवणबेलगोल की यात्रा की थी। कर्नाटक में कुछ स्थानों (रायचूर जिला) पर अशोक के लेख भी पाये गये हैं। अशोक को बौद्ध बताया जाता है किन्तु यह पूरी तरह सत्य नहीं है। इस तथ्य के समर्थन में श्री एम. एस. रामास्वामी अय्यंगार ने लिखा है—

"Prof. Kern, the great authority on Buddhist scriptures, has to admit that nothing of a Buddhist can be discovered in the state policy of Ashoka. His ordinances concerning the sparing of life agree much more closely with the ideas of the heretical Jains than those of the Buddhist."

अर्थात् बौद्ध धर्मग्रन्थों के महान् अधिकारी विद्वान् प्रो. कर्न को यह स्वीकार करना पड़ा है कि अशोक की राज्य-नीति में बौद्ध जैसी कोई बात नहीं पाई जाती। जीवों की रक्षा सम्बन्धी उसके आदेश बौद्धों की अपेक्षा विधर्मी जैनों से बहुत अधिक मेल खाते हैं।

अशोक के उत्तराधिकारी सभी मौर्य राजा जैन थे । अतः मौर्य राजाओं के शासनकाल में कर्नाटक में जैन धर्म का प्रचार-प्रसार चन्द्र गुप्त-भद्रबाहु परम्परा के कारण भी काफी रहा ।

सातवाहन-वंश

मौर्य वंश का शासन समाप्त होने के बाद, कर्नाटक में पैठन (प्राचीन नाम प्रतिष्ठानपुर, महाराष्ट्र) के सातवाहन राजाओं का शासन रहा । इस वंश ने ईसा पूर्व तीसरी सदी से ईसा की तीसरी शताब्दी अर्थात् लगभग 600 वर्षों तक राज्य किया । थे तो ये ब्राह्मण किन्तु इस वंश के भी कुछ राजा जैन हुए हैं । उन सबमें शालिवाहन या 'हाल' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इस राजा द्वारा रचित प्राकृत ग्रन्थ 'गाथा सप्तशती' पर जैन विचारों का प्रभाव है । इस वंश से सम्बन्धित कुछ स्थानों का पता गुलबर्गा जिले में चला है । स्वयं हाल का दावा था कि वह 'कुन्तलजनपदेश्वर' है । इसके समय में प्राकृत भाषा की भी उन्नति हुई । कर्नाटक में प्राकृत के प्रसार का श्रेय मौर्य और सातवाहन वंश को है ।

कदम्ब-वंश

सातवाहन वंश के बाद कर्नाटक में दो नये राजवंशों का उदय हुआ । एक तो था कदम्ब वंश 300 ई. से 500 ई.) जिसकी राजधानी क्रमशः करहद (करहाटक), वैजयन्ती (बनवासी) रहीं । इतिहास में ये वैजयन्ती के कदम्ब नाम से प्रसिद्ध हैं । यह वंश भी ब्राह्मण धर्मानुयायी था तथापि कुछ राजा जैन धर्म के प्रति अत्यन्त उदार या जैन धर्मावलम्बी थे । इस वंश का दूसरा राजा शिवकोटि प्रसिद्ध जैनाचार्य समन्तभद्र स्वामी से जैन धर्म में दीक्षित हो गया था । कदम्बवंशी राजा काकुत्स्थवर्मन् का लगभग 400 ई. का एक ताम्रलेख हलसी (कर्नाटक) से प्राप्त हुआ है, जिसके अनुसार उसने अपनी राजधानी पलासिका (कर्नाटक) के जिनालय को एक गाँव दान में दिया था । लेख में उसने 'जिनेन्द्र की जय' की है और ऋषभदेव को नमस्कार किया है ।

काकुत्स्थवर्मन् के पुत्र शान्तिवर्मा ने भी अर्हन्तदेव के अभिषेक आदि के लिए दान दिया था और एक जिनालय भी पलासिका में बनवाकर श्रुतकीर्ति को दान कर दिया था । उसके पुत्र मृगेशवर्मन् (450-478 ई.) ने भी कालवंग नामक एक गाँव के तीन भाग कर एक भाग अर्हन्महाजिनेन्द्र के लिए, दूसरा श्वेताम्बर संघ के लिए और तीसरा भाग दिगम्बर श्रमण (निर्ग्रन्थ) के उपयोग के लिए दान में दिया था । उसने अर्हन्तदेव के अभिषेक आदि के लिए भूमि आदि दान की थी ।

मृगेशवर्मन् के बाद रविवर्मन् (478-520 ई.) ने जैनधर्म के लिए बहुत कुछ किया । अपने पूर्वजों के दान की उसने पुष्टि की, अष्टाह्निका में प्रति वर्ष पूजन के लिए पुरखेटक गाँव दान किया, राजधानी में नित्य पूजा की व्यवस्था की तथा जैन गुरुओं का सम्मान किया । उसने ऐसी भी व्यवस्था की कि चातुर्मास में मुनियों के आहार में बाधा न आये तथा कार्तिकी में नन्दीश्वर विधान हो ।

हरिवर्मन् कदम्ब (520-540 ई०) ने भी अष्टाह्निका तथा संघ को भोजन आदि के लिए कूर्चक संघ के वारिषेणाचार्य को एक गाँव दान में दिया था । उसने अहिरिष्टि नामक श्रमण-संघ को मरदे नामक गाँव का दान भी किया था ।

कदम्बों के दान आदि पर विचार कर पुरातत्त्वविद् श्री टी. एन. रामचन्द्रन् ने लिखा है, "कर्नाटक में बनवासि के **कदम्ब शासक यद्यपि हिन्दू थे तथापि उनकी बहुत-सी प्रजा के जैन होने के कारण वे भी यथाक्रम जैनधर्म के अनुकूल थे ।**" (अनेकान्त से)

गंग-वंश

कर्नाटक में जैनधर्म के इतिहास में इस वंश का स्थान सबसे ऊँचा है। इस वंश की स्थापना ही जैनाचार्य सिंहनन्दी ने की थी। एक शिलालेख में इन आचार्य को 'गंगराज्य-समुद्धरण' कहा गया है। शिलालेखानुसार उज्जयिनी के राजा ने जब अहिच्छत्र के राजा पद्मनाभ पर आक्रमण किया तो राजा ने अपने दो पुत्रों दड्डिग और माधव को दक्षिण की ओर भेज दिया। वे कर्नाटक के पेरूर नामक स्थान में पहुँचे। उस समय वहाँ विद्यमान सिंहनन्दी ने उनमें राजपुरुषोचित गुण देखे। बल-परीक्षा के समय माधव ने तलवार से एक पाषाण-स्तम्भ के टुकड़े कर दिए। आचार्य ने उन्हें शिक्षा दी, मुकुट पहनाया और अपनी पिच्छी का चिह्न उन्हें दिया। उन्हें 'जिनधर्म से विमुख नहीं होने तथा कुछ दुर्गुणों से बचने पर ही कुल चलेगा' यह चेतावनी भी दी। बताया जाता है कि यह घटना 188 ई. अथवा तीसरी सदी की है। इस वंश ने कर्नाटक में लगभग एक हज़ार वर्षों तक शासन किया। उसकी पहली राजधानी कुवलाल (आधुनिक कोलार), तलकाड (कावेरी नदी के किनारे) तथा मान्यपुर (मण्णे) रही। इतिहास में यह **तलकाड** (तालवनपुर) का **गंगवंश** नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है। इनके द्वारा शासित प्रदेश 'गंगवाडी' कहलाता था और उसमें मैसूर के आसपास का बहुत बड़ा भाग शामिल था। कर्नाटक का यही राजवंश ऐसा है जिसने कर्नाटक में सबसे लम्बी अवधि—ईसा की चौथी सदी से ग्यारहवीं सदी तक—राज्य किया है।

गंगवंश के समय में जैन धर्म की स्थिति का आकलन करते हुए श्री टी. एन. रामचन्द्रन् ने लिखा है, **जैन धर्म का स्वर्णयुग साधारणतया "दक्षिण भारत में और विशेषकर कर्नाटक में गंगवंश के शासकों के समय में था, जिन्होंने जैन धर्म को राष्ट्रधर्म** के रूप में स्वीकार किया था।" उनके इस कथन में अतिशयोक्ति नहीं जान पड़ती। किन्तु यह उक्ति इस वंश के जैन धर्म के प्रचार सम्बन्धी प्रयत्नों का सारांश ही है। कुछ प्रमुख गंगवंशी राजाओं का संक्षिप्त परिचय यहाँ जैन धर्म के प्रसंग में दिया जा रहा है।

गंगवंश का प्रथम नरेश माधव था जो कि कोंगुणिवर्म प्रथम के नाम से प्रसिद्ध है। उसने मण्डलि नामक स्थान पर काष्ठ का एक जैन मन्दिर बनवाया था और एक जैनपीठ की भी स्थापना की थी। इसी वंश के अविनीत गंग के विषय में यह कहा जाता है कि तीर्थंकर प्रतिमा सिर पर रखकर उसने बाढ़ से उफनती हुई कावेरी नदी को पार किया था। उसने अपने पुत्र दुर्विनीत गंग की शिक्षा आचार्य देवनन्दि पूज्यपाद के सान्निध्य में दिलाई थी तथा लालवन नगर की जैन बसदि के लिए तथा अन्य बसदियों आदि के लिए विविध दान दिए थे।

दुर्विनीत का काल 481 ई. से 522 ई. के लगभग माना जाता है। यह पराक्रमी होने के साथ-ही-साथ परम जिनभक्त और विद्यारसिक भी था। उसने कोगलि (कर्नाटक) में चेन्न पार्श्वनाथ नामक बसदि का निर्माण कराया था। देवनन्दि पूज्यपाद उसके गुरु थे। प्रसिद्ध संस्कृत कवि भारवि भी उसके दरबार में रहे। उसने पूज्यपाद द्वारा रचित पाणिनिव्याकरण की टीका का कन्नड़ में अनुवाद भी किया था। उसके समय में तलकाड एक प्रमुख जैन-विद्या केन्द्र था।

श्री रामास्वामी आयंगार का मत है कि दुर्विनीत के उत्तराधिकारी मुष्कर के समय में **"जैनधर्म गंगवाडी का राष्ट्रधर्म था।"** उसने बल्लारी के समीप एक जिनालय का भी निर्माण कराया था। इस वंश की अगली कड़ी में शिवमार प्रथम नामक राजा (550 ई. में) हुआ है जो जिनेन्द्र भगवान का परम भक्त था। उसके गुरु चन्द्रसेनाचार्य थे और उसने अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था तथा दान दिया था।

श्रीपुरुष मुत्तरस (726-776 ई.) नामक गंगनरेश ने अनेक जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया

था। उसने तोल्ल विषय (ज़िला) के जिनालय, श्रीपुर के पार्श्व जिनालय और उसके पास के लोकतिलक जिनमन्दिर को दान दिया था। आचार्य विद्यानन्द ने 'श्रीपुर-पार्श्वनाथ-स्तोत्र' की रचना भी श्रीपुर में इसी नरेश के सामने की थी ऐसी अनुश्रुति है।

शिवकुमार द्वितीय सैगोत (776-815 ई) को अपने जीवन में युद्ध और बन्दीगृह का दुःख भोगना पड़ा फिर भी उसने जैनधर्म की उन्नति के लिए कार्य किया। उसने श्रवणबेलगोल की चन्द्रगिरि पहाड़ी पर 'शिव-मारन बसदि' का निर्माण कराया था, ऐसा वहाँ से प्राप्त एक लेख से ज्ञात होता है। आचार्य विद्यानन्द उसके भी गुरु थे।

राचमल्ल सत्यवाक्य प्रथम (815-853 ई.) ने अपनी राजनीतिक स्थिति ठीक की। किन्तु उसने धर्म के लिए भी कार्य किया था। उसने चित्तूर तालुक में वल्लमलै पर्वत पर एक गुहा-मन्दिर भी बनवाया था। सम्भवत: उसी के आचार्य गुरु आर्यनन्दि ने प्रसिद्ध 'ज्वालामालिनी कल्प' की रचना की थी।

सत्यवाक्य के उत्तराधिकारी एरेयगंग नीतिमार्ग (853-870 ई.) को कुडलूर के दानपत्र में 'परम-पूज्य अर्हद्भट्टारक के चरण-कमलों का भ्रमर के कहा गया है। इस राजा ने समाधिमरण किया था।

राचमल्ल सत्यवाक्य द्वितीय (870-907 ई.) ने पेन्ने कडंग नामक स्थान पर सत्यवाक्य जिनालय का निर्माण कराया था और बिलियूर (बेलूर) क्षेत्र के बारह गाँव दान में दिए थे।

नीतिमार्ग द्वितीय (907-917 ई.) ने मुडहल्लि और तोरमबु के जैनमन्दिरों को दान दिया था। विमलचन्द्राचार्य उसके गुरु थे।

गंगनरेश नीतिमार्ग के बाद, बुतुग द्वितीय तथा मरुलदेव नामक दो राजा हुए। ये दोनों भी परम जिन-भक्त थे। शिलालेखों में उनके दान आदि का उल्लेख है।

मारसिंह (961-974 **ई.**) नामक गंगरेश जैनधर्म का महान् अनुयायी था। इस नरेश की स्मृति एक स्मारक-स्तम्भ के रूप में श्रवणबेलगोल की चन्द्रगिरि पर के मन्दिर-समूह के परकोटे में प्रवेश करते ही उस स्तम्भ पर आलेख के रूप में सुरक्षित है। मारसिंह ने अपना अन्तिम समय जानकर अपने गुरु अजितसेन भट्टारक के समीप तीन दिन का सल्लेखना व्रत धारण कर बंकापुर में अपना शरीर त्यागा था। उसने अनेक जैनमन्दिरों का निर्माण कराया था। वह जितना धार्मिक था उतना ही शूर-वीर भी था। उसने गुर्जर देश, मालवा, विन्ध्यप्रदेश, बनवासि आदि प्रदेशों को जीता था तथा 'गंगसिंह', 'गंगवज्र' जैसी उपधियों के साथ-ही-साथ 'धर्म-महाराजाधिराज' की उपाधि ग्रहण की थी। वह स्वयं विद्वान था और विद्वानों एवं आचार्यों का आदर करता था।

राचमल्ल सत्यवाक्य चतुर्थ (974 **ई.** से 984 **ई.**)—इस शासक ने अपने राज्य के प्रथम वर्ष में ही पेग्गूर ग्राम की बसदि के लिए इसी नाम का गाँव दान में दिया और पहले के दानों की पुष्टि की थी।

राचमल्ल का नाम श्रवणबेलगोल की गोम्मटेश्वर महामूर्ति के कारण भी इतिहास प्रसिद्ध हो गया है। इसी राजा के मन्त्री एवं सेनापति चामुण्डराय ने गोम्मटेश्वर की मूर्ति का निर्माण कराया था। राजा ने उनके पराक्रम और धार्मिक वृत्ति आदि गुणों से प्रसन्न होकर उन्हें 'राय' (राजा) की उपाधि से सम्मानित किया था।

उपर्युक्त नरेश के बाद, यह गंग साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा। किन्तु जो भी उत्तराधिकारी हुए वे जैनधर्म के अनुयायी बने रहे। रक्कसगंग ने अपनी राजधानी तलकाड में एक जैन मन्दिर बनवाया था और विविध दान दिए थे।

सन् 1004 ई. में चोलों ने गंग-राजधानी तलकाड पर आक्रमण किया और उस पर तथा गंगवाड़ी के बहुत से भाग पर अधिकार कर लिया। परवर्ती काल में भी, कुछ विद्वानों के अनुसार, गंगवंश 16वीं शती तक चलता रहा किन्तु होय्सल, चालुक्य, चोल, विजयनगर आदि राज्यों के सामन्तों के रूप में।

जैनधर्म-प्रतिपालक गंगवंश कर्नाटक के इतिहास में सबसे दीर्घजीवी राजवंश था। उसकी कीर्ति उस समय और भी अमर हो गई जब गोम्मटेश्वर महामूर्ति की प्रतिष्ठापना हुई।

चालुक्य राजवंश

कर्नाटक में इस वंश का राज्य दो विभिन्न अवधियों में रहा। लगभग छठी सदी से आठवीं सदी तक इस वंश ने ऐहोल और बादामी (वातापि) नामक दो स्थानों को क्रमशः राजधानी बनाया। दूसरी अवधि 10वीं से 12वीं सदी की है जबकि चालुक्यवंश की राजधानी कल्याणी (आधुनिक बसव कल्याण) थी। जो भी हो, इतिहास में यह वंश पश्चिमी चालुक्य कहलाता है।

पहली अवधि अर्थात् छठी से आठवीं सदी के बीच चालुक्य राजाओं का परिचय ऐहोल और बादामी के प्रसंग में इसी पुस्तक में दिया गया है। फिर भी यह बात पुनः उल्लेखनीय है कि चालुक्यनरेश पुलकेशी द्वितीय के समय उसके आश्रित जैन कवि रविकीर्ति द्वारा 634 ई. में ऐहोल में बनवाया गया जैन मन्दिर (जो कि अब मेगुटी मन्दिर कहलाता है) चाल्युक्य-नरेश की स्मृति अपने प्रसिद्ध शिलालेख में सुरक्षित रखे हुए है। यह शिलालेख पुरातत्त्वविदों और संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञों के बीच चर्चित है। इसी लेख से ज्ञात होता है कि पुलकेशी द्वितीय ने कन्नौज के सम्राट हर्षवर्धन को प्रयत्न करने पर भी दक्षिण भारत में घुसने नहीं दिया था। उसके उत्तराधिकारी मंगेश ने वातापि में राजधानी स्थानान्तरित कर ली थी। उस स्थान पर पहाड़ी के ऊपरी भाग में बना जैन गुफा-मन्दिर और उसमें प्रतिष्ठित बाहुबली की सुन्दर मूर्ति कला का एक उत्तम उदाहरण है। आश्चर्य होता है कि चट्टानों को काटकर सैकड़ों छोटी-बड़ी मूर्तियाँ इस गुफा-मन्दिर में बनाने में कितना कौशल अपेक्षित रहा होगा और कितनी राशि व्यय हुई होगी!

अनेक शिलालेख इस बात के साक्षी हैं कि चालुक्यनरेश प्रारम्भ से ही जैनधर्म को, जैन मन्दिरों को संरक्षण देते रहे हैं। अन्तिम नरेश विक्रमादित्य द्वितीय ने पुलिगेरे (लक्ष्मेश्वर) के 'धवल जिनालय' का जीर्णोद्धार कराया था।

कल्याणी को जैन राजधानी के रूप में स्मरण किया जाता है (देखिए 'कल्याणी' प्रसंग)। तैलप द्वितीय का नाम इतिहास में ही नहीं, साहित्य में भी प्रसिद्ध है। तैलप द्वारा बन्दी बनाये गये धारानगरी के राजा मुंज और तैलप की बहिन मृणालवती की कथा अब लोककथा-सी बन गई है। तैलप प्रसिद्ध कन्नड़ जैन कवि रन्न का भी आश्रयदाता था। इस नरेश ने 972 ई. में राष्ट्रकूट शासकों की राजधानी मान्यखेट पर भीषण आक्रमण, लूटपाट करके उसे अधीन कर लिया था। कोगुलि शिलालेख (992 ई.) से प्रतीत होता है कि वह जैनधर्म का प्रतिपालक था। एक अन्य शिलालेख में, उसने राजाज्ञा का उल्लंघन करने वाले को बसदि, काशी एवं अन्य देवालयों को क्षति पहुँचाने वाला घातकी घोषित किया है। बसदि या जैन मन्दिर का उल्लेख भी उसे जैन सिद्ध करने में सहायक है।

तैलप के पुत्र सत्याश्रय इरिवबेडेंग (997-1009) के गुरु द्रविड संघ कुन्कुन्दान्वय के विमलचन्द्र पण्डितदेव थे। इस राजा के बाद जयसिंह द्वितीय जगदेकमल्ल (1014-1042 ई.) इस वंश का राजा हुआ। वह जैन गुरुओं का आदर करता था। उसके समय में आचार्य वादिराज सूरि ने शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त की थी

और इस नरेश ने उन्हें जयपत्र प्रदान कर 'जगदेकमल्लवादी' की उपाधि से विभूषित किया था। इन्हीं सूरि ने 'पार्श्वचरित' और 'यशोधरचरित' की रचना की थी।

जयसिंह के बाद सोमेश्वर प्रथम (1042-68 ई.) ने शासन किया। कोगलि से प्राप्त एक शिलालेख में उसे स्याद्वाद मत का अनुयायी बताया गया है। उसने इस स्थान के जिनालय के लिए भूमि का दान भी किया था। उसकी महारानी केतलदेवी ने भी पोन्नवाड के त्रिभुवनतिलक जिनालय के लिए महासेन मुनि को पर्याप्त दान दिया था। एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि सोमेश्वर ने तुंगभद्रा नदी में जलसमाधि ले ली थी।

सोमेश्वर द्वितीय (1068-1076 ई.) भी जिनभक्त था। जब वह बंकापुर में था तब उसने अपने पादपद्मोपजीवी चालुक्य उदयादित्य की प्रेरणा से बन्दलिके की शान्तिनाथ बसदि का जीर्णोद्धार कराके एक नयी प्रतिमा स्थापित की थी। अपने अन्तिम वर्ष में उसने गुडिगेरे के श्रीमद् भुवनैकमल्ल शान्तिनाथ देव नामक जैन मन्दिर को 'सर्वनमस्य' दान के रूप में भूमिदान किया था।

विक्रमादित्य षष्ठ त्रिभुवनमल्ल साहसतुंग (1076-1128 ई.) इस वंश का अन्तिम नरेश था। कुछ विद्वानों के अनुसार, उसने जैनाचार्य वासवचन्द्र को 'बालसरस्वती' की उपाधि से सम्मानित किया था। गद्दी पर बैठने से पहले ही उसने बल्लियगांव में 'चालुक्यगंगपेर्म्मानडि जिनालय, नामक एक मन्दिर बनवाया था और देव पूजा, मुनियों के आहार आदि के लिए एक गाँव दान में दिया था। एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि उसने हुनसि हदल्गे में पद्मावती-पार्श्वनाथ बसदि का निर्माण कराया था। इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों पर मन्दिर बनवाए तथा चोलों द्वारा नष्ट किए गए मन्दिरों का जीर्णोद्धार भी कराया था। उसके गुरु आचार्य अर्हनन्दि थे। उसकी रानी जक्कलदेवी भी परम जिनभक्ता थी।

उपर्युक्त चालुक्यनरेश के उत्तराधिकारी कमजोर सिद्ध हुए। अन्तिम नरेश संभवतः नूर्म्मडि तैलप (1151-56 ई.) था जिसे परास्त कर कल्याणी पर कलचुरि वंश का शासन स्थापित हो गया। इस वंश का परिचय आगे दिया जाएगा।

राष्ट्रकूट-वंश

इस वंश का प्रारम्भिक शासन-क्षेत्र मुख्यतः महाराष्ट्र प्रदेश था किन्तु उसके एक राजा दन्तिवर्मन् ने चालुक्यों को कमजोर जान आठवीं शती के मध्य में (752 ई. में) कर्नाटक प्रदेश पर भी अधिकार कर लिया था। कुछ विद्वानों का मत है कि उसने प्रसिद्ध जैनाचार्य अकलंक का अपने दरबार में सम्मान किया था। इसका आधार श्रवणबेलगोल का एक शिलालेख है जिसमें कहा गया है कि अकलंक ने साहसतुंग को अपनी विद्वत्ता से प्रभावित किया था। साहसतुंग दन्तिवर्मन् की ही एक उपाधि थी।

दन्तिवर्मन् के बाद कृष्ण प्रथम अकालवर्ष शुभतुंग (757-773 ई.) राजा हुआ। उसी के समय में एलोरा के सुप्रसिद्ध मन्दिरों का निर्माण हुआ जिनमें वहाँ के प्रसिद्ध जैन गुहा-मन्दिर भी हैं। उसने चालुक्यों के सारे प्रदेशों को अपने अधीन कर लिया। उसने आचार्य परवादिमल्ल को भी सम्मानित किया था। इस नरेश की परम्परा में ध्रुव-धारावर्ष-निरुपम नामक शासक हुआ जिसने 779 से 793 ई. तक राज्य किया। उसकी पट्टरानी वेंगि के चालुक्यनरेश की पुत्री थी और जिनभक्ता थी। डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन के अनुसार, अपभ्रंश भाषा के जैन महाकवि स्वयम्भू ने अपने रामायण, हरिवंश, नागकुमारचरित, स्वयम्भूछन्द आदि महान ग्रन्थों की रचना, इसी नरेश के आश्रय में, उसी की राजधानी में रहकर की थी। कवि ने अपने काव्यों में धुवराय धवलइय नाम से इस आश्रयदाता का उल्लेख किया है।...पुन्नाटसंघी आचार्य जिनसेन ने 783 ई.

में समाप्त अपने 'हरिवंशपुराण' के अन्त में इस नरेश का उल्लेख "कृष्णनृप का पुत्र श्रीवल्लभ जो दक्षिणापथ का स्वामी था" इस रूप में किया है।

राजा ध्रुव के बाद गोविन्द तृतीय (793-814 ई.) राजा हुआ था। उसके समय में राज्य का खूब विस्तार भी हुआ और उसकी गणना साम्राज्य के रूप में होने लगी थी। उसने कर्नाटक में मान्यखेट (आधुनिक मलखेड) में नई राजधानी और प्राचीर का निर्माण प्रारम्भ कराया था। कुछ विद्वानों के अनुसार, वह जैनधर्म का अनुयायी तो नहीं था किन्तु वह उसके प्रति उदार था। उसने मान्यखेट के जैन मन्दिर के लिए 802 ई. में दान दिया था। 812 ई. उसने में पुन: शिलाग्राम के जैनमन्दिर के लिए अर्ककीर्ति नामक मुनि को जालमंगल नामक ग्राम भेंट में दिया था। इसके समय में महाकवि स्वयम्भू ने भी सम्भवत: मुनि -दीक्षा धारण कर ली थी जो बाद में श्रीपाल मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए थे।

सम्राट् अमोघवर्ष प्रथम (815-877 ई.)—यह शासक जैनधर्म का अनुयायी महान् सम्राट् और कवि था। वह बाल्यावस्था में मान्यखेट राजधानी का अभिषिक्त राजा हुआ। उसके जैन सेनापति बंकेयरस और अभिभावक कर्कराज ने न केवल उसके साम्राज्य को सुरक्षित रखा अपितु विद्रोह आदि का दमन करके साम्राज्य में शान्ति बनाए रखी तथा वैभव में भी वृद्धि की। अनेक अरब सौदागरों ने उसके शासन की प्रशंसा की है। सुलेमान नामक सौदागर ने तो यहाँ तक लिखा है कि उसके राज्य में चोरी और ठगी कोई भी नहीं जानता था, सबका धर्म और धार्मिकसम्पत्ति सुरक्षित थी। अन्य राजा लोग अपने-अपने राज्य में स्वतन्त्र रहते हुए भी उसकी प्रभुता स्वीकार करते थे।

सम्राट् अमोघवर्ष ने कन्नड़ भाषा में 'कविराजमार्ग' नामक एक ग्रन्थ अलंकार और छन्द के सम्बन्ध में लिखा है जिसका आज भी कन्नड़ में आदर के साथ अध्ययन किया जाता है। उसके समय में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और कन्नड़ में विपुल साहित्य का सृजन हुआ। उसके बचपन के साथी आचार्य जिनसेन ने जैन-जगत् में सुप्रसिद्ध 'आदिपुराण' जैसे विशालकाय पुराण की रचना की, साठ हजार श्लोक में 'जयधवल' जैन ग्रन्थ पूर्ण किया और कालिदास से समता रखने वाले'पार्श्वाभ्युदय' काव्य की रचना की। ये आचार्य ऋषभदेव और भरत का जीवन-चरित्र लिखने के बाद ही स्वर्गस्थ हो गए। उनके शिष्य आचार्य गुणभद्र ने उत्तरपुराण में शेष तीर्थंकरों का जीवन-चरित लिखा। ग्रंथ के अन्त में उन्होंने लिखा है कि सम्राट् अमोघवर्ष जिनसेनाचार्य को चरणों की वन्दना कर अपने आपको धन्य मानता था। आयुर्वेद, व्याकरण आदि से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ उसी के आश्रय में रचे गए। उसने 'प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका' नामक पुस्तक स्वयं लिखी है जिसके मंगलाचरण में उसने महावीर स्वामी की वंदना की है। उसके कोन्नूर लेख तथा संजन ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि वह एक श्रावक का जीवन व्यतीत करता था तथा जैन गुरुओं और जैन मन्दिरों को दान दिया करता था। 'रत्नमालिका' से यह भी सूचना मिलती है कि वह अपने अन्त समय में राजपाट को त्याग कर मुनि हो गया था। सम्बन्धित श्लोक है—

विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका ।
रचितामोघवर्षेण सुधियां सदलंकृति: ॥

अर्थात् विवेक का उदय होने पर राज्य का परित्याग करके राजा अमोघवर्ष ने सुधीजनों को विभूषित करने वाली इस रत्नमालिका नामक कृति की रचना की।

प्रसिद्ध भारतीय इतिहासज्ञ डॉ. अनन्त सदाशिव अल्तेकर ने अपनी पुस्तक 'राष्ट्रकूट एण्ड देअर टाइम्स' में लिखा है कि सम्राट् अमोघवर्ष के शासनकाल में जैनधर्म एक राष्ट्रधर्म या राज्यधर्म (State religion) हो गया था और उसकी दो-तिहाई प्रजा जैनधर्म का पालन करती थी। उनके बड़े-बड़े पदाधिकारी भी जैन थे। उन्होंने यह भी लिखा है कि जैनियों की अहिंसा के कारण भारत विदेशियों से हारा यह कहना गलत है। (सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य का भी उदाहरण हमारे सामने है।) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने लिखा है कि "प्रो० रामकृष्ण भण्डारकर के मतानुसार, राष्ट्रकूट नरेशों में अमोघवर्ष जैनधर्म का महान् संरक्षक था। यह बात सत्य प्रतीत होती है कि उसने स्वयं जैनधर्म धारण किया था।"

सम्राट् अमोघवर्ष के महासेनापति परम जिनभक्त बंकेयरस ने कर्नाटक में बंकापुर नामक एक नगर बसाया जो कर्नाटक के एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध हुआ और आज भी विद्यमान है।

कृष्णराज द्वितीय (878-914 ई.) सम्राट् अमोघवर्ष का उत्तराधिकारी हुआ। 'उत्तरपुराण' के रचयिता आचार्य गुणभद्र उसके विद्यागुरु थे। उसी के शासन-काल में आचार्य लोकसेन ने 'महापुराण' (आचार्य जिनसेन के आदिपुराण और आचार्य गुणभद्र के उत्तरपुराण) का पूजोत्सव बंकापुर में किया था। आज इस नगरी में एक भी जैन परिवार नहीं है, ऐसी सूचना है। पूजोत्सव के समय इस नरेश का प्रतिनिधि शासक लोकादित्य वहाँ राज्य करता था। इस राष्ट्रकूट शासक ने भी मूलगुण्ड, बदनिके आदि के अनेक जैन मन्दिरों के लिए दान दिए थे। स्वयं राजा और उसकी पट्टरानी जैनधर्म के प्रति श्रद्धालु थे। उसके सामन्तों, व्यापारियों ने भी जिनालय बनवाये थे।

इन्द्र तृतीय (914-922 ई.) भी अपने पूर्वजों की भाँति जिनभक्त था। उसने चन्दनपुरिपत्तन की बसदि और बड़नगरपत्तन के जैन मन्दिरों के लिए दान दिए थे और भगवान शान्तिनाथ का पाषाण-निर्मित सुन्दर पाद-पीठ भी बनवाया था। अपने राज्याभिषेक के समय उसने पहले से चले आए दानों की पुष्टि की थी तथा अनेक धर्मगुरुओं, देवालयों के लिए चार सौ गाँव दान किए थे।

कृष्ण तृतीय (939-967 ई.) इस वंश का सबसे अन्तिम महान् नरेश था। वह भी जैनधर्म का पोषक था और उसने जैनाचार्य वादिघंगल भट्ट का बड़ा सम्मान किया था। ये आचार्य गंगनरेश मारसिंह के भी गुरु थे। इस शासक ने कन्नड़ महाकवि पोन्न को 'उभयभाषाचक्रवर्ती' की उपाधि से सम्मानित किया था। ये वही कवि पोन्न हैं जिन्होंने कन्नड़ में 'शान्तिपुराण' और 'जिनाक्षरमाले' की रचना की है। उसके मन्त्री भरत और उसके पुत्र नन्न ने अपभ्रंश भाषा में रचित 'महापुराण' के महाकवि पुष्पदन्त को आश्रय दिया था। कवि ने लिखा है कि नन्न जिनेन्द्र की पूजा और मुनियों को दान देने में आनन्द का अनुभव करते थे। कवि पुष्पदन्त ब्राह्मण थे किन्तु मुनि के उपदेश से जैन हो गए थे। उन्होंने सल्लेखनाविधि से शरीर त्यागा था।

खोट्टिग नित्यवर्ष (967-972 ई.) ने शान्तिनाथ के नित्य अभिषेक के लिए पाषाण की सुन्दर चौकी समर्पित की थी ऐसा दानवलपाडु के एक शिलालेख से ज्ञात होता है। उसी के समय में 971 ई. में राजरानी आर्यिका पम्बब्बे ने केशलोंच कर आर्यिका दीक्षा ली थी और तीस वर्ष तपस्या कर समाधिमरण किया था।

गोमटेश्वर महामूर्ति के प्रतिष्ठापक वीरमार्तण्ड चामुण्डराय एवं गंगनरेश मारसिंह जब अन्य स्थानों पर युद्धों में उलझे हुए थे तब मालवा के परमार सियक ने मान्यखेट पर आक्रमण किया जिसमें खोट्टिग मारा गया। उसके पुत्र को भी मारकर चालुक्य तैलप ने मान्यखेट पर अधिकार कर लिया।

कृष्ण तृतीय के पौत्र और गंगनरेश मारसिंह के भानजे राष्ट्रकूट वंशी इन्द्र चतुर्थ की मारसिंह ने सहायता की, उसका राज्याभिषेक भी कराया। श्रवणबेलगोल के शिलालेखानुसार, मारसिंह ने 974 ई. में बंकापुर में समाधिमरण किया। इन्द्रराज भी संसार से विरक्त हो गया था और उसने भी 982 ई. में समाधिमरण किया। इस प्रकार राष्ट्रकूट वंश का अन्त हो गया। इस वंश के समय में लगभग 250 वर्षों तक जैनधर्म कर्नाटक का सबसे प्रमुख एवं लोकप्रिय धर्म था।

कलचुरि वंश

चालुक्य वंश के शासन को इस वंश के बिज्जल कलचुरि नामक चालुक्यों के ही महामण्डलेश्वर और सेनापति ने 1156 ई. में कल्याणी से समाप्त कर दिया। लगभग तीस वर्षों तक अनेक कलचुरि राजाओं ने कल्याणी से ही कर्नाटक पर शासन किया।

कलचुरियों का शासन मुख्य रूप से वर्तमान मध्यभारत, महाकोसल एवं उत्तरप्रदेश में तीसरी सदी से ही था। इनके सम्बन्ध में डॉ. ज्योति प्रसादजी का कथन है कि अनुश्रुतियों के अनुसार इस वंश का आदिपुरुष कीर्तिवीर्य था, जिसने जैन मुनि के रूप में तपस्या करके कर्मों को नष्ट किया था। 'कल' शब्द का अर्थ कर्म भी है और देह भी। अतएव देहदमन द्वारा कर्मों को चूर करने वाले व्यक्ति के वंशज कलचुरि कहलाये। इस वंश में जैनधर्म की प्रवृत्ति भी अल्पाधिक बनी रही। प्रो० रामास्वामी आयंगार आदि अनेक दक्षिण भारतीय इतिहासकारों का मत है कि पाँचवीं-छठी शती ई. में जिन शक्तिशाली कलभ्रजाति के लोगों ने तमिल देश पर आक्रमण करके चोल, चेर तथा पाण्ड्य नरेशों को पराजित करके उक्त समस्त प्रदेश पर अपना शासन स्थापित कर लिया था वे प्रतापी कलभ्र नरेश जैनधर्म के पक्के अनुयायी थे।...यह सम्भावना है कि उत्तर भारत के कलचुरियों की ही एक शाखा सुदूर दक्षिण में कलभ्र नाम से प्रसिद्ध हुई और कालान्तर में उन्हीं कलभ्रों की सन्तति में कर्णाटक के कलचुरि हुए।

आयंगार के ही अनुसार, कलचुरि शासक बिज्जल भी "अपने कुल की प्रवृत्ति के अनुसार जैनधर्म का अनुयायी था। उसका प्रधान सेनापति जैनवीर रेचिमय्य था। उसका एक अन्य जैन मन्त्री ब्राह्म बलदेव था जिसका जामाता बासव भी जैन था।" इसी बासव ने जैनधर्म और अन्य कुछ धर्मों के सिद्धान्तों को सममेलित कर 'वीरशैव' या लिंगायत' मत चलाया (इस आशय का एक पट्ट भी 'कल्याणी' के मोड़ पर लगा है। देखिए जैन राजधानी 'कल्याणी' प्रकरण)। जो भी हो, बिज्जल और उसके वंशजों ने इस मत का विरोध किया किन्तु वह फैलता गया और जैनधर्म को कर्नाटक में उसके कारण काफी क्षति पहुँची। कहा जाता है कि बिज्जल ने अपने अन्त समय में पुत्र को राज्य सौंप दिया और अपना शेष जीवन धर्म-ध्यान में बिताया। सन् 1183 ई. में चालुक्य सोमेश्वर चतुर्थ ने कल्याणी पर पुनः अधिकार कर लिया और इस प्रकार कलचुरि शासन का अन्त हो गया।

अब्लूर नामक एक स्थान के लगभग 1200 ई. के शिलालेख से ज्ञात होता है कि वीरशैव आचार्य एकान्तद रामय्य ने जैनों के साथ विवाद किया और उनसे ताड़पत्र पर यह शर्त लिखवा ली कि यदि वे हार गए तो वे जिनप्रतिमा के स्थान पर शिव की प्रतिमा स्थापित करेंगे। कहा जाता है कि रामय्य ने अपना सिर काट-कर पुनः जोड़ लिया। जैनों ने जब शर्त का पालन करने से इनकार किया तो उसने सैनिकों, घुड़सवारों के होते हुए भी हुलिगेरे (आधुनिक लक्ष्मेश्वर) में जैन मूर्ति आदि को फेंककर जिनमन्दिर के स्थान पर वीरसोमनाथ शिवालय बना दिया। जैनों ने राजा बिज्जल से इसकी शिकायत की तो राजा ने जैनों को फिर वही शर्त लिख

देने और रामय्य को वहीं करिश्मा दिखाने के लिए कहा। जैनों ने राजा से क्षति पूर्ति की माँग की, न कि झगड़ा बढ़ाने की। इस पर राजा ने रामय्य को जयपत्र दिया। इस चमत्कार की कहानी में विद्वानों को सन्देह है और इसका यही अर्थ लगाया जाता है कि वीरशैव या लिंगायत मत के अनुयायियों ने जैनों पर उन दिनों अत्याचार किये थे। एक मत यह भी है कि बिज्जल भी बासव की बहिन और अपनी सुन्दर रानी पद्मावती के प्रभाव से वीरशैव मत की ओर झुक गया था किन्तु उसे विषाक्त आम खिलाकर मार दिया गया।

होयसल राजवंश

यह वंश कर्नाटक के इतिहास में सबसे प्रसिद्ध राजवंश है। इस वंश से सम्बन्धित सबसे अधिक शिलालेख श्रवणबेलगोल तथा अन्य अनेक स्थानों पर पाए गए हैं। इस वंश के राजा विष्णुवर्धन और उसकी परम जिनभक्त, सुन्दरी, नृत्यगानविशारदा पट्टरानी शान्तला तो न केवल कर्नाटक के राजनीतिक और धार्मिक इतिहास तथा जनश्रुतियों में अमर हो गए हैं अपितु उपन्यास आदि साहित्यिक विधाओं के भी चिरजीवी पात्र हो गए हैं। मूडबिद्री के प्राचीन जैन ग्रन्थों में भी उनके चित्र सुरक्षित हैं।

उपर्युक्त वंश अपनी अद्भुत मन्दिर और मूर्ति निर्माण-कला के लिए भी जगविख्यात है। बेलूर, हलेबिड और सोमनाथपुर (सभी कर्नाटक में) के तारों (star) की आकृति के बने, लगभग एक-एक इंच पर सुन्दर, आकर्षक नक्काशी के काम वाले मन्दिरों ने उनके शासन को स्मरणीय बना दिया है। उनके समय की निर्माण-शैली अब इस वंश के नाम पर होय्सल शैली मानी जाती है। उसकी पृथक् पहिचान है और पृथक् विशेषता।

होय्सल वंश की राजधानी सबसे पहले सोसेवूरु या शशकपुर (आजकल का नाम अंगडि) फिर बेलूर और उसके बाद द्वारावती या द्वारसमुद्र या दोरसमुद्र में रही। अन्तिम स्थान आजकल हलेबिड (अर्थात् पुरानी राजधानी) कहलाता है और नित्य ही वहाँ सैकड़ों पर्यटक मन्दिर देखने के लिए आते हैं।

इस वंश की स्थापना जैनाचार्य सुदत्त वर्धमान ने की थी। होय्सलनरेश जैनधर्म के प्रतिपालक थे, उसके प्रबल पोषक थे। रानी शान्तला तो अपनी जिनभक्ति के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। उसके द्वारा श्रवण-बेलगोल में बनवायी गयी 'सवतिगन्धवारण बसदि' और वहाँ का शिलालेख उसकी अमर गाथा आज भी कहते हैं। इस वंश का इतिहास बड़ा रोचक और कुछ विवादास्पद (सही दृष्टि हो तो विवादास्पद नहीं) है। विशेषकर विष्णुवर्धन को लेकर तरह-तरह की अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं। जो भी हो, होय्सलवंश का इतिहास और उससे सम्बन्धित तथ्यों की संक्षिप्त परीक्षा इसी पुस्तक में 'हलेबिड' के परिचय के साथ की गई है। वह पढ़ने पर बहुत-सी बातें स्पष्ट हो जाएँगी।

होय्सलवंश का अन्त 1310 ई. में अलाउद्दीन खिलजी के और 1326 ई. में मुहम्मद तुगलक के आक्रमणों के कारण हो गया।

विजयनगर साम्राज्य (1336-1565 ई.)

यह हम देख चुके हैं कि होय्सल साम्राज्य का अन्त अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक के आक्रमणों के कारण हुआ। अन्तिम होय्सलनरेश बल्लाल की मृत्यु के बाद उसके एक सरदार संगमेश्वर या संगम के दो बेटों—हरिहर और बुक्का—ने मुसलमानों का शासन समाप्त करने की दृष्टि से संगम नामक एक नये राजवंश की 1336 ई. में नींव डाली। उन्होंने अपनी राजधानी विजयनगर (या विद्यानगर) में बनाई जो कि आजकल हम्पी कहलाती है। यह वाल्मीकि रामायण में वर्णित किष्किन्धाक्षेत्र में स्थित है और

प्राचीन साहित्य में पम्पापुरी कहलाती थी। अर्जन तीर्थयात्री इसे पम्पाक्षेत्र कहते हैं और आज भी बाली-सुग्रीव की गुफा आदि की यात्रा करने आते हैं।

आजकल की हम्पा में लगभग 26 कि. मी. के घेरे में बिखरे पड़े जैन-अजैन स्मारकों, महलों और साथ ही बहनेवाली तुंगभद्रा का परिचय इसी पुस्तक में दिया गया है। वहीं इस स्थान का रामायण-काल से इतिहास प्रारम्भ कर विजयनगर साम्राज्य का इतिहास और जैनधर्म के प्रति विजयनगर शासकों का दृष्टिकोण, उनके सेनापतियों आदि द्वारा विजयनगर में ही कुन्थुनाथ चैत्यालय (आधुनिक नाम गणिगित्ति बसदि) आदि मन्दिरों के निर्माण का उल्लेख किया गया है। इस वंश के द्वितीय नरेश बुक्काराय प्रथम (1365-77 ई.) ने जैनों (भव्यों) और वैष्णवों (भक्तों) के बीच जिस ढंग से विवाद निपटाया उसका सूचक शिलालेख कर्नाटक के धार्मिक एवं राजनीतिक इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। उसमें श्रवणबेलगोल की रक्षा और जीर्णोद्धार आदि की भी व्यवस्था की गई थी। आगे चलकर शासक देवराय की पत्नी ने श्रवणबेलगोल मे 'मंगायी-बसदि' का निर्माण कराया था। संगम राजा देवराय द्वितीय (1419-46 ई.) तो कारकल में गोमटेश्वर की 41 फुट 5 इंच ऊँची प्रतिमा के प्रतिष्ठा-महोत्सव में सम्मिलित हुआ था। विजयनगर मे इस बंश से पहले भी जैन मन्दिर थे, खुदाई में दो मन्दिर और भी निकले बताए जाते हैं। स्वयं इस कुल के राममन्दिर में तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। यह ठीक है कि यह वंश जैन नहीं था किन्तु इसके परिवार के कुछ सदस्य जिन-धर्मावलम्बी, उसके प्रति उदार, सहिष्णु और पोषक थे इसमें संदेह नहीं। मन्त्री, सेनापति में से कुछ जैन थे और उन्होंने जैन मन्दिरों का निर्माण या जीर्णोद्धार कराया था। राजा देवराज द्वितीय (1419-46 ई.) के सम्बन्ध में यह उल्लेख मिलता है कि उसने विजयनगर के 'पान-सुपारी' बाजार में एक चैत्यालय बनवाकर उसमें पार्श्वनाथ की प्रतिमा विराजमान की थी।

उपर्युक्त वंश का सबसे प्रसिद्ध नरेश कृष्ण देवराय (1509-39 ई.) हुआ है जो कि रणधीर होने के साथ ही साथ धर्मवीर भी था। उसने बल्लारी ज़िले के एक जिनालय को दान दिया था और मूडबिद्री की गुरु बसदि के लिए भी स्थायी वृत्ति दी थी। एक शिलालेख में उसने स्याद्वादमत और जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करने के साथ ही वराह को भी नमस्कार किया है।

कालान्तर में इस वंश का राज्य भी मुसलमानों के सम्मिलत आक्रमण का शिकार हुआ। राजधानी विजयनगर पाँच माह तक लूटी और जलाई गई। अनेक मन्दिर-मूर्तियाँ नष्ट हो गए। विजयनगर के विध्वंस के बाद भी इसके वंशज चन्द्रगिरि से 1465 ई. से 1684 ई तक राज्य करते रहे। उनके समय में भी हेग्गरे की बसदि, मूत्तूर की अनन्तजिन बसदि और मलेयूर की पार्श्वनाथ बसदि का निर्माण या जीर्णोद्धार इन राजाओं के उपशासकों एव महालेखाकर आदि ने करवाया था।

विजयनगर (हम्पी) के जैन स्मारकों, जैनधर्म के इस क्षेत्र का प्राचीन इतिहास और विजयनगर शासकों, उनके सेनापतियों आदि का जैनधर्म से सम्बन्ध आदि विवरण के लिए इसी पुस्तक में 'हम्पी' देखिए।

मैसूर का ओडेयर राजवंश

कर्नाटक पर शासन करने वाले बड़े राजवंशों में अन्तिम एवं सुविदित नाम ओडेयर राजवंश का है। आधुनिक मैसूर (प्राचीन महिशूर, मैसूरपट्टन) इस वंश की राजधानी रही। इतिहासकारों का मत है कि यह वंश भी उस गंगवंश की ही एक शाखा है जो जैनधर्म के अनुयायी के रूप में कर्नाटक के इतिहास में प्रसिद्ध है। कालान्तर में इस वंश ने अन्य धर्म स्वीकार कर लिया किन्तु इसके शासकों ने श्रवणबेलगोल को हमेशा आदर की दृष्टि से देखा और उसका संरक्षक बना रहा। स्वतन्त्रता-पूर्व तक वे महामस्तकाभिषेक में सम्मलित होते रहे।

ओडेयर वंश से सम्बन्धित सबसे प्राचीन शिलालेख 1634 ई. का है। उसमें उल्लेख है कि जिन महाजनों ने श्रवणबेलगोल की जमीन-सम्पत्ति गिरवी रख ली थी, उसे तत्कालीन मैसूरनरेश चामराज ओडेयर ने स्वयं कर्ज चुका कर छुड़ाने की घोषणा की। इस पर महाजनों ने भूमि आदि कर्ज से स्वयं मुक्त कर दी। इस पर नरेश ने शिलालेख लिखवाया कि जो कोई भी इस क्षेत्र की जमीन गिरवी आदि रखने का कार्य करेगा वह महापाप का भागी होगा और समाज से बहिष्कृत माना जाएगा।

'मुनिवंशाभ्युदय' नामक एक कन्नड़ काव्य में वर्णन है कि मैसूरनरेश चामराज श्रवणबेलगोल पधारे और उन्होंने गोम्मटेश्वर के दर्शन किए। उन्होंने चामुण्डराय आदि से सम्बन्धित लेख पढ़वाये, वे सिद्धर बसदि गए और उन्होंने कर्नाटक के जैनाचार्यों की परम्परागत वंशावली सुनी और पूछा कि आधुनिक गुरु कहाँ हैं। जब उन्होंने यह जाना कि चन्नरायपट्टन के सामन्त के अत्याचारों के कारण गोम्मटेश्वर की पूजा बन्द कर गुरु भल्लातकीपुर (आजकल के गेरुसोप्पे) चले गए हैं तो उन्होंने सम्मानपूर्वक गुरु (भट्टारक जी) को श्रवणबेलगोल बुलवाने का प्रबन्ध किया और दान देने का वचन दिया। उन्होंने किया भी वैसा ही और चन्नरायपट्टन के सामन्त को हराकर पदच्युत कर दिया।

शिलालेख है कि चिक्कदेवराज ओडेयर ने कल्याणी सरोवर का निर्माण या जीर्णोद्धार करवाया था तथा उसका परकोटा बनवाया था। उन्होंने 1674 ई. में जैन साधुओं के आहार के लिए भट्टारकजी को मदने नामक गाँव भी दान में दिया था।

उपर्युक्त नरेश के उत्तराधिकारी कृष्णराज ओडेयर ने श्रवणबेलगोल के भट्टारक जी को अनेक सनदें दी थीं जो उनके वंशजों द्वारा मान्य की गयीं। उनमें 33 मन्दिरों के व्यय एवं जीर्णोद्धार के लिए तीन गाँव दान में दिए जाने का उल्लेख है।

मैसूरनरेश कृष्णराज ओडेयर चतुर्थ भी श्रवणबेलगोल आए थे और उन्होंने नवम्बर 1900 ई. में अपने आगमन के उपलक्ष्य में अपना नाम चन्द्रगिरि पर खुदवा दिया था जो अभी भी अंकित है।

मैसूर-नरेशों की गोम्मटेश्वर-भक्ति का विशेष परिचय अनेक पुस्तकों में उपलब्ध है।

टीपू सुल्तान

हैदर अली और टीपू सुल्तान ने भी अपनी राजधानी श्रीरंगपट्टन से राज्य किया। उन्होंने भी श्रवणबेलगोल के मन्दिरों और गोम्मटेश्वर की मूर्ति को हानि नहीं पहुँचाई। टीपू सुल्तान ने तो गोम्मटेश्वर को नमन भी किया था।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद

मैसूर के ओडेयर वंश की सत्ता समाप्त होकर प्रजातान्त्रिक कर्नाटक सरकार बनी। उसके मुख्यमन्त्रियों सर्वश्री निजलिंगप्पा, देवराज अर्स और श्री गुण्डूराव ने गोम्मटेश्वर के महामस्तकाभिषेक आदि में जो सहर्ष सहयोग दिया वह स्मरणीय है। एक हजार वर्ष पूर्व होने पर तो भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने भी महामस्तकाभिषेक के अवसर पर गोमटेश के प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किए थे।

वर्तमान में भारत सरकार का पुरातत्त्व विभाग और कर्नाटक सरकार का पुरातत्त्व विभाग, धारवाड़ विश्वविद्यालय कर्नाटक के जैन स्मारकों में वैज्ञानिक ढंग से सहर्ष सक्रिय सहयोग प्रदान कर रहे हैं। कुछ स्मारक, प्राचीन मूर्तियाँ, शिलालेख आदि तो इन्हीं के कारण सुरक्षित रह गए हैं। ये सभी संस्थान जैन समाज की विपुलप्रशंसा के पात्र हैं।

कर्नाटक के छोटे राजवंश

कर्नाटक में पृथक् राजा या सामन्त आदि के रूप में और भी अनेक जैन धर्मानुयायी वंश रहे हैं जो थे तो छोटे किन्तु धार्मिक प्रभाव के उनके कार्य बहुत बड़े थे (जैसे कारकल का राजवंश, हुमचा का सान्तर राजकुल आदि)। इनका भी संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

सेन्द्रक वंश

नागरखंड या बनवासि के एक भाग पर शासन करनेवाले इस वंश का बहुत कम परिचय शिलालेखों से मिलता है। ये पहले कदम्ब शासकों के और बाद में चालुक्यों के सामन्त हो गये। जैन धर्मपालक इस वंश के सामन्त भानुशक्ति राजा ने कदम्बराज हरिवर्मा से जिनमन्दिर की पूजा के लिए दान दिलवाया था। इसी प्रकार इस वंश के द्वारा एक जैन मन्दिर के निर्माण और पुलिगेरे (लक्ष्मेश्वर) के शंख जिनालय के लिए भूमि-दान का भी उल्लेख मिलता है।

सान्तर वंश

जैनधर्म के परम पालक इस वंश का मूलपुरुष उत्तर भारत से आया था। वह भगवान पार्श्वनाथ के उरगवंश में उत्पन्न हुआ था। उसकी कुलदेवी पद्मावतीदेवी थी जो कि पार्श्व प्रभु की यक्षिणी है। इस देवी की अतिशय मान्यता आज भी हुमचा में एक लोक-विश्वास और पूजनीयता में अग्रणी है। इस वंश की राजधानी पोम्बुर्च्चपुर (शिलालेखों में नाम) थी जो घिसते-घिसते हुमचा (हुंचा) हो गई है। वहाँ पद्मावती का मन्दिर दर्शनीय है। राजमहल के अवशेष भी हैं। यह स्थान उत्तर भारत के महावीरजी या राजस्थान के तिजारा जैसा लोकप्रिय है।

सान्तरवंश का प्रथम राजा जिनदत्तराय था। उसी ने कनकपुर या पोम्बुर्च्चपुर (हुमचा) में इस वंश की नींव पद्मावती देवी की कृपा से डाली थी। इस वंश द्वारा बनवाए गए जैन मन्दिरों, दान आदि का विस्तृत परिचय 'हुमचा' के प्रसंग में दिया गया है। पाठक कृपया उसे अवश्य पढ़ें। इस वंश की स्थापना की उपन्यास जैसी कहानी भी वहाँ दी गई है।

सान्तर वंश की एक शाखा ने कारकल में भी राज्य किया। इसी जिनदत्तराय के वंशज भैरव-पुत्र वीर पाण्ड्य ने कारकल में बाहुबली की लगभग 42 फुट ऊँची (41 फुट 5 इंच ऊँची) प्रतिमा कुछ किलोमीटर दूर से किस प्रकार लाकर सन् 1432 ई. में स्थापित की थी, इसका रोमांचक विवरण इस राजवंश के शासकों सहित कारकल के प्रसंग में इसी पुस्तक में दिया गया है। इस प्रतिमा के दर्शनों के लिए आज भी यात्री वहाँ जाते हैं और इस प्रतिमा को तथा वहाँ की चतुर्मुख बसदि को देखकर पुलकित हो उठते हैं। दोनों ही छोटी वृक्षहीन सरल पहाड़ियों पर हैं। यह स्थान मूडबिद्री से बहुत पास है।

कर्नाटक में सान्तर राजवंश ने जैनधर्म की जो ठोस नींव डाली वह भुलाई नहीं जा सकती। श्रवण-बेलगोल की गोम्मटेश्वर प्रतिमा के बाद दूसरे नम्बर की बाहुबली प्रतिमा इसी सान्तर वंश की देन है। जिन-दत्तराय ने अपना राज्य लगभग 800 ई. में स्थापित किया था। कारकल में इस वंश ने लगभग 1600 ई. तक राज्य किया।

रट्ट राजवंश

शिलालेखों से ही ज्ञात होता है कि इस वंश का प्रथम पुरुष पृथ्वीराम था जो कि मैलपतीर्थ के

कारेयगण के गुणकीर्ति मुनि के शिष्य इन्द्रकीर्ति स्वामी का शिष्य था। उसकी राजधानी आधुनिक सौन्दत्ति (प्राचीन नाम सुगन्धवर्ति) थी। इस वंश ने राष्ट्रकूट वंश की अधीनता में लगभग 978 ई. से 1229 ई. तक शासन किया। उसने तथा उसके वंशजों ने सौन्दत्ति में जिनमन्दिरों का निर्माण कराया। मुनियों के आहार आदि के लिए दान तथा मन्दिरों की आय के लिए कुछ गाँव समर्पित कर दिए थे।

इस वंश के एक शासक लक्ष्मीदेव ने 1229 ई. में अपने गुरु मुनिचन्द्रदेव की आज्ञा से मल्लिनाथ मन्दिर का निर्माण कराके विविध दान दिये थे। डॉ. ज्योतिप्रसाद के अनुसार, "मुनिचन्द्रदेव राजा के धर्मगुरु ही नहीं, शिक्षक और राजनीतिक पथ-प्रदर्शक भी थे। उन्हीं की देखरेख में शासन-कार्य चलता था। स्वयं राजा लक्ष्मीदेव ने उन्हें **रट्ट-राज्य संस्थापक-आचार्य** उपाधि दी थी। कहा जाता है कि संकटकाल में उन्होंने प्रधानमन्त्री का पद ग्रहण कर लिया था और राज्य के शत्रुओं का दमन करने के लिए शस्त्र भी धारण किए थे। संकट निवृति के उपरान्त वह फिर से साधु हो गये थे। वह काणूरगण के आचार्य थे।"

गंगधारा के चालुक्य

सुप्रसिद्ध चाल्युक्य वंश की एक शाखा ने गंगधारा (संभवतः प्राचीन पुलिगेरे या आधुनिक लक्ष्मेश्वर नगरी या उसका उपनगर) राजधानी में राष्ट्रकूटों के सामन्त के रूप में 800 ई. से शासन किया। दसवीं सदी में गंगधारा की प्रसिद्धि एक राजधानी के रूप में थी। इस वंश के अरिकेसरी राजा ने कन्नड़ भाषा के महान जैन कवि पम्प को भी आश्रय दिया था। उसके उत्तराधिकारी बट्टिग द्वितीय के शासनकाल में ही प्रसिद्ध जैनाचार्य सोमदेव सूरि ने गंगधारा में अपने निवास के समय सुप्रसिद्ध काव्य 'यशस्तिलक चम्पू' तथा प्राचीन भारतीय राजनीति-सिद्धान्त ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध 'नीतिवाक्यामृत' की रचना कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र की सूत्र-शैली में की थी। प्राचीन भारतीय राजनीतिक सिद्धान्तों के अध्ययन के सिलसिले में आज भी यह ग्रन्थ विश्वविद्यालयों में पठित-संदर्भित किया जाता है। उपर्युक्त राजा ने ही लक्ष्मेश्वर में 'गंग-कन्दर्प' जिनालय का निर्माण कराया था। इस वंश के राजा जैनधर्म के अनुयायी रहे।

कोंगाल्व वंश

इस राजवंश ने कर्नाटक के वर्तमान कुर्ग और हासन जिलों के बीच के क्षेत्र पर, जो कि कावेरी और हेमवती नदियों के बीच था, शासन किया। उस समय यह प्रदेश कोंगलनाड कहलाता था। इस वंश का सम्बन्ध प्रसिद्ध चोलवंश से जान पड़ता है। सम्राट् राजेन्द्र चोल ने इसके पूर्वपुरुष को अपना सामन्त नियुक्त किया था। यह वंश ग्यारहवीं सदी में अवश्य विद्यमान था (शिलालेख बहुत कम मिले हैं) और जैनधर्म का अनुयायी था। सोमवार ग्राम में पुरानी बसदि के एक पाषाण पर लगभग 1080 ई. के शिलालेख से विदित होता है कि राजेन्द्र पृथ्वी कोंगाल्व नामक इस वंश के राजा ने 'अदटरादित्य' नामक चैत्यालय का निर्माण अपने गुरु मूलसंघ, कानूरगण, तगरिगळ गच्छ के गण्डविमुक्तिदेव के लिए कराया था और पूजा-अर्चना के लिए दान दिया था। आचार्य प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव का वह बड़ा आदर करता था और उसने अपने शिलालेख के प्रारम्भ में उनकी बड़ी प्रशंसा की है। लेख में यह भी उल्लेख है कि उसके शिलालेख की रचना चार भाषाओं के ज्ञाता सन्धिविग्रहक नकुलार्य ने की थी। इस राजा ने अपने को 'औरेयुरपुरवराधीश्वर' तथा 'सूर्यवंशी-महा-मण्डलेश्वर' कहा है।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि यह वंश चौदहवीं शताब्दी या उसके बाद तक शासन करता रहा और

अन्त तक जैनधर्म का अनुयायी बना रहा। जो भी हो, इस वंश के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है।

चंगाल्व वंश

इस वंश का शासन कर्नाटक के चंगनाडु (आधुनिक हुणसूर तालुक) में था, जो कि आगे चलकर पश्चिम-मैसूर और कुर्ग जिलों तक फैल गया। इस वंश से सम्बन्धित अधिकांश शिलालेख ग्यारहवीं-बारहवीं सदी के हैं। किन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी में भी यह वंश अस्तित्व में था। ये चोल एवं होय्सल नरेशों के सामन्त रहे प्रतीत होते हैं। इस वंश के अधिकांश राजा शैव मत को मानते थे किन्तु 11-12वीं सदी में ये जिनभक्त थे।

उपर्युक्त वंश का सबसे प्रसिद्ध राजा वीरराजेन्द्र चोल नन्नि चंगाल्व ने चिक्क हनसोगे नामक स्थान पर देशीगण पुस्तकगच्छ के लिए जिनमन्दिर का निर्माण लगभग 1060 ई. में कराया था। उसी स्थान की एक बसदि का उसने जीर्णोद्धार कराया था जिसके सम्बन्ध में यह प्रसिद्धि थी कि उसका निर्माण श्री रामचन्द्र ने करवाया था। सन् 1080 ई. के एक शिलालेख से, जो कि हनसोगे की बसदि में नवरंग-मण्डप के द्वार पर उत्कीर्ण है, यह प्रतीत होता है कि इस चंगाल्व तीर्थ में आदीश्वर, शान्तीश्वर, नेमीश्वर आदि जिनमन्दिर थे जो भट्टारक या मुनियों के संरक्षण में थे एवं चंगाल्वनरेश ने उनका जीर्णोद्धार कराया था।

चंगाल्वनरेश मरियपेर्गडे पिल्दुवय्य ने 'पिल्दुवि-ईश्वरदेव' नामक एक बसदि का निर्माण 1091 ई. के लगभग कराया था। मुनियों को भी आहार-दान दिया था।

श्रवणबेलगोल के 1510 ई. के एक शिलालेख से यह भी ज्ञात होता है कि इस वंश के एक नरेश के मन्त्री-पुत्र ने गोम्मटेश्वर की ऊपरी मंजिल का निर्माण कराया था।

निडुगल वंश

उत्तर मैसूर के कुछ भाग पर राज्य करनेवाले इस वंश के शासन सम्बन्धी उल्लेख तेरहवीं शताब्दी के प्राप्त होते हैं। अमरापुर तथा निडुगल्लु बेट्ट (जैन बसदि) के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि ये राजा स्वयं को चोलवंश के तथा ओरेयुरपुरवराधीश कहते थे।

उपर्युक्त वंश के इरुंगोल के शासनकाल में मल्लिसेट्टि ने तैलंगेरे बसदि के प्रसन्न पार्श्वनाथ के लिए सुपारी के दो हजार पेड़ों के हिस्से दान में दिये थे। इसी राजा के पहाड़ी क़िले का नाम कालाञ्जन था। उसकी चोटियाँ ऊँची होने के कारण वह 'निडुगल' कहलाया। उसी के दक्षिण में गंगेयनमार ने एक पार्श्व जिनालय बनवाया था। अपने इस धर्मप्रेमी गंगेयन की प्रार्थना पर राजा इरुंगोल ने पार्श्वनाथ की दैनिक पूजा, आहारदान आदि के लिए भूमि का दान किया था। वहाँ के किसानों ने भी अखरोट और पान का दान किया था तथा किसानों ने अपने कोल्हुओं से तेल ला-लाकर दान में दिया था।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि इस राजा को विष्णुवर्धन ने हराया था।

अलुप वंश

इसका शासन-क्षेत्र तुलुनाडु (मूडबिद्री के आसपास का क्षेत्र) था। दसवीं सदी में तौलव देश के प्रमुख जैनकेन्द्र थे मूडबिद्री, गेरुसोप्पा, भटकल, कारकल, सोदे, हाडुहल्लि और होन्नावर। इनमें से कुछ तो अब भी प्रमुख जैन केन्द्र हैं। इस वंश के शासकों ने जैनधर्म को राज्याश्रय भी प्रदान किया था और अनेक जैन

बसदियों के लिए दान दिया था। ये राजा 1114 ई. से लगभग 1384 ई. तक राज्य करते रहे। इस वंश का राजा कुलशेखर-अलुपेन्द्र तृतीय मूडबिद्री के पार्श्वनाथ का परमभक्त था। देखिए 'मूडबिद्री' प्रकरण।

बंगवाडि वंश का वंश

अलुपवंश के बाद तुलुनाडु में इस वंश ने राज्य किया (देखिए 'मूडबिद्री')

संगीतपुर के सालुव मण्डलेश्वर

संगीतपुर या हाडुहल्लि (उत्तरी कनारा या कारवाड जिला के के समृद्ध नगर में इस वंश ने पन्द्रहवीं शताब्दी में राज्य किया। महामण्डलेश्वर सालुवेन्द्र भगवान चन्द्रप्रभ का बड़ा भक्त था। उसके मन्त्री ने भी पार्श्वनाथ का एक चैत्यालय पद्माकरपुर में बनवाया था।

चोटर राजवंश

मूडबिडी को अपनी राजधानी बनाने वाले इस वंश के राजा 1690 ई. में स्वतन्त्र हो गए थे। इस वंश ने लगभग 700 वर्षों तक मूडबिद्री में राज्य किया। इनके वंशज और इनका महल आज भी मूडबिद्री में विद्यमान हैं। वे जैनधर्म का पालन करते हैं और शासन से पेंशन पाते हैं। (देखिए 'मूडबिद्री')

भैररस वंश

कारकल का यह राजवंश हुमचा के परम जिनभक्त राजाओं की एक शाखा ही था। यह वंश जैनधर्म का अनुयायी रहा। इसी वंश के राजा वीरपाण्ड्य ने सन् 1432 ई. में कारकल में बाहुबली की 41 फुट 5 इंच ऊँची प्रतिमा निर्माण कराकर वहाँ की पहाड़ी पर स्थापित की थी जिसकी आज भी वन्दना की जाती है। इस वंश के विवरण के लिए देखिए 'कारकल' प्रकरण।

अंजिल वंश

अपने आपको चामुण्डराय का वंशज बताने वाला यह वंश बारहवीं सदी में उदित हुआ। इसका शासन-क्षेत्र वेणूर था। वेणूर ही इसकी राजधानी रही और इसका प्रदेश तुलुनाडु के अन्तर्गत सम्भवतः पुंजलिके कहलाता था। यह वंश प्रारम्भ से अन्त तक जैनधर्म का अनुयायी रहा। इसी वंश के शासक तिम्मराज ने 1604 ई. में वेणूर में बाहुबली की 35 फुट ऊँची प्रतिमा स्थापित की थी जो आज भी पूजित है। इस वंश के वंशज आज भी विद्यमान हैं और सरकार से पेंशन पाते हैं। उनका महल भी अस्तित्व में है। (देखिए 'वेणूर' प्रकरण)

कर्नाटक के उपर्युक्त संक्षिप्त इतिहास पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस राज्य में जैनधर्म की विद्यमानता एवं मान्यता अत्यन्त प्राचीन है। कम-से-कम महावीर स्वामी के समय में तो वहाँ जैनधर्म का प्रचार था जो कि पार्श्वनाथ-परम्परा की ही प्रवहमान धारा मानी जाए तो कोई बहुत बड़ा ऐतिहासिक आपत्ति नहीं उठ सकती है, क्योंकि पार्श्वनाथ यहाँ तक कि भगवान नेमिनाथ ऐतिहासिक पुरुष मान लिए गए हैं। इसी प्रकार कर्नाटक के लगभग हर छोटे या बड़े राजवंश ने या तो स्वयं जैनधर्म का पालन किया या उसके प्रति अत्यन्त उदार दृष्टिकोण अपनाया। मध्ययुग की ऐतिहासिक या राजनीतिक परिस्थितियों को देखते हुए भी यह निष्कर्ष अनुचित नहीं होगा कि कर्नाटक में प्रचुर राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण बहुसंख्य प्रजा का धर्म भी जैनधर्म रहा होगा।

कर्नाटक

अहिंसा के स्मारकों की भूमि

अत्यन्त प्राचीनकाल से ही कर्नाटक जैनधर्म का प्रमुख केन्द्र रहा है। इस प्रदेश का जो इतिहास श्रुतकेवली भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मौर्य के आलेखों, विभिन्न मन्दिरों, शिलालेखों आदि से प्राप्त हुआ है उससे इस कथन की पुष्टि होती है। यहाँ इतने मन्दिर और तीर्थ कालान्तर में बने या विकसित हुए कि इस भूमि को अहिंसा के स्मारकों की भूमि कहना अनुचित नहीं होगा।

कर्नाटक विभिन्न शैली के मन्दिरों की निर्माणशाला या विकासशाला रहा है। ईसा की प्रारम्भिक सदी में यहाँ काष्ठ के जैनमन्दिर निर्मित होते थे। एक कदम्बनरेश ने हलासी (पलाशिका) में ईसा की पाँचवीं सदी में लकड़ी का एक जैनमन्दिर बनवाया था। हुमचा के शिलालेखों में उल्लेख है कि वहाँ पाषाण मन्दिर बनवाया गया। यह तथ्य यह भी सूचित करता है कि पहले कुछ मन्दिर पाषाण के नहीं भी होते थे। काष्ठ-मन्दिरों के अतिरिक्त कर्नाटक में गुफा-मन्दिर भी हैं जो पहाड़ी की चट्टान को काट-काटकर बनाए गए। इस प्रकार के मन्दिर ऐहोल और बादामी में हैं। कालान्तर में पाषाण की काफी चौड़ी और मोटी शिलाओं से मन्दिर बनाये जाने लगे। ऐसा एक मन्दिर ऐहोल में 634 ई. में बना जो इसलिए भी प्रसिद्ध है कि प्राचीन मन्दिरों में वही एक ऐसा मन्दिर है जिसकी तिथि हमें ज्ञात है। हम्पी (विजयनगर) का गानिगित्ति मन्दिर विशाल शिलाखण्डों से निर्मित मन्दिरों का एक सुन्दर उदाहरण है। तीन मोटी और ऊँची शिलाओं से उसकी दीवार छत तक पहुँच गई है। शायद उसमें जोड़ने के लिए मसाले का भी प्रयोग नहीं किया गया है। मन्दिरों के शिखरों का जहाँ तक प्रश्न है, कर्नाटक में उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय दोनों ही प्रकार के शिखरों के मन्दिर विद्यमान हैं। मूडबिद्री के मन्दिर तो नेपाल और तिब्बत की निर्माण शैली से संयोगवश या सम्पर्कवश साम्यता रखते हैं। सुन्दर नक्काशी युक्त एक हजार स्तम्भों तक के मन्दिर (मूडबिद्री) कर्नाटक में हैं। और उनमें से कुछ की पालिश अभी भी अच्छी हालत में है। कुछ मन्दिरों में संगीत की ध्वनि देने वाले स्तम्भ भी हैं। नक्काशी में भी यहाँ के मन्दिर आगे हैं। बेलगाँव की कमल बसदि का कमल आबू के मन्दिरों के कमल से होड़ करना चाहता है तो जिननाथपुरम् के मन्दिर काम उत्कीर्णन मन मोह लेता है। मानस्तम्भों की भी यहाँ विशेष छवि है। कारकल में एक ही शिला से निर्मित 60 फुट ऊँचा मानस्तम्भ है तो मूडबिद्री में मात्र 40 इंच ऊँचा मान स्तम्भ देखा जा सकता है।

मूर्तिकला का तो कर्नाटक मानो संग्रहालय ही है। यहाँ मूडबिद्री में पकी मिट्टी (clay) की मूर्तियाँ हैं तो पाषाण से निर्मित विशालकाय गोम्मट (बाहुबली) मूर्तियाँ हैं। श्रवणबेलगोल की 57 फुट ऊँची मूर्ति तो अब विश्वविख्यात हो चुकी है। कारकल की 42 फुट ऊँची बाहुबली मूर्ति खड़ी करने का विवरण ही रोमांचक है। वेणूर और धर्मस्थल तथा गोम्मटगिरि की मूर्तियों का अपना ही आकर्षण है। बादामी गुफा मन्दिर की

बाहुबली मूर्ति तो जटाओं से युक्त है और श्रवणबेलगोल की मूर्ति से भी प्राचीन है। पार्श्वनाथ की मूर्ति के विभिन्न अंकन देखने के लायक हैं। हुमचा में कमठ के उपसर्ग सहित, तो कहीं-कहीं सहस्रफण वाली ये मूर्तियाँ मोहक हैं। चतुर्मुखी पाषाण-मूर्तियों का एक अलग ही आकर्षण है। यक्ष-यक्षिणी की भी सुन्दर मूर्तियां हैं।

पंचधातु, अष्टधातु, सोने-चाँदी और रत्नों की मूर्तियां भी अनेक स्थानों में हैं।

ताडपत्रों पर लिखे गए हज़ारों ग्रन्थ इस प्रदेश में हैं। प्राचीन धवल, जयधवल और महाधवल ग्रन्थ भी इसी प्रदेश से हमें प्राप्त हुए।

जैन और अजैन राजाओं की धार्मिक सहिष्णुता के लेख भी यहाँ प्राप्त होते हैं। जैसे हम्पी के शासक की राजाज्ञा। विजयनगर साम्राज्य के अवशेष यहीं हैं। हनुमान की किष्किंधा भी यहीं है।

कुन्दकुन्दाचार्य ने जिस पर्वत से विदेह-गमन किया था वह कुन्दाद्रि भी यहीं है।

कर्नाटक में कई हज़ार शिलालेख बताए जाते हैं। केवल श्रवणबेलगोल में ही 600 के लगभग शिलालेख हैं। इनसे जैन राजाओं और जैन आचार्यों की परम्परा स्थापित करने में बड़ी सहायता मिली है।

काजू, काफी, नारियल, कालीमिर्च, सुपारी, इलायची आदि के सुन्दर वृक्षों से हरी-भरी मोहक पहाड़ियाँ और जोग झरने (900 फुट ऊँचे से गिरने वाले) पर्यटक को सहज ही आकर्षित करते हैं।

कर्नाटक में लगभग 200 स्थानों पर जैन, तीर्थ मन्दिर या ध्वस्त स्मारक हैं।

यद्यपि इस पुस्तक में प्रचुर मात्रा में जैन धार्मिक स्थानों और पुरातात्त्विक स्मारकों का परिचय कराया गया है, किन्तु उसका मुख्य उद्देश्य तीर्थयात्रियों के लिए एक उपयोगी निर्देशिका प्रस्तुत करना है। कर्नाटक की पुरासंपदा के ऐतिहासिक महत्त्व का भी कुछ दिग्दर्शन है।

सन्तोष की बात यह है कि कर्नाटक के विश्वविद्यालयों और शोध-संस्थानों में अध्ययन और खोज प्रयत्न जारी हैं। बावजूद इसके कोई भी पुस्तक ऐतिहासिक साक्ष्य की परिपूर्णता का दावा नहीं कर सकती।

●

बीदर

मार्ग और अवस्थिति

कर्नाटक के सबसे उत्तरी छोर पर बीदर ज़िला है। इसका सदर मुकाम बीदर शहर है। यहाँ से केवल आठ किलोमीटर की दूरी पर आन्ध्रप्रदेश की सीमा प्रारम्भ हो जाती है। आन्ध्र से इसे जोड़ने वाली सड़क ज़हिराबाद होते हुए हैदराबाद को चली जाती है। हैदराबाद से ज़हिराबाद 107 कि. मी. है और वहाँ से बीदर 29 कि. मी. की दूरी पर है।

कर्नाटक के इस शहर की सीमा महाराष्ट्र को भी छूती है। एक ओर यह नांदेड से आने वाली सड़क द्वारा महाराष्ट्र से जुड़ा हुआ है तो दूसरी ओर बम्बई-पूना से। बम्बई की ओर से राष्ट्रीय राजमार्ग (नेशनल हाईवे) क्रमांक 9 द्वारा बीदर पहुँचने का मार्ग इस प्रकार है— बम्बई-पूना-शोलापुर-उमर्गा (महाराष्ट्र)-हुम्नाबाद (कर्नाटक) और वहाँ से 50 कि. मी. की दूरी पर है बीदर। बम्बई-हैदराबाद की कुल दूरी 755 कि. मी. है।

बीदर बंगलोर से 669 कि. मी. और गुलबर्गा से 116 कि. मी. की दूरी पर है।

बीदर रेल द्वारा सिकन्दराबाद और परली बैजनाथ (वहाँ से परभणी होते हुए औरंगाबाद) से जुड़ा हुआ है। निकटतम हवाई अड्डा हैदराबाद है।

बीदर और समीपवर्ती क्षेत्र

इतिहासकार किसी समय बीदर का सम्बन्ध प्रसिद्ध नल-दमयन्ती आख्यान के विदर्भ से जोड़ते थे किन्तु अब स्पष्ट हो गया है कि बीदर विदर्भ नहीं है।

उपर्युक्त नाम का उल्लेख महाभारत में विदुर नगर के रूप में हुआ है, जो कि कन्नड़ बिदुर का संक्षिप्त रूप है, विद्वानों की ऐसी मान्यता है। इस शहर का नाम बिदरूरु > बीदरे से बीदर हो गया है। कन्नड़ में इसका अर्थ उस स्थान से है जहाँ बाँस अधिक संख्या में उत्पन्न होते हैं। बीदर और उसके आसपास के प्रदेश का उल्लेख पुराणों, कामसूत्र आदि में कुन्तल (प्रदेश) के रूप में हुआ है। वैसे किसी समय इस प्रदेश पर शासन करने वाले होय्सल, चालुक्य आदि राजाओं ने कुन्तलेश, कुन्तलेश्वर उपाधियाँ धारण की थीं।

इतिहास

बीदर नांदेड से जुड़ा हुआ है। विद्वानों ने नांदेड (नामक शहर) का प्राचीन नाम 'नवनन्द देहरा' या 'नौनन्द देहरा' बताया है। इसका अर्थ है नव नन्द राजाओं का देहरा अर्थात् मन्दिर-स्थान। मन्दिर के लिए राजस्थान और गुजरात में देहरा शब्द का प्रयोग होता है। नन्द

राजा जैन थे। उन्होंने यहाँ सुन्दर मन्दिर बनवाकर नगर का निर्माण कराया होगा। इसी से यह स्थान 'नवनन्द देहरा' कहा जाने लगा। कर्नाटक सरकार द्वारा प्रकाशित बीदर के गज़ेटियर में इस नाम का अर्थ 'नन्द राजाओं द्वारा शासित' (ruled by Nandas) दिया गया है। उसमें कहा गया है कि पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना) के नन्द राजाओं ने कलिंग (उड़ीसा) पर विजय प्राप्त कर दक्षिणा-पथ पर भी अधिकार कर लिया था। इससे भी जैन धर्म का कर्नाटक में प्रसार चन्द्रगुप्त मौर्य के मुनि रूप में श्रवणबेलगोल पहुँचने से पहले का सिद्ध होता है। चन्द्रगुप्त मौर्य ने ही तो चाणक्य की सहायता से नन्द राजा का तख्ता पलट दिया था।

नन्द-राजाओं के बाद यह प्रदेश चन्द्रगुप्त मौर्य के अधिकार में आ गया था। चन्द्रगुप्त के पोते अशोक ने भी यहाँ अपने महामात्य नियुक्त किये और कुर्नूल, रायचूर, बल्लारी तथा चित्रदुर्ग जैसे स्थानों पर अपने धर्मलेख खुदवाए। ये स्थान बीदर के दक्षिण में हैं। उस समय की धार्मिक स्थिति का उल्लेख उपर्युक्त गज़ेटियर में इस प्रकार किया गया है—

"उन दिनों इस प्रदेश में जैनधर्म और बौद्धधर्म मानने वालों की संख्या काफ़ी थी। उस अवधि में दक्षिण में प्राकृत को सरकारी काम-काज की भाषा बनाया गया था और उसकी यह स्थिति अनेक शताब्दियों तक बनी रही।"[1]

मौर्य राजाओं के बाद इस प्रदेश पर सातवाहन (172 ईसा पूर्व से 203 ईस्वी) और वाकाटक राजाओं (255 ईस्वी से 510 ईस्वी) का शासन रहा। उनके बाद यह प्रदेश राष्ट्रकूट राजाओं के अधिकार में चला गया जिनके युग में 'आदिपुराण' के रचयिता आचार्य जिनसेन द्वितीय और 'उत्तरपुराण' के कर्ता आचार्य गुणभद्र हुए।

गज़ेटियर में कहा गया है कि "राष्ट्रकूट राजाओं के शासनकाल में कन्नड़ साहित्य की खूब अभिवृद्धि हुई जिसमें जैन लेखकों का प्रमुख योगदान था। 'कविराजमार्ग' काव्यशास्त्र का एक ऐसा ग्रन्थ है जिसका आज भी अध्ययन किया जाता है।"[2]

कालान्तर में बीदर कल्याणी के चौलुक्य राजाओं की भूमि का एक महत्त्वपूर्ण अंग बना। इस राजवंश ने 1074 से 1190 तक इस प्रदेश पर शासन किया था। चौलुक्य राजा बिज्जल (1156-1167) जैनधर्म का अनुयायी था। (कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि बिज्जल शैव था। किन्तु यदि ऐसा होता तो वह वीरशैव मत के प्रचारक बसव के विरुद्ध क़दम नहीं उठाता।) बाद में यह प्रदेश वारंगल के काकतीय शासकों के अधिकार में आ गया। उनके बाद इस पर दिल्ली के सुलतान मुहम्मद बिन तुगलिक का अधिकार हो गया। तुगलक के बाद यह प्रदेश गुलबर्गा के बहमनी शासकों के अधीन चला गया। नौवें बहमनी शासक ने बीदर को अपनी राजधानी बनाया;

---

1. "There was a considerable following of Jainism and Buddhism in this region in those times. Prakrit was introduced as the official language in the Deccan during the period and it continued to hold that position for several centuries more."

2. "The Rastrakuta times witnessed efforescence of Kannada literature at the hands of mainly Jain writers. The Kavirajamarg is a work on poetics and it is even to-day in constant reference (P. 37).

किले का पुनर्निर्माण कराया, महल बनवाये और बगीचे लगवाये। सन् 1656 में औरंगज़ेब ने इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। किसी समय बहमनी साम्राज्य दक्षिण में कांजीवरम्, उत्तर-पूर्व में राजमुंडी और गोआ तक फैला हुआ था।

वर्तमान बीदर एक ज़िला मुख्यालय है। धरती लाल है, मगर लोग सहजस्वभावी हैं। यह तीन भाषाओं हिन्दी, मराठी और कन्नड़ का संगम-स्थान है। यहाँ हिन्दी अच्छी तरह बोली और समझी जाती है।

चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिर

यह नाम इस मन्दिर में नागरी लिपि में भी लिखा है। यह एक छोटा-सा मन्दिर है जो कि रेलवे-स्टेशन और बस-स्टैण्ड के पास छत्री चौक के समीप स्टेशन-रोड पर स्थित है। यह मन्दिर बहुत पुराना है और समय-समय पर इसका जीर्णोद्धार होता रहा है। इस मन्दिर में दसवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक की प्राचीन प्रतिमाएँ हैं।

मन्दिर में इस समय मूर्तियाँ इस प्रकार हैं—पद्मासन चन्द्रप्रभ (संगमरमर), कायोत्सर्ग पद्मप्रभ (पचधातु), नौ फणों से युक्त पद्मासन पार्श्वनाथ (संगमरमर), सिद्ध-परमेष्ठी की धातु-प्रतिमा, धातु की ही चन्द्रप्रभ की प्रतिमा, पद्मासन पार्श्वनाथ की प्रतिमा जिस पर सर्प का लांछन है, एक चौबीसी (कांस्य) जो कि कुछ घिस गई है और सम्भवतः 15 वीं शताब्दी की है। पद्मावती और क्षेत्रपाल की भी प्रतिमाएँ हैं।

मन्दिर पंचायती है। यहाँ जैनियों के 15 घर हैं। मन्दिर का प्रबन्ध दिग० जैन मन्दिर पंचमण्डल द्वारा किया जाता है। पता है—श्री दिग० जैन मन्दिर पंचमण्डल, शाहगंज, पो०—बीदर 585401 (कर्नाटक)।

यहाँ ठहरने की कोई व्यवस्था नहीं है।

बीदर का महत्त्व किसी सिद्धक्षेत्र या अतिशयक्षेत्र के रूप में नहीं है किन्तु कमठान के अतिशययुक्त मन्दिर को जाने के लिए वही एक मार्ग है।

क़िला और संग्रहालय

यहाँ एक क़िला है जो कि ध्वस्त अवस्था में है। उसमें कार या बस द्वारा जाया जा सकता है। इसके रंगीन महल गगनमहल, नौबतखाना और बादशाहों की कब्रें देखने के लिए पर्यटक आते हैं। विशेषकर लकड़ी के खम्भों पर नक्काशी देखने लायक है।

इस क़िले के एक बुर्ज में कर्नाटक दरवाज़ा भी है। ऐसा कहा जाता है कि शत्रु पर ऊपर से गरम पानी डालने का प्रबन्ध भी इस क़िले में था।

क़िले में एक संग्रहालय (म्युज़ियम) भी है। उसके बाहर एक दिगम्बर जैन मूर्ति का धड़ रखा हुआ है। संग्रहालय में दसवीं शती की एक भव्य चौबीसी भी है, जिसके मूल नायक हैं तीर्थंकर ऋषभदेव (देखें चित्र क्र० 1)।

बीदर कारीगरी के लिए भी प्रसिद्ध है। बीदरी कार्य की वस्तुओं की प्रसिद्धि हैदराबाद के चारमीनार के आसपास के बाज़ार में प्रत्यक्ष देखी जा सकती है।

कमठान : भूमिगत पार्श्वनाथ

मार्ग और अवस्थिति

यह स्थान बीदर से सड़क मार्ग द्वारा 11 कि. मी. की दूरी पर है। यह बीदर ज़िले का ही एक गाँव है।

'कमठान' का नाम सुनते ही यह भाषावैज्ञानिक सम्भावना सामने आती है कि कहीं प्राचीन समय का कमठस्थान ही तो घिस-पिटकर कमठान नहीं हो गया ? यहाँ की पार्श्वनाथ प्रतिमा और उसका कुछ अतिशय इस सम्भावना को पुष्ट करता जान पड़ता है। जैन पौराणिक वर्णन के अनुसार तो, कमठ ने भगवान पार्श्वनाथ पर उत्तरप्रदेश के अहिच्छत्र (रामनगर) में उपसर्ग किये थे। एक अन्य दृष्टि यह भी हो सकती है कि इस स्थान का कमठ से कोई सम्बन्ध रहा हो या इस स्थान पर भी उसने पार्श्वप्रभु पर उपसर्ग किया हो। भगवान ने 100 वर्ष की आयु पायी थी और 70 वर्ष मुनि अवस्था में देश-विदेश का भ्रमण कर जैन धर्म का उपदेश दिया था। यह अत्यन्त सम्भव है कि यहाँ भी उनका विहार हुआ हो। उनका युग बीते भी तो अभी कुल 2763 वर्ष ही हुए हैं (भगवान महावीर का निर्माण 2513 वर्ष पूर्व, उनसे 250 वर्ष पूर्व भगवान पार्श्वनाथ का निर्माण—कुल 2763 वर्ष)। इसका अर्थ यह हुआ कि बैर और क्षमा अर्थात् कमठ का उपसर्ग और पार्श्वनाथ की अनन्त क्षमा 2763 + 70 (पार्श्व का मुनि-जीवन) = 2833 वर्षों के बीच की कहानी है और इस अवधि में कमठस्थान का कमठान हो जाना कोई असम्भव बात नहीं है। जो भी हो, इस विषय में गम्भीर खोज की आवश्यकता है।

भगवान पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर

(यह नाम यहाँ नागरी लिपि में लिखा हुआ है) यह कमठान गाँव के अन्त में पीछे की ओर स्थित है। वहाँ तक कार या बस भी जा सकती है। यह पत्थरों का बना छोटा-सा एक प्राचीन मन्दिर है।

मन्दिर के मूलनायक पार्श्वनाथ अर्धपद्मासन में भूमिगत गर्भगृह में विराजमान हैं। यह गर्भगृह एक चट्टान के नीचे है। मूर्ति लगभग साढ़े तीन फुट ऊँची है और ग्यारहवीं शताब्दी की है। उस पर पुरानी कन्नड़ में एक लेख भी है। मूर्ति के प्रक्षाल आदि का जल गर्भगृह की दीवाल के साथ लगी लगभग 3 फुट × 2 फुट की एक कुई (छोटा कुआ) में गिरता है। उसी से अभिषेक के लिए जल भी लिया जाता है। जनश्रुति है कि इसी कुई के मार्ग से एक मोटा-सा सर्प कभी-कभी पार्श्वनाथ की मूर्ति के सामने आता है और घण्टे आध घण्टे बैठकर चला जाता है। मूर्ति के अर्चक का यह भी कथन है कि उसने मूर्ति पर हास्य, प्रसन्नता या शान्ति के भाव अनेक बार अनुभव किये हैं। इस प्रकार यह प्राचीन मूर्ति अतिशययुक्त मानी जाती है।

उपर्युक्त भूमिगत गर्भगृह या चट्टान के ऊपर एक साधारण-सी वेदी बनी हुई है जिस पर पद्मासन में संगमरमर के पार्श्वनाथ विराजमान हैं। ललितासन में धरणेन्द्र की एक मूर्ति है जो कि ग्यारहवीं सदी की अनुमानित है। मूर्ति पर नौ फण हैं।

इस मन्दिर की दीवालों पर चित्रकारी भी है जो अब अस्पष्ट-सी हो गई है। इसके चित्र भगवान नेमिनाथ के जीवन से सम्बन्धित हैं। रथ, सूर्य, चन्द्र तथा समवसरण के कुछ चित्र अब भी अपने धुँधले रूप में देखे जा सकते हैं।

मन्दिर में प्रदक्षिणा-पथ भी है और उसके बाहर खुला आँगन है जिसके तीनों ओर खुले बरामदों के रूप में यात्रियों के ठहरने का स्थान है। पास ही में रसोई बनाने की भी जगह है।

मन्दिर का शिखर पाण्डुक-शिला जैसा है जिसमें पाँच स्तर हैं। चौथे स्तर पर तीर्थंकरों की पद्मासन या कायोत्सर्ग मुद्रा में मूर्तियाँ बनी हैं। इनमें एक मूर्ति पार्श्वनाथ की भी है (देखें चित्र क्र० 2)। शिखर के ऊपर (गोल) आमलक है और सबसे ऊपर कलश।

यहाँ मन्दिर को 'देवल' कहते हैं। मन्दिर अच्छी हालत में है, उसमें दैनिक पूजन भी होती है किन्तु उसकी व्यवस्था यहाँ केवल शेष बचा एक कम आयवाला जैन परिवार ही करता है। फिर भी, माघ सुदी पंचमी को यहाँ मेला लगता है जिसमें बीदर आदि स्थानों के जैन परिवार सम्मिलित होते हैं।

मन्दिर का अहाता काफी बड़ा है। उसमें एक चबूतरे पर मुनिराज गुणकीर्ति के चरण हैं जो कि लगभग चार सौ वर्ष प्राचीन बताये जाते हैं। डॉ० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित 'शिलालेख संग्रह' भाग-1 के शिलालेख क्रमांक 30 पर लेख में यह उल्लेख है कि श्रवण-बेलगोल में आचार्य गुणकीर्ति ने देहोत्सर्ग किया। सम्भवतः ये वही आचार्य हैं।

मन्दिर की इस भूमि की रक्षा के लिए अब चारदीवारी बनाई जा रही है जिसके लिए भारतवर्षीय दिगम्बर जैनतीर्थ क्षेत्र कमेटी ने अनुदान दिया है। मन्दिर की आय का साधन आम के एक पेड़ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

यहाँ के एक मात्र श्रावक श्री आदिनाथ पदमन्ना बेलकेरे (पो० कमठान) हैं। वर्तमान में मन्दिर का प्रबन्ध एक समिति करती है जिसके अध्यक्ष श्री जिनेन्द्रप्पा टिक्के हैं। पता इस प्रकार है—श्री जिनेन्द्रप्पा टिक्के, शाहगंज जैन मन्दिर, पो० बीदर—585226 (कर्नाटक)।

कर्नाटक सरकार द्वारा प्रकाशित बीदर ज़िले के गज़ेटियर में इस ज़िले के दर्शनीय स्थानों के विवरण में कमठान के पार्श्वनाथ मन्दिर को भी सम्मिलित किया गया है।

यहाँ भी हिन्दी बोली एवं समझी जाती है।

जैन पर्यटकों के लिए बीदर-कमठान के बाद दूसरा प्रमुख केन्द्र है बीजापुर। किन्तु यदि पर्यटक किसी बस या निजी वाहन से यात्रा कर रहे हों तो उन्हें बीजापुर के मार्ग में या उसके थोड़े आस-पास पड़ने वाले कुछ प्रमुख जैन केन्द्रों को भी देखते जाना चाहिए।

हुम्नाबाद

बीजापुर जाने के लिए सड़क-मार्ग गुलबर्गा होकर है किन्तु बीच में बीदर से 50 कि. मी. की दूरी पर हुम्नाबाद स्थान पड़ता है। किसी समय यह भी एक प्रमुख जैन नगर था। यहाँ दो मन्दिर थे। वर्तमान में एक तो ध्वस्त अवस्था में है और दूसरा श्री चन्द्रप्रभु दिगम्बर

जैन मन्दिर (यह नाम नागरी में भी लिखा है) कहलाता है। जिस गली में यह मन्दिर है वह जैन गली कहलाती है। रास्ता संकरा है। जैन मन्दिर के बजाय अब यह मन्दिर संगीत पाठशाला अधिक कहलाता है क्योंकि अब इसके बाहरी भाग में उपर्युक्त पाठशाला लगती है। मन्दिर चार-पाँच सौ वर्ष पुराना है और पत्थर का बना हुआ है। वेदी साधारण है। मन्दिर पर शिखर नहीं है। उसमें तीन ओर मेहराबदार बरामदे हैं और बीच में खुला आँगन है। इसमें मूर्तियाँ इस प्रकार हैं—संगमरमर की लगभग दो फुट की पार्श्वनाथ मूर्ति, इसी प्रकार की लगभग चार फुट ऊँची पार्श्वनाथ की एक और मूर्ति, एक ही फलक पर लगभग डेढ़ फुट ऊँची पार्श्व प्रतिमाएँ, गोमटेश्वर की मूर्ति तथा महावीर एवं एक चौबीसी जिसके मूलनायक चन्द्रप्रभ हैं। एक आले में आदिनाथ की मूर्ति भी स्थापित है। क्षेत्रपाल और पद्मावती की भी मूर्तियाँ हैं।

हुम्नाबाद में इस समय केवल एक जैन परिवार रह गया है जिसके पास मन्दिर के लिए आय का अन्य कोई साधन नहीं है। बहुत व्यथित मन से वे दूसरे ध्वस्त मन्दिर को भी दिखाते हैं जो वर्तमान मन्दिर के पास ही है। बताया जाता है कि इस मन्दिर की कुछ प्रतिमाएँ तेरहवीं शताब्दी की हैं।

हुम्नाबाद को प्राचीन समय में जयसिंहपुरा कहा जाता था। शायद इसे चौलुक्य नरेश जयसिंह ने बसाया था।

कल्याणी (आधुनिक बसवकल्याण)

मार्ग एवं अवस्थिति

हुम्नाबाद राष्ट्रीय राजमार्ग क्र० पर 9 स्थित है। यह राजमार्ग हैदराबाद को पूना-बम्बई से जोड़ता है। यदि पर्यटकों की बस गुलबर्गा की ओर न जाकर इसी राजमार्ग पर हुम्नाबाद से उमर्गा (महाराष्ट्र) की ओर 22 कि. मी. बढ़े तो उसे एक तिराहा मिलेगा जहाँ से कल्याणी या बसवकल्याण 6 कि. मी. है। इस स्थान को कल्याण या कल्याणाबाद भी कहा जाता है।

ऐतिहासिक महत्त्व

बसवकल्याण जाने वाली सड़क के तिराहे पर शहर की म्युनिसिपल कौंसिल ने तीन भाषाओं में एक बड़ा-सा बोर्ड लगाया है। उसमें भी भगवान महावीर का स्मरण किया गया है। नागरी लिपि में लेख इस प्रकार है—

"देखो ! कल्याणरूपी ज्योति प्रज्वलित है जिसमें भक्तिरसरूपी तैल है। चहुँ ओर शिवप्रकाश व्याप्त है। श्री अल्लम प्रभु की पावन-भूमि कल्याण—श्री अक्क महादेवी"

"बारहवीं शताब्दी में जगज्ज्योति बसवेश्वर ने कल्याण की पुण्यभूमि में सत्य, अहिंसा

और समता आदि श्रेष्ठ तत्त्वों का अत्यन्त प्रभावशाली शैली से उपदेश दिया था। 'कायक वै कैलास" अर्थात् कर्म ही कैलास है। उपर्युक्त उद्घोष उनका मूल मन्त्र था। इस प्रकार उन्होंने अपने से श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान का महत्त्व जनता के मानस-पटल पर अंकित किया था। उन्होंने श्री राम का त्याग, श्रीकृष्ण का योग, महावीर की अहिंसा, बुद्ध की अनुकम्पा, ईसामसीह का प्रेम और मुहम्मद पैगम्बर आदि के महान् तत्त्वों को अपने में समावेश कर लिया था। श्री बसवेश्वरजी के आकर्षक व्यक्तित्व ने असंख्य शिवशरणों तथा शिवशरणियों को कल्याण की पावन भूमि की ओर आकर्षित किया था। कल्याण के अनुभवमण्डप में प्रथम बसववादी प्रमथ अल्लम प्रभु की अध्यक्षता में अनुभव या विचार किया करते थे। पवित्र स्थानों के दर्शनार्थ स्वागत।—टाउन म्युनिसिपल कौंसिल"

इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि वीरशैव मत के संस्थापक श्री बसवेश्वर ने जब अपना मत चलाया तब कल्याणी में महावीर के उपदेशों की पावनधारा बह रही थी जिसे वहाँ के सम्माननीय नागरिक आज भी स्मरण करते हैं। साथ ही यह तथ्य भी उभरता है कि वीरशैव मत में भी महावीर के सिद्धान्त गुँथे हुए हैं।

श्री बसवेश्वर कल्याणी के चौलुक्यवंशी जैन राजा बिज्जल के शासनकाल में बिज्जल के प्रधानमन्त्री थे। सम्भवतः वे जैन थे या जैनधर्म से प्रभावित थे। उन्होंने अपना नया पन्थ चलाया था जो वीरशैव मत कहलाया।

चौलुक्य राजाओं की राजधानी पहले मान्यखेट (आधुनिक मलखेड) में थी। वहाँ से हटकर उन्होंने कल्याणी को अपनी राजधानी बनाया था। दसवीं से बारहवीं सदी के बीच कल्याणी देश की सबसे समृद्ध, और सबसे सुन्दर नगरी थी। वह एक जैन साम्राज्य की राजधानी थी। यहाँ विद्वानों का भी जमघट रहा करता था।

कर्नाटक सरकार का पर्यटन विभाग भी कल्याणी का उल्लेख जैन राजाओं की प्राचीन राजधानी के रूप में करता है और पर्यटकों को उसकी ओर आकर्षित करता है। अब भी वहाँ चौलुक्य राजाओं द्वारा बनाया गया क़िला (मुस्लिमों द्वारा कुछ परिवर्तित), उसके विशाल द्वार तथा क़िले की दीवारों पर जैन और हिन्दू मूर्तियों के चिह्न देखे जा सकते हैं। यह क़िला बहुत विशाल रहा होगा। क़िले में लकड़ी के बड़े-बड़े खम्भे, शहतीर (बीम्स) और उन पर की गयी नक्काशी आज भी दर्शनीय है।

उपर्युक्त क़िले के अन्दर एक सरकारी संग्रहालय भी है जिसमें दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी की अनेक जैन मूर्तियाँ संगृहीत हैं। इनकी संख्या 15-16 है। कोई तीर्थंकर मूर्ति खड्गासन में खण्डित है तो कोई पद्मासन में। कोई मस्तक विहीन है तो किसी का निचला भाग गायब है। (देखें चित्र क्र० 3)। कुछ मूर्तियाँ समाधिमरण का दृश्य अंकित करती हैं। एक मूर्ति पर नागकुमार और उसकी पत्नी का अंकन है जो कि सम्भवतः धरणेन्द्र और पद्मावती हो सकते हैं। (देखें चित्र क्र० 4)।

कल्याणी में जैनधर्म की स्मृति दिलाने वाला चौलुक्यकालीन एक ध्वस्त जैन मन्दिर, बाजार स्थित जामा मसजिद के निकट मुख्य सड़क के पास कुम्हारों की बस्ती में, खँडहर के रूप में छितरा हुआ है।

उपरिलिखित तिराहे से कल्याणी कस्बा 5 कि. मी. की दूरी पर है। पास ही, सरकारी यात्री-निवास (टूरिस्ट होम) है। उसके बाद, कस्बे से पहले एक तालाब पड़ता है जो कि काफी बड़ा है। उसके पानी पर गुलाबी रंग की परत-सी चढ़ी रहती है। इस कारण यह भी एक आकर्षण का एक विषय बन गया है।

यात्रियों को यहाँ बस से ही जाना पड़ता है और ठहरने की विशेष सुविधा नहीं है। यात्री-निवास भी कस्बे से 3-4 कि. मी. दूर है। बम्बई-हैदराबाद राजमार्ग पर कल्याणी के निकट के स्थान सस्तापुर (5 कि. मी.) में भी यात्री-निवास की सुविधा है।

कल्याणी या बसवकल्याण के पर्यटन के बाद पर्यटक को वापस हुम्नाबाद लौटना चाहिए और वहाँ से गुलबर्गा होते हुए बीजापुर जाना चाहिए। यह केवल सड़क-मार्ग की यात्रा है।

गुलबर्गा

मार्ग और अवस्थिति

सड़क-मार्ग द्वारा हुम्नाबाद से गुलबर्गा 60 कि. मी. की दूरी पर है। यहाँ पहुँचने के लिए बीदर या हुम्नाबाद से कर्नाटक सरकार की आरामदेह (लक्ज़री) बसें भी उपलब्ध हैं। यहाँ से बंगलौर 584 कि. मी. है। बस-स्टैण्ड रेलवे-स्टेशन के पास ही है।

यह स्थान मद्रास-बम्बई रेलमार्ग पर बड़ी लाइन का स्टेशन है और मध्य (सेण्ट्रल) रेलवे के अन्तर्गत आता है। रेलवे स्टेशन शहर से कुछ दूर पड़ता है।

गुलबर्गा ज़िले का मुख्यालय गुलबर्गा ही है और सड़क तथा रेलमार्ग द्वारा विभिन्न स्थानों से जुड़ा हुआ है।

गुलबर्गा का प्राचीन नाम कलबुर्गी है। कन्नड़ भाषा में इसका अर्थ होता है—'पत्थरों वाली जमीन' या 'पत्थरों की छतों वाला स्थान' या 'पत्थरों का ढेर'। स्पष्ट है कि यह स्थान और उसके आसपास का भूभाग पथरीला है तथा यहाँ के मकान अधिकांशतः पत्थरों के हैं।

यहाँ हिन्दी, मराठी और कन्नड़ बोली तथा समझी जाती है।

जैन तीर्थयात्रा की दृष्टि से गुलबर्गा का महत्त्व नहीं है किन्तु जैन साहित्य की दृष्टि से इस ज़िले का बहुत महत्त्व है। इस ज़िले के मलखेड (प्राचीन मान्यखेट), सेडम, हुनसी, अथनूर (आधुनिक अफ़ज़लपुर), बंकुर, गोगी, हरसुर, हुंचालिगे, मल्लि, इंगलिगे आदि स्थानों में ध्वस्त प्राचीन जिनालय एवं मूर्तियाँ आदि पाई जाती हैं। उन्हें देखते हुए यह निश्चित है कि किसी समय या कम-से-कम राष्ट्रकूट शासकों के समय (ईसा की नौवीं शताब्दी) में यह स्थान जैन-धर्म का एक प्रमुख केन्द्र रहा होगा।

गुलबर्गा में महावीर चौक में एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। नगर में इस समय करीब 100 दिगम्बर जैन परिवार हैं। इसी प्रकार किराना बाज़ार में एक श्वेताम्बर जैन मन्दिर है और यहाँ 40 के लगभग श्वेताम्बर जैन परिवार हैं।

संग्रहालय

पर्यटक की दृष्टि से या जैन मूर्तिकला की दृष्टि से यहाँ का संग्रहालय (म्यूज़ियम) देखने लायक है जो कि सेडम रोड पर अस्पताल के सामने दो गुम्बजों में है। यहाँ की मूर्तिकला (sculpture) गैलरी में जैन प्रतिमाओं का अच्छा संग्रह है। एक फलक पर ऊपर तीर्थंकर प्रति है और उसके नीचे एक उपदेशकर्ता प्रदर्शित है। इसी प्रकार लगभग तीन फुट की 10वीं शताब्दी की एक पद्मासन प्रतिमा है जिस पर सात फण हैं किन्तु उसके कन्धों पर केश-गुच्छ दिखाया गया है (देखें चित्र क्रमांक 5)। केशों की इस प्रकार की लटें वास्तव में भगवान आदिनाथ के कन्धों पर चित्रित की जाती हैं।

उपर्युक्त संग्रहालय की अधिकांश प्रतिमाएँ खण्डित हैं, अनेक स्थानों से संग्रहीत की गई हैं और 8वीं से लेकर 11वीं शताब्दी तक की हैं। तीर्थंकरों में पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ ही अधिक हैं। मूर्तियाँ कमलासन पर, स्तम्भों से युक्त मेहराब वाली तथा दोनों ओर मकर से चित्रित (मकर-तोरण) एवं कीर्तिमुखयुक्त हैं। चंवरधारी भी प्रदर्शित हैं जो कि तीर्थंकर के दोनों ओर खड़े हुए दिखाए गए हैं। अधिकांश प्रतिमाएँ दो फुट से लेकर चार फुट तक की हैं। एक खण्डित ब्रह्मयक्ष (11वीं सदी) भी इस संग्रहालय में है। उसके चारों हाथ टूटे हुए हैं और उसके सिर के ऊपर एक पद्मासन तीर्थंकरमूर्ति है। एक नागफलक भी कुछ असामान्य है। उस पर नाग के सात फण दिखाए गये हैं जो कि पार्श्वनाथ के यक्ष धरणेन्द्र के प्रतीक हो सकते हैं। उसमें दायें तरफ़ पार्श्वनाथ की आकृति है और नीचे पद्मावती की। दूसरी ओर एक छोटा-सा सर्प उत्कीर्ण है।

यदि पर्यटक अपने वाहन या बस से गुलबर्गा होते हुए यात्रा कर रहा है तो उसे यह संग्रहालय अवश्य देखना चाहिए। यह सुबह आठ से दोपहर एक बजे तक खुला रहता है।

राष्ट्रकूट शासन-काल के अतिरिक्त, बहमनी शासकों के युग में भी गुलबर्गा एक महत्त्व-पूर्ण राजधानी रहा है। उसे यह गौरव लगभग 200 वर्षों तक प्राप्त रहा। उसके बाद बहमनी शासकों ने बीदर को अपनी राजधानी बना लिया। उसके बाद की, इस नगर की कहानी मुगलों और निजामी शासन के अन्तर्गत आती है।

वैसे यहाँ का क़िला भी दर्शनीय है। उसमें 15 बुर्जें हैं और 25 से भी अधिक तोपें हैं। एक तोप तो पच्चीस फुट लम्बी है। यहाँ अनेक मसजिदें दिखाई देती हैं।

मलखेड (प्राचीन मान्यखेट)

अवस्थिति एवं मार्ग

गुलबर्गा के समीप ही सेडम (Sedam) तालुक में एक और महत्त्वपूर्ण प्राचीन जैन केन्द्र है—मलखेड। यदि आप इस स्थान को प्रचलित नक्शे में ढूंढ़ेंगे तो वह नहीं मिलेगा क्योंकि यह अब सेरम/सेडक तालुक (तहसील) में कगना (Kagna) नदी के किनारे बसा हुआ

छोटा-सा, बहुत थोड़ी आबादी वाला एक गाँव है।

यह गुलबर्गा से सड़कमार्ग द्वारा लगभग 35 कि. मी. की दूरी पर गुलबर्गा-सेडम मार्ग पर स्थित है।

मध्य रेलवे की बड़ी लाइन के वाड़ी-सिकन्दराबाद रेलमार्ग पर 'मलखेड रोड' नाम का एक छोटा-सा रेलवे स्टेशन है जहाँ से यह स्थान लगभग छह कि. मी. की दूरी पर है।

ऐतिहासिक महत्त्व

यह विडम्बना ही है कि जैन धर्मानुयायी राष्ट्रकूट राजाओं की यह राजधानी अब एक ग्राम मात्र रह गयी है। राष्ट्रकूट राजाओं ने यहाँ 753 ईस्वी से लगभग 200 वर्षों तक राज्य किया था। दक्षिण (Deccan) के इस राज्य ने अपने उत्कर्ष काल में इस प्रदेश के इतिहास में वैसी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी जैसी कि 17वीं शताब्दी में मरहठों ने। इस वंश का सबसे प्रभावशाली राजा अमोघवर्ष (814-878) हुआ है। उसने इस राजधानी का विस्तार करते हुए अनेक महल और उद्यान एवं दुर्ग बनवाए थे। भग्न क़िले अब भी देखे जा सकते हैं। इन दो सौ वर्षों की अवधि में मान्यखेट जैनधर्म का एक प्रमुख केन्द्र था। उस युग की पाषाण और कांस्य-मूर्तियाँ आज भी यहाँ देखी जा सकती हैं।

क्षेत्र-दर्शन

मलखेड ग्राम में 'नेमिनाथ बसदि' नामक एक जैन मन्दिर है जो कि 9वीं शताब्दी का बताया जाता है। इसके स्तम्भों पर मनलुभाने वाली नक्काशी है और 9वीं से लेकर 11वीं शताब्दी तक की अनेक जिन-प्रतिमाएँ हैं जिनकी ऊँचाई डेढ़ फुट से लेकर पाँच फुट तक है। कुछ प्रतिमाओं के आसन खण्डित हैं। जैन तीर्थंकर, चौबीसी, नन्दीश्वर द्वीप, यक्षी आदि की संख्या लगभग 15 है। इनमें से कुछ प्रमुख की यहाँ चर्चा की जाएगी। इस मन्दिर में कांस्य का एक क्षतिग्रस्त छोटा-सा मन्दिर है। उसके चार स्तरों पर 24 (12+6+5+1) तीर्थंकर एवं अन्य आकृतियाँ चारों ओर हैं जिनकी कुल संख्या 96 हो जाती है जो कि सामान्यतः अन्य स्थानों पर नहीं पाई जाती (देखें चित्र क्र० 6)। यह मन्दिर 11वीं-13वीं सदी का और लगभग डेढ़ फुट ऊँचा है। इसी प्रकार नन्दीश्वर द्वीप भी है जिस पर चारों ओर 13 तीर्थंकर पद्मासन में उत्कीर्ण हैं।

उपर्युक्त बसदि में कांस्य की ही एक चतुर्दशिका (14 तीर्थंकर मूर्तियाँ) है। इसके मूलनायक बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ हैं जो कि कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। शेष 13 तीर्थंकर पद्मासन में उनके दोनों ओर हैं। तोरण पर कीर्तिमुख है और तीन छत्र हैं। मृदंगवादक भी चित्रित हैं। नीचे की ओर यक्ष-यक्षी हैं। चौदह तीर्थंकरों की संख्या इस प्रकार मानी जा सकती है—भरतक्षेत्र के पाँच, ऐरावतक्षेत्र के पाँच और जम्बूद्वीप के विदेहक्षेत्र के चार, इस प्रकार कुल 14 तीर्थंकर।

अम्बिका की भी यहाँ एक सुन्दर मूर्ति है। यह देवी आम्रवृक्ष के नीचे सुखासन में दिखाई गई है। उसके हाथ में आम और बिजौरा हैं। बाल कन्धों पर लहरा रहे हैं। उसके

पास प्रियंकर और शुभंकर भी उत्कीर्ण हैं। लगभग ढाई फुट ऊँची यह मूर्ति नौवीं शताब्दी की बताई जाती है।

जैन साहित्य का केन्द्र

संस्कृत, अपभ्रंश और कन्नड़ साहित्य की दृष्टि से मलखेड (मान्यखेट) का अत्यन्त सम्माननीय स्थान है।

राजा अमोघवर्ष प्रथम का एक नाम नृपतुंग भी था। उसने स्वयं संस्कृत में 'प्रश्नोत्तर रत्नमालिका' नामक ग्रन्थ की रचना की थी जिसका विषय नैतिक आचार था। यह ग्रन्थ दूर-दूर तक काफी लोकप्रिय हुआ। कहा जाता है कि इसका अनुवाद तिब्बती भाषा में भी हुआ था। इसी से इस राजा की विद्वत्ता एवं लोकप्रियता तथा प्रभुता का अनुमान लगाया जा सकता है। इस रचना के अन्तिम छन्द से पता चलता है कि राजा अमोघवर्ष ने राजपाट त्याग कर मुनि-दीक्षा ले ली थी।

प्रसिद्ध 'शाकटायन व्याकरण' पर भी इन्होंने अमोघवृत्ति नामक टीका लिखी थी ऐसा इस टीका के नाम से प्रकट होता है, या यह टीका इनके नाम से प्रसिद्ध हुई।

अमोघवर्ष के शासनकाल में ही महावीराचार्य ने अपने 'गणितसार' ग्रन्थ की रचना की थी।

कन्नड़ भाषा में अमोघवर्ष ने 'कविराजमार्ग' नामक अलंकारशास्त्र/छन्दशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ का प्रणयन किया था। यह ग्रन्थ आज भी कन्नड़ में एक सन्दर्भ-ग्रन्थ है। इसमें कानड़ी प्रदेश का, जो कि गोदावरी से लेकर कावेरी नदी तक फैला हुआ था, प्रसंगोपात्त सुन्दर वर्णन है। इससे इस प्रदेश की तत्कालीन संस्कृति का भी अच्छा परिचय मिलता है।

राष्ट्रकूट नरेशों के शासनकाल में जैन साहित्य की उल्लेखनीय वृद्धि निरन्तर होती रही।

अमोघवर्ष के उत्तराधिकारी कृष्ण द्वितीय के राजकाल में 'उत्तरपुराण' की समाप्ति बंकापुर (कर्नाटक) में हुई। वहाँ उस समय राष्ट्रकूटनरेश का सामन्त लोकादित्य शासन करता था। यह 'उत्तरपुराण' उसी 'आदिपुराण' का अन्तिम भाग है जिसे आचार्य जिनसेन 42 अध्यायों तक ही पूरा कर पाये थे और जिसमें भगवान आदिनाथ के जीवन का सुन्दर काव्यमय वर्णन बहुत विस्तार के साथ किया गया है और जिसकी विनय एवं जिसका स्वाध्याय आज भी लगभग हर जैन मन्दिर में होता है। 'उत्तरपुराण' में शेष तेईस तीर्थंकरों के जीवन का वर्णन उनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने किया है। 'उत्तरपुराण' की प्रशस्ति में गुणभद्राचार्य ने लिखा है कि राजा अमोघवर्ष आदिपुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन द्वितीय के चरणों की पूजा किया करते थे।

राष्ट्रकूटनरेश कृष्णराजदेव के शासनकाल में आचार्य सोमदेव सूरि ने अपने संस्कृत गद्य-पद्य मिश्रित ग्रन्थ 'यशस्तिलक-चम्पू' (समाप्तिकाल 959 ई०) की रचना गंगधारा नामक स्थान पर की थी। इसमें महाराज यशोधर का चरित्र वर्णित है।

कन्नड़ साहित्य के 'कविचक्रवर्ती' पोन्न महाकवि ने मान्यखेट के राष्ट्रकूटनरेश कृष्ण

तृतीय (939-967 ई०) के शासनकाल में कन्नड भाषा में 'शान्तिपुराण' (शान्तिनाथ का जीवन चरित) की रचना की थी। कन्नड़ भाषा के तीन सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ हैं—पहला पम्प कवि का 'आदि पुराण', दूसरा रन्न कवि का 'अजितपुराण' और तीसरा कवि पोन्न का 'शान्तिपुराण'। अपनी श्रेष्ठ उपमाओं के कारण कवि पोन्न को कन्नड़ साहित्य में वही स्थान प्राप्त है जो कि संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास को।

अपभ्रंश साहित्य के क्षेत्र में भी मान्यखेट या राष्ट्रकूट शासन-काल पीछे नहीं रहा, या यों कहें कि अग्रणी रहा। प्रसिद्ध अपभ्रंश महाकवि पुष्पदन्त ने अपनी अपभ्रंश अमर रचना 'महा-पुराण' (तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारु—त्रेसठ महापुरुषों के गुणों का वर्णन, जो हिन्दी अनुवाद के साथ भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित है) का प्रणयन इसी काल में किया था।

इस महाकवि ने मान्यखेट को नष्ट होते देखा था। इस सम्बन्ध में प्रस्तुत है—डॉ० हीरालाल जैन की पुस्तक 'भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान' से एक उद्धरण : "संवत् 1029 के लगभग जब धारा के परमारवंशी राजा हर्षदेव के द्वारा मान्यखेट नगरी लूटी और जलाई गई, तब महाकवि पुष्पदन्त के मुख से हठात् निकल पड़ा कि 'जो मान्यखेट नगर दीनों और अनाथों का धन था, सदैव बहुजनपूर्ण और पुष्पित उद्यान-वनों से सुशोभित होते हुए ऐसा सुन्दर था कि वह इन्द्रपुरी की शोभा को भी फीका कर देता था, वह जब धारानाथ की कोपाग्नि से दग्ध हो गया तब, अब पुष्पदन्त कवि कहाँ निवास करे।" (अपभ्रंश महापुराण, सन्धि 50)

महाकवि पुष्पदन्त की दो और महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं—'णायकुमार चरिउ' (नागकुमार चरित) और 'जसहर चरिउ' (यशोधर चरित)।

मान्यखेट में इस अवधि में भी इतनी सुन्दर एवं विशाल रचनाएँ महाकवि पुष्पदन्त द्वारा प्रस्तुत किया जाना यह सिद्ध करता है कि उनके समय में मान्यखेट तथा उसके आसपास के क्षेत्र में अपभ्रंश का व्यापक प्रचार और पठन-पाठन था। यदि कोई यह कहे कि अपभ्रंश उन्होंने उत्तर भारत के किसी स्थान पर सीखी होगी तो उसे यह भी सोचना चाहिए कि उनकी रचनाओं के पाठक तो उनके ही क्षेत्र के रहे होंगे और उनकी समझ के बाहर की भाषा में वे अपनी रचनाएँ क्यों प्रस्तुत करते ?

श्रवणबेलगोल के एक शिलालेख के अनुसार, राष्ट्रकूटनरेश इन्द्रराज चतुर्थ ने राजपाट त्यागकर मुनिवेश धारण किया था और समाधिमरणपूर्वक चन्द्रगिरि (श्रवणबेलगोल) पर अपनी देह त्यागी थी।

लगभग दो सौ वर्षों तक जैनधर्म, दर्शन, आचार और संस्कृत, अपभ्रंश तथा कन्नड की यह 'साहित्यिक एवं दार्शनिक राजधानी' अब सिकुड़कर केवल एक ग्राम रह गई है, यही विषाद का विषय है।

यदि मलखेड की यात्रा की ही जाती है तो पर्यटक को अगले पर्यटक-स्थल बीजापुर की ओर प्रस्थान करने के लिए वापस गुलबर्गा लौट आना चाहिए।

जेवर्गी

गुलबर्गा से बीजापुर के मार्ग में 39 कि. मी. की दूरी पर जेवर्गी नामक स्थान पड़ता है। यद्यपि तीर्थयात्री या पर्यटक की दृष्टि से इसका आकर्षण नहीं है, किन्तु यदि किसी को बीच में देवदर्शन की आवश्यकता पड़े तो वह यहाँ की शान्तिनाथ बसदि में दर्शन कर सकता है। इस मन्दिर के लिए एक गली में मुख्य सड़क से सीधा मार्ग पुलिस स्टेशन होकर जाता है। मन्दिर एक साधारण भवन जान पड़ता है, पत्थर का बना है, उस पर शिखर नहीं है। मन्दिर में शान्तिनाथ की कायोत्सर्ग प्रतिमा (लगभग 4 फुट), पार्श्वनाथ की दो कांस्य प्रतिमाएँ, सुपार्श्वनाथ, शान्तिनाथ और कुन्थुनाथ की कायोत्सर्ग प्रतिमाएँ हैं। घोड़े पर सवार ब्रह्मयक्ष की भी प्रतिमा है। पद्मावती की एक खण्डित प्रतिमा के हाथ में नागदण्ड है (देखें चित्र क्र. 7)। पंचपरमेष्ठी की भी एक प्रतिमा है। यहाँ ललितासन में एक और जैन देवी की मूर्ति प्रतीत होती है जिसका स्थानीय नाम 'कालम्मा' है। उसके हाथ में खड्ग और गदा है तथा वरदमुद्रा है।

गुलबर्गा जिले के अन्य स्थानों पर जैन मन्दिर

गुलबर्गा ज़िले में अनेक स्थानों पर जैन मन्दिर या बसदियाँ हैं। यथा—अलंद (पार्श्व बसदि), असुर (शाहपुर तालुक—ध्वस्त मन्दिर), अथनूर (अफजलपुर—ध्वस्त चन्द्रनाथ बसदि), बंकुर (चितपुर तालुक—शान्तिनाथ बसदि), गोगी (जेवर्गी तालुक—पार्श्व बसदि), हरसुर (चिंचोली तालुक—पंचकूट बसदि), हुंचालिगे (अफजलपुर तालुक—पार्श्व बसदि), इंगलिगे (वाड़ी स्टेशन के पास—ध्वस्त मन्दिर), कलगी (चिंचोली तालुक-त्रिकूट बसदि), कलगेरी (जेवर्गी तालुक—ध्वस्त मन्दिर), मलगट्टी (चितपुर तालुक—आदिनाथ बसदि), मल्लि (जेवर्गी तालुक—मल्लि जिनालय), नगै (चितपुर तालुक—नगै बसदि), सेडम (शान्तिनाथ बसदि), शिरवाल (शाहपुर तालुक—पंचगुप सिद्धेश्वर नामक जैन मन्दिर), सिरभाग (गुलबर्गा तालुक—ध्वस्त जैन मन्दिर), तडकल (अलंद तालुक—पार्श्वनाथ बसदि), यादगिरि (यादगिरि तालुक—महावीर बसदि)।

उपर्युक्त सूची से यह स्पष्ट होगा कि गुलबर्गा जिले के गाँव-गाँव में जैन धर्म का प्रचार था और वहाँ अब भी बहुत से स्थानों में जैन मन्दिर या उनके अवशेष विद्यमान हैं।

बीजापुर (दक्षिण का आगरा)

अवस्थिति और मार्ग

गुलबर्गा से सड़क-मार्ग द्वारा बीजापुर का यात्राक्रम इस प्रकार है—गुलबर्गा से जेवर्गी 39 कि. मी., जेवर्गी से सिंदगी (Sindgi) 45 कि. मी., सिंदगी से हिप्परगी (Hippargi) 23 कि. मी. और वहाँ से बीजापुर 37 कि.मी.।

बीजापुर राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 13 पर स्थित है। यह राजमार्ग एक ओर शोलापुर को जोड़ता है जो कि राजमार्ग क्र. 9 पर स्थित है, तो दूसरी ओर यह बंगलोर को बीजापुर से जोड़ता है। बीजापुर से शोलापुर 101 कि. मी. है और बंगलोर 579 कि. मी.। यहाँ से बेलगाँव, बंगलोर आदि स्थानों के लिए सरकारी आरामदेह बसें भी चलती हैं।

बंगलोर-हुबली-शोलापुर छोटी लाइन (मीटर गेज) पर बीजापुर दक्षिण-मध्य (साउथ-सेन्ट्रल) रेलवे का एक प्रमुख रेलवे-स्टेशन है। यहाँ आने वाली लगभग सभी रेलगाड़ियाँ शोलापुर से हुबली तक चलती हैं। केवल गोलगुम्बज एक्सप्रेस शोलापुर से बंगलोर तक (हुबली होते हुए) चलती है। रेलमार्ग द्वारा बीजापुर से शोलापुर 110 कि.मी. है और बंगलोर 712 कि.मी. है।

भारत सरकार और कर्नाटक सरकार द्वारा बहुविज्ञापित बीजापुर अपनी गोल गुम्बद के लिए एक अत्यन्त आकर्षक एवं विस्मयकारी पर्यटक केन्द्र है।

बीजापुर का प्राचीन नाम विजयपुर था जिसका उल्लेख सातवीं सदी के एक स्तम्भ एवं ग्यारहवीं सदी के 'मल्लिनाथ पुराण' में मिलता है। कन्नड़ में आज भी इसे वीजापुर (Vijapur) ही कहा जाता है।

जैन पर्यटकों को भी यहाँ की यात्रा, अन्य दर्शनीय स्थानों के लिए भी, अवश्य करनी चाहिए। वे यहाँ यह देख सकते है कि यहाँ का सुन्दर एवं विशाल जैन मन्दिर मस्जिद के रूप में पन्द्रहवीं शताब्दी में परिवर्तित कर दिया गया। उसका नया नाम करीमुद्दीन या पुरानी मस्जिद है जो कि आरकिला (Arkilla) में स्थित है। उसके एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि वह एक जैन मन्दिर था और उसे एक यादव राजा ने भूमि का दान दिया था। यह मस्जिद आनन्दमहल से लगभग 200 गज की दूरी पर है। इसमें स्तम्भों पर रखे गए छत के पाषाण सीमेण्ट जैसी किसी चीज़ से जुड़े नहीं जान पड़ते।

जैन मन्दिर

वर्तमान में, बीजापुर में दो दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। शहर का एक मन्दिर आदिनाथ मन्दिर है जो कि प्राचीन है। शहर के केन्द्र में और बस-स्टैण्ड से कुछ दूरी पर मुख्य मार्ग (महात्मा गांधी रोड) के बीचों-बीच (बाजार के पास) गाँधी जी की एक मूर्ति है, उसके आगे नारियल बाजार है, उससे आगे महावीर रोड और वहीं है रामगली जहाँ कि यह मन्दिर स्थित है। इस जैन मन्दिर के ठीक सामने ही राम मन्दिर भी है जो कि वहाँ पहुँचने के लिए एक पहचान-चिह्न का काम करता है।

आदिनाथ मन्दिर अन्य मकानों के साथ पंक्ति में लगा होने के कारण बाहर से एक साधारण तिमंजिला मकान लगता है। स्पष्ट है कि उसका सामने का एवं कुछ अन्य भाग फिर से बनाया गया है। अन्दर गर्भगृह पत्थर का है। वेदी साधारण है। उसके सामने के हॉल की छत लकड़ी की है। स्तम्भ भी लकड़ी के हैं। मन्दिर में ग्यारहवीं सदी से लेकर बीसवीं सदी तक की प्रतिमाएँ हैं। संगमरमर की पीछे कुंडली वाली सप्तफणी पार्श्वनाथ की प्रतिमा

(लगभग डेढ़ फुट) ग्यारहवीं सदी की है। गोल आसन पर बाहुबली की सात इंच के लगभग, लताओं के स्पष्ट अंकन से युक्त प्रतिमा तेरहवीं शताब्दी की है। दो अर्धपद्मासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदी की हैं। दो पंक्ति के नागरी लेखयुक्त लगभग दो फुट ऊँची आदिनाथ की एक प्रतिमा बीसवीं शताब्दी की है। इसी प्रकार एक पंक्ति के लेखवाली सप्तफणी प्रतिमा पार्श्वनाथ की है किन्तु वह सर्पकुण्डली रहित है।

दरगा के सहस्रफणी पार्श्वनाथ

यहाँ से पर्यटक को एक अतिशययुक्त प्रतिमा के मन्दिर की ओर बढ़ना है। इस मन्दिर का नागरी लिपि में नाम लिखा है 'श्री 1008 सहस्रफणी पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, दरगा (बीजापुर)'। कट्टरपन्थी धर्मान्धों के आक्रमण से बचाने के लिए इसे ज़मीन में दबा दिया गया था। अभी कुछ ही वर्षों पूर्व ही इसे निकाला गया है। इसकी रचना से भी इसका प्राचीन होना सिद्ध होता है। जैन मन्दिर को ढूंढ़ निकालना कभी-कभी मुश्किल काम होता है। इस मन्दिर के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ है। इस कारण यहाँ उसका मार्ग दिया जा रहा है। महात्मा गांधी रोड पर गांधी चौक सभी जानते हैं। वहाँ से आजाद रोड, चन्दापुरी रोड। इसके बाद मुलगसी अगसी नामक क़िले के फाटक जैसा एक गेट आता है। उसके बाहर गाँव जैसा मुहल्ला है। उससे लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर जेल है और वहाँ से फिर एक किलोमीटर की दूरी पर एक छोटा गाँव जैसा है जो कि 'दरगा' कहलाता है। यह स्थान शहर से लगभग तीन किलो मीटर की दूरी पर है। यहीं यह मन्दिर स्थित है।

उपर्युक्त मन्दिर में काले पाषाण की लगभग 5 फुट ऊँची एक हजार फणोंवाली पार्श्वनाथ की एक बड़ी अतिशयपूर्ण प्रतिमा है (देखें चित्र क्र. 8)। उसकी विशेषता यह भी है कि सर्पफण में दूध डालने से सभी फणों में दूध बह निकलता है। कहा जाता है कि यह मूर्ति जमीन से निकली थी। इसी मूर्ति वाले कोष्ठ में संगमरमर की लगभग तीन फुट ऊँची एक चौबीसी भी है जिसके मूलनायक कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर पार्श्वनाथ हैं। इसी तरह की एक और प्रतिमा भी है। दूसरे कोष्ठ में काले पाषाण की पद्मासन पार्श्वनाथ प्रतिमा है। इसी प्रकार काले पाषाण की ही महावीर स्वामी की पद्मासन प्रतिमा 5 फुट ऊँची है। ये प्रतिमाएँ दसवीं, चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी की बताई जाती हैं। सात फणों वाली पार्श्वनाथ प्रतिमा के केश भी दिखाए गए हैं। कोष्ठ मेहराबदार हैं और पाषाण के हैं। दूसरे कोष्ठ में जाने के लिए लगभग चार फुट ऊँचा छोटा दरवाज़ा है। मुस्लिम शैली का एक छोटा-सा शिखर भी इस मन्दिर पर है। मन्दिर के आस-पास कोई भी जैन परिवार नहीं रहता है मन्दिर में सुबह 9 से 10 बजे तक पूजन होती है और उसके बाद उसका दरवाज़ा बन्द कर दिया जाता है। मन्दिर के चारों ओर परकोटा है।

संग्रहालय

बीजापुर में भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग का एक संग्रहालय भी है जो कि गोल

गुम्बद के अहाते में नक्कारखाने में स्थित है। इस भवन के बाद गोल गुम्बद है। संग्रहालय में सप्तफणयुक्त लगभग चार फुट ऊँची पार्श्वनाथ की एक प्रतिमा है जिसमें कुण्डली कन्धों तक आई है (देखें चित्र क्रमांक 9)। लगभग साढ़े चार फुट ऊँची एक अन्य प्रतिमा के फण टूटे हुए हैं। ग्यारहवीं सदी की पाँच फुट ऊँची एक कायोत्सर्ग पार्श्वनाथ प्रतिमा पर केवल पाँच फण ही हैं। इसी सदी की एक और सप्तफणी पाँच फुट ऊँची पार्श्व प्रतिमा है। प्रदर्शन-पेटी (शो केस) में एक से डेढ़ फुट ऊँची तीन प्रतिमाएँ प्रदर्शित हैं। तीसरी वीथी में अनेक शिलालेख हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि 'मल्लिनाथ पुराण' के रचयिता अभिनव पंप ने, यहाँ, इसी शहर में मल्लिनाथ-जिनालय का निर्माण कराया था।

बाज़ार के पास ही एस. एस. रोड पर एक दर्शनीय श्वेताम्बर मन्दिर भी है। बीजापुर में लगभग 40 दिगम्बर जैन परिवार हैं। ठहरने के लिए कोई जैन धर्मशाला नहीं है।

बीजापुर जैन साहित्य की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह नगर कन्नड़ के महाकवि पम्प की जन्मभूमि है जो कि अपनी 'पम्परामायण' और 'मल्लिनाथ पुराण' कृतियों के कारण जैन साहित्य एवं कन्नड़ भाषा में अमर हो गये हैं और आज भी जिनका नाम साहित्यिकों द्वारा बड़े आदर से लिया जाता है।

लोग इन्हें 'अभिनव पम्प' कहते थे। वैसे उनका नाम नागचन्द्र था। इसी प्रकार उनकी रामायण का नाम 'रामचन्द्रचरितपुराण' है।

बीजापुर से 25 कि. मी. की दूरी पर एक स्थान बाबानगर के नाम से बताया जाता है। बीजापुर से 20 कि.मी. की दूरी पर तिवकोटा है और वहाँ से 5 कि.मी. पर यह नगर है। लेखक को इस स्थान के एक वीरशैव भक्त ने बताया कि वहाँ एक ऐसी जैन मूर्ति है जिसे सुई की नोक छुआ देने पर (पूजा के बाद) वह नोंक सोने की हो जाती थी। कालान्तर में उसका दुरुपयोग हुआ और अतिशय बन्द हो गया। यहाँ का मन्दिर साधारण है। यहाँ हरे रंग के पाषाण की डेढ़ फुट ऊँची पार्श्वनाथ की एक आकर्षक प्रतिमा है। फाल्गुन की अमावस्या को यहाँ रथोत्सव होता है। कहा जाता है कि उस दिन अभिषेक के लिए 24 मील दूर कृष्णा नदी से जल लाया जाता है।

एक दर्शनीय स्थल

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बीजापुर की प्रसिद्धि वहाँ स्थित गोल गुम्बद के कारण है। रोम स्थित सेंट पीटर की गुम्बद (व्यास 45 मीटर) के बाद, जो कि विश्व की सबसे बड़ी गुम्बद है, यह विश्व की दूसरी सबसे बड़ी गुम्बद है। इसका व्यास 40 मीटर है। इतने विशाल हॉल में ऊपर की छत को सहारा देने के लिए एक भी स्तम्भ नहीं है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता 'फुसफुसाहट गैलरी' (Whispering gallery) है। यह गैलरी फर्श से 109 फुट ऊँची है और दीवालों से 11 फुट आगे निकली हुई है। जब इस हॉल में आप प्रवेश करते हैं तो आपके पैरों की आवाज़ की ज़ोर की प्रतिध्वनि इस गैलरी में होती है। यहाँ हर समय इतनी भीड़ या अपनी आवाज़ की प्रतिध्वनि सुनने वालों की इतनी संख्या होती है कि आपको

इसका अवसर ही नहीं मिलता। फिर भी, इस गैलरी में ऊपर जाकर लोग अपनी आवाज़ की गूँज सुनते हैं। चालीस मीटर व्यास की इस गुम्बद में यदि आप एक ओर खड़े हो जाएँ और दीवाल की ओर मुंह करके धीरे से भी बोलें तो आपकी बात दूसरी ओर सुनी जा सकती है और अपनी ही आवाज़ की गूँज से आपको ऐसा लगेगा कि कोई आपकी बात का उत्तर दे रहा है। इस गैलरी में फुसफुसाहट या कागज़ की खड़खड़ भी बारह बार गूँजती है। लोग उसे सुनने के लिए ताली बजाते हैं या सीटी बजाते हैं या खाँसते हैं और आश्चर्य से अभिभूत होकर लौट जाते हैं। किसी भी भवन में श्रवण-व्यवस्था (Acoustics) का यह एक अद्‌भुत चमत्कार ऐसे समय (17वीं शती में) निर्मित हुआ जब विज्ञान इतना उन्नत नहीं था। इसकी सात मंज़िलों वाली मीनारें एवं अन्य कलाकारी भी पर्यटक को मुग्ध करती हैं। और यह गुम्बद है क्या ? मुहम्मद आदिलशाह (1627-56) का मकबरा। इस सुल्तान ने गद्दी पर बैठते ही इसे बनवाना प्रारम्भ कर दिया था। किन्तु इसकी साज-सज्जा पूरी होने के पहले ही उसका अन्तकाल हो गया। गुम्बद में लकड़ी का जो मण्डप है, उसके नीचे जमीन के अन्दर उसे दफ़नाया गया है। उसी के पास उसकी बेगम और बेटी की कब्रें भी हैं। इस गुम्बद के कारण ही बीजापुर को दक्षिण का आगरा कहा जाता है।

गोल गुम्बद बीजापुर रेलवे स्टेशन से लगभग दो फर्लांग की दूरी पर है और उसके सामने की सड़क स्टेशन-रोड कहलाती है जो कि सीधी गाँधी चौक की ओर जाती है।

गाँधी चौक और गोल गुम्बद के बीच कांग्रेस भवन पड़ता है। वहीं बसवेश्वर की मूर्ति घोड़े पर है। यहीं डी.सी. कम्पाउण्ड और कर्नाटक सरकार का आदिलशाही होटल है। इन सभी के पास एक प्रसिद्ध इमारत गगनमहल है जहाँ सोलहवीं शताब्दी में अली आदिलशाह अपनी प्रजा की शिकायतें सुना करता था। और इसी महल के पीछे आनन्दमहल रोड पर है—एक पुरानी मस्जिद करीमुद्दीन मस्जिद। किसी समय यह एक विशाल जैन मन्दिर था और सम्भवतः दो-मंजिल। इसके विशाल हॉल में अनेक स्तम्भ हैं। एक-एक पंक्ति में दस बड़े स्तम्भ हैं और इस प्रकार की पाँच पंक्तियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। इस समय यह पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में है।

गगनमहल एक क़िला है। उसी के भीतर एक जलमन्दिर है जो कि लगभग 35 फुट चौड़ा और 35 फुट लम्बा तथा लगभग बारह फुट गहरा है। उसमें बाहर की ओर कमल, तारा आदि की सुन्दर चित्रकारी है। इसे जलस्थित चौमुखा (जिसमें प्रतिमा चारों ओर से देखी जा सकती है) मन्दिर कहने को जी करता है। यह पत्थर का बना हुआ है। इस मन्दिर के चारों ओर आठ-दस फुट चौड़ी (बारह फुट गहरी) खाई है जिसमें किसी समय पानी भरा रहता होगा। किन्तु उसमें पानी भरने के लिए नाली या पाइप की व्यवस्था उसकी रचना में कहीं भी नज़र नहीं आयी। यह भी नहीं मालूम पड़ता कि मन्दिर में जाने की क्या व्यवस्था थी। इसका इतिहास ज्ञात नहीं हो सका। जैन मन्दिर के समीप होने तथा आज भी जलमन्दिर के नाम से ही प्रसिद्ध होने के कारण यह शंका होती है कि क्या यह भी ध्वस्त या अप्रयुक्त जिनमन्दिर तो नहीं है ? जो भी हो, इस विषय में शोध की आवश्यकता है।

कांग्रेस भवन के सामने ही बारा (बारह) कमान हैं। ये इतने ऊँचे, चौड़े और विशाल

हैं कि इन्हें अवश्य देखना चाहिए। शायद कोई भवन अधूरा ही रह गया।

बीजापुर की एक अन्य प्रसिद्ध इमारत है इब्राहीम रोज़ा। यह एक मकबरा है और इसमें कब्र पर कुरान की आयतें स्वर्णाक्षरों में लिखी हुई हैं। कहा जाता है कि आगरा के ताजमहल के निर्माण की प्रेरणा इसी से मिली थी। इसकी कारीगरी भी दर्शनीय है।

आदिलशाही सुल्तानों के समय की यहाँ और भी अनेक दर्शनीय इमारतें हैं।

यहाँ हैदर या उपलिबुर्ज (मलिके मैदान) में एक तोप भी रखी हुई है जो साढ़े नौ मीटर लम्बी है और जिसका वज़न पचपन टन बताया जाता है।

ठहरने के लिए यहाँ कर्नाटक सरकार का आदिलशाही होटल अच्छा है और केन्द्र-स्थान में है। पर्यटकों को जानकारी मिलने के अतिरिक्त नगर-भ्रमण कराने की भी वहाँ व्यवस्था है। वैसे उसी के पास महात्मा गांधी रोड पर कुछ अच्छे होटल भी हैं।

हिन्दी, मराठी और कन्नड़ यहाँ बोली और समझी जाती हैं।

एक चेतावनी—बीदर, गुलबर्गा और बीजापुर का इस यात्राक्रम में वर्णित सड़क-मार्ग छोटी-छोटी पहाड़ियों से युक्त है। बड़ी दूर तक कभी-कभी वृक्ष दिखाई नहीं देते। बस या कार को छाया में खड़ी करने के लिए भी कभी-कभी परेशान होना पड़ता है। अधिकतर बसें गर्मियों में यात्रा पर निकलती हैं। उन्हें चाहिए कि वे इंजिन और यात्रियों के लिए पर्याप्त पानी अपने साथ रखें। केनवास की पानी से भरी थैलियाँ बोनट पर लटका कर यात्रा करने से ठण्डा पानी पीने को मिल जाता है। बीजापुर ज़िले के तीन प्रमुख जैनकला केन्द्र हैं—बादामी, पट्टदकल और ऐहोल जो अपने इतिहास और शिल्प के लिए अनेक विद्वानों के अध्ययनस्थल और आज भी देशी-विदेशी पर्यटकों के आकर्षण-केन्द्र हैं। बीजापुर से बादामी के लिए सीधा रेल और सड़क-मार्ग भी है। किन्तु अभी उधर न जाकर पहले बेलगांव की ओर प्रस्थान करना चाहिए तथा रास्ते में शान्तिगिरि (नया, रमणीक एवं शान्त) तीर्थ क्षेत्र, स्तवनिधि (तीर्थ), बेलगांव की कमल बसदि (कला का एक आश्चर्यकारी नमूना) तथा गोआ की यात्रा करनी चाहिए। बादामी से विश्वप्रसिद्ध हम्पी (विजयनगर साम्राज्य की राजधानी) की ओर यात्राक्रम रहेगा। बादामी के लोभ में स्तवनिधि, गोआ जैसे क्षेत्र या तो छूट जाएँगे या यात्रा लम्बी हो जाएगी और क्रम ठीक नहीं रहेगा।

ज़िले के अन्य जैन स्थल

बीजापुर(विजयपुर) ज़िला भी जैन धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। आज भी उसके निम्न-लिखित स्थानों में जिनमन्दिर अच्छी हालत में या ध्वस्तावस्था में विद्यमान हैं। ये स्थान हैं अलगुरु (Alaguru, आदिनाथ बसदि, जमखंडि तालुक), अरसिबिडु (Arsibidu, मन्दिर, बीजापुर ज़िला), बागलकोट (Bagalkot, पार्श्वनाथ बसदि), एरगल (Ergal, जिनालय, सिंदगी तालुक), गुडुर (Gudur, महावीर चैत्यालय, हुनगुंद तालुक), होनवाड (Honvad, पार्श्वसुपार्श्व जिनालय, बीजापुर ज़िला), हुनश्याल (Hunshyal, पद्मावती मन्दिर, सिंदगी तालुक), हुनगुंद (Hungund, जैन देवालय, बीजापुर ज़िला), इन्दि (Indi, आदिनाथ बसदि, इन्दि तालुक), इंग्लेश्वर (Ingleshvar,

रावन सिद्धेश्वर मन्दिर में सुपार्श्व, बेसवन बागेवाड़ी तालुक), कमटगि (Kametgi, पार्श्वबसदि, मुड्डेबिहल (जिनालय, इसी नाम का तालुक) तलिकोटी (Talikoti, आदिनाथ बसदि, मुड्डेबिहल तालुक) और तेरदल (Terdal, गोंक जिनालय, जमखंडि तालुक)।

और अब बेलगांव की दिशा में शान्तिगिरि की ओर।

तीन आधुनिक मुनिरत्नों की भूमि में

बीजापुर ज़िले के बाद बेलगाँव एक ऐसा ज़िला है जिसमें जिनधर्म की प्रभावना आज भी शायद कर्नाटक के किसी भी ज़िले से सबसे अधिक है। यह ज़िला मानो जैनों का गढ़ ही है।

बेलगाँव ही वह ज़िला है जिसने आधुनिक युग में भी तीन मुनिरत्न हमें दिये हैं--- आचार्य शान्तिसागर जी, आचार्य देशभूषण जी और आचार्य विद्यानन्द जी। ये ही वे जातरूप मुनि हैं जिन्होंने जैन-अजैन जनों में जैनधर्म की प्रभावना की है और जैन समाज को मार्गदर्शन दिया है।

अब हमारे यात्राक्रम का अगला पड़ाव है आचार्य देशभूषण जी महाराज के गाँव कोथली के पास स्थित शान्तिगिरि।

मार्ग—सड़क-मार्ग से विभिन्न स्थानों की दूरी इस प्रकार है—बीजापुर से बबलेश्वर होते हुए जमखण्डि 62 कि. मी.। जमखण्डि से एक मार्ग बेलगांव (153 कि. मी.) जाता है और दूसरा मार्ग धारवाड (यह भी 153 कि. मी.)। किन्तु शान्तिगिरि के लिए हमें जमखण्डि से महालिंगपुर जाना है जहाँ पहुँचने के लिए दो मार्ग हैं। एक, बनहट्टी (19 कि. मी.) होकर और दूसरा मुधोल होकर। मुधोल के रास्ते महालिंगपुर की दूरी आठ-नौ कि. मी. अधिक पड़ती है। इसलिए बनहट्टी के रास्ते महालिंगपुर जाना चाहिए। यहाँ से चिकोड़ी (Chikodi) 61 कि. मी. है। वैसे दक्षिण-मध्य रेलवे की मिरज-हुबली (मीटर गेज) लाइन पर 'चिकोड़ी रोड' रेलवे स्टेशन भी है जो कि मिरज से 65 कि. मी. है। चिकोड़ी से निपानी 27 कि. मी. दूर है। इन दोनों स्थानों के बीच में शान्तिगिरि मार्ग है।

जब हम चिकोड़ी के निकट पहुँचते हैं तो चिकोड़ी-निपानी मुख्य सड़क पर स्थित बस-स्टैण्ड के पास सुन्दर धर्मचक्र के सन्मुख होते हैं।

चिकोड़ी में लगभग दो सौ जैन परिवार निवास करते हैं। यहाँ एक मन्दिर पुराना है और एक नया। दोनों मन्दिरों की व्यवस्था समाज द्वारा की जाती है।

चिकोड़ी तालुक ने ही भारत को दिगम्बर जैन समाज को उक्त तीन आधुनिक मुनिरत्न दिये हैं।

भोजगाँव

चिकोड़ी तालुक में आचार्य शान्तिसागर जी की जन्मभूमि भोजगाँव है। यह कोथली से

20 कि. मी. की दूरी पर है। यह गाँव अकोक-गलतगा-चिकोड़ी रोड पर स्थित है। इसकी आबादी लगभग 15 हज़ार है। यहाँ लगभग 500 जैन परिवार निवास करते हैं। यहाँ दो दिगम्बर जैन मन्दिर हैं।

शेडबाल

आचार्य श्री विद्यानन्द जी का जन्मस्थान शेडबाल (Shedbal) भी चिकोड़ी तालुक में है। चिकोड़ी से वहाँ पहुँचने का मार्ग इस प्रकार है—चिकोड़ी से कागवाड़ और वहाँ से शेडबाल। शेडबाल दक्षिण-मध्य रेलवे का स्टेशन भी है और मिरज जंक्शन से 17 कि. मी. है। इस जंक्शन पर बम्बई से बंगलोर जाने वाली पूरी रेल बदलती है क्योंकि मिरज तक बड़ी लाइन है और मिरज से बंगलोर तक छोटी लाइन। शेडबाल में लगभग 250 जैन परिवार हैं और तीन दिगम्बर जैन मन्दिर। यहाँ एक धर्मशाला और शान्तिनाथ पाठशाला है। एक शैव मन्दिर में भी दिगम्बर मूर्ति है। यह भी ज्ञात हुआ है कि संसार के प्रति निर्मोही विद्यानन्द जी महाराज अपने जन्मस्थान के प्रति भी निर्मोही हैं। यदि वे चाहते तो वहाँ अनेक संस्थाएँ खुल सकती थीं। आचार्य विद्यानन्द जी 1985 में अपनी आयु के 60 वर्ष पूरे कर चुके हैं।

कोथली

आचार्यरत्न देशभूषण जी की जन्मभूमि कोथली नामक गाँव (मार्ग के लिए 'शान्तिगिरि क्षेत्र' नामक अगला शीर्षक देखिए) है। यहाँ लगभग एक सौ जैन परिवार निवास करते हैं। देशभूषण हाई स्कूल में दो सौ से ऊपर विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। यहीं पर स्थित गुरुकुल या आश्रम में पचास-साठ छात्र हैं। ये दिगम्बर जैन विद्यार्थी हैं। आश्रम की व्यवस्था समाज के दान से होती है। यहाँ का टेलिफोन नं. शिरगाँव 39 है। यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था भी आश्रम में कर दी जाती है। यहीं से शान्तिगिरि क्षेत्र जाने के लिए मार्ग-दर्शन भी प्राप्त हो जाता है। कोथली गाँव के एक-दो वृद्धों से आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी के बारे में प्रतिक्रिया जानने की दृष्टि से प्रश्न किया तो वे बोले—"देशभूषण तो हमसे बहुत आगे निकल गया, हम गृहस्थी में फँसे यहाँ के यहाँ ही रह गए, पिछड़ गए।" आचार्यरत्न देशभूषण जी महाराज ने 1987 में इसी स्थान पर सल्लेखना धारण कर देह-विसर्जन कर दिया। उनकी प्रेरणा से यहाँ एक आरोग्य धाम की स्थापना भी की गई है।

आश्रम की स्थापना 1968 में हुई थी। यहाँ आदिनाथ जिनमन्दिर, छात्रावास, भोजन-गृह और धर्मशाला भी है।

आश्रम का पता इस प्रकार है—

श्री 108 आचार्यरत्न देशभूषण मुनि दिगम्बर जैन आश्रम ट्रस्ट
पो. कोथली (कुप्पानवाड़ी) 591287,
ता०—चिकोड़ी,
ज़िला—बेलगाँव (कर्नाटक)

शान्तिगिरि क्षेत्र

मार्ग (चिकोडी-निपाणी सड़क पर)—इस सड़क-मार्ग पर जब निपाणी केवल 6 कि. मी. रह जाता है, तब वहाँ कर्नाटक सरकार के लोक निर्माण विभाग द्वारा लगाया गया मेहराबदार एक बोर्ड दिखाई पड़ता है जिस पर लिखा है "श्री आचार्य देशभूषण जैन दिगम्बर आश्रम" (नागरी लिपि में)। यहीं से कोथली गाँव को सड़क जाती है जहाँ यह आश्रम है। इसी सड़क पर इस बोर्ड से पहले एक और बोर्ड ठीक इसी प्रकार का लगा है। वहाँ से एक सड़क सीधी कुप्पानवाडी गाँव को जाती है और कुछ अच्छी बताई जाती है (चिकोड़ी की ओर से आने वालों के लिए यह सुविधाजनक हो सकती है)। यह सड़क भी सीधी देशभूषण आश्रम तक पहुँचती है। जो भी हो, कोथली स्थित आचार्य देशभूषण आश्रम से शान्तिगिरि क्षेत्र केवल डेढ़ कि. मी. है और आश्रम से दिखाई देता है। जो सरकारी बसें निपाणी से चिकोड़ी तक चलती हैं वे दोनों ही गाँवों में जाकर मुख्य सड़क पर आती हैं। यह भी एक सुविधा है क्योंकि बसें आश्रम तक आती हैं।

उत्तर भारत के बहुत-से जैन पर्यटकों तथा जैन तीर्थों की पर्यटक बस चलाने वाले लोगों को शान्तिगिरि क्षेत्र की जानकारी नहीं होती, ऐसा जान पड़ता है। वे प्रायः बम्बई-सतारा और कोल्हापुर होते हुए यात्रियों को कुम्भोज बाहुबली ले जाते हैं। और फिर पूना-बंगलोर राजमार्ग 4 क्र. से यात्रा कर निपाणी होते हुए सीधे स्तवनिधि पहुँचते हैं और स्तवनिधि को ही महाराष्ट्र की ओर से कर्नाटक में प्रवेश के बाद पहला तीर्थस्थान यात्रियों को बताते हैं। यदि वे निपाणी से चिकोड़ी सड़क (6 कि. मी.) ले लें तो कोथली में आचार्य देशभूषण आश्रम होते हुए शान्तिगिरि पहुँच सकते हैं और वापस निपाणी लौटकर स्तवनिधि की ओर प्रस्थान कर सकते हैं। कुम्भोज बाहुबली से भी शान्तिगिरि के लिए एक और छोटा सड़क-मार्ग है जो कि इस प्रकार है—कुम्भोज बाहुबली से इचलकरंजी (महाराष्ट्र का नगर, कपड़े का व्यापार-केन्द्र) 18 कि. मी., वहाँ से कुप्पानवाडी गाँव 25 कि. मी. और वहाँ आचार्य देशभूषण आश्रम होते हुए शान्तिगिरि क्षेत्र, फिर वहाँ से आचार्य श्री देशभूषण महाराज के गाँव कोथली एवं आश्रम होते हुए निपाणी जहाँ पूना-बंगलोर राष्ट्रीय राजमार्ग क्र. 4 उन्हें स्तवनिधि ले जायेगा।

रेल से यात्रा करने वालों को मिरज जंक्शन से 65 कि० मी० दूर चिकौडी-रोड स्टेशन उतरकर चिकोडी से बस द्वारा देशभूषण आश्रम और वहाँ से शान्तिगिरि क्षेत्र जाना होगा।

निपाणी में लगभग 200 जैन परिवार रहते हैं। यह छोटा-सा शहर तम्बाकू के व्यापार के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ दो दिगम्बर और दो श्वेताम्बर मन्दिर हैं। एक श्वेताम्बर धर्मशाला भी है।

यदि कोई यह प्रश्न करे कि बम्बई-कुम्भोज बाहुबली की ओर से प्रवेश करने पर समय की कमी को ध्यान में रखते हुए कर्नाटक का पहला तीर्थस्थान कौन-सा है तो हमारा यही उत्तर होगा कि वह स्थान शान्तिगिरि क्षेत्र है। आचार्यरत्न देषभूषण जी की जन्मस्थली के अत्यन्त निकट एक सुन्दर रमणीक पहाड़ी पर इसका निर्माण सन् 1979 में प्रारम्भ हुआ। शान्तिगिरि न तो सिद्धक्षेत्र है और न ही अतिशयक्षेत्र, किन्तु एक आधुनिक धर्मस्थल है जिसकी कल्पना एवं

रचना अद्भुत है तथा वातावरण शान्त, सौम्य एवं प्रभावक है। अनुरोध है कि हर जैन पर्यटक को यह स्थान अवश्य देखना चाहिए। यहाँ की रचना के आगे दिये गये विवरण से ही तथ्य का निश्चय हो जायेगा।

देशभूषण आश्रम से शान्तिगिरि क्षेत्र की थोड़ी-सी ऊँची पहाड़ी तक पक्की सड़क बनी हुई है। उस पर ट्यूबलाइट भी लगी हुई हैं। इसीलिए वहाँ तक पहुँचने के लिए बस या कार को किसी प्रकार की परेशानी नहीं होती। वैसे आश्रम के कार्यकर्ता यात्रियों की सहायता करते हैं। आश्रम से ही शान्तिगिरि का परकोटा एवं शिखर आदि दिखाई देते हैं यद्यपि शान्तिगिरि डेढ़ कि. मी. दूर है।

क्षेत्र-परिचय

शान्तिगिरि क्षेत्र का एक परकोटा है जिसकी दीवालें लगभग दस-बारह फुट ऊँची हैं। उसका लगभग बीस-पच्चीस फुट ऊँचा प्रवेशद्वार पाषाण निर्मित है। उसके ऊपर दो ध्वजस्तम्भ हैं और एक घड़ी लगी हुई है। क्षेत्र में प्रवेश करते ही नारियल के पेड़ (जोकि इस क्षेत्र में बहुत ही कम हैं) और शीतल हवा यात्री का स्वागत करती है। अहाता बड़ा है और अनेक बसें या कार आदि ठहरायी जा सकती हैं।

यात्रियों के लिए यहाँ एक धर्मशाला है जिसमें चालीस कमरे हैं। इसकी दो मंजिलें जमीन के ऊपर हैं तो एक जमीन के नीचे (अण्डरग्राउण्ड)। धर्मशाला क्षेत्र के आहते के बाहर किन्तु उससे बिलकुल सटी हुई है। इसका धरातल क्षेत्र से नीचा है। बिजली और पानी की अच्छी व्यवस्था है।

मुनियों के लिए यहाँ पाँच भूमिगत गुफाएँ बनाई गयी हैं जो कि धर्मशाला से जुड़ी हुई हैं।

इस स्थान से कुछ ही दूर पर पत्थरों की एक पाण्डुकशिला भी बनाई गयी है।

क्षेत्र के अहाते के बाहर मुनि-निवास और क्षेत्र का कार्यालय है।

यहाँ काफ़ी बड़ा एक देशभूषण प्रवचन हॉल है जिसमें कोई न कोई त्यागी-व्रती धर्मोपदेश किया करते हैं। यह भी अहाते से बाहर है।

क्षेत्र के कर्मचारियों की आवास-व्यवस्था भी अच्छी की गई है।

शान्तिगिरि में यात्रियों के लिए निःशुल्क भोजन की व्यवस्था है। इसके लिए कार्यालय को कम से कम दो घण्टे पहले सूचना दे दी जानी चाहिए। सौ से दो सौ तक यात्रियों को एक साथ भोजन कराया जा सकता है। यदि यात्रियों की संख्या अधिक है तो यह अधिक अच्छा होगा कि क्षेत्र के कार्यालय को कुछ दिन पूर्व सूचना दे दी जाए क्योंकि क्षेत्र एक एकान्त पहाड़ी पर है और आवश्यक सामग्री का प्रबन्ध करने में देरी लग सकती है। क्षेत्र का प्रबन्ध उत्तम है।

क्षेत्र-दर्शन

बहुत से ऐसे तीर्थस्थान हैं जहाँ दर्शनीय मन्दिर, वन्दनीय कुलिकाएँ या कला-स्मारक तो अनेक हैं किन्तु स्वयं क्षेत्र की ओर से यह मार्गदर्शन नहीं मिलता कि वह दर्शन या वन्दना किस क्रम से प्रारम्भ करें कि कोई भी महत्त्वपूर्ण या वन्दनीय मन्दिर आदि छूट न जाये। शान्ति-

गिरि क्षेत्र में इस ओर विशेष ध्यान दिया गया है। वहाँ सम्बन्धित मन्दिर आदि पर दर्शन-क्रमांक दिया गया है जो बहुत सुविधाजनक है।

दर्शन क्रमांक 1—यह 'समवसरण मन्दिर' है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई 22 × 22 फुट है। यह मन्दिर संगमरमर का बना है। इसमें काँच का समवसरण निर्माणाधीन है। रंग-बिरंगे सुन्दर काँच या शीशों के कटघरे में मानस्तम्भ, वृक्ष, गन्धकुटी आदि का निर्माण किया गया है। यह मोहक समवसरण एक अद्भुत रचना होगी। बिजली के प्रकाश के संयोजन से यह किसी का भी मन मोह लेगा।

दर्शन क्रमांक 2—यह नन्दीश्वर मन्दिर है। इसमें पाँच गिरि या पर्वत बनाये गये हैं। इसकी गोल शिलाओं पर पीतल की 52 पद्मासन प्रतिमाएँ स्थापित हैं जिनकी प्रतिष्ठा भी हो चुकी है। स्पष्ट है कि इनकी पूजा होती है। इस मन्दिर का हॉल 30 फुट × 30 फुट है।

नन्दीश्वर द्वीप—जैन मान्यता के अनुसार, इस द्वीप में कुल 52 पर्वत हैं और प्रत्येक पर्वत पर एक-एक चैत्यालय है। फाल्गुन, आषाढ़ और कार्तिक के अन्तिम आठ दिनों में अर्थात् अष्टाह्निका पर्व में देवतागण नन्दीश्वर द्वीप में तथा मनुष्य अपने-अपने मन्दिरों में नन्दीश्वर द्वीप की स्थापना करके बड़े भक्तिभाव से जिनेन्द्र भगवान के इन 52 चैत्यालयों की पूजा करते हैं और पुण्य अर्जित करते हैं।

दर्शन क्रमांक 3—'कमल मन्दिर'। यह 30 फुट × 30 फुट का एक अष्टकोण भवन है। इसमें चौबीसों तीर्थंकरों की प्रतिमाओं की अद्भुत झाँकी है जोकि संगमरमर की हैं। इनका वर्ण सफेद, काला और बादामी है। चौबीसी चारों दिशाओं में दृश्य है। इसके मूलनायक पद्मप्रभ कायोत्सर्ग मुद्रा में कमलासन पर केन्द्र में विराजमान हैं। शेष तीर्थंकर पद्मासन में हैं। वेदी के तीन स्तर हैं। सभी मूर्तियों की प्रतिष्ठा हो चुकी है और उनकी विधिवत् पूजन होती है।

दर्शन क्रमांक 4—पार्श्वनाथ (तेईसवें तीर्थंकर) की सत्रह फुट उत्तुंग संगमरमर की यह प्रतिमा खुले आकाश के नीचे पाँच फुट ऊँचे एक चबूतरे पर कमलासन पर प्रतिष्ठित है। मूर्ति पर सात फणों की छाया है और सर्पकुण्डली पीछे तक गयी है। मूर्ति के पादमूल में पार्श्वनाथ का लांछन (चिह्न) सर्प बना हुआ है। संगमरमर के जिस फलक पर इस तीर्थंकर-प्रतिमा का उत्कीर्णन हुआ है उसी फलक पर चरणों के पास यक्ष-यक्षी धरणेन्द्र और पद्मावती की भी प्रतिमाएँ हैं।

दर्शन क्रमांक 5—'आदिनाथ मन्दिर'—यह मन्दिर जैन तीर्थंकरों, आचार्यों, ऋषियों, भावी तीर्थंकरों एवं स्तोत्रों का एक विशाल संग्रह ही है जो केवल दर्शनमात्र से जैनधर्म के महान स्तम्भों का सहज ही में परिचय करा देता है। इसका क्रम इस प्रकार है—

इस मन्दिर में कमलासन पर संगमरमर की भरत की 9 फुट ऊँची, केन्द्र में भगवान आदिनाथ की 12 फुट ऊँची और बाहुबली की 9 फुट ऊँची प्रतिमाएँ खड़ी हुई या कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। इतनी ऊँची प्रतिमाओं के प्रक्षाल के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

संगमरमर का 'सम्मेदशिखर का एक नक्शा' यहाँ काँच की चहारदीवारी के अन्दर प्रदर्शित है। पीतल की 4 फुट ऊँची 'चौबीसी' भी यहाँ है। उसके मूलनायक भगवान महावीर हैं। प्रतिमा पर उसका लांछन सिंह है और दोनों ओर चँवरधारी हैं। शेष तीर्थंकरों की पद्मासन

मूर्तियाँ कुलिकाओं में प्रतिष्ठित हैं।

तीर्थंकरों की प्रतिमाओं के बाद पद्मासन में जैनधर्म के प्रमुख आचार्यों की मूर्तियाँ हैं। गौतम गणधर उपदेश-मुद्रा में प्रदर्शित हैं। कुन्दकुन्दाचार्य और उमास्वामी के हाथों में पुस्तक है। उनके बाद वीरसेनाचार्य, जिनसेनाचार्य हैं। उनके बाद अमृतचन्द्राचार्य स्थापित हैं। उनके हाथ में भी पुस्तक है। और उनके बाद आचार्य भूलबली और पुष्पदन्त हैं।

आचार्यों की पंक्ति के बाद कायोत्सर्ग मुद्रा में भरत की आठ फुट ऊँची संगमरमर की मूर्ति है। भरत-प्रतिमा से आगे चन्द्रप्रभ भगवान की डेढ़ फुट ऊँची संगमरमर की प्रतिमा पद्मासन में विराजमान है।

सप्तर्षि प्रतिमाएँ चन्द्रप्रभ की प्रतिमा से आगे प्रतिष्ठित हैं। ये कुलिकाओं में हैं और तीन फुट ऊँची हैं तथा संगमरमर की बनी हुई हैं। इन ऋषियों के नाम हैं—1. श्रीमन्यु, 2. सुरमन्यु, 3. श्रीनिचय, 4. सर्वसुन्दर, 5. जयदान, 6. विनयलालस और 7. जयमित्र।

दो दीवालों के बीच में कुछ भीतर की ओर एक कोण में 'रत्नत्रय भगवान' की बादामी रंग की संगमरमर की मूर्तियाँ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं।

भगवान बाहुबली की सवा दो फुट ऊँची कायोत्सर्ग मुद्रा में मूर्ति भी यहीं है।

इसके बाद भावी तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ कुलिकाओं में विराजमान की गई हैं। उनके द्वार पर चक्रधारी खड़े हुए प्रदर्शित हैं। प्रतिमाएँ कायोत्सर्ग मुद्रा में, तीन फुट ऊँची, संगमरमर की बनी हुई हैं। ये हैं—श्री 1008 सीमंधर स्वामी, युगमंधर स्वामी, बाहु स्वामी, सुबाहु स्वामी, सुजात स्वामी, स्वयंप्रभ स्वामी, वृषभानन स्वामी, अनन्तवीर्य स्वामी, सुरप्रभ स्वामी। यहीं संगमरमर के शिला-फलकों पर उत्कीर्ण है 'भक्तामर स्त्रोत', और उसके बाद विशालकीर्ति स्वामी की प्रतिमा है। शायद एकरसता कम करने के लिए अब महावीर स्वामी की कायोत्सर्ग मुद्रा में सात फुट ऊँची प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई है। उनसे आगे वज्रधर स्वामी विराजमान हैं। फिर उत्कीर्ण हैं तीन संगमरमर फलकों पर 'कल्याणमन्दिर स्तोत्र'। तदनन्तर तीर्थंकरों की शृंखला पुनः प्रारम्भ होती है। चन्द्रानन स्वामी, भद्रबाहु स्वामी, भुजगम स्वामी, ईश्वर स्वामी, नेमप्रभ स्वामी, वीरसेन स्वामी, महाभद्र स्वामी, देवयश स्वामी और अजितवीर्य स्वामी भी उपर्युक्त प्रकार से विराजमान हैं।

पुनः दो दीवालों के बीच में कुछ भीतर की ओर एक कोष्ठ में भगवान पार्श्वनाथ की काले पाषाण की साढ़े चार फुट ऊँची एक मनोहर प्रतिमा है। उस पर छत्रत्रय है। चँवरधारी भी हैं और प्रतिमा मकरतोरण युक्त है।

आचार्यों की पंक्ति पुनः। ये आचार्य हैं—नेमिचन्द्र आचार्य, अकलंक आचार्य, धरसेन और जयकीर्ति आचार्य। ये प्रतिमाएँ भी पूर्वोक्त आचार्य-प्रतिमाओं के समान विराजमान हैं।

मन्दिर में यक्ष-यक्षी प्रतिमाएँ भी हैं। संगमरमर की ज्वालामलिनी देवी सामान्य पदार्थ हाथों में लिये हुए है। पद्मावती देवी की भी इसी प्रकार की एक मूर्ति है।

अब हम आते हैं शांतिगिरि के सबसे आकर्षक और महत्त्वपूर्ण भाग की ओर। खुले आकाश के नीचे संगमरमर के कमलासन पर क्षेत्र के बीचों-बीच कायोत्सर्ग मुद्रा में संगमरमर की सुन्दर प्रतिमाएँ दर्शक के मन पर अमिट छाप छोड़ती हैं। ये प्रतिमाएँ हैं—बीच में शान्तिनाथ

21 फुट, चन्द्रप्रभ 19 फुट और शान्तिनाथ के दूसरी ओर भगवान महावीर 19 फुट। दर्शक इन मूर्तियों की सौम्य मुद्रा को निहारता ही रह जाता है और उसका मस्तक इनके सामने अपने आप ही श्रद्धा से झुक जाता है।

इस क्षेत्र को यदि जैन पुराण या इतिहास का एक संग्रहालय या म्यूज़ियम कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यहाँ शान्ति है। साधना का, आत्मचिन्तन का अवसर है। जो लोग बड़े शहरों, उसके शोर-गुल, नौकरी, धन्धा या गृहस्थी के झमेलों से कुछ दिन राहत चाहते हैं उन्हें शान्ति मिलेगी इसी शान्तिगिरि में। यहाँ की प्रकृति भी उनका स्वागत करती जान पड़ती है।

क्षेत्र का पता इस प्रकार है—श्री शान्तिगिरि क्षेत्र, पोस्ट—कोथली-कुप्पानवाडी—591287, तालुक—चिकोड़ी, ज़िला—बेलगाँव (कर्नाटक)। टेलिफोन नंबर है—सिरगांव 29, देशभूषण आश्रम का फोन नं. है—सिरपुर 39 (इससे भी मदद मिलेगी)।

और अब वापस निपाणी होते हुए स्तवनिधि की ओर।

स्तवनिधि

अवस्थिति और मार्ग

सड़क-मार्ग द्वारा यह स्थान बम्बई-पूना-बंगलोर राजमार्ग क्र० 4 पर स्थित है और निपाणी से 7 कि० मी० तथा बेलगाँव से 55 कि० मी० की दूरी पर है। इस राजमार्ग की काली स्याह चौड़ी सड़क के किनारे पर नागरी लिपि में स्तवनिधि और वहाँ से बंगलोर का बोर्ड मील के अन्य पत्थरों की तरह लगा है। वहाँ से एक छोटी सड़क मुड़ती है जो कि पहाड़ी के पीछे डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर छिपे स्तवनिधि क्षेत्र की ओर आपको ले जाएगी।

स्तवनिधि संबंधी मील का जहाँ पत्थर लगा है वहीं सड़क के किनारे की पहाड़ी पर श्री सहस्रफणि-पार्श्वनाथ गुरुकुल है जिसकी चर्चा आगे की जाएगी। स्तवनिधि क्षेत्र की सड़क इसी गुरुकुल के सामने से होकर क्षेत्र की ओर जाती है।

स्तवनिधि का आजकल वहाँ प्रचलित अपभ्रंश नाम 'तावन्दी' है (स्तवनिधि शब्द घिस-कर तावन्दी हो गया है)। तावन्दी नाम का गाँव पहाड़ी पर है। गुरुकुल के पास से बेलगाँव की ओर निरन्तर ऊँची उठती जाने वाली पहाड़ी को तावन्दी या तावन्दी घाट कहा जाता है। स्तवनिधि चिकोड़ी तालुक के अन्तर्गत है।

एक सावधानी—जो यात्री बस से स्तवनिधि के लिए मुख्य सड़क पर उतरें उन्हें यह ध्यान रखना होगा कि डेढ़ कि० मी० दूर स्थित स्तवनिधि क्षेत्र तक जाने या सामान ले जाने के लिए कोई सवारी यहाँ नहीं मिलेगी। इस स्थान से स्तवनिधि तक की सड़क भी ऊँची होती चली जाती है। इसलिए यह अधिक अच्छा होगा कि वे इस स्थान के पास स्थित गुरुकुल में ठहरने सम्बन्धी सुविधा का पता लगा लें।

स्तवनिधि कर्नाटक के प्रमुख तीर्थों में से एक है। उत्तर भारत से कर्नाटक जाने वाली

बसें भी पर्यटकों, यात्रियों को सबसे पहले स्तवनिधि ले जाती हैं। इसकी सुविधाजनक स्थिति—राष्ट्रीय राजमार्ग—के कारण भी यहाँ पहुँचना आसान होता है।

क्षेत्र-परिचय

इस क्षेत्र की प्रसिद्धि ब्रह्मदेव (यक्ष) के कारण है। वे जैन-अजैन सभी से आदर एवं श्रद्धा प्राप्त करते हैं। कन्नड़ भाषा में इन ब्रह्मदेव को 'भरमप्पा' कहा जाता है।

स्तवनिधि का जैन मन्दिर प्राचीन जान पड़ता है और पाषाण निर्मित है। उसके पीछे की पहाड़ी का भी उसके निर्माण में पर्याप्त लाभ उठाया गया है। मन्दिर के आसपास पत्थरों की दीवाल का परकोटा है।

मुख्य सड़क और क्षेत्र के बीच यक्षी पद्मावती का एक मन्दिर है।

मन्दिर के सामने 30 फुट ऊँचा एक मानस्तम्भ है किन्तु उसके ऊपर मूर्ति नहीं है। बिजली गिरने से मूर्ति ध्वस्त हो गई या निकल गई। मूर्ति का निशान मन्दिर की ऊपरी मंजिल (प्रथम तल) से दिखाई देता है।

यहाँ के मन्दिर की रचना इस प्रकार है—मन्दिर में तीन देवकोष्ठ हैं। और इन सभी के सामने पाषाण के मोटे स्तम्भों पर आधारित खुला बरामदा या हॉल है।

मन्दिर की अधिकांश मूर्तियाँ 9वीं और 10वीं सदी की हैं। प्रथम देवकोष्ठ के बाहर नागरी लिपि में लिखा है—'श्री 1008 चिन्तामणि तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ'। ये इस कोष्ठ के नायक प्रतीत होते हैं और फणावली युक्त हैं। यहीं, इसी कोष्ठ में, ग्यारहवीं सदी की लगभग सवा दो फुट ऊँची कायोत्सर्ग मुद्रा में भगवान आदिनाथ की मूर्ति है। उनका चिह्न बैल पादमूल में अंकित है। वहीं यक्ष-यक्षी भी उत्कीर्ण हैं। मूर्ति के अलंकरण के रूप में मकर-तोरण की योजना है। इसमें अन्य मूर्तियाँ भी हैं। इस एक कोष्ठ को भी दो देवकोष्ठ के रूप में विभाजित कर दिया गया है। इसके सामने खुली जगह भी कम है।

दूसरे देवकोष्ठ (बीच) के प्रवेश-द्वार पर नागरी में लिखा है '1008 श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ तीर्थंकर'। इस कोष्ठ के गर्भगृह में मूलनायक पार्श्वनाथ विराजमान हैं। इन्हें नवखंड पार्श्वनाथ (देखें चित्र क्र० 10) कहा जाता है। कहा जाता है कि पार्श्वनाथ की मूर्ति को जमीन से निकालते समय इसके नौ टुकड़े हो गए थे। नवखण्ड पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। उन पर सात फणों की छाया है और छत्रमय हैं। सर्पकुण्डली पीछे तक गई है। मकर-तोरण में फूल-पत्तियों की डिजाइन है। यक्ष-यक्षियों का अंकन नहीं है।

इसी कक्ष में कांस्य की नवदेवता की मूर्ति है। ब्रह्मयक्ष की मूर्ति के अतिरिक्त, संगमरमर की डेढ़ फुट और ढाई फुट की दो पद्मासन मूर्तियाँ भी हैं। कांस्य के ही क्षेत्रपाल के चरण हैं। ब्रह्मदेव की कांस्य प्रतिमा भी तोरणयुक्त है। उनका वाहन अश्व है। लगभग चार फुट ऊँची पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में एक प्रतिमा और है। सप्तफणावली और छत्रत्रय के साथ ही बेलबूटे से युक्त पाँच पंक्तियों का तोरण है। इस प्रतिमा के पैरों के पास चँवरधारी भी अंकित हैं। यह एक बड़ी भव्य एवं आकर्षक प्रतिमा है। लगभग 9 इंच ऊँची पद्मावती की मूर्ति भी इसी कक्ष में है।

दूसरे देवकोष्ठ में जो गर्भगृह है उसके बाहर दो वेदियाँ और हैं जिन पर उपर्युक्त प्रतिमाएँ आदि स्थापित हैं। कोष्ट का प्रवेशद्वार पीतल का है।

तीसरा कोष्ठ ब्रह्मदेव का स्थान है। उनके एक ओर शान्तिनाथ विराजमान हैं। यह प्रतिमा पद्मासन में है। उस पर तीन छत्र हैं। चँवरधारी सिरतक उत्कीर्ण हैं। प्रतिमा के ऊपर कीर्तिमुख भी है। इस पर बेलबूटेदार तोरण है। यह प्रतिमा लगभग दो सौ वर्ष प्राचीन बताई जाती है।

इस कोष्ठ में स्थापित ब्रह्मदेव की मूर्ति बहुत विशाल है। उस पर सिन्दूर पुता है। इस मूर्ति के विषय में यह जनश्रुति है कि किसी समय ब्रह्मदेव विशाल थे। कालान्तर में वे छोटे हो गए, उनके तीन खण्ड हो गए। पहले उन्हें बैठकर देखना पड़ता था इतने विशाल थे वे। उनके कोष्ठ का प्रवेश-द्वार चाँदी का था। बाद में पीतल का बना दिया गया। इस कोष्ठ में एक स्थान ऐसा है जहाँ मनौती के लिए नारियल फोड़ा जाता है।

ब्रह्मदेव सम्बन्धी अतिशय से इस क्षेत्र की जैन-अजैन जनता बड़ी प्रभावित है। कहा जाता है, यदि कोई भावपूर्वक इनके दर्शन करता है तो उसकी मनोकामना दर्शन करने के कुछ ही दिनों बाद पूरी हो जाती है। यहाँ प्रतिदिन जैन-अजैन जनता दर्शन के लिए काफी संख्या में आती है। भक्तजन विशेष रूप से नारियल चढ़ाते हैं। फूल, कपड़ा, सोना, चाँदी आदि भी चढ़ाए जाते हैं।

यहाँ जनवरी (पौष वदी अमावस्या) को मेला लगता है जिसमें जैन-अजैन भारी संख्या में आते हैं।

स्तवनिधि मन्दिर के ऊपर की मंजिल पर एक सहस्रकूट चैत्यालय भी है जो कि भद्रमण्डप कहलाता है। यहाँ एक सर्वतोभद्रिका भी है। इसमें चारों ओर चार तीर्थंकर हैं। एक ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में नेमिनाथ हैं तो दूसरी ओर आदिनाथ, पार्श्वनाथ का भी अंकन है। मूलनायक के रूप में पद्मासन में महावीर स्वामी छत्रत्रय युक्त हैं। सर्वतोभद्रिका प्राचीन बताई जाती है। हर मूर्ति के ऊपर कोणीय शिखर है। देवकुलिका लकड़ी की है।

मन्दिर के तीन ओर पहाड़ी है। सामने जो सीढ़ियाँ दिखाई देती हैं वे क्षेत्रपाल मन्दिर तक जाती हैं।

मन्दिर के तीनों ओर धर्मशाला है। कुल पच्चीस कमरे हैं। बिजली-पानी की व्यवस्था भी है। ऊपर के हर कमरे में स्नानघर की व्यवस्था है किन्तु नीचे नल नहीं है। क्षेत्र की पानी की टंकी में पहाड़ी झरने का पानी निरन्तर आता रहता है जो कि ठण्डा होता है और मीठा है। इस धर्मशाला में ठहरकर यात्री पहाड़ी स्थान की उपयोगिता एवं आनन्द का अनुभव करता है। ठहरने का शुल्क दान के रूप में लिया जाता है।

यदि पूरी बस इस क्षेत्र पर आए तो यात्रियों को ठहराने के लिए भी यहाँ एक बड़ा हाल है। उसमें एक समय में लगभग 200 यात्री ठहर सकते हैं। इस हाल के साथ एक रसोईघर भी है। इसका शुल्क भी दान के रूप में लिया जाता है।

मन्दिर के बाहर नारियल आदि अन्य सामान की छोटी-मोटी दुकानें हैं। कुछ-एक फोटोग्राफर भी यहाँ निवास करते हैं। आवश्यकता का सामान यहाँ उपलब्ध हो जाता है। मन्दिर के

बाहर एक होटल भी है जो आर्डर देने पर भोजन आदि की व्यवस्था कर देता है। आठ-दस जैन परिवार मन्दिर के अहाते में ही निवास करते हैं।

स्तवनिधि क्षेत्र कोल्हापुर के वर्तमान भट्टारक श्री लक्ष्मीसेन जी तथा निपाणी के वर्तमान भट्टारक श्री जिनसेन जी के क्षेत्राधिकार में आता है।

इस क्षेत्र का प्रबन्ध निम्नलिखित द्वारा किया जाता है—

दक्षिण भारत जैन सभा, श्री क्षेत्र कमेटी
पो०—स्तवनिधि-591237
ज़िला—बेलगाँव (कर्नाटक)
टेलिफ़ोन नं० 308/ निपाणी एक्सचेंज

सहस्रफणि पार्श्वनाथ गुरुकुल स्तवनिधि

उपर्युक्त नाम उस गुरुकुल का है जो कि पूना-बंगलोर राजमार्ग पर सड़क के किनारे किन्तु स्तवनिधि से पहले पड़ता है। इसकी स्थापना 1939 में हुई थी।

गुरुकुल में यात्रियों को ठहरने की व्यवस्था भी कर दी जाती है किन्तु गुरुकुल के पास स्थान सीमित है, पहले पूछ लेना चाहिए। यात्रियों के अनुसार गुरुकुल भोजनालय में भोजन का भी प्रबन्ध कर दिया जाता है।

गुरुकुल का 'श्री 1008 सहस्रफणि पार्श्वनाथ मन्दिर' (यह नाम नागरी में लिखा है) मुख्य सड़क के सामने ही दिखाई पड़ता है। इसमें पार्श्वनाथ प्रतिमा पर एक हज़ार फण बनवाने की योजना थी किन्तु बन नहीं सके। उनके स्थान पर छोटे-छोटे सर्प-फण बनाये गये हैं। किन्तु यह प्रतिमा सहस्रफणि कहलाती है। प्रतिमा बादामी रंग की कायोत्सर्ग मुद्रा में है एवं अत्यन्त भव्य है। मन्दिर के सामने मानस्तम्भ भी है। इस मन्दिर का निर्माण 1963 ई. में हुआ था।

मन्दिर के पीछे छात्रावास तथा विद्यालय हैं। यह गुरुकुल बाहुबली विद्यापीठ कुम्भोज बाहुबली द्वारा संचालित एवं नियन्त्रित है। यहाँ एक-दो कमरे का अथितिगृह स्नानघर युक्त है, कुछ और कमरे बन रहे हैं। फ्लश की भी व्यवस्था हो गई है। किन्तु यात्रियों को स्तवनिधि में ही ठहरना चाहिए, क्योंकि यहाँ स्थान की कमी है। गुरुकुल के सामने निपाणी में बसों का टाइम टेबल लगा है। यहाँ रुकनेवाली बसों की भी सूचना उपलब्ध है।

मार्गस्थ पार्श्वनाथ

गुरुकुल के पास बेलगाँव की दिशा में पहाड़ी पर पार्श्वनाथ की संगमरमर की दस फुट ऊँची प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में खुले आकाश के नीचे स्थापित है जो कि सड़क से ही दिखाई देती है।

बेलगाँव

अवस्थिति और मार्ग

बेलगाँव कर्नाटक का एक प्रमुख जिला है और राष्ट्रीय राजमार्ग क्र. 4 पर स्थित है। यह सड़क-मार्ग पूना-बंगलोर रोड कहलाता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, यह प्रमुख जैन तीर्थ स्तवनिधि से लगभग 55 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। राजमार्ग शहर के बीच से होकर गुजरता है। बस-स्टैण्ड पी. बी. रोड पर क़िले के पास है।

बेलगाँव से बंगलोर 502 कि. मी. है। यहाँ से विभिन्न स्थानों के लिए आरामदेह बसें उपलब्ध हैं। बम्बई-बंगलोर रेल-मार्ग पर भी बेलगाँव एक प्रमुख रेलवे स्टेशन है। बम्बई से मिरज तक बड़ी लाइन है और मिरज से बंगलोर तक छोटी लाइन। (मिरज पर यात्री बड़ी लाइन की गाड़ी छोड़कर छोटी लाइन की गाड़ी में बैठकर आगे की यात्रा करते हैं। जिनका रिजर्वेशन होता है उन्हें छोटी लाइन की गाड़ी में अपने आप ही रिजर्वेशन मिल जाता है।) बेलगाँव छोटी लाइन पर स्थित है और रेलमार्ग द्वारा मिरज से 138 कि. मी. दूर है। इस मार्ग पर बम्बई से बंगलोर तक चलने वाली महालक्ष्मी एक्सप्रेस अच्छी गाड़ियों में से एक है। बेलगाँव दक्षिण-मध्य रेलवे के अन्तर्गत आता है। स्टेशन बस स्टैण्ड से 2 कि. मी. दूर है।

बेलगाँव में हवाई अड्डा भी है। यह बेलगाँव-बागलकोट मार्ग पर शहर से लगभग 12 कि. मी. की दूरी पर साम्ब्रा (Sambra) नामक स्थान पर अवस्थित है। यह पुस्तक लिखते समय, इंडियन एयर लाइन्स की एक दैनिक उड़ान बम्बई से बेलगाँव के लिए सीधी है। यह सेवा सुबह के समय की है और करीब सवा घण्टे की होती है।

मराठी भाषी इस स्थान को 'बेलगाँव' कहते हैं जबकि कन्नड़भाषी 'बेलगाम' बोलते हैं। अंग्रेजी में 'Belgaum' है।

बेलगाँव का प्राचीन नाम वेणुग्राम या वेणुपुर है। इसका अर्थ होता है—वह स्थान जहाँ वेणु (बाँस) अधिक होते हों। संभव है किसी समय यहाँ बाँसों की अधिकता हो (अब नहीं है)।

यहाँ हल कन्नड़ (पुरानी कन्नड़) में 1205 ई० का एक शिलालेख है जिसमें इस स्थान का नाम बलगाम्बे और वेगिग्राम भी दिया गया है। इस लेख में राष्ट्रकूट (रट्ट) राजाओं की वंशाबली दी गई है और जैन मन्दिर के लिए दान का उल्लेख है। उस समय यहाँ कार्तवीर्य देव का शासन था। (यह पहले भी उल्लेख किया जा चुका है कि कर्नाटक में शिलालेख को शासन कहा जाता रहा है।)

बेलगाँव बारह किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है और एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है।

न केवल बीती शताब्दियों में या मध्य युग में, अपितु आज भी यह स्थान जैनों का बहुत बड़ा केन्द्र है। आज भी इसे जैनों का गढ़ कहा जा सकता है। आज भी यहाँ लगभग 3000 जैन परिवार निवास करते हैं। अलरवाड, बस्तवाड और अनगोल जैसे गाँव पूरे के पूरे जैन हैं। भजगाँव में केवल एक जैन परिवार है किन्तु उसने भी एक नया मन्दिर बनवाया है। यहाँ के जैन चतुर्थ जैन और पंचम जैन के रूप में बँटे हुए हैं। चतुर्थ जैन खेती करते हैं और पंचम जैन व्यापार करते हैं।

दर्शनीय स्थल—कमल बसदि (नेमिनाथ जिनालय)

यदि कोई यह पूछे कि बेलगाँव में देखने लायक एक ही कौन-सी चीज है तो बहुत स्पष्ट उत्तर होगा—नेमिनाथ जिनालय। इस उत्तर का खण्डन जिनभक्त तो शायद करेगा ही नहीं, कोई भी पुरातत्त्वविद् (आर्कियालॉजिस्ट) या कलाप्रेमी भी नहीं करेगा। दसवीं सदी में निर्मित यह मन्दिर भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में है किन्तु इसमें आज भी पूजन होती है। यहाँ 15 जैन मन्दिर और हैं जिनका यथास्थान आगे परिचय दिया जायेगा।

बेलगाँव में एक क़िला है जोकि लगभग सौ एकड़ में फैला हुआ है। यह क़िला बस-स्टैण्ड के पास है। इसकी पश्चिम और उत्तर दिशा में दो दरवाज़े हैं। उत्तर दिशा का दरवाजा मुख्य दरवाज़ा है। इस क़िले में सेना की छावनी भी है। और यहीं है 'कमल बसदि' और 'चिक्क बसदि' नामक दो जैन मन्दिर। क़िले के क्षेत्र में भी कुछ जैन परिवारों का निवास है।

जनश्रुति है कि बेलगाँव के क़िले के निर्माण में 108 जैन मन्दिरों की सामग्री लगी है। शायद हम इस पर कम विश्वास करते किन्तु क़िले की दीवारें आज भी इसका प्रमाण दे रही हैं। आइए, हम एक-दो प्रमाण तो ढूँढ़ ही लें।

क़िले में प्रवेश के लिए हम पूना-बंगलोर राजमार्ग से एस. पी. थोरात गेट की ओर जब बढ़ते हैं तो अपनी दाहिनी ओर डॉ. चौगुले भरतेश हाईस्कूल का भवन देखते हैं। वहीं 'भरतेश पॉलिटेकनिक' और 'भरतेश होम्योपैथिक कॉलेज' भी हैं। हाईस्कूल की नींव खोदते समय भी एक कायोत्सर्ग तीर्थंकर प्रतिमा निकली थी। इस हाईस्कूल और क़िले की दीवार के बीच में खाई है। स्कूल के पास खाई के किनारे खड़े होकर थोरात गेट के दाहिनी ओर दीवाल में बने गोल स्तम्भ की ओर यदि हम दृष्टि डालें तो उस स्तम्भ में नीचे की ओर गोल आकार में एक पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा जड़ी हुई दिखाई देगी। प्रतिमा पर तीन छत्र हैं। ऊपर एक शिखर है और पत्रावली है। अब इस स्थान से लगभग 15-20 फुट आगे दीवाल के ऊपरी हिस्से पर निगाह डालें तो अनेक जैन मूर्तियाँ क़िले की दीवाल में जड़ी हुई पायेंगे। इनमें से कुछ बेलों से ढँक भी गई हैं। लेखक पूरी दीवाल या पूरे क़िले का सर्वेक्षण नहीं कर सका। अब सीधे कमल बसदि (देखें चित्र क्र. 11) की ओर, क़िले के अन्दर।

कमल बसदि की प्रसिद्धि का कारण है—मन्दिर के मण्डप की लगभग 30 फुट×20 फुट गोलाकार छत की मंजरी में 'एक ही कमल' और नीचे की ओर आती उसकी पंखुड़ियों की अत्यन्त कलात्मक शृंखला। इस प्रकार के कमल आबू आदि के जैन मन्दिरों में (अर्थात् राजस्थान और गुजरात में भी कहीं-कहीं) देखने को मिलते हैं। इस कमल की 72 पंखुड़ियों में एक-एक तीर्थंकर का अंकन है अर्थात् भूतकाल के 24, वर्तमान के 24 और भविष्यकाल के 24, इस प्रकार तीन चौबीसियों का मनमोहक उत्कीर्णन किया गया है। इस फूल में या छत में एक-दूसरे से छोटे होते गए चार घेरे हैं। बीच में कमल के चार फूल लटके हैं जो कि पाषाण के हैं। ये फूल भी एक-दूसरे से छोटे होते चले गये हैं। तीर्थंकरों के अतिरिक्त आठ दिक्पाल भी उत्कीर्ण हैं किन्तु दो दिक्पाल अब नहीं हैं। इस कमल को जितनी देर देखते रहें उतनी देर ऐसा लगता है कि हम कल्पना-लोक में हैं। यह कमल पूरे कर्नाटक में प्रथम स्थान रखता है, यह कहा जा सकता है। उपर्युक्त खुले मण्डप में पाषाण के 14 स्तम्भ हैं। इन स्तम्भों और शहतीरों (बीम्स) पर

सुन्दर नक्काशी है। आज भी इन स्तम्भों में से कुछ स्तम्भों की पालिश दर्शक को आश्चर्य में डाल देती है। अर्चक ऐसे स्तम्भ बता सकता है जिनकी चमकदार पालिश में यदि अपने हाथों की प्रतिच्छाया देखें तो स्तम्भों में आपको अपने हाथ—दो नीचे और दो ऊपर दिखाई देंगे। इसके अतिरिक्त कुछ स्तम्भों में से उसी तरह की ध्वनि उन पर हाथ से टिकटिक करने पर निकलती है जैसी धातु के बने किसी पात्र आदि को बजाने पर निकलती है। ध्यान रहे, ये स्तम्भ मण्डप के बीच में नहीं हैं बल्कि उसके घेरे की परिधि में हैं। इनकी काली पालिश ऐसी लगती है जैसे वह कुछ दिनों पूर्व ही की गई हो। कुछ लोगों का यह भी कथन है कि यह मन्दिर 1400 वर्ष पुराना है। जो भी हो, कला के इतिहास में अपने कमल के कारण यह मन्दिर अपना विशेष स्थान रखता है। इसके मण्डप के वातायन (खिड़कियाँ) जालीदार हैं और आकर्षक हैं। ये बारहवीं सदी के आस-पास के जान पड़ते हैं। इस रचना को ध्यान से देखना चाहिए। पूरे कमल का फोटो लेना कठिन काम है।

उपर्युक्त कमल बसदि के प्रवेश-द्वार के निचले मध्य भाग में एक नर्तक दल का अंकन है। गर्भगृह के सामने के चार स्तम्भों पर भी सूक्ष्म नक्काशी है।

मन्दिर के मूलनायक नेमिनाथ हैं। बताया जाता है कि उनकी यह प्रतिमा लगभग 200 वर्ष पूर्व जंगल में मिली थी। नेमिनाथ अर्धपद्मासन में हैं। उनके पीछे बड़ा गोल भामण्डल अंकित है। यह अलंकरणहीन है, मकरतोरण और छत्रत्रय युक्त है। मूर्ति का लांछन शंख भी उत्कीर्ण है। भगवान नेमिनाथ का सिंहासन दो हाथियों के ऊपर निर्मित है। कल्पवृक्ष और कैवल्यवृक्ष भी अंकित हैं। प्रतिमा ग्यारहवीं सदी की जान पड़ती है और लगभग 7 फुट ऊँची है।

'कमल बसदि' के गर्भगृह में बायीं ओर सुमतिनाथ की प्रतिमा है। उन पर एक ही छत्र है और उनके यक्ष-यक्षी घुटनों तक (प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है) उत्कीर्ण किये गए हैं। प्रतिमा मकर-तोरणयुक्त है, और उस पर कीर्तिमुख भी है।

तीर्थंकर आदिनाथ सहित जो कि पद्मासन में हैं, एक अत्यन्त आकर्षक चौबीसी भी यहाँ है। मूलनायक पर छत्रत्रय हैं। वे उच्चासन पर विराजमान हैं। दोनों ओर चँवरधारी हैं और यक्ष-यक्षी घुटनों तक यानी लघु आकृति में उत्कीर्ण हैं। शेष तीर्थंकर पद्मासन में हैं और एक-एक वर्तुल में अंकित हैं।

ग्यारहवीं सदी की लगभग 3 फुट ऊँची एक पार्श्वनाथ प्रतिमा भी इस मन्दिर में है जिस पर छत्रत्रय और सप्त फणावलि है। वे उलटे कमलासन पर विराजमान हैं। आसन ऊँचा है उसमें कुछ दरारें हैं और उसकी मरम्मत की गई है। घुटनों तक यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं।

इस मन्दिर में नवग्रह प्रतिमा (चित्र क्र. 12) दर्शनीय है। यह पाषाण की है और पान की आकृति में लगभग दस इंच की है। यह अठारहवीं सदी की जान पड़ती है।

बसदि का शिखर छोटा एवं कटनीदार है। गर्भगृह के सामने का कोष्ठ खाली है (आम तौर पर उसमें भी प्रतिमाएँ होती हैं।)

मन्दिर की पत्थर की जालियों एवं स्तम्भों के अतिरिक्त उसकी निम्नलिखित तीन विशेषताएँ दर्शक को अपनी ओर विशेष रूप से आकर्षित करती हैं—

1. विशाल एवं कलात्मक मण्डप की छत में उत्कीर्ण कमल का फूल, जिसकी 72 पंखुड़ियों

में तीन चौबीसी तथा दिक्पाल अंकित हैं। यह राजस्थान की कला से होड़ करता है।

2. पाषाण की पान की आकृति में नवग्रह-प्रतिमा।

3. सुन्दर कल्पवृक्ष युक्त भगवान नेमिनाथ का सिंहासन।

बेलगाँव के क़िले में कमल बसदि के अतिरिक्त एक और मन्दिर है जो कि भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के संरक्षण में है। इसका नाम 'चिक्क बसदि' है। कमल बसदि के पास में ही यह स्थित है। इसमें पूजन-प्रक्षाल नहीं होता। इसमें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की दशवीं सदी की प्रतिमा तथा ग्यारहवीं सदी की पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ एवं चौबीसी हैं। यह मन्दिर भी प्राचीन है। इसमें प्रवेश के लिए जो सीढ़ियाँ बनी हैं उनके दोनों ओर नर्तक-दल का सुन्दर एवं सजीव उत्कीर्णन है। मन्दिर के प्रवेशद्वार पर बहुत सूक्ष्म नक्काशी की गई है। सिरदल के ऊपर यक्ष-यक्षी का अंकन है। इसके सुन्दर स्तम्भ नीचे गोल और ऊपर की ओर चौकोर होते चले गए हैं। मन्दिर के ऊपरी भाग में मुंडेर पर पद्मासन में तीर्थंकर प्रतिमाएँ उकेरी गई हैं।

क़िले का कुछ भाग सेना के कब्जे में है। उपर्युक्त क़िले में एक और मन्दिर ध्वस्त अवस्था में दरगा के पास है। उसे भी देख लेना चाहिए। उसकी निर्माण-शैली से यह सन्देह होता है कि यह भी शायद किसी समय जैन मन्दिर रहा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह मन्दिर उपेक्षित है अर्थात् न इसमें पूजन होती है और न ही पुरातत्त्व विभाग (शायद) इसकी देखभाल करता है। जो भी हो, इसके सम्बन्ध में अनुसन्धान की आवश्यकता है। इस मन्दिर के प्रवेशद्वार के पास पत्थर की जाली है और अप्सराओं का अंकन है। यहाँ आठ देव-कुलिकाएँ हैं। उनमें कोई-न-कोई प्रतिमा अवश्य रही होगी। ये देवकुलिकाएँ मन्दिर में चारों ओर हैं। इसके अन्दरूनी भाग में चार विशाल पाषाण-स्तम्भ हैं, जिन पर सूक्ष्म नक्काशी की गई है। इसकी छत में शायद कमल का फूल उत्कीर्ण था। इसके वलयाकार भाग में मालाओं और शृंखलाओं का उत्कीर्णन भी मन को मोह लेता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि बेलगाँव कर्नाटक में जैनों का गढ़ है। बेलगाँव नगर-निगम के क्षेत्र में ही 15 दिगम्बर जैन मन्दिर हैं जिनमें आज भी पूजन होती है। क़िले के एक मन्दिर 'कमल बसदि' का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। अन्य मन्दिरों (कुछ प्राचीन भी हैं) में से कुछ का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाएगा। यदि समय हो तो इन्हें भी देख लेना चाहिए। एक दो मन्दिरों के सम्बन्ध में अतिशय की भी जनश्रुति है। नगर निगम के क्षेत्र के बाहर गाँवों के मन्दिर इस संख्या में शामिल नहीं हैं।

बेलगाँव में अनेक जैन संस्थाएँ भी हैं जिनका परिचय भी संकेत रूप में दिया जाएगा।

शहर के जैन मन्दिर

शहर के जैन मन्दिरों के लिए यह अधिक उपयुक्त होगा कि किसी स्थान को एक केन्द्र मान लिया जाए और वहाँ से प्रारम्भ करके क्रम से मन्दिरों की यात्रा की जाए। ये सभी मन्दिर 10 कि० मी० के घेरे में हैं।

पूना-बंगलोर रोड, जो बेलगाँव शहर के अन्दर से गुजरता है, या जिसे इस शहर में धार-वाड़ जाने वाली सड़क कहते हैं, पर स्थित है माणिकबाग दिगम्बर जैन बोर्डिंग। यह क़िले

1. बीदर—पार्श्वनाथ बसदि : चौबीसी में तीर्थंकर आदिनाथ; लगभग दसवीं शती ।

2. कमठान—पार्श्वनाथ बसदि : अर्ध पद्मासन मुद्रा में तीर्थंकर पार्श्वनाथ; लगभग ग्यारहवीं शती।

3. बसव कल्याण—संग्रहालय : एक तीर्थंकर मूर्ति का मस्तक; लगभग ग्यारहवीं शती।

4. बसव कल्याण—संग्रहालय : नाग-युगल; ग्यारहवीं शती ।

5. गुलबर्गा—संग्रहालय : जटाधारी पार्श्वनाथ; लगभग दसवीं शती ।

6. मलखेड—नेमिनाथ बसदि : मन्दिर की लघु आकृति, कांस्य निर्मित; ग्यारहवीं शती।

7. जेवर्गी—शान्तिनाथ बसदि : यक्षी पद्मावती की कांस्य मूर्ति; लगभग चौदहवीं शती।

8. बीजापुर—सहस्रफण पार्श्वनाथ बसदि : पार्श्वनाथ की प्रसिद्ध मूर्ति; लगभग चौदहवीं शती ।

9. बीजापुर—पुरातत्त्व संग्रहालय : तीर्थंकर पार्श्वनाथ, फणावली के कारण उल्लेखनीय; अभिलिखित संवत् 1232

10. स्तवनिधि—पंचकूट बसदि : नवखंड पार्श्वनाथ; लगभग दसवीं शती ।

11. बेलगाँव—कमल बसदि : बाह्य दृश्य; लगभग दसवीं शती।

12. बेलगाँव—कमल बसदि : नवग्रह-प्रतिमा का पाषाणपट्ट, अठारहवीं शती।

13. रायबाग—आदिनाथ बसदि : तीर्थंकर आदिनाथ; लगभग ग्यारहवीं शती।

से लगभग एक कि० मी० की दूरी पर और बस स्टैण्ड के पास (लगभग इतनी ही दूरी पर) स्थित है। स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द्र द्वारा चार एकड़ जमीन खरीदकर दान की गई थी, इसी कारण यह स्थान माणिकबाग कहलाता है। इस बोर्डिंग हाउस में लगभग तीन सौ छात्र रहते हैं। इसका प्रबन्ध एक समिति करती है। इसका अहाता बड़ा है। बोर्डिंग हाउस में एक छोटा किन्तु सुन्दर मन्दिर है जिसके मूलनायक चन्द्रप्रभ हैं। यह मूर्ति संगमरमर की है। इसमें कांस्य की चौबीसी, नवदेवता, पंचपरमेष्ठी, ज्वालामालिनी और पद्मावती तथा नन्दीश्वर भी हैं। मन्दिर के पीछे दो-तीन कमरों का अतिथि-गृह है जिसमें अनुमति मिलने पर ठहरने दिया जाता है। ये कमरे फर्निश्ड नहीं हैं। बोर्डिंग में एक भोजनालय है जिसे एक जैन परिवार चलाता है। यात्री वहाँ शुद्ध भोजन पा सकते हैं। शहर में भी एक धर्मशाला का निर्माण हो रहा है।

यदि यात्री-बस या कार में खराबी हो जाए तो बोर्डिंग हाउस के सामने ही मूल रूप से गुजराती जैन परवार की एक बड़ी वर्कशाप है जो एक फैक्टरी लगती है और उसमें 50-60 गाड़ियाँ हमेशा मरम्मत के लिए खड़ी रहती हैं।

शहर के अन्य मुख्य मन्दिरों का संक्षिप्त परिचय (अतिशय, प्राचीनता आदि सहित) इस प्रकार है—

पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर—बोर्डिंग हाउस से पूना-बंगलोर रोड पर बस स्टैण्ड है। उसी के पास शेट्टी गली में यह पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर है। यह है तो प्राचीन मन्दिर ही, किन्तु 1958 में इसका जीर्णोद्धार हुआ है। यहाँ पद्मासन में पार्श्वनाथ की एक संगमरमर की मूर्ति है। कांस्य की एक चौबीसी और पीतल की नवदेवता की प्रतिमा भी है। पद्मावती देवी की एक मूर्ति अलग से है। मन्दिर के सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा है, जिसके दोनों ओर एक-एक हाथी माला लिये हुए हैं। इसके प्रवेश-द्वार पर सुन्दर नक्काशी है। दरवाजे की देहलीज पर भी कमल का फूल अंकित है।

चिक्क बसदि—क़िले के थोरात गेट से फोर्ट रोड नामक सड़क से 'मठ गली' के लिए रास्ता जाता है। इस गली में जैनों की काफी अधिक संख्या है। यहाँ भी एक पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर है जो कि 'चिक्क बसदि' भी कहलाता है। यह मन्दिर भी प्राचीन है और इसका जीर्णोद्धार हुआ है। मन्दिर के सामने एक बहुत प्राचीन मानस्तम्भ है। इस पर चारों ओर कायोत्सर्ग तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। उसी के ऊपर चारों दिशाओं में सर्प का भी उत्कीर्णन है जो कि कुछ असामान्य जान पड़ता है। इस मन्दिर का शिखर छोटा और शंकु आकार का है। बेलगांव में जब भी किसी मुनि का आगमन होता है तब उन्हें इसी मन्दिर के अहाते में ठहराया जाता है। यहीं मुनि-निवास है। वर्तमान में यहाँ यात्रियों को खुले बरामदे में ठहराया जाता है। विशिष्ट व्यक्तियों के लिए दो-तीन कमरे भी हैं।

चिक्क बसदि में इस समय नवीन धर्मशाला का निर्माण किया जा रहा है। उसके हॉल में 500 तक यात्री ठहर सकेंगे ऐसी आशा है। कुछ कमरे भी बनाए जायेंगे। यहाँ पानी-बिजली चौबीसों घण्टे उपलब्ध है। यात्रियों को बर्तन भी मिल सकेंगे। धर्मशाला दो-मंजिली होगी। विवाह आदि कार्यों के लिए यहाँ मंगल-मण्डप की भी व्यवस्था है। उसके ऊपर भी कमरों का निर्माण-कार्य जारी है। इस प्रकार चिक्क बसदि की यह धर्मशाला यात्रियों के लिए ठहरने का

एक उपयुक्त स्थान हो सकेगी।

गुरुबसदि या दोड्डबसदि (नेमिनाथ देवस्थान)—मठ गली से अनन्तशयन गली (बाजार का इलाका), वहाँ से तिलक चौक होकर बसवान गली है। यहीं स्थित है उपरिलिखित देवस्थान या मन्दिर जो कि दो हजार वर्ष पुराना बताया जाता है। इसका जीर्णोद्धार 1845 ई० में हुआ था। इसमें काले पाषाण की भगवान नेमिनाथ की मुख्य प्रतिमा है। ब्रह्मदेव और पद्मावती की प्रतिमाएँ भी हैं। गर्भगृह और उसके अगले कोष्ठ के बाद, एक बड़ा हॉल है। मन्दिर पर शिखर नहीं है। उसकी छत ऊँची है। मन्दिर के सामने एक प्राचीन मानस्तम्भ है। उसके चारों ओर पद्मासन में तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। ऊपर भी तीर्थंकर विराजमान हैं। इसके एक ओर ब्रह्मदेव हैं तो दूसरी ओर पद्मावती। मन्दिर में एक प्राचीन बावड़ी भी है। मन्दिर में खुला क्षेत्र भी काफी है। उसके आसपास अर्चक (पुजारी) रहते हैं। अहाते की दीवार लाल पत्थर की ईंटों की बनी हुई है।

शेरी गली में चन्द्रप्रभ मन्दिर है। वहाँ पहुँचने के लिए पर्यटक को दोड्ड बसदि से रामलिंग गली, तिलक चौक होते हुए शेरी गली में पहुँचना चाहिए। यहीं पर यह मन्दिर स्थित है। बताया जाता है कि यह मन्दिर भी प्राचीन है किन्तु उसका नवीनीकरण किया गया है। यह बात इस जिनालय पर किए गए रंग-रोगन से भी स्पष्ट हो जाती है। इसके गर्भगृह के मूलनायक चन्द्रप्रभ हैं। प्रतिमा काले पाषाण की है। इसी में हैं चौबीसी और अरिहन्त प्रतिमाएँ। गर्भगृह से बाहर के कोष्ठ में पीतल का धर्मचक्र, जैनध्वज तथा त्रिछत्र ध्वज भी हैं। इस कोष्ठ से बाहर यक्ष-यक्षी की प्रतिमाएँ हैं। इसका अहाता छोटा है। यह मन्दिर 'टोनान बसदि' भी कहलाता है।

उपर्युक्त सभी मन्दिर पुराने शहर की सीमा में हैं।

टिलकवाड़ी का मन्दिर—पूना-बंगलोर रोड से उपर्युक्त मन्दिरों की यात्रा कर शेरी गली से शनि मन्दिर रोड पर आकर निम्नलिखित मार्गों को पार करते हुए टिलकवाड़ी पहुँचना चाहिए—शनि मन्दिर रोड, पाटिल गली, स्टेशन रोड, (छावनी सीमा) रेलवे स्टेशन, पॉवर हाउस रोड, पुल के नीचे से गोआ रोड, टिलकवाड़ी रेलवे क्रॉसिंग, सोमवार पेठ के बाद टिलकवाड़ी। धनिक एवं शिक्षित वर्ग की इस नयी तथा साफ-सुथरी कालोनी में श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, टिलकवाड़ी पुलिस स्टेशन के पास है। यह भी है तो प्राचीन किन्तु इसका जीर्णोद्धार इस प्रकार हुआ है कि यह बिलकुल नवीन लगता है। इस पर शिखर नहीं है। इसके प्रवेशद्वार पर, जो कि लकड़ी का है, बहुत सुन्दर नक्काशी है। इसके गर्भगृह में लगभग चार फुट ऊँची पार्श्वनाथ की प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में उच्च आसन पर प्रस्थापित है। उस पर सात फणों की छाया है और वह मकर-तोरण तथा कीर्तिमुख से अलंकृत है। पार्श्वनाथ मूर्ति के यक्ष-यक्षी का उत्कीर्णन उसके घुटनों तक हुआ है। यहाँ धातु की चौबीसी और नवदेवता प्रतिमाएँ भी हैं। मन्दिर के आलों में पद्मावती और ज्वालामालिनी की मूर्तियाँ भी हैं। मन्दिर का मण्डप काफी बड़ा है।

गोमटेश नगर (गोम्मट नगर या कन्नड नाम हिंदवाडी) का जैन मन्दिर—गोमटेश नगर एक ऐसी कालोनी है जो कि एक पहाड़ी पर बनी हुई है। यहाँ भी धनिक या उच्च वर्ग का

निवास है। यहाँ एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। यह बसदि भी बहुत पुरानी एवं छोटी-सी है किन्तु उसका कुछ विस्तार किया गया है। यह मन्दिर मुश्किल से 20 फुट चौड़ा और 20 फुट लम्बा जान पड़ता है। उसके आसपास खुली जगह है। मन्दिर पत्थर का बना हुआ है और उस पर शिखर नहीं है। इस मन्दिर के साथ एक जनश्रुति जुड़ी हुई है जो कि बेलगाँव के नाम की सार्थकता बताती है और यह संकेत देती है कि बेलगाँव में 108 जैन मन्दिर क्यों थे। कहा जाता है कि छोटी-सी पहाड़ी पर स्थित इस छोटे-से मन्दिर के आसपास बाँसों का घना जंगल था। इसी कारण यह नगर वेणुग्राम (आगे चलकर बेलगाँव) कहलाता था। यहाँ 108 स्वामी थे। वे सब-के-सब यहाँ दावानल में भस्म हो गए। उनके साथ ही 108 मन्दिर भी नष्ट हो गए। यहाँ के राजा ने जब यह समाचार जाना तो उसे बड़ा दुःख हुआ। इसलिए उसने प्रायश्चित के रूप में क़िले के क्षेत्र में 108 जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था।

शाहपुर (कोरेगली)—गोमटेशनगर से कोरेगली जा सकते हैं। यहाँ भी एक प्राचीन मन्दिर है जोकि बड़ा है। उसका जीर्णोद्धार वीर निर्वाण संवत् 2452 में हुआ था। इसके गर्भगृह में संगमरमर की लगभग 3 फुट ऊँची पार्श्वनाथ की पद्मासन प्रतिमा है जिस पर सात फणों की छाया है। यहाँ चौबीसी एवं नन्दीश्वर हैं। चन्द्रप्रभ की काले पाषाण की भी लगभग चार फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। संगमरमर की कायोत्सर्ग पार्श्व-मूर्ति भी है जिस पर छत्रत्रय है। बाहर पद्मावती एवं ज्वालामालिनी भी विराजमान हैं। इसका हॉल बड़ा है। उसमें पाषाण के स्तम्भ हैं। मन्दिर के सिरदल पर पद्मासन में तीर्थंकर प्रतिमा उत्कीर्ण है। मन्दिर के सामने सुन्दर नक्काशीदार मानस्तम्भ भी है।

उपर्युक्त मन्दिर के ही सामने एक साधारण-सा दिखनेवाला मकान (क्रमांक 1993) है। इसके भीतर भी एक प्राचीन अतिशययुक्त मन्दिर है जिसका नाम है 'पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर' कोरेगली, शाहपुर। यह मन्दिर पाषाण निर्मित है। इस पर न तो शिखर है और न ही सामने कोई मानस्तम्भ। किन्तु इस मन्दिर में सुन्दर, सातिशय मूर्तियाँ हैं। इसके गर्भगृह में लगभग तीन फुट ऊँची सप्त फणावलियुक्त एवं कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ की मूर्ति है। मूर्ति मकरतोरण युक्त है। यहीं श्रुतस्कन्ध और कांस्य की एक चौबीसी है जो कि 'उत्सवमूर्ति' कहलाती है। इसके मूलनायक कायोत्सर्ग मुद्रा में भगवान् महावीर हैं। उनके आसपास चाप के आकार में अन्य तेईस तीर्थंकरों की पद्मासन मुद्रा में छोटी-छोटी मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। यह चौबीसी भी मकरतोरण युक्त है। उसका अलंकरण आकर्षक व मोहक है और उस पर चँवर-धारी तथा यक्ष-यक्षी भी उत्कीर्ण हैं। संगमरमर के बाहुबली तथा कांस्य के आदिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। एक त्रिमूर्ति या रत्नत्रय मूर्ति भी यहाँ है। सर्वाह्न यक्ष तथा पद्मावती एवं ज्वालामालिनी की प्रतिमाएँ भी यहाँ हैं। कांस्य की एक और चौबीसी भी यहाँ है।

अतिशय—इस मन्दिर की पार्श्वनाथ की मूर्ति लगभग 450 वर्ष पूर्व दांडेलि जंगल के एक कुएँ में से प्राप्त हुई थी। अनेक लोगों का अनुभव है कि जो व्यक्ति भक्ति-भाव से इस मूर्ति की पूजा करता है उसे अपने सामने ऐसा दिखाई पड़ता है मानो भगवान् की आँखों से पानी झर रहा है। यदि उस व्यक्ति के अच्छे दिन हैं या आनेवाले हैं तो मूर्ति के मुख पर हल्की-सी मुस्कान दिखाई पड़ती है। यदि उस पर कोई संकट आनेवाला हो, तो उसकी दृष्टि में मूर्ति की मुद्रा

गम्भीर हो जाती है। यह मूर्ति स्वप्न में भी दिखाई देती है।

मन्दिर के बाहर क्षेत्रपाल है और एक प्राचीन कुआँ है।

एक और जनश्रुति इस मन्दिर के लकी वृक्ष के सम्बन्ध में है। ऐसा कहा जाता है कि अगर किसी के घर में कोई भुजंग (सर्प) आ जाए और यदि वह व्यक्ति उस समय तत्काल मन्दिर में आकर भगवान को नमस्कार करे और पद्मावती देवी से सम्बन्धित लकी वृक्ष की एक पत्ती लेकर अपने मकान में सामनेवाले भाग से प्रवेश करे तो घर के पिछवाड़े से सर्प बाहर चला जाता है।

इस स्थान से महाद्वार रोड होते हुए पुनः पूना-बंगलोर रोड पर पहुँचा जा सकता है।

उपर्युक्त भ्रमण-क्रम में हमने कमल बसदि को छोड़कर प्रमुख आठ मन्दिरों की यात्रा की। अब सभी 15 मन्दिरों के स्थान संक्षेप में इस प्रकार हैं—(1) क़िले में कमल बसदि, (2) शेट्टी गली में, (3) बसवान गली में, (4) शेरी गली में, (5) चिक्क बसदि, (6) हसूर में, (7) शाहपुर में, (8) टिलकवाड़ी में, (9) गोम्मटनगर में, (10) माणिकबाग बोर्डिंग में, (11) कुड्यी (बागलकोट रोड पर) में, (12) हलगा में, (13-14) अनगोल में दो मन्दिर और (15) गोआ रोड पर मजगाँव में। आसपास के गाँवों में भी जैन मन्दिर हैं। बेलगाँव से लगभग 30 कि० मी० की दूरी पर इब्राहिमपुर नामक गाँव, तालुक चन्द्रगढ़ (महाराष्ट्र), में भी बहुत-सी प्राचीन जैन मूर्तियाँ मिली हैं।

संस्थाएँ

बेलगाँव में दिगम्बर जैन संघ भी है। यहाँ जैनों द्वारा अनेक संस्थाओं का संचालन किया जाता है। बेलगाँव जनता शिक्षण समिति, बेलगाँव (पिन-590016) निम्नलिखित संस्थाएँ चलाती है—1. भरतेश होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेज, 2. भरतेश पॉलिटेकनिक, 3. भरतेश इंडस्ट्रियल ट्रेनिंग इन्स्टिट्यूट, 4. डॉ. चौगुले भरतेश हाईस्कूल, 5. इसी नाम का एक हाईस्कूल कुडत्ती गाँव में, 6. श्री जे. आर. डोड्डनवार हाईस्कूल, हलगु, 7. भरतेश इंग्लिश मीडियम स्कूल, 8. श्रीमती माणिकबाई शारदा शिशु विहार और 9. भरतेश इंग्लिश मीडियम के० जी०।

एक अन्य संस्था गोमटेश विद्यापीठ, गोमटगिरि बेलगाँव है। इसकी स्थापना मुनि भद्रबाहु ने की थी। इसके अन्तर्गत (1) गोमटेश पोलिटेकनिक, (2) गोमटेश हाईस्कूल और (3) गोमटेश इंग्लिश मीडियम स्कूल चलते हैं।

माणिकबाग दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउस, पूना-बंगलोर रोड, 590016 (टेलिफ़ोन नं. 22372) की चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

ज्वालामालिनी श्राविकाश्रम, शाहपुर, बेलगाँव एक ऐसी संस्था है जिसमें चालीस छात्राओं के आवास की व्यवस्था है।

मौसम

बेलगाँव को ग़रीबों का शिमला कहा जाता है। यहाँ जून से फरवरी तक रातें ठण्डी होती हैं। जून, जुलाई और अगस्त में वर्षा भी खूब होती है।

अपनी व्यापारिक गतिविधियों के कारण बेलगाँव को 'बम्बई का बच्चा' भी कहा जाता है।

यहाँ हिन्दी, मराठी और कन्नड बोली तथा समझी जाती है।

बेलगाँव जिले के अन्य जैन स्थल

बेलगाँव ज़िले के अन्य स्थानों में भी जैन धर्म की प्रभावना है। ये हैं—अम्मनगी (Ammanagi, हुक्केरी तालुक) में पार्श्व बसदि—दसवीं-ग्यारहवीं सदी, देगाँव (बेलगाँव ज़िला), कदकलत (Kadaklat, हुक्केरी तालुक) में पार्श्व बसदि, कागवाड़ (Kagvad, अथानी तालुक) में महावीर बसदि, कल्लुहोले (Kalluhole, बेलगाँव ज़िला) में शिलालेख, खानापुर (Khanapur, इसी नाम का तालुक—परिचय गोआ के मार्ग में दिया जाएगा), कोण्णूरु (Konnur, गोकाक तालुक) में शिलालेख, नेरलिगे (Neralige, बेलगाँव ज़िला—यहाँ का वीरभद्र मन्दिर पहले जैन मन्दिर था) में शिलालेख, पलासिके (Palasike, खानापुर तालुक) में शिलालेख, रायबाग (Raybag, अथानी तालुक) में गुड्ड बसदि एवं आदिनाथ बसदि। (देखें चित्र क्र. 3), संकेश्वर (Sankheshwar, चिकोडी तालुक) में पार्श्वनाथ बसदि, सौदत्ति (Saudatti, इसी नाम का तालुक) के क़िले में महावीर बसदि, यादवाड (Yadvad, गोकाक तालुक) में पार्श्व बसदि तथा यमकनमर्दी (Yamakanmardi, बेलगाँव तालुक) में पार्श्वनाथ बसदि।

बेलगाँव से प्रस्थान—कुछ लोग यहाँ से रेल या सड़क-मार्ग द्वारा गोआ (उसकी राजधानी पणजी) जाते हैं।

विशेष सूचना

उत्तर भारत से पर्यटन बस ले जाने वाले अक्सर लोगों को बेलगाँव की 'कमल बसदि' भी नहीं दिखाते हैं और बेलगाँव या पणजी से पर्यटकों को धारवाड़, हुबली होते हुए 'जोग-प्रपात' (फाल्स) ले जाते हैं। किन्तु यह ठीक नहीं है। धारवाड़, हुबली पास में ज़रूर हैं किन्तु इनकी यात्रा बाद में करनी चाहिए। ऐसे पर्यटक दो-तीन ऐसे स्थानों से वंचित रह जाते हैं जो इतिहास, कला और स्थापत्य में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। ये हैं (1) ऐहोल, पट्टदकल और बादामी के मन्दिर तथा गुफाएँ, (2) लक्कुण्डी का जिनालय एवं संग्रहालय तथा (3) हम्पी—विश्व इतिहास में प्रसिद्ध विजयनगर साम्राज्य की राजधानी जिसकी कला आदि के खण्डहर तुंगभद्रा नदी के किनारे-किनारे 26 कि. मी. क्षेत्र में फैले हुए हैं। इनमें जैन स्मारक भी हैं। इस क्षेत्र का पहले पर्यटन किलोमीटर की दृष्टि से भी ठीक बैठता है। अतः गोआ-भ्रमण के बाद पुनः बेलगाँव आकर इन स्थानों की ओर प्रस्थान उचित होगा।

पणजी (गोआ)

(उन्मुक्त वातावरण, प्राकृतिक सौंदर्य की राजधानी)

अवस्थिति और मार्ग

बेलगाँव से रेल-मार्ग द्वारा वास्को डि-गामा (गोआ का रेलवे स्टेशन) 163 कि. मी. है। यहाँ लोंढ़ा जंक्शन होकर जाना पड़ता है जो कि बेलगाँव से 51 कि. मी. है। यहाँ छोटी लाइन की गाड़ी चलती हैं। मिरज दक्षिण-मध्य रेलवे का एक प्रमुख जंक्शन है। यहाँ से बंगलोर और वास्को डिगामा (संक्षेप में, वास्को), गोआ के लिए छोटी लाइन की रेलगाड़ियाँ शुरू होती हैं। गोआ की राजधानी पणजी और वास्को के बीच की दूरी 31 किलोमीटर है। इसलिए वास्को से बस लेनी होती है, तब कहीं पणजी पहुँचते हैं।

बेलगाँव शहर से गोआ (पणजी) का सड़कमार्ग इस प्रकार है—बेलगाँव से गुजरने वाले पूना-बंगलोर रोड से बेलगाँव रेलवे स्टेशन, वहाँ पुल के नीचे से राजमार्ग क्रमांक 4ए सीधा पणजी के लिए जाता है। रास्ते में 27 कि. मी. की दूरी पर खानापुर पड़ता है। यहाँ भी शान्ति-नाथ बसदि गाँव से बाहर स्थित है। यहाँ पुजारी अन्य स्थान से आकर पूजन कर जाता है। खानापुर से 26 कि. मी. की दूरी पर लोंढ़ा नामक स्थान है। लोंढ़ा से पणजी 100 कि.मी. और बेलगाँव 53 कि. मी., कारवाड़ (उत्तर कर्नाटक जिला) 115 कि. मी. और धारवाड़ 62 कि. मी. हैं। बंगलोर यहाँ से 598 कि. मी. है। इस प्रकार यह स्थान रेलवे जंक्शन होने के साथ ही साथ सड़क-यातायात का भी एक प्रमुख केन्द्र है। यहाँ से रेल एक ओर वास्को जाती है तो दूसरी ओर धारवाड़। लोंढ़ा से 25 कि. मी. की दूरी पर अनमोड नामक स्थान है। यहाँ कर्नाटक सरकार का चेक पोस्ट है। अनमोड से 22 कि. मी. की दूरी पर स्थित मोले (Molem) नामक स्थान तक का रास्ता घाटियों एवं जंगल से भरा है। इसे घाट सेक्शन कहते हैं। इसमें 5 मोड़ इतने अधिक हैं कि रात को वाहन नहीं चलते। जँगली जानवर भी वहाँ पाये जाते हैं।

हवाई जहाज से यात्रा के लिए दिल्ली, बम्बई, बेलगाँव और बंगलोर से वायुयान उपलब्ध हैं। पणजी के लिए हवाई अड्डा डाबोलिम है जो कि पणजी से 29 कि. मी. और वास्को डि-गामा से 3 कि. मी. है।

समुद्री मार्ग द्वारा भी पणजी की यात्रा सम्भव है। बम्बई की एक फर्म मेसर्स मुगल लाइन्स, न्यू फेरीव्हार्फ (Ferry wharf), बम्बई अक्टूबर से मई तक अपना जहाज बम्बई से पणजी तक चलाती है। जहाज यात्रियों को गोआ सरकार के सचिवालय के सामने उतारता है जो कि सुविधाजनक स्थान है।

भगवान महावीर अभयारण्य

ऊपर लिखे 22 कि. मी. पहाड़ी और जंगल का रास्ता गोआ सरकार के क्षेत्र में आता है। भारत के संविधान में 1987 में गोआ को केन्द्र शासित प्रदेश के स्थान पर अब राज्य का दर्जा प्राप्त हो गया है। गोआ सरकार ने इस क्षेत्र में शिकार की मनाही कर दी है और इस

क्षेत्र को 'भगवान महावीर अभयारण्य' घोषित कर दिया है। यात्री इस आशय का मेहराबदार बोर्ड सड़क के ऊपर लगा हुआ देख सकते हैं। गोआ सरकार के चेक पोस्ट, विशेषकर पणजी से मोले की ओर आकर, इस अभयारण्य में प्रवेश करने वाले यात्रियों की इस बात की भी जाँच करते हैं कि वे कहीं शिकार के लिए तो नहीं जा रहे।

उपर्युक्त जाँच-चौकी के पास गोआ सरकार का एक पर्यटक-क्षेत्र (टूरिस्ट काम्प्लेक्स) है। संध्या हो जाने या कुछ देर वन के प्रवेश क्षेत्र के पास जो यात्री विश्राम या शान्ति चाहते हैं वे यहाँ ठहर सकते हैं। जाँच-चौकी के पास कुछ दूकानें भी हैं।

मोले से पणजी केवल 58 कि. मी. है। मोले पर समाप्त होने वाले जंगल-घाट के बाद तिस्को नामक स्थान आता है। यहाँ से रास्ता ठीक है। तिस्को से पोण्डा (Ponda) होकर पणजी केवल 29 कि. मी. है। पूरे रास्ते काजू और नारियल के वृक्ष पर्यटक का मन मोह लेते हैं। पोण्डा में अन्य सम्प्रदायों के मन्दिर और चर्च आदि हैं।

गोआ में जैन धर्म

पणजी से 10 कि. मी. पहले पुराना गोआ (Old Goa या Veha Goa) रास्ते में आता है। बताया जाता है कि यहाँ जैनधर्म से सम्बन्धित कुछ शिलालेख पाए गए थे जो कि इस समय कलकत्ता संग्रहालय में हैं। वास्तव में, गोआ में जैनधर्म सम्बन्धी खोज-कार्य अभी नहीं हुआ है।

दिल्ली से प्रकाशित 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में श्री पी. एम. खण्डेपर्कर (Khandeparker) का एक लेख 'Jainism Once Flourished in Goa' प्रकाशित हुआ है। उसी के आधार पर यहाँ कुछ और जानकारी दी जा रही है। विचोलिम तथा पोण्डा तालुक के बाँदोड में जैन बसदियाँ तथा ताम्बडी सुरला (Tambdi Surla) और कोर्टलिम (Cortalim) से प्राप्त जैन प्रतिमाएँ इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि गोआ में जैनधर्म का दूरगामी प्रभाव था। हारवलेम (Harvalem) जलप्रपात के पास जो गुफाएँ मिली हैं वे भी, कुछ विद्वानों के अनुसार, जैन गुफाएँ हैं।

गोआ के बिचोलिम तालुक में कुडनेम (Kudnem) नामक एक प्राचीन जैन मन्दिर और उसका मण्डप प्रकाश में आया है। वह 'गुजिरांचे देउल' कहलाता था जिसका अर्थ है गुजरातियों का मन्दिर। यह गुजरातियों का बनवाया जान पड़ता है जो कि पुर्तगालियों के आक्रमण के समय बेलगाँव भाग गए (पुर्तगालियों ने अनेक जैन मन्दिर नष्ट किए थे) ताकि वे ईसाई नहीं बनाए जा सकें। कहा जाता है कि गुजराती लोग यहाँ की यात्रा करने आते हैं। इस मन्दिर का ध्वंस 15वीं सदी में हुआ प्रतीत होता है।

उपर्युक्त मन्दिर में गर्भगृह, मुखमण्डप और तीर्थंकर प्रतिमा हैं। इस मन्दिर की निर्माण-शैली भी नागर है। ऊँची चौकी और ऊँचा शिखर इसकी काफी ऊँचाई का आभास देते हैं। सम्भवत: इसी के अनुकरण पर और भी मन्दिर बने हों जो अब नष्ट हो गए। इस स्थान के तालाब की सफाई करते समय तीर्थंकर मूर्ति का जो मस्तक मिला है वह कदम्ब राजाओं के ज़माने का हो सकता है। तीर्थंकरों की खण्डित मूर्तियाँ पुराने गोआ के चर्च के अहाते में स्थित पुरातत्त्व विभाग के संग्रहालय में हैं।

पुराने गोआ में सेंटफ्रांसिस द एसिसी की कन्वेण्ट के प्रांगण से एक शिलापट्ट 1425-33

का पाया गया है जिसके संस्कृत-कन्नड लेख से ये बातें ज्ञात होती हैं—(1) विद्यानन्द स्वामी के शिष्य सिंहनन्द्याचार्य के शिष्य हरियण्ण सूरि का शक संवत् 1354 में समाधिमरण हुआ था। (2) सिंहनन्द्याचार्य के शिष्य मुनियण्ण को बन्दवाडि की नेमिनाथ बसदि के लिए शक सं. 1347 को वागुरुम्बे ग्राम तथा शक संवत् 1355 में अक्षय नामक ग्राम दान में दिए गए थे। (3) उस समय विजयनगर के राजा देवराय द्वितीय के अन्तर्गत लक्कप्प के पुत्र त्रियम्बक का गोआ पर शासन चल रहा था। (4) बन्दवाडिग्राम को प्राचीन काल में श्रीपाल राजा द्वारा बसाया गया था तथा वहाँ मंगदण्ड के पुत्र विरुगप ने तीर्थंकर नेमिनाथ का मन्दिर बनवाया था जिसका जीर्णोद्धार आचार्य सिंहनन्दि की प्रेरणा से किया गया था।

उपर्युक्त लेख से पता चलता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी से पहले भी गोआ में जैनधर्म का प्रचार था और वहाँ जिन-मन्दिरों का निर्माण होता था।

गोआ सरकार ने 'Tourist Directory' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की है जो हर पर्यटक को प्राप्त कर लेनी चाहिए। उसमें पूजा-स्थान (Places of worship) के अन्तर्गत हिन्दू मन्दिरों की एक सूची दी गई है। इस सूची में यह उल्लेख है कि पुराने गोआ में श्री गोमटेश्वर (Shri Gomateshwar) का एक मन्दिर है। इस मन्दिर को ढूँढ़ते हुए जब प्रस्तुत लेखक वहाँ पहुँचा तो यह ज्ञात हुआ कि यह मन्दिर बाहुबली (गोमटेश्वर) से सम्बन्धित नहीं है बल्कि यह गोमन्तेश्वर या शिवजी का मन्दिर है। जैन पर्यटक को इस उल्लेख से भ्रान्ति हो सकती है।

पुराने गोआ में एक विशाल भवन में भारतीय पुरातत्त्व विभाग का एक विशाल संग्रहालय दर्शनीय तो है किन्तु उसमें कोई जैन पुरावशेष नहीं हैं। इसीके अहाते में एक बड़ा-सा चर्च है जिसमें ईसा की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। यह संग्रहालय पणजी जाने वाले मुख्य मार्ग पर ही स्थित है।

बताया जाता है कि 16 वीं शताब्दी में आदिलशाह ने इस शहर को बसाया था और वह अपनी राजधानी बीजापुर से यहाँ लाना चाहता था। किन्तु अलबुकर्क और उसके साथियों ने इस पर अपना कब्जा कर लिया। स्मरण रहे, गोआ 1961 तक पुर्तगालियों के कब्जे में था और जब समझदारी से वे नहीं हटे तो स्वतन्त्र भारत की सेना ने पुलिस कार्रवाई करके पुर्तगालियों को भगा दिया।

गोआ को पर्यटकों का स्वर्ग कहा गया है। उसके प्रति पाश्चात्य पर्यटक तो काफी संख्या में आकर्षित होते ही हैं, भारतीय पर्यटक भी एक बार गोआ अवश्य जाना चाहते हैं। पर्यटकों की यह आम धारणा है कि गोआ में बड़ा उन्मुक्त वातावरण है।

पणजी

बेलगाँव पहुँचने पर जैन पर्यटक भी गोआ की यात्रा के आकर्षण से बच नहीं पाते। किसी सीमा तक यह सच भी है। प्रकृति ने उसे निराली छटा दी है। एक ओर अरब सागर लहराता है तो दूसरी ओर पश्चिम घाट (सह्याद्रि पर्वतमाला) की मनोरम पहाड़ियाँ हैं। नारियल, ताड़ और काजू के वृक्षों के बीच हरे-भरे चावल के खेत पर्यटक का मन मोह लेते हैं। गोआ की राजधानी पणजी या पणजिम में पुर्तगालियों की देन देशी-विदेशी शराब और आधी रात तक चलने वाला पॉप संगीत (पाश्चात्य संगीत) कदम-कदम पर मिलेंगे। अनेक पर्यटक इन्हीं बातों से

आकर्षित होते हैं। ऐसे सुन्दर स्थान देश के अन्य भागों में भी हैं। इन बातों से दूर रहने वाले पर्यटक के लिए यहाँ हलकी गरम जलवायु, और समुद्र का सुन्दर किनारा भी पर्याप्त आकर्षक हैं। यहाँ पर पहले से ही किसी सरकारी होटल में स्थान सुरक्षित न करा सके तो उसे ठहरने के लिए अधिक किराया देना पड़ता है, क्योंकि यहाँ के होटल सदा भरे रहते हैं। गोआ पर्यटन विभाग ने विभिन्न किरायों के होटलों की लम्बी सूची प्रकाशित की है जो कि पर्यटकों को निःशुल्क मिलती है। ठहरने की कठिनाई के अतिरिक्त शाकाहारी पर्यटक को भोजन-नाश्ते के लिए पहले यह सुनिश्चित कर लेना चहिए कि वहाँ मछली आदि माँसाहारी वस्तुएँ तो नहीं बनतीं। यहाँ पाव-भाजी अधिक खाई जाती है।

पणजी शहर मांडोवी नदी के बाएँ किनारे पर बसा है। इस नदी का पाट काफी चौड़ा है। यहाँ बाग-बगीचों, बहुमंजिली इमारतों के अतिरिक्त कुछ चर्च और श्री मंगेश मन्दिर अक्सर पर्यटक देखते हैं। शहर के पीछे अल्टिन्हो पहाड़ी है जो इसे भव्यता प्रदान करती है। बताया गया है कि यहाँ एक जैन मन्दिर का भी निर्माण होगा। यहाँ अनेक राज्यों के लोग रहते, व्यापार करते हैं और हिन्दी बहुत अच्छी तरह समझी और बोली जाती है। वैसे यहाँ कोंकणी (मराठी की एक बोली) मूल भाषा है।

पुराने गोआ में दो चर्च विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। एक 16वीं सदी में बना 'बेसिलिका ऑफ बॉम जीसस' है जहाँ ईसाई सन्त फ्रांसिस ज़ेनियर के अवशेष चाँदी की एक पेटिका में रखे हैं। दूसरा चर्च सेंट कैथेड्रल है। इसके पाँच घण्टालों में से एक सोने का है जो कि विश्व के अच्छे घण्टालों में माना जा सकता है।

व्यस्त जैन पर्यटक यदि पणजी पहुँच ही जाता है तो वह गोआ के दो और सुन्दर स्थानों की यात्रा कर सकता है। एक तो वास्को डि-गामा नामक शहर और दूसरा कलंगुट नामक समुद्री किनारे। दोनों भिन्न-भिन्न दिशाओं में हैं।

वास्को डि-गामा—यह पणजी से 31 कि. मी. की दूरी पर है। पणजी में बस-स्टैण्ड के पास मडगाँव (Margam) रोड है जो कि राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक-17 कहलाता है। कुछ किलोमीटर यात्रा के बाद यात्रा बड़ी आनन्ददायक हो जाती है। सड़क पर ज़ुआरी (Zuari) नदी का नया बड़ा पुल है और वहाँ से राजमार्ग क्रमांक 17ए लगभग 12 किलोमीटर इस नदी के किनारे चलते हुए वास्को डि-गामा पहुँचाता है। रास्ते के दूसरी ओर छोटी पहाड़ी और नारियल के पेड़ अनोखा दृश्य उपस्थित करते हैं। वास्को रेलवे स्टेशन के आस-पास बाज़ार है, सरकारी होटल और सूचना-केन्द्र भी हैं। यहाँ भी अनेक बहुमंजिली इमारतें हैं। शाकाहारी भोजन की भी होटलें हैं। यहाँ से दाबोलिम हवाई अड्डा केवल 3 किलोमीटर या शहर के बाहर ही स्थित है। इसी प्रकार मडगाँव हार्बर (बन्दरगाह) केवल 3-4 किलोमीटर है। रेल तो यहाँ तक आती ही है।

कलंगुट समुद्री किनारा (Calangute Beach)—गोआ के सबसे सुन्दर समुद्री किनारों में इसकी गणना की जाती है। यह पणजी से 16 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। पणजी बस-स्टैण्ड से ओवरब्रिज पार कर लगभग 3 कि. मी. चलने पर पानी की एक टंकी के पास से सड़क कलंगुट समुद्री किनारे की ओर जाती है। यहाँ आबादी है, दूकानें हैं, बस स्टैण्ड है, सरकारी होटल भी हैं। समुद्री

किनारा लगभग एक किलोमीटर लम्बा एवं भव्य है । अरब समुद्र का पानी किनारे पर कुछ मटमैला है। गहरी बारीक मटमैली रेती की इसके किनारे बहुत लम्बी-चौड़ी कालीन बिछी है, ऐसा लगता है।

वास्को डि-गामा और कलंगुट दोनों ही स्थानों के लिए सरकारी बसें चलती हैं। कलंगुट से वापस पणजी लौटना चाहिए।

इस प्रकार पर्यटक को गोआ की यात्रा समाप्त कर वापस बेलगाँव आना चाहिए ताकि वह कला एवं इतिहास के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के चार स्थानों—ऐहोल, पट्टदकल, बादामी और हम्पी का कला-स्थापत्य वैभव देखने से वंचित न रह जाए। ये स्थान छोड़ देने लायक बिलकुल भी नहीं हैं।

विशेष सूचना

पणजी से बेलगाँव लौटने पर कुछ लोग यह सलाह दे सकते हैं कि वे बेलगाँव से सीधे धारवाड़ (लोंढ़ा से भी रास्ता है) होते हुए हुबली चले जाएँ। उत्तर भारत की पर्यटक बसें प्रायः यह मार्ग अपनाती हैं किन्तु ऐसा करने में पर्यटक का हित नहीं है। वह ऊपर लिखे कला-क्षेत्रों को देखने से वंचित रह जाता है। उन्हें देखकर धारवाड़-हुबली की ओर आने में कुछ किलोमीटर की बचत भी होती है। इसलिए बेलगाँव के बाद पर्यटक का अगला पड़ाव बागलकोट होना चाहिए।

बागलकोट

अवस्थिति एवं मार्ग

बागलकोट बीजापुर ज़िले का एक तालुक है। सड़क-मार्ग द्वारा बेलगाँव से बागलकोट 140 कि. मी. है। रास्ता प्रायः वृक्षहीन छोटी पहाड़ियों से गुजरता है। बड़े गाँव दूर-दूर तक नहीं मिलते। लोकापुर नामक स्थान पर कुछ सुविधा मिलती है। पानी की व्यवस्था रखनी चाहिए। रास्ते में जैन मन्दिर नहीं हैं। वैसे यह नगर बीजापुर से भी सड़क-मार्ग (लगभग 90 कि. मी.) और रेल-मार्ग द्वारा भी जुड़ा हुआ है। शोलापुर से हुबली और बंगलोर से शोलापुर तक चलने वाली गोलगुंबज एक्सप्रेस यहाँ आती है।

जो पर्यटक सार्वजनिक बसों या रेल द्वारा यात्रा कर रहे हों उन्हें यह सलाह दी जाती है कि वे बागलकोट में रेलवे स्टेशन के पास के किसी अच्छे होटल में ठहरकर, ऐहोल की यात्रा कर आवें। बागलकोट में टूरिस्ट बंगला नहीं है।

बागलकोट का प्राचीन नाम बागडिगे (Bagadige) बताया जाता है। कहा जाता है कि यह नगर रावण के वजन्त्रियों (संगीतज्ञों) को दान में प्राप्त हुआ था।

क्षेत्र-दर्शन

उपर्युक्त नगर में पार्श्वनाथ बसदि नामक एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। इसमें दसवीं शती से लेकर उन्नीसवीं शती तक की सुन्दर प्रतिमाएँ हैं। पहली मंजिल पर विराजमान लगभग तीन फुट ऊँची पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग प्रतिमा के साथ सुन्दर नक्काशी है। सात फणों वाली इस प्रतिमा की सर्प-कुण्डली भगवान के पैरों तक आयी है। इस पर छत्र और चँवर नहीं हैं। मूर्ति के आसन पर कन्नड़ में तीन पंक्तियों का लेख है।

दसवीं शताब्दी की धरणेन्द्र की भी एक प्रतिमा इस मन्दिर में है।

बारहवीं सदी की आदिनाथ की अर्धपद्मासन प्रतिमा के दोनों ओर दो साधु हाथ जोड़े प्रदर्शित हैं। इस पर सम्भवतः तेलुगु में लेख है।

उन्नीसवीं शताब्दी की सहस्रफणी पद्मासन पार्श्वनाथ प्रतिमा के आसन पर सर्प का चिह्न है। इसकी नक्काशी भी मनोहारी है।

पन्द्रहवीं सदी की लगभग 18 इंच ऊँची बाहुबली की मूर्ति के गले में त्रिवलय (तीन रेखाएँ) उत्कीर्ण हैं और कान कन्धों तक चित्रित हैं। लताएँ तथा बामियाँ तो हैं ही।

मन्दिर में नवदेवता को एक कांस्य प्रतिमा है जो कुछ घिस गई है। इस पर नौ देवता—अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनदेवता, जिनवाणी जिनधर्म और जिनमन्दिर(एक चक्र के रूप में प्रदर्शित) उत्कीर्ण हैं। इस पर तमिल में आठ पंक्तियों का एक लेख भी है।

यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यहाँ कन्नड, तेलुगु और तमिलभाषी जैन धर्मावलम्बियों की अच्छी संख्या रही होगी और उनमें परस्पर अद्भुत भ्रातृभावना रही होगी।

बागलकोट में बेलगाँव रोड पर एक श्वेताम्बर मन्दिर भी है।

ऐहोल

(मन्दिरों का गाँव)

अवस्थिति एवं मार्ग

बीजापुर ज़िले के नक्शों में इस गाँव के अँग्रेजी नाम हैं—Aivalli या Aihole। स्थानीय जनता 'ऐहोली' कहती है। प्राचीन नाम ऐविल्ल, अय्यावले या आर्यपुर हैं।

इस गाँव तक दो रेलवे स्टेशनों—बागलकोट या बादामी—से बस द्वारा पहुँचा जा सकता है। वैसे बागलकोट से सड़क का रास्ता अच्छा है। बेलगाँव से रायचूर सड़क-मार्ग बागलकोट होकर गुजरता है। बागलकोट और हुनगुन्द (Hongund) के बीच में अमीनगढ़ (45 कि. मी.) नामक स्थान से एक दूसरी सड़क ऐहोल के लिए जाती है। इस मार्ग पर बसें भी अधिक हैं। अमीनगढ़ से ऐहोल (9 कि. मी.) के लिए बस या मेटाडोर मिल जाती हैं। बागलकोट से ऐहोल (46 कि. मी.) के लिए सीधी बस-सेवा भी है।

दूसरा सड़क-मार्ग बादामी से पट्टदकल होते हुए है। बादामी से ऐहोल की बस ग्रामीण

क्षेत्रों से गुजरती है, यात्री को असुविधा होती है। वास्तविक कठिनाई ऐहोल से पट्टदकल पहुँचने में होती है। पट्टदकल से बादामी के लिए अनेक बसें हैं या मेटाडोर मिल जाती हैं।

यदि कोई पर्यटक बादामी से पट्टदकल होते हुए ऐहोल बस द्वारा पहुँचना चाहे तो उसे पहले ऐहोल देखना चाहिए, उसके बाद पट्टदकल ।

कमटगी

बागलकोट-अमीनगढ़-ऐहोल मार्ग पर कमटगी (Kamatgi) नामक स्थान है। यहाँ की पार्श्वनाथ बसदि में भी 10वीं से 17वीं शताब्दी तक की पार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ एवं चौबीसी की मनोहारी प्रतिमाएँ हैं। पद्मासन में पार्श्वनाथ की कांस्य प्रतिमा पर दो फण हैं। धरणेन्द्र और पद्मावती के अतिरिक्त प्रतिमा के साथ नौ ग्रहों का उत्कीर्णन ध्यान देने योग्य है।

इसी मार्ग पर बागलकोट से लगभग 40 किलोमीटर की दूरी पर कृष्णा नदी के बाएँ तट पर जैनपुर नामक एक गाँव है। कर्नाटक सरकार के बीजापुर सम्बन्धी गज़ेटियर में लिखा है कि इस गाँव का नाम यहाँ के प्राचीन जैन निवासियों के कारण पड़ा होगा। यहाँ अब जैन मन्दिर नहीं है।

ऐतिहासिक महत्त्व

ऐहोल गाँव किसी समय चालुक्य राजाओं की राजधानी रहा है। इसके अतिरिक्त यह व्यापार का भी एक प्रमुख केन्द्र था। सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि यह 'मन्दिरों की नगरी' था। बताया जाता है कि यहाँ किसी समय लगभग 150 मन्दिर थे। किन्तु अब यहाँ लगभग 70 मन्दिरों के अवशेष देखे जा सकते हैं। ये मन्दिर जैन, वैष्णव और शैव सम्प्रदायों से सम्बन्धित हैं। मन्दिरों के अतिरिक्त यहाँ गुफा-मन्दिर भी हैं। वास्तुविदों का मत है कि यहाँ कुछ शताब्दियों तक विभिन्न शैलियों के मन्दिरों के निर्माण के प्रयोग चलते रहे। किन्तु विभिन्न शैलियों के मन्दिर के निर्माण में यह बात अधिक सम्भव लगती है कि चालुक्य राजा उत्तर भारत और दक्षिण भारत को मिलाने वाले प्रदेश पर शासन करते थे। उनका राज्य उत्तर में नर्मदा (गुजरात, मालवा) तक और दक्षिण में समुद्र-तट से समुद्र-तट तक था। उन दिनों जब भी किसी प्रदेश पर विजय प्राप्त की जाती थी, तब जीते गये प्रदेश के कारीगरों, शिल्पियों को भी विजयी राजा अपने साथ ले जाते थे। शायद यही कारण है कि ऐहोल, पट्टदकल और बादामी, इन समीपस्थ स्थानों में उत्तर भारत के शिखरवाले मन्दिर और दक्षिण भारत की विमान शैली के मन्दिर देखने को मिलते हैं। जो भी हो, ऐहोल के मन्दिर निर्माण की प्रारम्भिक अवस्था के अच्छे उदाहरण हैं।

उपर्युक्त अधिकांश मन्दिरों का निर्माण चालुक्य और राष्ट्रकूट राजाओं के शासनकाल में हुआ था। ऐहोल स्थित 'मेगुटी' नामक जैन मन्दिर में आचार्य रविकीर्ति रचित जो शिलालेख लगा है उससे चालुक्य वंश की वंशावली प्राप्त होती है।

अनुश्रुति है कि चालुक्य राजाओं का मूल पुरुष अयोध्या से दक्षिण भारत में आया था। जो भी हो, इस वंश का संस्थापक जयसिंह माना जाता है जो कि पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ है। वह जैनाचार्य गुणचन्द्र, वसुचन्द्र और वादिराज का आदर करता था। उसकी

संतति में पुलकेशी प्रथम हुआ जो वीर और कुशल शासक था। उसने भी जैन मन्दिर के लिए दान दिया था। उसके राज्य में जैनधर्म का खूब प्रचार था और उसके समय में ऐहोल एक प्रमुख जैन केन्द्र बन गया था। उसका पुत्र कीर्तिवर्मन जैनधर्म का अनुयायी था। उसने 567-ई. में जैन मन्दिर के लिए दान दिया था। विख्यात जैन इतिहासज्ञ डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन के अनुसार, उसी के समय में 585 ई. में यहाँ मेगुटी नामक जैन मन्दिर बना और एक गुरुकुल की स्थापना हुई। कीर्तिवर्मन के बाद राज्य उसके भाई मंगलीश के हाथों में चला गया। उसने राजधानी ऐहोल से हटाकर वातापि (आधुनिक बादामी) में स्थापित की। मंगलीश ने 597 से 608 ई. तक राज्य किया। उसके समय में ही चालुक्यों के एक उपराजा की पत्नी की कोख से महाराष्ट्र के अलकाक नगर (अल्तेम) में जैनाचार्य अकलंकदेव का जन्म हुआ था। उसी काल में बादामी की प्रसिद्ध शैल-गुफाओं (Rock caves) का निर्माण प्रारम्भ हुआ।

चालुक्य वंश का सबसे प्रसिद्ध, शक्तिशाली तथा अपने राज्य का समुद्र-तट तक और रेवा नदी तक विस्तार करने वाला राजा पुलकेशी द्वितीय हुआ। उसने 608 से 642 ई. तक शासन किया। उसका अपर नाम या उपाधि 'सत्याश्रय' थी। उस समय उत्तर भारत में कन्नौज का हर्षवर्धन कलिंग और गुजरात के मार्गों से दक्षिण भारत तक अपना साम्राज्य फैलाना चाहता था। किन्तु पुलकेशी द्वितीय ने उसके अनेक प्रयत्न विफल करके 'परमेश्वर' उपाधि धारण की थी। दोनों ही शासक शक्तिशाली थे। हर्षवर्धन बौद्धधर्म के प्रति अधिक आकृष्ट था तो पुलकेशी द्वितीय जैनधर्म की ओर। दोनों ही अन्य धर्मों का आदर करते थे।

जैनधर्म के प्रति पुलकेशी द्वितीय की विशेष प्रीति का प्रमाण है ऐहोल स्थित 'मेगुटी-मन्दिर' की पूर्वी दीवाल पर उत्कीर्ण जैनाचार्य रविकीर्ति द्वारा लिखा गया शिलालेख जो आज भी विद्यमान है। यह शिलालेख शक संवत् 556 का है यानी ईस्वी सन् 634 का। इस शिलालेख में, जो कि संस्कृत में है, आचार्य रविकीर्ति ने चालुक्यों की वंशावली देते हुए पुलकेशी द्वितीय के पराक्रम, विजय और गुणों का वर्णन काव्यमय शैली में किया है। पुलकेशी ने आचार्य रविकीर्ति को पर्याप्त रूप से सम्मानित किया था। उसने मेगुटी मन्दिर के लिए सम्भवतः दान भी दिया था। आचार्य रविकीर्ति स्वयं अपने को कालिदास और भारवि की कोटि का कवि मानते थे। यह तथ्य इस शिलालेख में उल्लिखित है। आचार्य अकलंकदेव भी इन्हीं रविकीर्ति के शिष्य बताये जाते हैं। इस राजा के समय में चीनी यात्री ह्वेनसांग भी भारत आया था। उसके यात्रा-विवरण से भी ज्ञात होता है कि पुलकेशी द्वितीय के समय में कर्नाटक तथा शेष दक्षिण भारत में जैनों, जैन साधुओं एवं जैन मन्दिरों की संख्या बौद्धों से कहीं अधिक थी। इस समय पुलकेशी द्वितीय वातापि (आधुनिक बादामी) में शासन कर रहा था। उसने ईरान के शासक से भी उपहारों का आदान-प्रदान कर मित्रता स्थापित की थी। दक्षिण के शासक पल्लवेश नरसिंहवर्मन् से एक युद्ध में उसकी मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी विक्रमादित्य प्रथम 'साहसांक' या 'साहसतुंग' (642-680 ई.) को भी पल्लवनरेश से युद्धों में अपना जीवन बिताना पड़ा। वह भी जैनधर्म का समर्थक था। उसी के समय में अकलंकदेव ने कलिंग देश की राजधानी रत्नसंचयपुर में बौद्धों से शास्त्रार्थ कर उन्हें हराकर 'भट्ट' उपाधि ग्रहण की थी।

चालुक्य वंश के उत्तरवर्ती राजा भी जैनधर्म के प्रति उदार थे और उन्होंने अनेक जिनालयों को पर्याप्त दान दिया था।

ऐहोल को चालुक्य मन्दिर-निर्माण शैली की जन्मभूमि या प्रयोगस्थली कहा गया है। यहाँ ईस्वी 450 और 650 के बीच लगभग सौ मन्दिरों का निर्माण हुआ बताया जाता है जिनमें से 70 के लगभग ध्वस्त अवस्था में अब भी बिखरे पड़े हैं। ये मन्दिर उत्तर भारतीय लम्बे शिखरों वाले भी हैं और दक्षिण भारतीय शैली के शिखरों—गुंबद या उलटे प्याले के आकार वाले हैं।

क्षेत्र-दर्शन

ऐहोल के प्रमुख मन्दिरों को देखने के लिए पर्यटक को कम-से-कम एक दिन का समय आवश्यक है। वह भी तब जब कि वह किसी गाइड को अपने साथ ले ले।

सरकारी बस पर्यटक को गाँव में ले जाती है जहाँ वर्षा-धूप से बचने के लिए कोई शेड नहीं है। बसों को असुविधा तो है ही। पूछने पर ही पता चलता है कि बस अमुक स्थान पर रुकती है। हालाँकि कर्नाटक सरकार ने इसे पर्यटन-स्थल रूप में अँग्रेजी और फ्रेंच भाषाओं में परिचय-पर्चे आदि छपवाकर विज्ञापित कर रखा है। कला और स्थापत्य साहित्य में तो ऐहोल का प्रमुख स्थान है ही, पर्यटकों के विश्राम के लिए वहाँ कर्नाटक सरकार का एक टूरिस्ट बँगला है। वैसे ठहरने के लिए अन्य कोई साधन नहीं है। इसलिए पर्यटक को इस सुविधा-असुविधा को पहले से ही सोच लेना चाहिए। गाँव से सटा हुआ ही एक मन्दिर-समूह है। वहीं दुर्गा मन्दिर के पास गाइड मिल सकता है।

उपर्युक्त मन्दिरों के पास ही पुरातत्त्व विभाग द्वारा खुदाई की जा रही है। कोई मन्दिर भूगर्भस्थ हो गया, ऐसा आभास है। यह स्थान गौडर मन्दिर के पास है।

हुचिमल्ली मन्दिर—गाँव के मन्दिर-समूह में एक दुर्गा मन्दिर है। पुरातत्त्व विभाग ने यहाँ एक सूचना-फलक लगाया है जिसमें 20 मन्दिरों या मन्दिर-समूहों के नाम गिनाए गए हैं। इनमें जैन मन्दिर मेगुटी और गाँव के पास के जैन मन्दिर-समूह का भी उल्लेख है। इस सूची में पहला नाम 'हुचिमल्ली' मन्दिर का है। कन्नड भाषा में हुचिमल्ली का अर्थ है 'पागल स्त्री' अर्थात् यह वह मन्दिर है जहाँ किसी समय कोई पागल औरत रहा करती थी। इसी प्रकार अन्य मन्दिरों को भी निवास स्थान बना लिया गया था।

लाडखाँ मन्दिर—यह मन्दिर दुर्गा मन्दिर के पास ही है। कहा जाता है कि पहले यह एक जैन मन्दिर था। किन्तु यहाँ के गर्वनर लाडखाँ उसमें रहने लगे तो इसका नाम लाडखाँ मन्दिर ही पड़ गया। मन्दिर की रचना लगभग अर्धवृत्ताकार है। यह बलुआ पत्थर का बना हुआ है। इसका निर्माण 450 ई. में हुआ माना जाता है। इसके मण्डप के स्तम्भ इतने विशाल, विशेषकर बीच के चार—लगभग 4 फुट चौड़े हैं कि इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि यह मन्दिर गुफा-मन्दिर के अनुकरण पर बनाया गया होगा। कुछ कम ऊँचाई के स्तम्भों की दो कतारें भी इनके आस-पास हैं जिससे यह एक बड़ा सभामण्डप-सा लगता है। इसमें बैठने का भी स्थान मुख-मण्डप के खुले स्तम्भों के साथ-साथ बना हुआ है। इसके एक स्तम्भ पर मिथुन और दरवाजे की चौखट पर यमुना नदी अपने सेवकों के साथ उत्कीर्ण (अब नष्टप्राय) देखी जा सकती हैं। इसकी छत सभी ओर ढलवाँ है। शिखर नहीं है। दो गर्भगृह हैं जो कि अब खाली हैं। स्तम्भों पर मौक्तिक मालाओं, कामक्रीड़ारत युगल, हाथियों, छत में कमल, गजलक्ष्मी, चँवर और छत्र आदि का सुन्दर अंकन है। मिथुन का प्रयोग अनेक स्थानों पर है। दो

दीवालों में पत्थर की सुन्दर जालियाँ लगाई गई हैं। बारह राशियों का चक्र और चालुक्य वंश का राजकीय चिह्न भी यहाँ उत्कीर्ण हैं। अब यहाँ नन्दी विराजमान है। यह मन्दिर बस-स्टॉप के बिलकुल पास में ही है।

यहाँ के कुछ मन्दिरों में कुछ लोगों ने अपना डेरा बना लिया था। पुरातत्त्व विभाग उन्हें तथा यहाँ से कुछ मकान ही हटवा देने का प्रयत्न कर रहा है। ये मन्दिर द्रविड, नागर और कदम्ब शैली के कहे जाते हैं और चालुक्य तथा राष्ट्रकूट वंशों के राज्यकाल में निर्मित माने जाते हैं।

मेगुटी मन्दिर—जैन पर्यटक के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण एवं दर्शनीय मन्दिर है 'मेगुटी-मन्दिर'। उपर्युक्त मन्दिर-समूह से इस मन्दिर की ओर जाने के लिए टूरिस्ट बंगला के पास एक गुफा है जो कि 'रावणफड़ी' कहलाती है। उससे कुछ आगे चलने पर छोटी पहाड़ी पर एक मन्दिर दिखाई देता है। वही मेगुटी मन्दिर है (देखें, चित्र क्र. 14)।

मेगुटी का कन्नड़ भाषा में अर्थ होता है 'ऊपर का'। चूँकि यह ऊपर पहाड़ी पर स्थित है, इसलिए लोगों ने इसे 'मेगुटी मन्दिर' नाम दे दिया।

मेगुटी मन्दिर के लिए रास्ता ज्योतिर्लिंग मन्दिर-समूह से होकर है। पहाड़ी के नीचे कुछ मकान हैं जिनके पास से 124 सीढ़ियाँ चढ़ने पर मेगुटी मन्दिर पहुँचा जाता है। पहाड़ी के इस मन्दिर से मलप्रभा नदी, मन्दिरों, ऐहोल गाँव और दूर-दूर तक की पहाड़ियों का सुन्दर दृश्य दिखाई देता है।

इसी मन्दिर के पास एक सरकारी प्रशिक्षण विद्यालय भी है। यह विद्यालय मानो उस जैन गुरुकुल का स्मरण कराता है जिसका संचालन आचार्य रविकीर्ति किया करते थे। उसमें जैन दर्शन और न्यायशास्त्र की उच्च शिक्षा दी जाती थी। यह भी विश्वास किया जाता है कि महान जैन तार्किक भट्ट अकलंक ने आचार्य रविकीर्ति से शिक्षा प्राप्त की थी। इन्हीं अकलंक ने उड़ीसा के रत्नसंचयपुर में छह माह तक शास्त्रार्थ करके अपने प्रतिद्वन्द्वियों को हराया था। उसके बाद उन्हें 'भट्ट' की उपाधि से विभूषित किया गया था। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—'तत्त्वार्थराज-वार्तिक', 'अष्टशती', 'न्यायविनिश्चय', 'सिद्धिविनिश्चय', 'लघीयस्त्रयी', और 'प्रमाणसंग्रह'। आचार्य रविकीर्ति के बाद उन्हें ही इस जैन गुरुकुल का अध्यक्ष बनाया गया था।

मेगुटी मन्दिर में आचार्य रविकीर्ति का जो प्रसिद्ध शिलालेख आज भी लगा है, उसके अनुसार इसका निर्माण 634 ईस्वी में हुआ होगा। इस लेख में इसे 'आचार्य रविकीर्ति द्वारा निर्मापित' कहा गया है। सम्बन्धित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

> "सत्याश्रयस्य परमाप्तवता प्रसादम्
> शैलं जिनेन्द्रभवनं भवनं महिम्नाम्।
> निर्मापितं मतिमता रविकीर्तिनेदम्॥"

यहाँ सत्याश्रय से आशय चालुक्यनरेश पुलकेशी द्वितीय से है। उसका दूसरा नाम सत्याश्रय था। लेख में कहा गया कि सत्याश्रय की कृपा से या उसकी प्रसन्नता से आचार्य रविकीर्ति ने इस शैलमन्दिर का निर्माण कराया।

समय के थपेड़ों ने इस मन्दिर को काफी नुकसान पहुँचाया है, ऐसा कुछ वास्तुविदों का

मत है। किन्हीं का मत है कि इसके कुछ भाग अधूरे ही रह गए। स्थिति जो भी हो, मन्दिर इस समय ध्वस्त अवस्था में है, यह बात इसके सामने का भाग देखने पर स्पष्ट हो जाती है। कहीं-कहीं इसकी दीवालों पर अंकन अधूरा रह गया है। इससे भी अनुमान होता है कि मन्दिर के निर्माण के समय पहले पत्थर जड़ दिए जाते थे और बाद में उन पर छेनी चलाई जाती थी। अर्थात् पहले से ही उत्कीर्णन करके स्तम्भ, दीवाल आदि खड़े नहीं किए जाते थे। जो भी हो, इसका अलंकरण अधिक सूक्ष्म है।

यह मन्दिर दक्षिण भारतीय या द्रविड़ शैली का है। इसका शिखर भी अधूरा रह गया है या नष्ट हो गया है।

मेगुटी मन्दिर की चौकी या अधिष्ठान पर भी सुन्दर अंकन है। उस पर हाथी और गायक आदि उत्कीर्ण किए गए हैं। मध्यवर्ती दीवालों की शिलाओं पर देवकोष्ठ बने हैं जो अब मूर्तियों से रहित हैं। इसके स्तम्भ भी बलुआ पत्थर के हैं किन्तु वे उतने मोटे नहीं हैं जितने लाडखाँ या दुर्गा मन्दिर के। इस दृष्टि से भी यह उन्नत मन्दिर-निर्माण कला का उदाहरण है। इसके सामने का अग्रमण्डप या प्रवेश-मण्डप खुला है और अनेक स्तम्भों से युक्त है। इसमें स्तम्भों की संयोजना इस प्रकार की गई है कि एक प्रदक्षिणा-पथ ही बन जाता है। इस प्रकार यह एक सांधार या प्रदक्षिणा-पथ युक्त मन्दिर माना जाता है। मन्दिर की दीवाल में कहीं-कहीं पत्थर की जाली का भी प्रयोग किया गया है। गर्भगृह या मूर्ति का मुख्य स्थान साधारण है। उसमें भी स्तम्भ का प्रयोग है। इस समय उसमें जो पद्मासन मूर्ति है वह खण्डित है। गर्भगृह से थोड़ा पीछे हटकर दो पार्श्व मन्दिर और हैं। इस कारण इसे त्रिकूट या तीन मन्दिरों का समूह भी कहा जा सकता है। गर्भगृह के ऊपर भी एक चौकोर गर्भगृह दूसरी मंजिल पर है। उसमें भी साधारण पत्थर की वेदी पर पद्मासन तीर्थंकर की एक खण्डित मूर्ति है।

इस मन्दिर में आचार्य रविकीर्ति का जो संस्कृत शिलालेख बाहर की ओर लगा है उससे प्रसिद्ध संस्कृत कवि कालिदास का समय-निर्धारण करने में भी सहायता मिली है। मन्दिर विशालकाय है और उसका अहाता भी बड़ा है। संस्कृत साहित्य के इतिहास, मन्दिर निर्माण-कला के इतिहास (इसी मन्दिर की निर्माण-तिथि का पता शिलालेख से निश्चित रूप से चलता है) तथा जैन इतिहास की दृष्टि से यह मन्दिर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

मेगुटी मन्दिर में शासनदेवी अम्बिका की एक अनूठी मूर्ति है। देवी पैर-पर-पैर रखकर आम्रवृक्ष के नीचे आसीन है। उसके साथ अनुचर हैं। बाएँ पैर के पास एक सिंह है। एक परिचारक के पास उसका प्रिय पुत्र है जो देवी को पुत्र देते हुए प्रदर्शित है।

यहीं से 11वीं सदी की भट्टारक की एक मूर्ति प्रभामण्डल सहित प्राप्त हुई है जिसके वक्ष और कन्धों पर महीन वस्त्र है। वह यहाँ के शिव मन्दिर में है।

यह मन्दिर पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में है।

द्वितल गुफा मन्दिर—मेगुटी मन्दिर के पास ही नीचे की ओर एक दो-मंजिल या द्वितल गुफा जैन मन्दिर है (देखें चित्र क्र. 15)। इस गुफा-मन्दिर की लम्बाई लगभग 30-35 फुट है। इसके सामने के मण्डप या बरामदे के चार मोटे स्तम्भ और भित्ति स्तम्भ सामने ही दिखाई देते हैं। इन स्तम्भों और बाहर की चट्टानों पर कुछ नाम अंकित हैं। कुछ स्तम्भों पर छठी सदी के ब्राह्मी में लेख भी हैं।

अनुमान है कि यह गुफा-मन्दिर सातवीं सदी में निर्मित किया गया। यह भी माना जाता है कि इसका कुछ भाग प्राकृतिक है, कुछ भाग चट्टान काटकर बनाया गया है तो कुछ भाग मन्दिरों की भाँति निर्मित है। जो भी हो, गुफा-मन्दिर बादामी के गुफा-मन्दिर से भी विशाल किन्तु कम अलंकृत है।

गुफा-मन्दिर में दो मण्डप हैं जो कि ऊपर से बनाए गए हैं। छत में भी एक तीर्थंकर या भट्टारक मूर्ति उत्कीर्ण है। गर्भगृह की चौखट अनेक शाखाओं वाली है। उस पर सुन्दर अंकन है। उसे पशु, पत्रावली, पुष्पों, मानव आदि से खूब सजाया गया है। कुछ लघु मूर्तियाँ भी हैं। हाथ जोड़े भक्त भी प्रदर्शित हैं। यहाँ मस्तकहीन एक तीर्थंकर मूर्ति लगभग तीन फुट ऊँची है जो कि आठवीं शताब्दी की जान पड़ती है। इसके मण्डप के सिरे पर तीन शैलोत्कीर्ण मन्दिर भी निर्मित हैं।

मीन बसदि—मेगुटी पहाड़ी के दक्षिण-पूर्व में एक और जैन गुफा-मदिर है जो कि 'मीन बसदि' कहलाता है। यह एक तल का है और इसके ऊपर चट्टान है। इसका निर्माण भी सातवीं सदी के अन्त में या आठवीं सदी के प्रारम्भ में हुआ होगा, ऐसा माना जाता है। इसमें अरहनाथ की मूर्ति है जिसका लांछन मत्स्य है। प्रतिमा अर्धपद्मासन में है. उसके पीछे एक बड़ा तकिया है। भामण्डल साधारण है। ऊपर चँवरधारी और छत्रत्रय भी प्रदर्शित हैं। प्रतिमा सातवीं सदी की प्रतीत होती है।

यहीं पर पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में फणावली युक्त प्रतिमा भी है। सर्पकुण्डली उसके पीछे की ओर गई है। एक फण से युक्त धरणेन्द्र, और पद्मावती को खड़े हुए दिखाया गया है। धरणेन्द्र के हाथ में एक छत्र है। ये दोनों दाहिनी ओर हैं। बाईं ओर विद्याधर उत्कीर्ण हैं। एक भक्त को बैठे दिखाया गया है। कमठ को ऊपर से उपसर्ग करते हुए दिखाया गया है।

तपस्या में रत बाहुबली की एक सुन्दर मूर्ति भी यहाँ है जो कि सातवीं शताब्दी की अर्थात् श्रवणबेलगोल की प्रसिद्ध मूर्ति से भी प्राचीन है। बाहुबली कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। उनके पीछे जंगल जैसा प्रदर्शित है। उनके कन्धों पर केशों की जटाएँ स्वाभाविक रूप से लहराती दिखाई गई हैं। नीचे बामी के दोनों ओर सर्प निकलते दिखाये गये हैं। बाहुबली की दोनों बहिनें ब्राह्मी और सुन्दरी लताओं को बाहुबली के शरीर पर से हटाती हुई दिखाई गई हैं। (देखें चित्र क्र. 16)

मुख्य गर्भगृह की छत पर खिले हुए बड़े कमल के फूल का सुन्दर अंकन है। वह एक चौखटे में बना है। उसके आस-पास पुष्पावली सुन्दर ढंग से चित्रित है। उसके चारों ओर त्रिकोणों में मीन-युगल आदि मांगलिक पदार्थ उत्कीर्ण हैं।

गर्भगृह के सामने के मध्यवर्ती मण्डप की छत में भी बड़े आकार की मीन अंकित है। सम्भवतः इसी मीन के उत्कीर्णन के कारण ही इसे 'मीन बसदि' कहा गया।

इस मन्दिर में द्वारपाल का अंकन भी मोहक है। वह त्रिभंग मुद्रा में है। उसके एक हाथ में कमल है, दूसरा पुट्ठे पर है, और मोतियों की माला है। एक बौना पुरुष तथा अनुचरों सहित एक स्त्री भी अंकित है। महावीर की पद्मासन मूर्ति के अतिरिक्त यहाँ दो अर्धनिर्मित मूर्तियाँ हैं जो पार्श्वनाथ के माता-पिता की बताई जाती हैं। एक शोभा-यात्रा भी चित्रित है।

शैलोत्कीर्ण मन्दिर—मेगुटी पहाड़ी की पश्चिमी ढलान पर चट्टान काटकर बनाया गया अथवा शैलोत्कीर्ण छोटा-सा मन्दिर भी है। यह भी सातवीं सदी में निर्मित माना जाता है। इसका मुखमण्डप साधारण है। गर्भगृह का प्रवेशद्वार त्रिशाखा शैली का है। उसी से गर्भगृह में प्रवेश किया जाता है। मूर्ति के पादपीठ पर अंकित सिंह की आकृति से यह अनुमान लगाया जाता है कि उस पर महावीर स्वामी की मूर्ति विराजमान रही होगी जो कि कालान्तर में नष्ट हो गई। वैसे यह भी सत्य है कि अन्य तीर्थंकरों के आसनों पर भी तीन या पाँच सिंह अंकित किए जाते थे।

मेगुटी पहाड़ी से अब गाँव के लाडखाँ मन्दिर वापस लौट आना चाहिए और गाँव में स्थित मन्दिर देखने चाहिए।

गाँव में स्थित जैन मन्दिर

गाँव में पार्श्व बसदि नामक एक मन्दिर ग्यारहवीं सदी का है जो कि ध्वस्त अवस्था में है। यह कुछ बड़ा ही लगता है। इसका द्वार सप्तशाखा प्रकार का है। इसके सिरदल पर तीर्थंकर प्रतिमा उत्कीर्ण है। पत्रावली का अंकन भी सुन्दर है। बारहवीं सदी की लगभग पाँच फुट ऊँची प्रतिमा पर सात फण हैं। मूर्ति पद्मासन में है। उसका आसन पाँच सिंहों के सिर पर है। दोनों ओर गज भी अंकित जान पड़ते हैं। प्रतिमा भी खण्डित या घिस गई जान पड़ती है। ग्यारहवीं सदी की ही एक और तीर्थंकर प्रतिमा मकरतोरण से युक्त है। उसके दोनों ओर चँवरधारी प्रतिमा के मस्तक से ऊपर तक उत्कीर्ण हैं। छत्रत्रय व भामण्डल के साथ ही आसन पर पाँच सिंह प्रदर्शित हैं।

अन्य मन्दिर-मठ

ऐहोल में और भी अनेक जैनमन्दिर हैं जिन्हें तीन प्रमुख समूहों के नाम से जाना जाता है। ये हैं—चारण्टी मठ समूह, येनियवार गुडी समूह तथा योगी नारयण समूह।

चारण्टी मठ किसी समय एक समृद्ध जैन केन्द्र रहा होगा। यह गाँव की पूर्व दिशा में है। यहाँ के मुख्य मन्दिर का प्रवेशद्वार उत्तर की ओर है। प्रवेश-मण्डप में अलंकरणयुक्त स्तम्भ हैं। उसके बाद कुछ बड़ा सभा-मण्डप है जिसमें चार स्तम्भ हैं। उसके बाद है गर्भगृह जिसमें महावीर स्वामी की मूर्ति है। इसके प्रवेशद्वार के सिरदल के तीन स्तर हैं। सबसे ऊपर कायोत्सर्ग मुद्रा में बारह तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। बीच के स्तर में पद्मासन में तीर्थंकर विराजमान हैं। एक स्तर में मन्दिरों के शिखरों जैसा अंकन है। मण्डप के स्तम्भों पर पुष्पों-पत्रों की सुन्दर डिजाइन है। इस मन्दिर में दूसरी मंज़िल भी है। वहाँ पहुँचने के लिए एक ही पत्थर में खाँचे बनाकर सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। ऊपर भी एक गर्भगृह और एक मण्डप तथा अग्रमण्डप हैं। इसका शिखर भी द्रविड शैली का है। पूर्व और पश्चिम में दो लघु मन्दिर भी सभामण्डप से जुड़े हैं। इनके सिरदल पर भी तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं, किन्तु गर्भगृह में मूर्ति नहीं है।

मन्दिर की दीवाल में 1119 ई. का कन्नड़ में एक शिलालेख है जिसके अनुसार, चालुक्य राजवंश के त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्य षष्ठ के शासन-काल में 'अय्यावोले के 500 स्वामियों'

(संघ) के शेट्टी केशवय्य ने इस मन्दिर की मरम्मत और संवर्धन के लिए स्थायी दान दिया था। शिलालेख से यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय (11वीं सदी में) यह मन्दिर जीर्ण हो चुका था अर्थात् यह मन्दिर भी बहुत प्राचीन है। उत्तरी छोर पर जो एक उपमन्दिर है उसके द्वार की चौखट पर भी सुन्दर नक्काशी है। दरवाजों पर चौबीस तीर्थंकर उत्कीर्ण किए गए हैं। चारण्टी मठ से एक चौकोर गलियारा है और द्वार की चौखटों पर विमानों की अनुकृतियाँ हैं। इसका शिखर दक्षिण भारतीय शैली का है। ये मन्दिर किसी समय चारण्टी मठ के आधीन हो गए, इसलिए चारण्टी मठ मन्दिर कहलाते हैं।

चारण्टी मठ के पास का मन्दिर सातवीं या आठवीं शताब्दी का अनुमानित किया जाता है। इसमें सम्भवत: महावीर स्वामी की मूर्ति रही होगी। अब उसकी हथेलियाँ नहीं हैं। आसन भी ध्वस्त है। उस पर पाँच सिंह और दोनों ओर हस्ति-शीर्ष का अंकन है। गर्भगृह का द्वार पंचशाखा प्रकार का है। बायाँ भाग टूट गया है। उसके सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। स्तम्भों को सुन्दर ढंग से उत्कीर्ण किया गया है। दो उपमन्दिर भी हैं जिनके प्रवेशद्वारों के सिरदल पर पद्मासन में तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। एक खड्गासन खण्डित प्रतिमा भी है।

यह मन्दिर समूह मदिनगुडी और त्र्यम्बकेश्वर मन्दिर समूहों के पास है।

ऐहोल में एक संग्रहालय भी है जिसमें खण्डित तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं।

येनियवारगुडी मन्दिर समूह में 6 मन्दिर हैं। इस समूह के पश्चिम-मुखी एक मन्दिर की रचना दसवीं सदी की जान पड़ती है। उसमें प्रवेश के लिए उत्तर की ओर स्तम्भोंयुक्त एक प्रवेश-मण्डप है। उसके सिरदल पर गजलक्ष्मी का अंकन है। इसकी सजावट के लिए व्यालवरि का अंकन दर्शनीय है। यह भी दो-मंजिला है। किन्तु अब शिखर, स्तूपी या ग्रीवा कुछ भी शेष नहीं है। यह भी दक्षिण भारतीय या द्रविड शैली का मन्दिर है। इसके आस-पास के मन्दिरों में भी अब मूर्ति नहीं हैं।

उपर्युक्त समूह का एक और मन्दिर है जिसका मुख दक्षिण की ओर है। यह मन्दिर चौकोर मण्डप-प्रकार का है। उसमें अलंकरणयुक्त चार भित्ति स्तम्भ हैं। इसकी छत समतल है और मुंडेर से युक्त है किन्तु नीचे की ओर की छत ढलुआ है।

इसी समूह के एक और मन्दिर (केन्द्रीय) का मुख्य आकर्षण उसके द्वार का सुन्दर उत्कीर्णन या सज्जा है। अब गर्भगृह में एक वृत्ताकार पीठ है और उस पर शिवलिंग स्थापित है। इसके नवरंग के दो कोनों पर दो उपमन्दिर भी हैं। चौकी साधारण है।

योगीनारायण मन्दिर समूह में एक बड़ा पूर्व-मुखी मन्दिर है। यह मन्दिर त्रिकूट या तीन मन्दिरों का समूह है। तीनों मन्दिरों की एक वीथिका (गैलरी) है जो बाहरी मण्डप की ओर खुलती है। गर्भगृह में जो पादपीठ है और जो अन्य चिह्न हैं, उनसे ज्ञात होता है कि यहाँ किसी समय भगवान महावीर की मूर्ति विराजमान रही होगी। किन्तु अब यहाँ महावीर के स्थान पर कार्तिकेय की प्रतिमा स्थापित है। त्रिकूट के गर्भगृह में पार्श्वनाथ की पॉलिशदार मूर्ति है। इस मन्दिर का शिखर अब शेष नहीं है। इसकी रचना-शैली से इसे दक्षिण भारतीय शैली का माना जाता है। मन्दिर के स्तम्भ बलुआ पत्थर के हैं। इस कारण भी इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। यह मन्दिर-समूह विरूपाक्ष मन्दिर के पास है।

यहाँ के शिवमन्दिर में तीन जैन अवशेष भी दर्शनीय हैं। उनमें से एक है 11वीं सदी की ज्वालामालिनी यक्षी की मूर्ति (चित्र क्र. 17)। यक्षी ललितासन में है। उसके मस्तक पर एक छत्र है, तथा मुकुट में चन्द्रप्रभ भगवान उत्कीर्ण हैं। यक्षी के आठ हाथ प्रदर्शित हैं। दूसरी वस्तु, ग्यारहवीं-बारहवीं सदी की एक भट्टारक-मूर्ति है। भट्टारक पद्मासन में हैं, उनके मस्तक के आस-पास प्रभामण्डल है और अपने वक्षस्थल तथा कन्धों पर वे महीन वस्त्र धारण किए हुए हैं। तीसरी वस्तु, तीर्थंकर का एक आसन है। यह भी ग्यारहवीं-बारहवीं सदी का होगा। आसन के ऊपर तीन छत्र हैं, चँवरधारी भी हैं तथा एक चाप है। आसन (पादपीठ) में पाँच सिंह उत्कीर्ण हैं।

विद्याधर-मूर्ति

ऐहोल की एक अनुपम कलाकृति इस समय दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय (म्यूज़ियम) में है। यह है विद्याधर मूर्ति। इसमें विद्याधरों को आकाश में उड़ते हुए बड़े आकर्षक ढंग से दिखाया गया है। ऐसा लगता है कि उनके कपड़ों में हवा भर गई है और उनके आस-पास बादल तैर रहे हैं।

स्मारक

ऐहोल गाँव के दक्षिण-पश्चिम दरवाज़े के बाहर हनुमन्त की एक आधुनिक वेदी है। उसके सामने के ध्वजस्तम्भ के पाषाण के पादुकातल में एक वीरगल या स्मारक है। उस पर प्राचीन कन्नड में एक लेख है। पाषाण के दूसरे भाग में पद्मासन में जिनेन्द्र-मूर्ति है। दोनों ओर यक्षिणियाँ हैं, चँवरधारी हैं और शेष भाग में यह उल्लेख है कि अय्यावोले के पाँच सौ महाजनों ने दान दिया था।

विशेष-सूचना

अब ऐहोल की यात्रा समाप्त होती है। अगला दर्शनीय स्थल है पट्टदकल। वहाँ ठहरने, भोजन आदि की व्यवस्था नहीं होने से यह परामर्श दिया जाता है कि निजी वाहन वाले ऐहोल से पट्टदकल जाएँ और वहाँ से बादामी। जो सार्वजनिक वाहन से यात्रा करें वे ऐहोल से पट्टदकल होते हुए सीधे बादामी या ऐहोल से बागलकोट और वहाँ से बादामी जाएँ तथा वहाँ से पट्टदकल आएँ। यह ध्यान रहे कि पट्टदकल छोड़ देने लायक स्थान नहीं है। पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में सुन्दर उद्यान के बीच अनेक दर्शनीय अजैन मन्दिर और एक जैन मन्दिर है। कुल पाँच-छः घण्टे का समय पर्याप्त है। ऐहोल से पट्टदकल के लिए सार्वजनिक वाहन की और ठहरने आदि की ही असुविधा है।

पट्टदकल

अवस्थिति और मार्ग

रेल-मार्ग द्वारा यहाँ पहुँचने के लिए बादामी रेलवे स्टेशन सबसे पास पड़ता है जो कि हुबली-शोलापुर रेलवे-मार्ग पर है और बागलकोट के बाद आता है। रेलयात्री को बादामी रेलवे-स्टेशन से बादामी नगर बस-स्टैण्ड आना पड़ता है जो कि स्टेशन से चार-पाँच कि. मी. दूर है। बस-स्टैण्ड से बसों के अतिरिक्त टेम्पो, मेटाडोर भी स्टैण्ड के बाहर खड़े मिलते हैं। इस प्रकार बादामी से पट्टदकल जाना और वापस आना अधिक सुविधाजनक है। ऐहोल से भी पट्टदकल आने-जाने के लिए बसें हैं किन्तु बहुत ही कम हैं और जाने वाली तथा वापस आने वाली बसों के समय में अन्तर भी बहुत कम है। इसलिए पर्यटक को असुविधा हो सकती है।

सड़क-मार्ग द्वारा बादामी से पट्टदकल 29 कि. मी. और ऐहोल से 21 कि.मी. की दूरी पर है। पर्यटक-बस या निजी वाहन वाले लोगों के लिए बागलकोट—ऐहोल—पट्टदकल—बादामी यात्रा ठीक है। किन्तु सार्वजनिक वाहन द्वारा यात्रा करने वालों को बादामी से ही यहाँ आना जाना ठीक रहेगा।

क्षेत्र-दर्शन

पट्टदकल के मन्दिरों आदि को देखने के लिए कम-से-कम आधे दिन का न्यूनतम समय आवश्यक है।

शिलालेखों में इस स्थान का नाम 'पट्टद किसुवलल' दिया गया है।

यह स्थान मलप्रभा नदी के किनारे बसा हुआ है। जहाँ सार्वजनिक बस रुकती हैं वहीं भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा निर्मित एक सुन्दर उद्यान में दस जैनेतर मन्दिरों का एक समूह दर्शनीय है। ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि ऐहोल, बादामी या पट्टदकल—इन तीन स्थानों में से किसी एक स्थान के मन्दिर में चालुक्य राजाओं का राज्याभिषेक हुआ करता था। पट्टदकल भी उन स्थानों में से एक है जहाँ कि मन्दिर-निर्माण के प्रयोग हुए थे। यहाँ उत्तर-भारतीय शैली के रेखा नागर प्रासाद (मन्दिर) हैं तो दक्षिण भारतीय विमान-शैली के मन्दिर भी हैं। यहाँ के जम्बूलिंग, काशी विश्वेश्वर और गलगनाथ मन्दिर शिखरमण्डित उत्तर भारतीय शैली के देवस्थान हैं तो संगमेश्वर, विरूपाक्ष और मल्लिकार्जुन मन्दिर दक्षिण भारतीय शैली—चौकोर छत तथा उत्तरोत्तर कम होते जाने वाले तलों से युक्त शिखरवाले मन्दिर हैं। ये मन्दिर तीसरी शताब्दी से लेकर नौवीं शताब्दी के बीच निर्मित हुए हैं।

यहाँ खुले आकाश के नीचे एक संग्रहालय भी है।

जैनेतर मन्दिरों में संगमेश्वर, विरूपाक्ष और मल्लिकार्जुन मन्दिरों की कला देखने लायक है। इनमें देवी-देवता, मिथुन, मौक्तिक मालाएँ, नरसिंह और रामायण, महाभारत तथा भागवत के दृश्य अंकित किए गए हैं।

पट्टदकल का प्राचीन जैन मन्दिर—यह उपर्युक्त मन्दिर-समूह से लगभग आधा किलोमीटर की दूरी पर बादामी जाने वाली सड़क के किनारे स्थित है। यह मन्दिर यहाँ

सड़क के किनारे बने चर्च की पिछली दीवार के पास है। दोनों का अहाता साथ-साथ लगता है। इसी के पास प्राइमरी हेल्थ सेण्टर भी है। भारतीय पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में होते हुए भी इस मन्दिर तक पहुँचने के लिए पक्का मार्ग नहीं है। यह है तो सड़क से लगभग दो सौ गज की दूरी पर ही किन्तु पक्का मार्ग तो होना ही चाहिए। जैन मन्दिर का अहाता काफी बड़ा है और उसमें ईंटों के किसी भवन के खण्डहर हैं तथा एक पक्की गहरी बावड़ी भी है।

राष्ट्रकूट शासकों ने अपने शासन-काल में दो महत्त्वपूर्ण मन्दिरों का निर्माण करवाया। एक तो एलौरा का कैलाश नामक मन्दिर और दूसरा पट्टदकल का जैन मन्दिर।

विद्वानों का अनुमान है कि पट्टदकल का जैन मन्दिर आठवीं सदी के अन्तिम चतुर्थांश में निर्मित हुआ होगा।

यह मन्दिर अच्छे बलुआ पत्थर से निर्मित है। इस मन्दिर का अधिष्ठान (चौकी) अपेक्षाकृत कम ऊँचाई का है। यह विशाल मन्दिर चौकोर वर्गाकार है। इसका शिखर भी इसी प्रकार का है। इस कारण इसकी गणना दक्षिण भारतीय शैली के मन्दिरों में की जाती है।

मन्दिर का मुखमण्डप या प्रवेश-मण्डप अनेक स्तम्भों से निर्मित है। ये स्तम्भ भी बलुआ पत्थर के हैं। ये तीन ओर बने हैं और मन्दिर को भव्यता प्रदान करते हैं। इनकी गोल कटाई और इन पर उत्कीर्ण मोतियों की मालाएँ आकर्षक हैं। अब यह मन्दिर ध्वस्त अवस्था में है। इसके मुखमण्डप के कुछ भाग पर छत भी नहीं है।

मुख-मण्डप के बाद नवरंग-मण्डप है। इसके प्रवेश-द्वार पर दोनों ओर दो विशालकाय हाथी बने हैं। ये ही इस मन्दिर की सबसे बड़ी विशेषता हैं। हाथियों का ऐसा सुन्दर अंकन कर्नाटक में शायद कहीं नहीं है। ये हाथी आठ-नौ फुट ऊँचे हैं, उन पर महावत आसीन हैं, उनकी सूंड में माला और नारियल हैं।

प्रवेश-द्वार सप्तशाखायुक्त जान पड़ता है। उसमें सबसे नीचे पूर्ण कुम्भ का उत्कीर्णन है।

नवरंग मण्डप के स्तम्भ लगभग चार फुट चौड़े हैं। उनकी सुन्दर ढंग से गोल और चौकोर कटाई की गई है। यह मण्डप आवृत है, खुला नहीं है। इसे अन्तराल के माध्यम से विमान वाले भाग से जोड़ दिया गया है। इस अन्तराल के नासिकाग्रों पर पद्मासन में तीर्थंकर एवं अन्य मूर्तियाँ हैं।

गर्भगृह का द्वार नौ शाखा वाला है। उसके सिरदल पर मकरतोरण तथा पत्रावली उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह के द्वार के पास दोनों ओर खुला रास्ता है।

गर्भगृह में अब कोई मूर्ति नहीं है। केवल गोल-सा एक पत्थर गड़ा है। सम्भवतः इस पर मूर्ति विराजमान रही होगी।

नीचे जो गर्भगृह है उसी के ऊपर (दूसरी मंज़िल पर) एक छोटा गर्भगृह है जो वर्गाकार शिखर जैसा दिखाई देता है। ऊपर जाने के लिए मुखमण्डप में एक लम्बी शिला टेढ़ी रखी हुई है। उसे ही काट कर सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। ऊपर के गर्भगृह की भित्तियाँ नीचे की अन्तः भित्तियों को ही ऊपर तक ले जाकर बनाई गई हैं।

कुल मिलाकर यह मन्दिर भी वास्तुकला का एक विशेष उदाहरण है। इसके दो हाथी ही इसकी उत्कृष्टता के लिए पर्याप्त हैं।

वर्तमान में यह मन्दिर पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में है, यहाँ पूजन नहीं होती।

बादामी

अवस्थिति एवं मार्ग

सड़क-मार्ग द्वारा बागलकोट से बादामी की दूरी 79 कि. मी. है। पुराने किन्तु अभी भी प्रचलित नक्शों में ठीक-ठीक मार्ग एवं दूरी ज्ञात नहीं होती। किन्तु 1984 में कर्नाटक राज्य सड़क परिवहन निगम द्वारा प्रकाशित नक्शों के अनुसार, बागलकोट से कमटगी जाना चाहिए और वहाँ से बादामी। इस मार्ग पर कर्नाटक सरकार की सेमी लक्ज़री बसें भी चलती हैं।

रेल द्वारा यात्रा करने वालों के लिए शोलापुर-हुबली रेलवे लाइन पर बागलकोट से आगे बादामी रेलवे-स्टेशन मिलता है। यहाँ पहुँचने पर यात्रियों को कुछ असुविधा हो सकती है, क्योंकि बादामी तालुक से स्टेशन चार-पाँच किलोमीटर की दूरी पर है और सवारी के नाम पर केवल ताँगा ही उपलब्ध है।

यहाँ ठहरने के लिए गैर-सरकारी अच्छे होटल नहीं हैं, न ही जैन-धर्मशाला है। पर्यटन विभाग का होटल कुछ महँगा है।

इस असुविधा की चिन्ता नहीं करते हुए भी बादामी अवश्य देखना चाहिए। जैन पर्यटकों के लिए यहाँ का जैन गुफा-मन्दिर दर्शनीय है जिसे जी भरकर देखने-समझने के लिए कम-से-कम आधा दिन आवश्यक है।

इस स्थान का प्राचीन नाम बादामि, वातापी (पि) पुरी, बादावी अथवा बादामी अधिष्ठान था।

एक ऐतिहासिक नगर

आज का बादामी किसी समय एक ऐतिहासिक नगर था। यहाँ चालुक्य राजाओं का शासन छठी शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक रहा, जबकि यह नगर इन राजाओं की राजधानी रहा। चालुक्यनरेश मंगलेश ने राजधानी ऐहोल से हटाकर यहाँ स्थापित की थी। एक खड़ा ऊँचा पहाड़ और एक विशाल झील उस समय राजधानी के लिए उपयुक्त समझे गए होंगे।

चालुक्य राजाओं के समय में यह नगर धर्म, संस्कृति, कला और विद्वत्ता का केन्द्र था। संगीत के क्षेत्र में आज भी बादामी को स्मरण किया जाता है। दक्षिण भारत में कर्नाटक संगीत प्रारम्भ करने से पहले *'वातापि-गणपतिं भजे'* अर्थात् *'वातापि के गणपति को स्मरण करता हूँ'* वन्दना की जाती है। इसका कारण यह है कि यहाँ दो चक्रवर्तियों—तृतीय सोमेश्वर तथा उसके पुत्र जगदेकमल्ल ने सबसे पहले संगीत के प्रकरणबद्ध ग्रन्थ की रचना की थी। जहाँ तक कला का प्रश्न है, यहाँ के गुफा-मन्दिर आज भी उसका प्रमाण दे रहे हैं।

चालुक्य शासक वैसे तो वैष्णव धर्म के अनुयायी थे किन्तु उन्होंने शैव, जैन और अन्य धर्मों को भी पर्याप्त प्रोत्साहन दिया था एवं वे उनका आदर करते थे। यहाँ एक ही पहाड़ में थोड़े-थोड़े अन्तर से निर्मित वैष्णव, शैव और जैन गुफा-मन्दिर इसका प्रत्यक्ष परिचय देते हैं। मन्दिरों और दुर्ग-निर्माण में भी ये आगे थे। चालुक्यनरेश मंगलेश ने इस नगरी में गुफा-मन्दिरों का प्रारम्भ किया था ऐसा माना जाता है।

यहाँ के शासकों में पुलकेशी द्वितीय अत्यन्त प्रतापी एवं उदार नरेश हुआ है। उसके समय में चालुक्य साम्राज्य की सीमा पूर्व में उड़ीसा, पश्चिम में धारापुरी (एलिफैण्टा), दक्षिण में पल्लव राज्य तक और उत्तर में नर्मदा नदी तक पहुँच गई थी। कन्नौज के सम्राट हर्ष-वर्धन से भी उसने टक्कर ली थी और उसे हराया था तथा 'परमेश्वर' की उपाधि ग्रहण की थी। उसने हर्षवर्धन को नर्मदा से आगे बढ़ने ही नहीं दिया। ईरान के शासक खुसरो ने उसके राजदरबार में अपना दूत भेजा था। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी पुलकेशी के राज्य की प्रशंसा की है। ऐहोल के मेगुटी मन्दिर (जैन मन्दिर) में जो शिलालेख आज भी लगा है, उसमें भी जैनाचार्य रविकीर्ति ने इस नरेश और उसके पराक्रम एवं गुणों की जी भर प्रशंसा की है। चालुक्य वंश ने यहाँ 200 वर्षों तक राज्य किया। उनके बाद राष्ट्रकूटों ने, फिर कलचुरियों ने, तदनन्तर देवगिरि (दौलताबाद), विजयनगर, आदिलशाही आदि शासकों का यहाँ शासन रहा।

बादामी नगर लाल रंग के बलुआ पत्थरों वाले दो छोटे पहाड़ों के बीच में बसा हुआ है। ये पहाड़ लगभग 400 फुट ऊँचे हैं। इन्हीं दो पहाड़ों के बीच में स्वच्छ जल वाला एक सरोवर है जिसे 'अगस्त्य तीर्थ' कहा जाता है। पहाड़ियों के ऊपर क़िला है जिसमें जाने के लिए खतरनाक लगने वाली सीढ़ियाँ हैं। क़िले के लिए मार्ग गुफा-मन्दिर के पास से है किन्तु अब अच्छी दशा में नहीं है। गुफा-मन्दिर क़िले के पश्चिमी भाग में स्थित है।

गुफा-मन्दिर

पर्यटन साहित्य और वास्तु-विवरणों में यहाँ चार गुफा-मन्दिर बताए जाते हैं। किन्तु वास्तव में यहाँ पाँच गुफाएँ हैं। एक गुफा, जो कि प्राकृतिक लगती है, तीसरी और चौथी गुफा के बीच में है। इसमें कुछ अंकन भी हैं किन्तु शायद यहां मन्दिर निर्मित होते-होते रह गया। इसके लिए कुछ बड़े पत्थरों पर से चढ़कर जाना पड़ता है, वैसे चार-पाँच सीढ़ियाँ भी हैं। यह अन्य गुफाओं के रास्ते में है। एक गुफा-मन्दिर तो शहर से ही दिखाई देता है।

बादामी से गदग की ओर जाने वाली सड़क पर, जहाँ बादामी नगर का अन्त मालूम पड़ता है वहीं, पहले निचली ढलान पर चलने के बाद गुफा-मन्दिरों तक जाने के लिए पहाड़ी पर पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। एक दीवाल जैसी रचना भी इन सीढ़ियों के साथ-साथ चलती है। इन सीढ़ियों से ऊपर जाने पर सबसे पहले हमें शैव-गुफा मिलती है जो कि गुफा-मन्दिर क्रमांक 1 है। यह शिला के अधोभाग में बना है। गुफा के ऊपर लगभग 30 फीट शिला जान पड़ती है। इसमें स्तम्भोंयुक्त बरामदा (मुखमण्डप), चौकोर स्तम्भोंयुक्त महामण्डप (हॉल) और चट्टान को काटकर बनाया गया एक गर्भगृह है। गर्भगृह में शिवलिंग है जो उत्तरकालीन रचना जान पड़ती है। गुफा-मन्दिर क्रमांक 2 और 3 (दोनों ही वैष्णव) की तुलना में यह मध्यम आकार की है। इसमें मौक्तिक मालाओं एवं शिव के ताण्डव नृत्य सम्बन्धी दृश्य हमें आकर्षित करते हैं।

गुफा-मन्दिर क्रमांक 2 वैष्णव मन्दिर है। इसका बाहरी भाग तीस-पैंतीस फीट चौड़ा जान पड़ता है और इसके ऊपर का शिला-भाग लगभग पचास फीट। इसमें भी मण्डपों की रचना पहली गुफा के समान है। किन्तु इसमें छत पर स्वस्तिक, कमल आदि का अंकन, वादक

और नर्तक-दल, मौक्तिक मालाएँ और द्वारपाल आदि का उत्कीर्णन ध्यान देने योग्य है।

इस गुफा-मन्दिर से दोनों पर्वतों के बीच के सरोवर के सुन्दर दृश्य का आनन्द लिया जा सकता है। सामने ही दूसरे पर्वत पर चार-पाँच मन्दिर दिखाई पड़ते हैं।

गुफा-मन्दिर 3 से पहले क़िले का दक्षिणी भाग है और सीढ़ियाँ दिखाई देती हैं। इसके प्रवेशद्वार पर नालदण्ड सहित कमल शोभते हैं। क़िले में पुरानी तोप रखी है। यहीं सीढ़ियों के पास से बादामी की आधुनिक आबादी का अच्छा दृश्य दिखाई देता है। इस गुफा के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि चालुक्यनरेश मंगलीश ने इसे ईस्वी सन् 578 में निर्मित कराया था। उसी समय उसने अपनी राजधानी ऐहोल से हटाकर बादामी में स्थापित की थी। यह गुफा-मन्दिर सबसे बड़ा है। इसके मुखमण्डप या सामने के बरामदे की चौड़ाई लगभग 70 फीट है और गुफा की गहराई लगभग 65 फीट। ऊँचाई में यह लगभग 15 फीट है। इसके ऊपर लगभग 50-60 फीट ऊँची शिला है जिससे पानी रिसता रहता है। प्रवेश-मण्डप के साथ उत्कीर्ण संगीत-वादक मण्डली, विशाल स्तम्भों पर सूक्ष्म नक्काशी, पौराणिक दृश्य, शेषनाग पर विष्णु जिनके ऊपर फणावली है, मिथुन, कामक्रीड़ारत युगल, हनुमान आदि अन्य उत्कीर्ण कृतियाँ देखने लायक हैं। कहा जाता है कि इस गुफा एवं अन्य अजैन गुफाओं की दीवालों पर उत्कीर्णन बाद में किया गया है। यह गुफा बादामी नगर से भी दिखाई पड़ती है।

वास्तुविदों का मत है कि ये गुफा-मन्दिर इस क्रम से निर्मित हुए—पहले क्रमांक 3, फिर 2 और 1 तथा सबसे बाद में क्रमांक 4।

जैन गुफा-मन्दिर : मूर्ति-शिल्प की अनोखी शोभा

इन गुफा-मन्दिरों में सबसे अन्तिम अर्थात् गुफा-मन्दिर क्रमांक 4 जैन मन्दिर (चित्र क्र. 19) है। इतिहासकारों का मत है कि इसका निर्माण पूर्वोक्त अजैन गुफाओं के लगभग सौ वर्षों बाद हुआ होगा। यह गुफा-मन्दिर 31 फीट चौड़ा और 16 फीट गहरा है। इसके ऊपर लगभग 40 फीट शिला है जो कि टुकड़े-टुकड़े दिखती है। इसके ऊपर भी पानी रिसता रहता है। इसके सामने खुला आँगन बहुत कम है और सीढ़ियों का भी अन्त हो जाता है। इसके एकदम नीचे सरोवर का सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। इस गुफा-मन्दिर को यहाँ के लोग 'मेण बसदि' भी कहते हैं। अन्य गुफाओं से ऊपर स्थित होने के कारण इसे 'मेगण बसदि' (अर्थात् ऊपर का मन्दिर) कहा जाता था जो कि कालान्तर में 'मेण बसदि' हो गया। यहाँ 7-8वीं सदी के एक-दो शिलालेख भी हैं।

यह मन्दिर 'आकार में लघुतम किन्तु अलंकरण में सर्वोत्कृष्ट' है। इस गुफा-मन्दिर के प्रवेश-मण्डप या बरामदे में चार स्थूलकाय स्तम्भ और दो भित्ति-स्तम्भ हैं। इन पर मोतियों की माला का सुन्दर एवं सूक्ष्म अंकन दर्शक को आकर्षित करता है। ये स्तम्भ वर्गाकार हैं और इनकी सजावट के लिए कमल, मिथुन, मकर, वल्लरियों आदि का प्रयोग किया गया है। इनके शिखर कलश और कुम्भ से सुशोभित हैं। स्तम्भों की शिला को छैनी से कुरेद-कुरेद कर कलापूर्ण बनाया गया है और उनमें तीर्थंकरों की लघुमूर्तियाँ उकेरी गई हैं। इन लघु-मूर्तियों के केन्द्र भाग में महावीर की कुछ बड़ी मूर्ति है। ऐसा लगता है कि इस गुफा-मन्दिर

के एक-एक इंच स्थान का उपयोग तीर्थंकर मूर्तिरूपी रत्नों से मण्डित करने में किया गया है। कुछ मूर्तियाँ खड्गासन हैं तो कुछ पद्मासन में। स्तम्भों को सुरसुन्दरियों के अंकन से भी सजाया गया है।

इस गुफा-मन्दिर की छत में भी सुन्दर, आकर्षक उत्कीर्णन है। इसके केन्द्रीय भाग में आकाशचारी विद्याधर प्रदर्शित हैं। उनका अंकन ऐसा है मानो उनके वस्त्रों में हवा भर गई हो और वे सचमुच ही हवा में तैर रहे हों। इस प्रकार का अंकन ऐहोल को छोड़कर कर्नाटक में शायद ही और कहीं हो। इसी प्रकार एक भाग में कुण्डली मारे नाग का अंकन भी मन को लुभाता है। यहाँ रंगीन दृश्य भी अंकित हैं।

उपर्युक्त गुफा-मन्दिर को तीर्थंकर मूर्तियों का एक विशाल संग्रहालय कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। फिर भी तीन विशालकाय मूर्तियों की ओर हमारा ध्यान विशेष रूप से जाता है। ये मूर्तियाँ भगवान आदिनाथ, सुपार्श्वनाथ और बाहुबली की हैं।

आदिनाथ की प्रतिमा लगभग 8 फीट ऊँची है और चौथे स्तम्भ से जुड़े बरामदे की दाहिनी दीवाल में है। ये आदिनाथ चौबीसी के मूलनायक हैं। उनके ऊपर तीन छत्रों का अंकन है जिनके बीच में एक पद्मासन तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। छत्रों के ऊपर गोलाकृति में फूल-पत्ती अंकित हैं। इस कायोत्सर्ग प्रतिमा के दोनों कन्धों तक जटाएँ प्रदर्शित हैं। सिर के दोनों ओर चँवर तथा पीछे भामण्डल दर्शाए गए हैं। यक्ष-यक्षी भी उत्कीर्ण हैं।

बरामदे के बाईं ओर सुपार्श्वनाथ की लगभग 8 फीट ऊँची प्रतिमा है। इस पर पाँच फण हैं। यह मूर्ति कायोत्सर्ग मुद्रा में है। इसके फणों के ऊपर भी फण जान पड़ता है। एक भक्ता को घुटनों के पास बैठी दिखाया गया है। यह महिला जक्कव्वा है जिसने, यहाँ लगे शिलालेख के अनुसार, बारहवीं सदी में समाधिमरण किया था।

इस गुफा-मन्दिर की पार्श्वनाथ मूर्ति भी दर्शनीय है। कायोत्सर्ग मुद्रा में यह मूर्ति सात फणों से युक्त है। किन्तु उस पर एक ही छत्र अंकित है। सर्प-कुण्डली भगवान की मूर्ति के पीछे तक गई है।

बाहुबली की अद्भुत प्राचीन मूर्ति

इस गुफा-मन्दिर में बाहुबली (चित्र क्र. 20) की लगभग 8 फीट ऊँची एक सुन्दर प्रतिमा है। यह श्रवणबेलगोल की प्रतिमा से भी प्राचीन है। इस मूर्ति का निर्माण ईसा की छठी या अधिक से अधिक सातवीं सदी में अर्थात् लगभग 1300 वर्ष पूर्व हुआ होगा। साधारण तौर पर, बाहुबली प्रतिमा के कन्धों पर जटाओं का अंकन नहीं किया जाता, किन्तु इस प्रतिमा के दोनों कन्धों पर केशों की दो-दो लटें लटकती हुई अंकित की गई हैं। इसके पैरों के पास एक-एक सर्प दोनों ओर घुटनों से नीचे तक उत्कीर्ण हैं और घुटनों से ऊपर भी दोनों ओर एक-एक सर्प प्रदर्शित हैं। दोनों ओर एक-एक सर्प की पूँछ कन्धों के पास बल खाकर सिर की ऊँचाई तक चित्रित की गई हैं। बाहुबली की दोनों बहिनों—सुन्दरी और ब्राह्मी—का भी यहाँ सुन्दर अंकन है। बाहुबली के केशों का जूड़ा भी आकर्षक रूप में उत्कीर्ण है। कुल मिलाकर, यह प्रतिमा अद्भुत, आकर्षक एवं अपने ढंग की निराली है।

महामण्डप के बाद, चट्टान को ही काटकर बनाया गया एक छोटा-सा गर्भगृह है। इसमें

प्रवेश के लिए तीन सीढ़ियाँ और चन्द्रशिला है। प्रवेशद्वार पंचशाखायुक्त है जिस पर बेल-बूटे की सूक्ष्म नक्काशी की गई है। इसके सिरदल पर भी नक्काशी दिखाई देती है जो कुछ-कुछ मिट गई जान पड़ती है। दोनों ओर दो तीर्थंकर पद्मासन में दिखाए गये हैं। प्रवेशद्वार के दोनों ओर दो द्वारपाल भी उत्कीर्ण हैं।

मन्दिर के गर्भगृह में पद्मासन में महावीर स्वामी की प्रतिमा है जिसकी पहिचान तीन सिंहों वाले उसके आसन से होती है। प्रतिमा धूमिल पड़ गई है और उसे विकृत कर दिया गया है। मूर्ति का भामण्डल साधारण है और चापाकार है। मूर्ति पर तीन छत्र हैं जो कि अलग-अलग हैं और उलटी झाँझ की तरह दिखाई देते हैं। प्रतिमा के सिर से ऊपर तक चँवरधारी चित्रित हैं और अशोक वृक्ष-सा अंकन भी है। छत में आकाशचारी विद्याधरों को दर्शाया गया है। ये गर्भगृह के सामने की छत में भी प्रदर्शित हैं।

यह जैन गुफा-मन्दिर सबसे ऊँचा है और छोटा होते हुए भी मूर्ति-शिल्पकला का एक अद्भुत संग्रहालय है। नौ इंच से लेकर आठ-नौ फीट ऊँची तक की अनगिनत मूर्तियाँ इस पूरे गुफा-मन्दिर में सुशोभित हो रही हैं।

येलम्मा का मन्दिर

पहाड़ से नीचे उतरकर सरोवर के किनारे पहुँचने पर देवी येलम्मा का द्रविड़ शैली का एक छोटा-सा सुन्दर मन्दिर है। उसके सिरदल पर गजलक्ष्मी, गर्भगृह के बाहर दो छोटे-छोटे पत्थरों पर चरण और नागफलक देखे जा सकते हैं।

भूतनाथ मन्दिर-समूह

सरोवर के दूसरी ओर भूतनाथ मन्दिर-समूह है। यहाँ उपाध्याय या आचार्य परमेष्ठी को उपदेश-मुद्रा में देखा जा सकता है। वे तीन सिंहोंवाले आसन पर विराजमान हैं। उनके दोनों ओर सिर से ऊपर तक चँवरधारी अंकित हैं। संभवतः अशोक वृक्ष का भी अंकन है। स्तम्भोंयुक्त एक चाप के सिरों पर मकर उत्कीर्ण हैं। ये उपदेशक के पीछे अलंकरण के रूप में प्रयुक्त हैं।

लक्कुण्डि

बादामी, पट्टदकल, ऐहोल की कला-कृतियाँ देखने के बाद, निश्चय ही पर्यटक विजय-नगर साम्राज्य की राजधानी हम्पी के कलावशेषों को शीघ्र से शीघ्र देखना चाहेगा किन्तु मार्ग में एक और महत्त्वपूर्ण स्थान है लक्कुण्डि। यह राजमार्ग पर है और यहाँ पुरातत्त्व विभाग ने अधिकांशतः जैन-मूर्तियों से सम्पन्न अपना संग्रहालय खोल रखा है।

अवस्थिति एवं मार्ग

लक्कुण्डि का प्राचीन नाम लोक्किगुण्डि था। लोविक स्थान का नाम था और 'गद्याण' (गुण्डि) सिक्कों का नाम। यहाँ सोने के सिक्के बनाने की टकसाल थी।

लक्कुण्डि धारवाड़ ज़िले के गदग तालुक का एक गाँव है। यह गाँव गदग से ग्यारह कि. मी. की दूरी पर है और कारवाड़-हुबली-गदग-होसपेट-बल्लारी मुख्यमार्ग के किनारे पर स्थित है। एकदम सड़क के किनारे बसा हुआ है यह।

बादामी से रोन (Ron, 32 कि. मी.) होते हुए गदग सड़क-मार्ग द्वारा पहुँचा जाता है। गदग से दिन में सात-आठ बार सिटी बसें केवल लक्कुण्डि तक आती-जाती हैं, टेम्पो भी चलते हैं और मुख्य मार्ग पर अन्य स्थानों को जाने वाली बसें भी उपलब्ध हैं।

रेल-मार्ग (हुबली-शोलापुर लाइन) द्वारा गदग की बादामी से दूरी 68 कि. मी. है। यहाँ से रेल द्वारा हुबली केवल 59 कि. मी. है।

लक्कुण्डि में ठहरने की व्यवस्था नहीं है इसलिए यह अधिक उचित होगा कि गदग को केन्द्र बनाकर लक्कुण्डि की यात्रा की जाए। निजी वाहन वाले सीधे ही यहाँ पहुँच सकते हैं।

गदग सम्बन्धी कुछ उपयोगी जानकारी इस प्रकार है—यह एक छोटा शहर है, ठहरने के लिए बस स्टैण्ड के पास जो बाजार है उसमें पास ही कुछ होटल हैं। यहाँ अनेक कॉटन-मिल हैं। क्लॉथ मार्केट के पास राजस्थान जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ का जैनभवन और श्वेताम्बर मन्दिर है तथा हेमचन्द्राचार्य ज्ञानमन्दिर भी है। गुजराती रोड पर एक धर्मशाला भी है किन्तु उसमें भी श्वेताम्बर यात्रियों को ही ठहरने की सुविधा दी जाती है। अतः दिगम्बर यात्रियों को शाकाहारी होटलों में ही ठहरना चाहिए।

ऐतिहासिक महत्त्व

बादामी के चालुक्यों को परास्त कर राष्ट्रकूट वंश के शासकों ने इस क्षेत्र में सत्ता हथिया ली थी। किन्तु दसवीं शताब्दी के अन्त में चालुक्यों का पुनः उदय हुआ और उन्होंने कल्याणी को अपनी राजधानी बनाया। इन चालुक्यों में तैलप एक वीर, पराक्रमी और योग्य शासक हुआ है। इसी तैलप ने धार के परमार राजा मुंज को छह बार हराकर बन्दी बनाया था। तैलप की बहिन मृणालवती और मुंज के प्रेम की गाथा भी इतिहास-प्रसिद्ध है। यह राजा सर्वधर्म-सहिष्णु था। आधुनिक कर्नाटक के बल्लारी ज़िले के कोगलि नामक स्थान को चेन्न-पार्श्वनाथ बसदि के 992 ई. के शिलालेख से ज्ञात होता है कि यह राजा जैन धर्म का अनुयायी था। उसने कन्नड़ के सुप्रसिद्ध कवि रन्न को 'अजित पुराण' नामक महाकाव्य पूर्ण करने पर 'कवि-चक्रवर्ती' की उपाधि से विभूषित किया था। कहा जाता है कि लक्कुण्डि का 'ब्रह्म जिनालय' भी इसी राजा ने निर्मित करवाया था।

जिनभक्त अत्तिमब्बे

तैलप का एक महादण्डनायक नागदेव था। उसकी पत्नी अत्तिमब्बे अत्यन्त जिनभक्त और दानशीला थी। उसे 'दानचिन्तामणि' की उपाधि प्रदान की गई थी। उसने 'ब्रह्मजिनालय' के लिए भी दान दिया था। ऐसा उल्लेख 1007 ई. के लक्कुण्डि के शिलालेख में है। इस

महिला ने रत्नों की 1500 जिन-मूर्तियाँ बनवाकर विभिन्न मन्दिरों में दान में दी थीं। इसी प्रकार उसने कन्नड़ कवि पोन्न द्वारा रचित 'शान्तिपुराण' की एक हज़ार प्रतियाँ लिखवाकर विभिन्न मन्दिरों को भेंट की थीं। उसके सतीत्व के प्रभाव से गोदावरी का वेग रुक गया था, ऐसी भी जनश्रुति है। 'अजितपुराण' में कवि ने दानशीला अत्तिमब्बे के सम्बन्ध में लिखा है—"सफ़ेद रुई के समान अत्तिमब्बे का चरित्र शुभ्र है, गंगाजल के समान पवित्र है, अजितसेन मुनि के चरणों के समान पूज्य है तथा सुशोभित कोपणाचल के समान पवित्र है।"

विभिन्न शिलालेखों, साहित्यिक कृतियों के आधार पर अत्तिमब्बे की जीवन एवं चमत्कारी घटनाओं का जो वर्णन डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने अपनी पुस्तक 'प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष एवं महिलाएँ' में दिया है उसे यहाँ उन्हीं के शब्दों में उल्लिखित कर देना उपयुक्त होगा—

"कल्याणी के उत्तरवर्ती चालुक्यों के वंश एवं साम्राज्य की स्थापना में जिन धर्मात्माओं के पुण्य, आशीर्वाद और सद्भावनाओं का योग रहा, उनमें सर्वोपरि महासती अत्तिमब्बे थीं जिनके शील, आचरण, धार्मिकता, धर्म-प्रभावना, साहित्य-सेवा, वैदुष्य, पातिव्रत्य, दानशीलता आदि सद्गुणों के उत्कृष्ट आदर्श से तैलपदेव आहवमल्ल का शासनकाल धन्य हुआ। इस सम्राट् के प्रधान सेनापति मल्लप की वह सुपुत्री थीं, वाजीवंशीय प्रधानामात्य मंत्रीश्वर धल्ल की वह पुत्रवधू थीं, प्रचण्ड महादण्डनायक वीर नागदेव की वह प्रिय पत्नी थीं और कुशल प्रशासनाधिकारी वीर पदुवेल तैल की स्वनामधन्या जननी थीं। युवराज सत्याश्रय उनके पति का अनन्य मित्र था और उनको बड़ी भौजाई मानकर अत्यन्त आदर करता था। स्वयं सम्राट् तैलप उन्हें अपने परिवार की ही सामान्य सदस्या मानता था। एक बार मालवा का सुप्रसिद्ध परमारनरेश वाक्पतिराज मुंज एक भारी सेना के साथ धावा मारता हुआ तैलपदेव के राज्य के भीतर तक घुस आया तो चालुक्य सेना ने तत्परता के साथ उसका गत्यवरोध किया और फिर उसे खदेड़ते हुए उसके राज्य मालवा की सीमा के भीतर तक उसका पीछा किया। स्वयं सम्राट् तैलपदेव तो गोदावरी नदी के दक्षिणी तट पर शिविर स्थापित करके वहीं रुक गया, किन्तु उसकी सेना की एक बड़ी टुकड़ी महादण्डनायक नागदेव और युवराज सत्याश्रय के नेतृत्व में नदी पार करके परमार सेना का पीछा करती हुई दूर तक चली गयी। इस बीच भारी तूफ़ान आया और गोदावरी में भयंकर बाढ़ आ गयी। उफनते हुए महानद ने विकराल रूप धारण कर लिया। चालुक्य शिविर में भारी चिन्ता और बेचैनी व्याप गयी। महाराज, महामन्त्री, सेनापति आदि तथा राजपरिवार की अनेक महिलाएँ भी शिविर में थीं जिनमें अत्तिमब्बे भी थीं। उनकी तथा अन्य सबकी चिन्ता स्वाभाविक थी। नदी के उस पार गये लोगों में से कौन और कितने वापस आते हैं, और कहीं परमारों ने पुनः बल पकड़कर उन्हें धर दबाया और नदी तट तक खदेड़ लाये तो उन सबके प्राण जायेंगे। इधर से नदी की बाढ़ के कारण न उन्हें सहायता पहुँचायी जा सकती है और न वे स्वयं ऐसे उफनते नद को पार कर सकते हैं। विषम परिस्थिति थी। सबकी दृष्टि नदी के उस पार लगी थी, प्रतीक्षा के क्षण लम्बे होते जा रहे थे, उनकी समाप्ति का कोई लक्षण नहीं था, कि अकस्मात् देखा गया कि जिस बात की आशंका थी प्रायः वही घटित होनेवाली थी। संकेतविद्या में सुदक्ष कर्मचारियों ने उस पार का समाचार ज्ञात करके बताया कि जितने लोग मूलतः उस पार गये थे, उनमें से आधे

से भी कम वापस आ पाये हैं, शेष खेत रहे। जो आये हैं वे सफल होकर ही लौटे हैं—परमारों को दूर तक उनकी सीमा में खदेड़कर ही लौटे हैं, सो भी विशेषकर इसलिए कि युद्ध में महा-दण्डनायक नागदेव, जो इस सेना का नेतृत्व कर रहे थे, गम्भीर रूप से आहत हो गये थे। यह भी मालूम हुआ कि वह अभी जीवित तो हैं किन्तु दशा चिन्ताजनक है, इस समय मूर्च्छित हैं, और यह समाचार भी अभी मिला है कि शत्रुओं को भी चालुक्यों की इस विकट परिस्थिति का भान हो गया है, और वह पुनः इनकी टोह में वापस आ रहे हैं। इन समाचारों से चालुक्य शिविर में जो उद्विग्नता एवं चिन्ता व्याप गयी वह सहज अनुमान की जा सकती है। विविध सैनिक विषयों के विशेषज्ञों तथा अनुभवी वृद्धजनों द्वारा नाना उपाय सोचे जाने लगे, नाना-विध प्रयत्न भी उस पार वालों को इस पार लाने या उन्हें आवश्यक सहायता पहुँचाने के लिए किये जाने लगे। किन्तु क्षुब्ध प्रकृति की भयंकर विरोधी शक्तियों के विरुद्ध कोई उपाय कारगर नहीं हो रहा था। विवशता मुँह बाये खड़ी थी। समय था नहीं, जो होना था, तत्काल होना था।

इतने में महाराज ने और पार्षदों ने देखा कि एक तेजस्विनी मूर्ति शिविर के अन्तःपुर-कक्ष से निकल धीर गति के साथ उन्हीं की ओर चली आ रही है। सब स्तब्ध थे। उसने महाराज को, अपने श्वसुर को और पिता को प्रणाम किया, और उसी धीर गति के साथ वीरबाला अत्तिमब्बरसि शिविर के महाद्वार से बाहर निकलकर एक उच्च स्थान पर जा खड़ी हुई। लोगों में हलचल हुई, किन्हीं ने कुछ कहना चाहा, किन्तु बोल न निकला। उसके तेजोप्रभाव से अभिभूत महाराज के साथ समस्त दरबारी जन भी उसके पीछे-पीछे बाहर निकल आये—जो मार्ग में या सामने पड़े वे आदरपूर्वक इधर-उधर हटते चले गये। महासती एकाकिनी, निश्चल खड़ी थी। उसके सुदीप्त मुखमण्डल एवं सम्पूर्ण देह से एक अलौकिक तेज फूट रहा था। एक दृष्टि उसने महाविकराल उमड़ते महानद पर डाली, जिसपर से फिसलती हुई वह दृष्टि उस पार व्याकुल हताश खड़े सैनिकों पर गयी और लौट आयी। परम जिनेन्द्रभक्त महासती ने त्रियोग एकाग्र कर इष्टदेव का स्मरण किया और उसकी धीर-गम्भीर वाणी सबने सुनी—"यदि मेरी जिनभक्ति अविचल है, यदि मेरा पातिव्रत्य धर्म अखण्ड है, और यदि मेरी सत्य-निष्ठा अकम्पनीय है तो, हे महानदी गोदावरी! मैं तुझे आज्ञा देती हूँ कि तेरा प्रवाह उतने समय के लिए सर्वथा स्थिर हो जाये जबतक कि हमारे स्वजन उस पार से इस पार सुरक्षित नहीं चले आते!" उभयतटवर्ती सहस्रों नेत्रों ने देखा वह अद्भुत, अभूतपूर्व चमत्कार! सच ही, पलक मारते ही महानदी गोदावरी ने सौम्य रूप धारण कर लिया, जल एकदम घटकर तल से जा लगा, नदी का प्रवाह स्थिर हो गया। हर्ष, उल्लास और जयध्वनि से दिग्-दिगन्त व्याप्त हो गया।

कुछ ही देर पश्चात्, शिविर के एक कक्ष में मर्मान्तक घात से आहत वीर नागदेव अपनी प्रिया की गोद में सिर रखे, प्रसन्न हृदय से अन्तिम श्वासें ले रहा था। कक्ष के बाहर स्वजन-परिजन समस्त पुनः आशा-निराशा के बीच झूल रहे थे। गोदावरी फिर से अपने प्रचण्ड रूप में आ चुकी थी और उस पार खड़ी शत्रु की सेना हाथ मल रही थी। वीर नागदेव ने वीरगति प्राप्त की। पतिवियुक्ता सती ने अपूर्व धैर्य के साथ स्वयं को सँभाला और एक आदर्श, उदासीन, धर्मात्मा श्राविका के रूप में घर में रहकर ही शेष जीवन व्यतीत किया। स्वर्ण एवं

मणि-माणिक्यादि महार्घ्य रत्नों की 1500 जिन-प्रतिमाएँ बनवाकर उसने विभिन्न मन्दिरों में प्रतिष्ठापित की थीं, अनेक जिनालयों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार कराया था, आहार-अभय-औषध-विद्या रूप चार प्रकार का दान अनवरत देती रहने के कारण वह 'दान-चिन्तामणि' कहलायी थी। उभयभाषा-चक्रवर्ती महाकवि पोन्न के शान्तिपुराण (कन्नडी) की स्वद्रव्य से एक सहस्र प्रतियाँ लिखाकर उसने विभिन्न शास्त्रभण्डारों आदि में वितरित की थीं। स्वयं सम्राट् एवं युवराज की इस देवी के धर्मकार्यों में अनुमति, सहायता एवं प्रसन्नता थी। सर्वत्र उसका अप्रतिम सम्मान और प्रतिष्ठा थी। उक्त घटना के लगभग एक सौ वर्ष पश्चात् भी (1118 ई० के शिलालेखानुसार) होय्सलनरेश के महापराक्रमी सेनापति गंगराज ने महासती अत्तिमब्बे द्वारा गोदावरी प्रवाह को स्थिर कर देने की साक्षी देकर ही उमड़ती हुई कावेरी नदी को शान्त किया था। शिलालेख में कहा गया है कि विश्वमहान् जिनभक्त अत्तिमब्बरसि की प्रशंसा इसलिए करना है कि उसके आज्ञा देते ही उसके तेजोप्रभाव से गोदावरी का प्रवाह तक रुक गया था। आनेवाली शताब्दियों में बाचलदेवी, बम्मलदेवी, लोक्कलदेवी आदि अनेक परम जिनभक्त महिलाओं की तुलना इस आदर्श नारीरत्न अत्तिमब्बे के साथ की जाती थी। किसी सतवन्ती, दानशीला या धर्मात्मा महिला की सबसे बड़ी प्रशंसा यह मानी जाती थी कि 'यह तो दूसरी अत्तिमब्बे है' अथवा 'अभिनव अत्तिमब्बे' है। डॉ. भास्कर आनन्द सालतोर के शब्दों में, "जैन इतिहास के महिला-जगत् में सर्वाधिक प्रतिष्ठित प्रशंसित नाम अत्तिमब्बे है।" कहा जाता है कि एक बार ग्रीष्म ऋतु में वह जब श्रवणबेलगोल में गोम्मट-स्वामी का दर्शन करने के लिए पर्वत पर चढ़ रही थी तो तीखी धूप से सन्तप्त हो सोचने लगी कि इस समय वर्षा हो जाती—और तत्काल आकाश पर मेघ छा गये तथा वर्षा होने लगी। सती असीम भक्ति से भगवान की पूजा कर संतुष्ट हुई।"

अत्तिमब्बे की उपर्युक्त जीवन-गाथा से दो निष्कर्ष सहज ही निकलते हैं—एक, पुण्यात्मा जीव द्वारा सच्चे हृदय से की गई भक्ति चमत्कारिक फल दे सकती है और दूसरे, इस क्षेत्र के आस-पास हजारों की संख्या में जैन मन्दिर थे। तब ही तो महासती ने 1500 रत्न-प्रतिमाएँ वितरित की थीं। कम-से-कम कर्नाटक में तो जैनधर्म बहुत फैला हुआ था।

अत्तिमब्बे के पुत्र अण्णिग मासवाडि का यहाँ किसी समय शासन था। एक शिलालेख में यह उल्लेख है कि 1175 ई० में यहाँ की 'नेमिनाथ बसदि' को भक्तों ने दान दिया था। एक और शिलालेख से ज्ञात होता है कि लक्कुण्डि के 'वसुधैकबांधव जिनालय' को कुछ भक्तों ने दान देकर एक दानशाला (धर्मशाला) बनवाई थी।

जैन मन्दिर और मूर्तियाँ

वर्तमान में, लक्कुण्डि में एक जैन मन्दिर है जो 'ब्रह्म जिनालय' कहलाता है। इसमें यहीं का निवासी एकमात्र जैन पुजारी पूजन करता है। दूसरा जैन मन्दिर 'नागनाथ मन्दिर' हो गया है। बताया जाता है कि लक्कुण्डि में एक ही पंक्ति में पाँच जैन मन्दिर थे। एक मन्दिर के चिह्न—स्तम्भ, नींव, ब्रह्म जिनालय के प्रवेशद्वार के पास देखे जा सकते हैं। पर्यटक यह देखेंगे कि मन्दिरों के पत्थरों आदि का उपयोग कर यहाँ मन्दिरों के पास ही कुछ मकान बन गए हैं। भारतीय पुरातत्त्व विभाग का ध्यान इस ओर गया है और वह अब यहाँ से मकान हटवा-

कर पुरातत्त्व सामग्री की रक्षा के लिए प्रयत्नशील है। यह भी कहा जाता है कि अपने समय के इस प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर में 101 मन्दिर और बावड़ियाँ थीं। अब भी लगभग 50 मन्दिरों के भग्नावशेष यहाँ पाए गए हैं। लक्कुण्डि और उसके आसपास की बहुत-सी सुन्दर जैन मूर्तियाँ इस समय धारवाड़ विश्वविद्यालय के कन्नड़ अनुसंधान संस्थान (कन्नड़ रिसर्च इन्स्टीट्यूट) के संग्रहालय में रख दी गई हैं (उदाहरण के लिए देखें चित्र क्र. 21)। जैन मूर्तिकला, मन्दिर शिल्प और जैन कन्नड़ साहित्य की दृष्टि से यह स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और पर्यटन के सर्वथा उपयुक्त है। चूंकि अब यह एक गाँव है अतः ठहरने की सुविधा नहीं है।

ब्रह्मजिनालय

ब्रह्मजिनालय का निर्माण एक शिलालेख के अनुसार दानशीला अत्तिमब्बे ने 1007 ई. में कराया था। इस गाँव का यह मन्दिर सबसे प्राचीन है और सबसे बड़ा है। इसकी लम्बाई 93 फीट, चौड़ाई 35 फीट और शिखर तक की ऊँचाई 42 फीट है (देखें चित्र क्र. 22)।

पुरातत्त्व की दृष्टि से भी 'ब्रह्मजिनालय' का अधिक महत्त्व है। इसके निर्माण से पहले ऐहोल और बादामी जैसे स्थानों के मन्दिरों का निर्माण बलुआ पत्थर के बड़े और मोटे शिला-खण्डों से हुआ करता था। किन्तु लक्कुण्डि के इस मन्दिर के निर्माण में धारवाड़ ज़िले की ही शिलाशंकर नामक खदान से प्राप्त कुछ हरे-नीले रंग के नरम और अनेक स्तरों वाले पत्थर का प्रयोग किया गया है। इसका लाभ यह हुआ कि स्तम्भ पतले, सुन्दर नक्काशीदार और इच्छित आकार के बनाये जा सके। साथ ही, शिल्पी ने अपनी छैनी से सूक्ष्म अंकन कर दिखाया। इस प्रकार की नई शैली होय्सल शैली की पूर्वगामिनी बनी। वास्तुविदों का अनुमान है कि मन्दिर के नक्काशीदार भाग खदान में ही तराशे गये और मन्दिर में लाकर लगा दिए गये। इस प्रकार बलुआ पत्थर के युग का अन्त हुआ।

यह मन्दिर द्रविड शैली का है। शिखर तक इसमें पाँच तल बनाए गये हैं। मुख्य गर्भगृह के ऊपर भी एक और गर्भगृह रहा होगा जो कि अब बन्द कर दिया गया है। इसका शिखर क्रमशः छोटा होता चला गया है और ऊपर तक पहुँचते-पहुँचते चौकोर हो गया है।

मन्दिर में प्रवेश के लिए जो सीढ़ियाँ हैं उनके लिए बनी दीवार पर कमलों का अंकन है। इन सीढ़ियों से होकर एक खुले मण्डप में प्रवेश करना होता है। शायद यह बाद में जोड़ा गया है। इस मण्डप में 33 स्तम्भ हैं जिन पर सूक्ष्म नक्काशी की गई है। इसके बाहर एक शिलालेख पड़ा हुआ है। पूर्व दिशा में स्थित इस मण्डप से मन्दिर में प्रवेश किया जाता है। प्रवेशद्वार पर गजलक्ष्मी का सुन्दर अंकन है। मन्दिर के अन्दर एक नवरंग मण्डप है जो कि लगभग 21 वर्ग फीट का एक वर्गाकार मण्डप है। इसमें ब्रह्म की एक चतुर्मुख प्रतिमा दर्शनीय है। सरस्वती की एक छोटी किन्तु अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा भी है। सरस्वती प्रतिमाओं के अंकन में यह एक अपना ही महत्त्व रखती है। सरस्वती त्रिभंग मुद्रा में है और उसके सिर के ऊपर एक लघु तीर्थंकर मूर्ति है। दोनों ओर चँवरधारिणी भी हैं। यहीं पद्मावती की मूर्ति भी प्रतिष्ठित है। और पंचपरमेष्ठी एवं चौबीसी की कांस्य प्रतिमाएँ विराजमान हैं जिन पर स्तम्भोंयुक्त चाप एवं मकर-तोरण इनकी शोभा बढ़ाते हैं। इस मण्डप के स्तम्भ अनुपम उत्कीर्णन से युक्त हैं किन्तु अब कुछ स्तम्भों की पॉलिश या चमक खराब हो गई है।
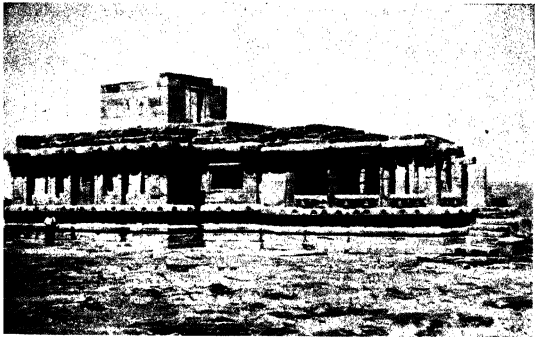
4 ऐहोल—मेगुटी बसदि : परिदृश्य; छठी शती ।

15. ऐहोल—जैन गुफा : आधार के लिए निर्मित दो-तल्ले का सम्मुख भाग; नौवीं शती ।

16. ऐहोल—मीन बसदि (गुफा) : भगवान बाहुबली; नौवीं शती ।

17. ऐहोल—शिव मन्दिर में आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की यक्षी ज्वालामालिनी; लगभग ग्यारहवीं शती।
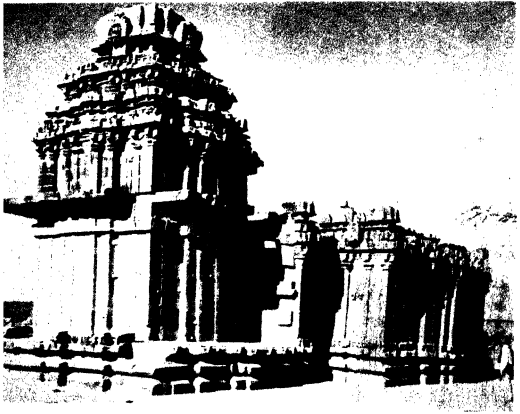
18. पट्टदकल—जैन बसदि : दक्षिण-पश्चिम से बाह्य दृश्य ।

19. बादामी—जैन गुफा : बाह्य दृश्य, गुफा का सम्मुख भाग; नौवीं शती ।

20. बादामी—जैन गुफा : शैलोत्कीर्ण बाहुबली; नौवीं शती।
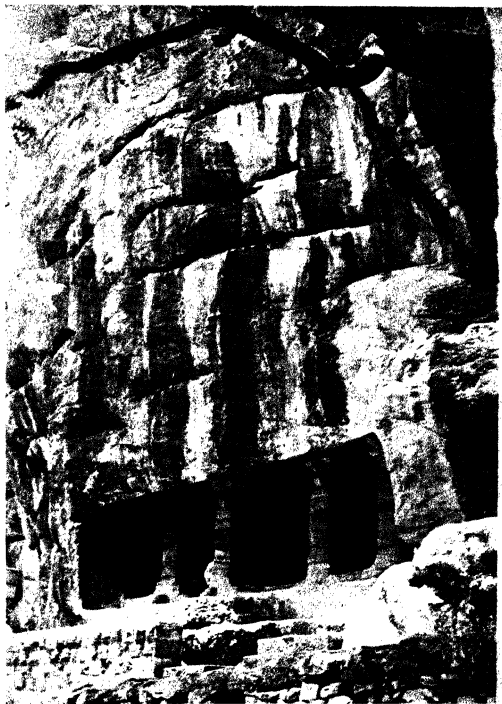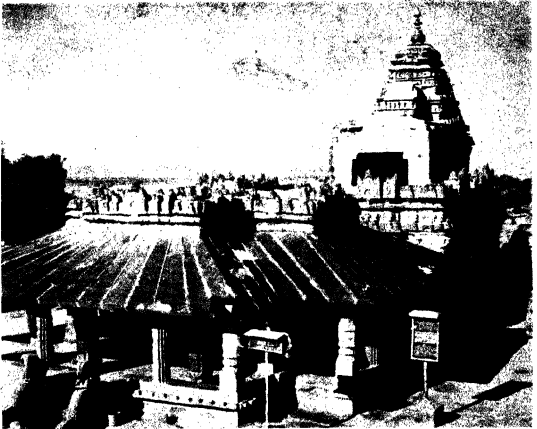
21. लक्कुंडी—ब्रह्म जिनालय : उत्तर-पूर्व से बाह्य दृश्य; दसवीं शती ।
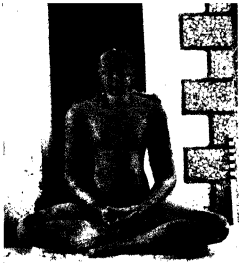
22. लक्कुंडि—कन्नड़ शोध संस्थान, धारवाड़ के संग्रहालय में प्रदर्शित तीर्थंकर आदिनाथ; बारहवीं शती।
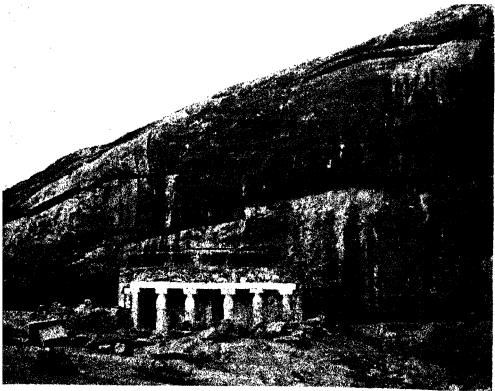
23. कोप्पल—पार्श्वनाथ बसदि : सिद्धेश्वर मठ के पास की गुफा का बाहरी दृश्य।

नवरंग मण्डप की छत में कमल की नक्काशी अत्यन्त आकर्षक है। सात गोल घेरों में और इन सबके केन्द्र में सूक्ष्म पराग द्वारा प्रदर्शित यह कमल बेलगाँव की 'कमल बसदि' के कमल की बराबरी करता जान पड़ता है।

मन्दिर के गर्भगृह का प्रवेशद्वार पंचशाखा प्रकार का है। उसके सिरदल पर पद्मासन में पार्श्वनाथ अपने परिकर सहित एक उभरे हुए आले में विराजमान हैं। नीचे एक नर्तक-दल चित्रित है।

गर्भगृह में भगवान नेमिनाथ की तीन फीट ऊँची प्रतिमा है। उसके आसपास मकर-तोरणयुक्त चाप है। तीन छत्र भी देखे जा सकते हैं। सिंहासन पर सिंह उत्कीर्ण हैं (शायद इन्हें देखकर ही कुछ विद्वानों ने इसे महावीर स्वामी की प्रतिमा बताया है। वैसे पाँच या तीन सिंहों से युक्त आसन या चौकी अन्य तीर्थंकरों के लिए भी निर्मित होती थीं)। प्रतिमा के पीछे जो फलक है उस पर एक चँवरधारी भी प्रदर्शित है।

इस मन्दिर में और उसके बाहर कुल मिलाकर 6 शिलालेख हैं। ये सभी ऐतिहासिक महत्त्व के हैं।

मन्दिर के बाहर की दीवालों पर की गई कारीगरी विशेष रूप से दर्शनीय है। इन दीवालों में मोतियों की मालाओं, स्तम्भयुक्त चाप और मकरतोरण से सज्जित तिकोने आलों में मूर्तियों आदि का अंकन मन को लुभाता है। पानी बाहर निकालने के लिए प्रणाली भी है। शुकनासी पर हाथियों का सुन्दर उत्कीर्णन किया गया है। इसी प्रकार पशु-पक्षियों का अंकन भी दर्शनीय है। मन्दिर की मुंडेर पर गोल-गोल आले बनाए गए हैं जिनमें तीर्थंकरों की मूर्तियाँ दर्शायी गयी हैं। इन आलों को कीर्तिमुखों से सजाया गया है। कुल मिलाकर, यह मनोहारी मन्दिर दर्शनीय मन्दिरों में से एक है।

पार्श्वनाथ के स्थान पर नागनाथ

ब्रह्मजिनालय के पास ही में एक और जैन मन्दिर है जो अब नागराज मन्दिर कहलाता है। यह भी एक द्रविड़ शैली का मन्दिर है किन्तु इसके ऊपर का भाग ध्वस्त हो गया है। शिखर नहीं रहा। किन्तु इसकी शुकनासी पर गोल आलों में पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा देखी जा सकती है। हाथियों का भी सुन्दर अंकन है। इसके प्रवेश-स्तम्भ पर मोतियों की मालाओं का सूक्ष्म अंकन पर्यटक को आकर्षित करता है। प्रवेशद्वार के सिरदल पर भी पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति और चँवरधारी देखे जा सकते हैं। इसके अन्दर जो स्तम्भ हैं उन पर की गई कारीगरी एवं पॉलिश तथा उनके कोण विशेष रूप से देखने योग्य हैं।

नागराज मन्दिर के गर्भगृह में सिंहों से युक्त आसन है। उसके ऊपर तीन छत्र अंकित हैं। इस आसन पर किसी समय पार्श्वनाथ की मूर्ति विराजमान रही होगी। उसके पीछे एक सर्पकुण्डली का अनुपम उत्कीर्णन है। उसी के नाम पर अब यह नागराज मन्दिर कहलाने लगा है। जैन मूर्ति के स्थान पर अब शिवलिंग है।

नागराज प्रतिमा के सात फण हैं, मुकुट है, गले में हार और कमर में आभूषण हैं। कुण्डली के चित्रण में रेखाएँ खास महत्त्व की हैं। संभवत: यह धरणेन्द्र का अंकन है।

इस मन्दिर के पास लगभग 4 फीट की सिर-रहित एक तीर्थंकर मूर्ति पड़ी हुई है।

बताया गया कि 1948 के दंगों में यहाँ की कुछ मूर्तियाँ तोड़ दी गई थीं।

जैन मन्दिरों के सामने नीलकण्ठेश्वर मन्दिर है जो कि अधूरा रह गया। उसके पीछे नारायण मन्दिर है।

संग्रहालय

भारतीय पुरातत्त्व विभाग का संग्रहालय अवश्य देखना चाहिए। यह 'ब्रह्मजिनालय' से नीचे की ओर है। इस विभाग ने 'ब्रह्मजिनालय' के आसपास एक उद्यान लगाकर इस जिनालय को और भी सुन्दर रूप दे दिया है। उसकी हरी घास में कुछ क्षण विश्राम करने को जी चाहता है। इस संग्रहालय में अधिकांशतः 11वीं शताब्दी की तीर्थंकर मूर्तियाँ संग्रहीत हैं जो कि लक्कुण्डि और आसपास के अन्य स्थानों से प्राप्त हुई हैं। इनमें डम्बल से प्राप्त मूर्तियाँ अधिक हैं। लगभग सभी मूर्तियाँ खण्डित हैं। मूर्तियों की संख्या लगभग एक दर्जन है। पद्मासन और कायोत्सर्ग मुद्रा में ये मूर्तियाँ पाषाण या संगमरमर की हैं। कन्धों तक जटा वाली मूर्तियाँ निश्चय ही ऋषभदेव की हैं तो फणावली सहित प्रतिमाएँ पार्श्वनाथ की हैं। कुछ मूर्तियों के केवल सिर ही शेष बचे हैं तो कुछ का धड़ और कुछ के पैर गायब हैं। इनकी ऊँचाई 6 इंच से लेकर 4 या 5 फीट तक है। ऐसा लगता है कि इन्हें किसी ने खण्डित किया है अथवा खुदाई के समय ही ये खण्डित हो गयीं। धरणेन्द्र, पद्मावती एवं चँवरधारियों की मूर्तियाँ भी यहाँ संग्रहीत हैं। जो भी हो, पुरातत्त्व विभाग ने प्राचीनता के इस वैभव को बड़े सुन्दर ढंग से सजा रखा है। इस विभाग ने यहाँ जैन कला एवं शिल्प के प्रदर्शन के लिए अच्छा प्रयास किया है।

विशेष सूचना

लक्कुण्डि के बाद पर्यटक को हिन्दू साम्राज्य की राजधानी विजयनगर के जैन-अजैन कला-वैभव को देखने के लिए प्रस्थान करना है। अतः पर्यटक बसें यहीं से होसपेट की ओर प्रस्थान कर सकती हैं। जो सार्वजनिक वाहन से यात्रा करना चाहें, उन्हें गदग वापस लौटकर होसपेट की सीधी बस लेनी चाहिए। चाहें तो रास्ते में कोप्पल भी रुक सकते हैं।

कोप्पल

अवस्थिति एवं मार्ग

कोप्पल का प्राचीन नाम कोप्पण था। यहाँ स्थित पर्वत के कारण यह तीर्थ कोप्पणाचल के नाम से भी सुप्रसिद्ध रहा।

वर्तमान में, कोप्पल एक तालुक (तहसील) है और रायचूर ज़िले के अन्तर्गत आता है।

लक्कुण्डि से चलें तो हुबली (गदग)-होसपेट-रायचूर मुख्य सड़क-मार्ग पर कोप्पल मिलता है। गदग से यह 71 कि. मी. की दूरी पर है और यहाँ से होसपेट (विजयनगर

साम्राज्य की राजधानी हम्पी के लिए मुख्य स्थान) 37 कि. मी. दूर है।

जहाँ तक रेल-मार्ग का सम्बन्ध है, यह हुबली-गुंतकल मीटर गेज रेल-मार्ग पर (गदग होते हुए) एक स्टेशन भी है। रेल-मार्ग से यह गदग से 58 कि. मी. और होसपेट से 32 कि. मी. की दूरी पर है।

यहाँ की अत्यन्त प्राचीन 'पार्श्वनाथ बसदि' स्थानीय बस स्टैण्ड और रेलवे स्टेशन से दो-तीन कि. मी. दूर पहाड़ी की तलहटी में है। इसका रास्ता जवाहर रोड (मार्केट) होते हुए कुछ गलियों से होकर गुजरता है। मुख्य सवारी ताँगा है। यहाँ दो बस-स्टैण्ड हैं—एक नया और एक पुराना। इन दोनों के बीच में मुख्य सड़क पर एक साफ-सुथरा होटल ठहरने के लिए है।

प्राचीन तीर्थ

दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक यह एक प्रमुख तीर्थस्थल रहा और इसकी गणना श्रवणबेलगोल और ऊर्जयंतगिरि के समान पवित्र स्थानों में की जाती थी। चामुण्डराय ने अपने 'त्रिषष्टिलक्षण महापुराण' में इस स्थान की प्रशंसा की है। अनुश्रुति है कि कनकसेन नामक मुनि मुलुगुन्द नामक स्थान पर अनेक वर्षों तक तपस्या करते रहे किन्तु उन्हें बोध प्राप्त नहीं हुआ। किन्तु जब वे कोपणाचल आये तो उन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया। यह ऊपर कहा जा चुका है कि कन्नड़ महाकवि रन्न ने दानशीला अत्तिमब्बे के चरित्र को कोपणाचल के समान पवित्र बताया था। श्रवणबेलगोल के एक शिलालेख में यह उल्लेख है कि गंग राजाओं ने इतने मन्दिर बनवाए कि वह स्थान कोपणाचल के समान पवित्र हो गया। गंगराज के दण्डनायक ने कोपण आदि तीर्थों में मन्दिर बनवाए थे। एक अन्य शिलालेख में कहा गया है कि ईचण ने 'बेलगवत्ति' में अनेक मन्दिर बनवाकर उसे कोपण के समान तीर्थ बना दिया था। होय्सल-नरेश के एक सेनापति हुल्ल ने कोपण के साधुसंघ को आहार-दान दिया था। सोलहवीं सदी के विद्वान् विद्यानन्दी ने यहीं पर 'विद्यानन्दी' उपाधि प्राप्त की थी। केलदि के एक शिलालेख में इसे श्रवणबेलगोल और ऊर्जयन्तगिरि के समकक्ष बताते हुए कहा गया है कि जो जैनधर्म के विरुद्ध आचरण करेगा उसे श्रवणबेलगोल के गोम्मटनाथ, ऊर्जयन्तगिरि के नेमिनाथ और कोपण के चन्द्रनाथ के बिम्बों को खण्डित करने का पाप लगेगा।

जनश्रुति है कि कोपण में 771 जैन मन्दिर थे जो कि विधर्मी आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दिए गए।

वर्तमान स्थिति

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित, श्री संगवे द्वारा अंग्रेजी में लिखित 'द सेक्रेड श्रवणबेलगोल' पुस्तक में एक नक्शा दिया गया है, उसमें भी इस स्थान को एक तीर्थ बताया गया है। किन्तु खेद है कि अब इस स्थान की स्थिति तीर्थ की नहीं रही। वर्तमान में, यहाँ जैनों के कुल आठ घर हैं और पार्श्वनाथ बसदि, जिसमें अभी भी पूजन होती है, का खर्च समीपस्थ हुबली के जैन दातारों की सहायता से चलता है।

आज के कोप्पल में पार्श्वनाथ बसदि, बहादुर बसदि और मादनूर बसदि तथा सिद्धेश्वर-मठ के पास एक गुफा-मन्दिर हैं।

पार्श्वनाथ बसदि अब भी जिनदर्शन-पूजन के काम आती है। यह मन्दिर एक साधारण रचना है। ठोस पाषाण से निर्मित है, कलात्मकता का अभाव है। इस पर कोई शिखर भी नहीं है। प्रवेशद्वार से लगा एक बड़ा हॉल है जिसमें मोटे पाषाण-स्तम्भ हैं। फिर एक छोटा हॉल है जिसमें खण्डित-अखण्डित मूर्तियाँ हैं, और उसके बाद है गर्भगृह या मुख्य मूर्तिस्थान। पार्श्व बसदि में दसवीं सदी की एक खण्डित तीर्थंकर मूर्ति है। लगभग ढाई फीट ऊँची पाषाण की एक चौबीसी है जिसके मूलनायक कायोत्सर्ग मुद्रा में ऋषभदेव हैं। उनके यक्ष गोमेद और यक्षी चक्रेश्वरी भी उत्कीर्ण हैं। ऋषभदेव के तीनों ओर गोल घेरों में अन्य तीर्थंकर पद्मासन में विराजमान हैं। यह बसदि 11वीं सदी की है। यहीं की एक चौबीसी जिसके मूलनायक पार्श्वनाथ हैं, हैदराबाद के सालारजंग संग्रहालय में है। बारहवीं शताब्दी के, कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ सात फणों से युक्त हैं। ये भी लगभग तीन फीट के हैं। इसी सदी का एक खण्डित फलक भी है जिस पर त्रिकाल-चौबीसी (72 तीर्थंकर) उत्कीर्ण रही होगी। इसी समय का एक खण्डित सहस्रकूट फलक भी यहाँ है। खण्डित ब्रह्मयक्ष (घोड़े पर सवार) और द्वारपाल के फलक भी हैं। आठवीं सदी के एक फलक पर कन्नड़ में लेख है। उस पर चित्रित गाय बछड़े को दुलार करती प्रदर्शित है।

सिद्धेश्वर मठ के पास यहाँ ग्यारहवीं सदी का एक गुफा-मन्दिर है (देखें चित्र क्र. 23)। अब यहाँ केवल एक जैन मूर्ति, चरण-युगल और ब्रह्मयक्ष ही शेष रह गए हैं। ब्रह्मयक्ष घोड़े पर सवार हैं, उनके आसपास सूर्य, अर्धचन्द्र, तारा, दो मनुष्य तथा पशु का चित्रण है। अन्यत्र कमल, लता, सिंह, हंस आदि भी स्तम्भ पर उत्कीर्ण हैं।

बहादुर बसदि में, जो कि क़िले के ऊपर है, ब्रह्मयक्ष की एक पुरानी मूर्ति है। यह ललितासन में है और दसवीं सदी की है।

यहाँ से मादनूर 9 कि. मी. दूर है, बस से जाना पड़ता है। वहाँ 13वीं और 16वीं सदी की ब्रह्मयक्ष, पद्मावती (कांस्य) की मूर्तियाँ हैं। दो कांस्य पंच-तीर्थिकाएँ घिस गई हैं। एक के मूलनायक तीर्थंकर शान्तिनाथ हैं तो दूसरी के अजितनाथ।

रायचूर जिले में जैन धर्म

उपर्युक्त जिले में भी जैनधर्म का अच्छा प्रसार था। यह तथ्य प्रकाश में आए मन्दिरों और मूर्तियों से तो स्पष्ट है ही, हाल ही में कुश्तगी तालुक के आन्तरथान नामक स्थान में ग्यारहवीं सदी की लगभग चार फीट ऊँची चौबीसी प्राप्त हुई है जिसके मूलनायक कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं और उनके तीनों ओर पद्मासन में अन्य तीर्थंकर। मूलनायक के घुँघराले केशों का अंकन बड़ा सुन्दर है।

कोप्पल तालुक के ही नारायणपेट में भी कुछ मूर्तियाँ मिली हैं जिनमें ग्यारहवीं सदी की लगभग तीन फीट ऊँची चौबीसी प्राप्त हुई है जिसके मूलनायक कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर ऋषभदेव हैं। शेष तीर्थंकर पद्मासन में हैं और उनके दाएँ गोमेध यक्ष तथा बाएँ

चक्रेश्वरी यक्षी हैं। इसी प्रकार घोड़े पर सवार सुखासन में ब्रह्मदेव का (संभवतः आठवीं सदी) विग्रह है। ग्यारहवीं सदी की पद्मावती मूर्ति भी प्राप्त हुई है।

हूलिगे—यह स्थान भी कोप्पल तालुक में है। यहाँ की पार्श्वनाथ बसदि में शंकु के आकार के शिला-फलक पर त्रिकाल चौबीसी (भूत, भविष्य और वर्तमान के 72 तीर्थंकर) चारों ओर उत्कीर्ण हैं। यह फलक लगभग तीन फीट का है और दसवीं सदी का। दसवीं और ग्यारहवीं सदी की महावीर और पार्श्वनाथ की भी यहाँ सुन्दर प्रतिमाएँ हैं।

आनेगुण्डी—यह भी कोप्पल तालुक में है। यह हम्पी में ही है और तुंगभद्रा नदी के उत्तर में है। हम्पी के साथ भी इस स्थान का वर्णन दिया गया है। यहाँ, तुंगभद्रा नदी की बीच धारा में, एक विशाल शिलाखण्ड है। इस पर उत्कीर्ण हैं—एक गुफा और सल्लेखना का एक दृश्य। यह अंकन 12वीं सदी का है। चित्र में एक पद्मासन तीर्थंकर, केवल चँवर और तीन छत्रों सहित प्रदर्शित हैं। उसमें एक स्त्री हाथ जोड़े हुए और दूसरी ओर एक पुरुष पुष्पांजलि लिये हुए दिखाया गया है। यहाँ के अनन्त पद्मनाभ मन्दिर के पास एक शिला पर भी सल्लेखना का दृश्य और उसका विवरण अंकित है। यहाँ का मन्दिर ध्वस्त अवस्था में है।

रायचूर की ऋषभनाथ बसदि में तीर्थंकर की एक असामान्य प्रतिमा है। कायोत्सर्ग मुद्रा में यह तीर्थंकर प्रतिमा सिर से चरण तक गोलाकार है। उस पर न तो छत्र है और न ही यक्ष। विविध अंकनयुक्त यह वर्तुल प्रतिमा दर्शनीय है।

इस मन्दिर में दसवीं सदी की दो से तीन फीट तक की आदिनाथ और पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ भी हैं। ग्यारहवीं सदी की संगमरमर की आदिनाथ की मूर्ति और एक चौबीसी भी है। संगमरमर की चौदहवीं शताब्दी की तीर्थंकर आदिनाथ की प्रतिमा का प्रभामण्डल बड़ा सुन्दर है। प्रतिमा उच्चासन पर विराजमान है।

कोप्पल के बाद किन्तु होसपेट के निकट, तुंगभद्रा बाँध से पहले, नसीराबाद नामक स्थान आता है। वहाँ से भी जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

भाषा—लक्कुण्डि, कोप्पल आदि स्थानों में हिन्दी भी बोली और समझी जाती है।

यदि समयाभाव के कारण पर्यटक कोप्पल नहीं रुक सके या जा सके तो उसे गदग या लक्कुण्डि से सीधे ही होसपेट के लिए प्रस्थान करना चाहिए।

तुंगभद्रा बाँध : एक दर्शनीय स्थल

कोप्पल से होसपेट सड़क-मार्ग द्वारा जाने पर तुंगभद्रा नदी पर बना विशाल एवं दर्शनीय बाँध रास्ते में आता है। इस बाँध से होसपेट केवल 6 किलोमीटर दूर है। यह बाँध 162 फीट ऊँचा है। इसके जल-निकास द्वारों से वेग से निकलता जल एक सुन्दर दृश्य उपस्थित करता है। इसका जलक्षेत्र 378 कि. मी. है और इससे कर्नाटक एवं आंध्रप्रदेश की 20 लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है तथा बिजली प्राप्त होती है। यहाँ अन्य बाँधों की तरह कुछ पाबंदियाँ भी

हैं (जैसे फोटो लेने की मनाही आदि)। होसपेट और आसपास के लोगों के लिए यह सैर की जगह है। इसके निचले भाग की ओर एक सुन्दर उद्यान भी है जो कि बाँध तक जाते समय दिखाई देता है। ग्रीष्म ऋतु में बाँध में पानी कम हो जाता है।

बाँध के पास की पहाड़ी पर भारत का एक अत्यन्त सुन्दर नक्शा बना हुआ है। इसी ऊँची पहाड़ी पर एक वैकुण्ठ गेस्ट हाउस है। वहाँ से आसपास का सुहावना दृश्य देखने के लिए एक शिखर बना है।

बाँध के क्षेत्र में ठहरने के लिए वैकुण्ठ और कैलाश गेस्ट हाउस (सर्किट हाउस), कर्नाटक सरकार के पर्यटन विकास निगम का टूरिस्ट लॉज, डॉमिटरी (तुंगभद्रा बोर्ड), निरीक्षण बंगला तथा मुनीराबाद में इन्द्रभवन और लेकव्यू गेस्ट हाउस हैं। जिनके पास होसपेट-हम्पी आदि जाने के लिए अपना साधन और पर्याप्त पैसा नहीं हैं, उन्हें होसपेट में ही ठहर जाना चाहिए।

यहाँ कोट्टूरु और स्वामीहल्ली नामक दो स्थानों से मीटरगेज की एक-एक पैसेंजर गाड़ियाँ भी आती-जाती हैं जो कि होसपेट पर समाप्त होती हैं। स्वयं रेलवे की सूचना है कि बरसात में इन गाड़ियों की अनिश्चितता रहती है। वैसे यहाँ से होसपेट के लिए स्थानीय बसें और लम्बी दूरी की बसें भी काफी मिलती हैं। जो भी हो, पर्यटकों को होसपेट से आते-जाते यह बाँध अवश्य देख लेना चाहिए।

होसपेट

होसपेट का प्राचीन नाम होसपत्तन है। सन् 1520 के एक लेख के अनुसार, किसी समय यह स्थान नागलपुर भी कहलाता था जो कि विजयनगर के सुप्रसिद्ध शासक कृष्णदेवराय की रानी नागलदेवी के नाम पर रखा गया था। अब यह सूती कपड़ों की बुनाई के लिए प्रसिद्ध है।

हम्पी या विजयनगर साम्राज्य के कला-वैभव को देखने के लिए यह स्थान मुख्य पड़ाव है। होसपेट आधुनिक कर्नाटक राज्य के बल्लारी (Bellary) ज़िले का एक तालुक है और सड़क तथा रेल-मार्ग द्वारा भली-भाँति जुड़ा हुआ है।

अवस्थिति एवं मार्ग

दक्षिण-मध्य रेलवे की हुबली-गुंतकल मीटरगेज रेलवे लाइन पर होसपेट एक रेलवे स्टेशन है। यहाँ से हुबली 145 कि. मी. है। रास्ते में गदग तथा कोप्पल रेलवे स्टेशन आते हैं। रेल-मार्ग से बल्लारी 65 कि. मी. और गुंतकल 114 कि. मी. है। इस मार्ग पर हुबली से गुंतकल तक विजयनगर एक्सप्रेस चलती है। शहर से रेलवे स्टेशन तीन-चार कि. मी. दूर है, उसके आसपास ठहरने की खास सुविधा भी नहीं है। साइकिल-रिक्शा ही एकमात्र सवारी है।

होसपेट का बस-स्टैण्ड काफी बड़ा और शहर के बीच में है, आसपास ठहरने के लिए होटल भी हैं। सड़क-मार्ग तुंगभद्रा बाँध की ओर से आता है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। बाँध से होसपेट 6 कि. मी. है। यहाँ एक जैन मन्दिर भी है। हम्पी यहाँ से 13 कि. मी. है। पुरावशेषों को देखने के लिए कमलापुर नामक गाँव भी यहाँ से 11 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। हम्पी के लिए सीधी बसें दिन भर चलती हैं। कमलापुर के लिए भी पर्याप्त बसें मिलती हैं।

हम्पी

अवस्थिति

विजयनगर या हम्पी के कलात्मक अवशेष, जिनमें जैन मन्दिर भी सम्मिलित हैं, लगभग 26 कि. मी. के घेरे में फैले हुए हैं। तुंगभद्रा नदी और तीन पर्वतों के बीच का यह क्षेत्र जैन-अजैन यात्रियों के लिए तीर्थस्थल और कला के प्रेमियों के लिए एक कलातीर्थ है। नदी, पर्वत और काली विशाल चट्टानें एक अनोखा ही दृश्य उपस्थित करते हैं जिसे भुलाया नहीं जा सकता। विदेशी यात्रियों ने भी इसका मनमोहक वर्णन किया है।

हम्पी को शान्तिपूर्वक देखने के लिए कम-से-कम डेढ़-दो घण्टे का समय चाहिए। तुंगभद्रा नदी के किनारे के शिलाखण्डों पर से नदी के साथ-साथ की पैदल यात्रा बड़ी आनन्ददायी होती है।

अन्य भागों को देखने के लिए पक्की सड़कें बनी हैं किन्तु बार-बार गाड़ी से चढ़ने-उतरने से बचने के लिए कुछ यात्री इन स्थानों को भी पैदल ही घूम-फिरकर देखते हैं। किन्तु यह ध्यान रहे कि अपने वाहन से यात्रा वे ही कर सकते हैं जिनके पास ऐसा प्रबन्ध हो, सार्वजनिक वाहन दर्शनीय स्थलों की सैर नहीं कराते।

उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए सबसे पहले ठहरने की समुचित व्यवस्था कर लेना उचित है। होटलों में ठहरने वाले तुंगभद्रा बाँध या होसपेट में ठहर सकते हैं। यदि कोई जैन पर्यटक बस है तो यह परामर्श दिया जाता है कि होसपेट से हम्पी जाने वाली सड़क पर रत्न-त्रय कूट है। उसके एक ओर 'जैन ग्रुप ऑफ टेम्पल्स' लिखा है। इस कूट पर 'श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम' है। वहाँ ठहरने की अच्छी व्यवस्था हो सकती है। अधिक संख्या हो तो आश्रम को एक सप्ताह पूर्व सूचना देनी होती है ताकि आवश्यकता होने पर आश्रम-प्रबंधक भोजन-सामग्री आदि का प्रबन्ध होसपेट जाकर कर सके। सार्वजनिक वाहन से यात्रा करने वाले यात्रियों को अपना भारी सामान आश्रम तक ले जाने में कठिनाई हो सकती है। यह जैन आश्रम है। इसकी मान्यता के अनुसार, यहाँ श्री सहजानन्द घन जी महाराज, राजचन्द्र जी आदि की मूर्तियाँ हैं। वैसे चन्द्रप्रभ गुफा-मन्दिर भी है जिसमें दिगम्बर मूर्ति है। इस आश्रम के बारे में यथास्थान कुछ विस्तार से लिखा जाएगा।

कमलापुर में भी निरीक्षण बंगला है कि किन्तु वहाँ ठहरना भोजन आदि की दृष्टि से असुविधाजनक ही रहेगा।

पौराणिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भ

अजैन जनता के लिए यह पम्मा तीर्थ है जिसका सम्बन्ध विरूपाक्ष (शिव) और पार्वती से है। यह किष्किन्धा क्षेत्र भी कहलाता है। मान्यता है कि बाली-सुग्रीव सम्बन्धी रामायण की घटनाएँ यहीं घटित हुई थीं। यहीं अंजनगिरि है जहाँ हनुमान का जन्म हुआ था। यहाँ बहने वाली तुंगभद्रा का नाम पम्पा था जो कि कन्नड़ में हम्पी (हम्पे) हो गया और उसी के नाम से यह नगर प्रसिद्ध हो गया।

भूवैज्ञानिकों का मत है कि यह क्षेत्र उस गोंडवाना क्षेत्र में आता है जो कि किसी समय अफ्रीका महाद्वीप से जुड़ा हुआ था।

इस क्षेत्र में प्रागैतिहासिक काल के अवशेष भी मिले हैं; जैसे वृषभ, नग्न स्त्री-पुरुष इत्यादि।

रामायण-काल से तो इस क्षेत्र का सम्बन्ध आज भी माना जा रहा है। उस युग की यह किष्किन्धा नगरी है। यहीं सुग्रीव का राज्य था। जैन मान्यता के अनुसार यह राजा वानर-वंश का था। उसकी ध्वजा पर वानर (बन्दर) का चिह्न था। वानर-वंशी बहुत ही सभ्य और उन्नत जाति के लोग थे। यहीं पर आज की तुंगभद्रा नदी (प्राचीन काल की पम्पा नदी) के उस पार अंजनगिरि में हनुमान का जन्म हुआ था। वे वानर-वंश के थे। आख्यान है कि यहीं राम को पता चला था कि रावण सीता को उठा ले गया है। पश्चात् वे सुग्रीव को साथ लेकर लंका की ओर गये थे। इसी स्थान पर सुग्रीव की गुफा बताई जाती है जहाँ सुग्रीव ने सीता के आभूषण सुरक्षित रखे थे। यहीं के एक पर्वत माल्यवन्त पर राम ने कुछ समय तक निवास किया था। शैव कथा है कि यहीं ब्रह्मा की पुत्री पम्पादेवी ने तपस्या की थी और उनका विवाह विरूपाक्ष (शिव) से हुआ था।

ऐतिहासिक युग में, आज से लगभग चौबीस सौ वर्ष पूर्व, यहाँ पाटलिपुत्र (पटना) के जैन धर्मानुयायी राजाओं का शासन था। उस युग में यह प्रदेश कुन्तल देश कहलाता था। यह नाम अनेक शताब्दियों तक प्रयुक्त होता रहा (लगभग दो हज़ार वर्षों तक)।

नन्द-राजाओं का शासन चन्द्रगुप्त मौर्य ने समाप्त कर दिया था। सम्राट् चन्द्रगुप्त दिगम्बर मुनि हो गए थे और उन्होंने श्रवणबेलगोल की चन्द्रगिरि पर आचार्य भद्रबाहु की सेवा की थी और वहीं समाधिमरण किया था। आधुनिक बल्लारी ज़िले में मास्की आदि स्थानों पर अशोक के शिलालेखों से इस बात की पुष्टि होती है कि यह प्रदेश मौर्य साम्राज्य का अंग था।

यहाँ ईसा की दूसरी शताब्दी का एक ब्राह्मी शिलालेख भी मिला है।

मौर्य साम्राज्य के क्षीण पड़ने पर आन्ध्र में सातवाहन शासकों का उदय हुआ जिन्होंने ईसा से 200 वर्ष पूर्व से लेकर ईसा की दूसरी शताब्दी तक राज्य किया। इसमें कुन्तल प्रदेश भी सम्मिलित था। इनकी राजधानी पैठन (प्रतिष्ठानपुर) थी। वैदिक ग्रन्थ 'ऐतरेय ब्राह्मण' में इन्हें अनार्य एवं दस्यु कहा गया है। प्राचीन जैन साहित्य में इनका उल्लेख 'पैठन का शालिवाहन

राजा' पाया जाता है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इनमें से कुछ राजा जैन थे और इनके राज्य में प्राकृत का प्रचार था। जैन ग्रन्थों 'कातन्त्र व्याकरण', गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' आदि की रचना इन्हीं के प्रश्रय में हुई, ऐसा माना जाता है।

सातवाहनों के बाद, यह प्रदेश चुटु लोगों की अधीनता में आ गया जो कि आन्ध्रभृत्य कहलाते थे।

उपर्युक्त चुटुओं के बाद, इस प्रदेश पर कदम्ब कुल के राजाओं का अधिकार हुआ। इस वंश के दूसरे राजा शिवस्कन्द अथवा शिवकोटि को समन्तभद्राचार्य ने दीक्षा दी थी। इसी वंश के राजा काकुस्थवर्मन् के 400 ई० के हलसी ताम्रलेख से यह स्पष्ट है कि वह जैन धर्म का पोषक था और उसने जैन मन्दिर के लिए दान दिया था। कदम्ब वंश के अन्य जैन राजा— शान्तिवर्मन्, मृगेशवर्मन्, रविवर्मन् और हरिवर्मन् जैनधर्म के अनुयायी थे। ईसा की छठी शताब्दी तक इनका शासन ठीक चलता रहा।

कदम्बों के बाद यहाँ वातापि (बादामी) के चालुक्यों का शासन रहा। इस वंश का प्रसिद्ध राजा पुलकेशी (द्वितीय) जैन धर्म का प्रश्रयदाता था। ऐहोल के मेगुटी मन्दिर के शिलालेख से यह बात अत्यन्त स्पष्ट है।

आठवीं सदी में राष्ट्रकूट शासक-वंश का उदय हुआ और वे दो सौ वर्षों तक राज्य करते रहे। उनकी राजधानी मान्यखेट (आधुनिक मलखेड) थी। इस वंश का सम्राट् अमोघवर्ष जैन धर्म का पक्का अनुयायी था। उसी के शासन-काल में जिनसेनाचार्य (द्वितीय) ने साठ हज़ार श्लोकों में जयधवल की रचना की, संस्कृत महापुराण (आदिपुराण भाग) की श्रेष्ठ काव्यमयी सृष्टि की। डॉ० अल्तेकर के अनुसार, राष्ट्रकूटों के शासन-काल में लगभग दो-तिहाई प्रजा जैनधर्म का पालन करती थी।

राष्ट्रकूटों के बाद, उपर्युक्त प्रदेश पर नोलम्ब वंश का राज्य रहा। उनके बाद 973 से 1200 ई० तक कल्याणी के जैन राजाओं के अधिकार में यह प्रदेश बना रहा।

कल्याणी शासन के बाद यह क्षेत्र द्वारसमुद्र के होयसल राजवंश के अधीन हो गया। इस वंश का शासक बिट्टिदेव (विष्णुवर्धन) जैनधर्मानुयायी था, बाद में वह वैष्णव बन गया। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का मत है कि इस राजा ने धर्म-परिवर्तन नहीं किया। उसकी जैन पट्टमहिषी शान्तला ने अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया और दान दिया था। वह दक्षिण भारत की सर्वाधिक प्रसिद्ध महारानी, विदुषी एवं संगीत तथा नृत्य में निष्णात महिला थी।[1] इसी वंश का नरेश बल्लाल द्वितीय (1173-1220 ई.) भी जैन धर्म का अनुयायी था और उसने तीर्थ-यात्राएँ की थीं और जैन मन्दिरों को पर्याप्त दान दिया था। उसके बाद इस वंश का पतन प्रारम्भ हुआ। सन् 1310 ई. में अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफ़ूर ने द्वारसमुद्र पर आक्रमण कर दिया और उसे अपने अधीन कर लिया। होयसल के कुछ सामन्त स्वतन्त्र हो गए। कुछ समय तक हम्पी क्षेत्र समीपस्थ कम्पिला के सामन्तों के अधिकार में आ गया। ये सामन्त देवगिरि (आधुनिक दौलताबाद) के यादवों के अधीन थे। किन्तु देवगिरि पर भी मुहम्मद तुगलक का अधिकार हो गया। इस समय कम्पिला के शासक ने तुगलक के विरुद्ध विद्रोह करने वाले

1. देखें 'पट्टमहादेवी शान्तला' (4 भागों में) ज्ञानपीठ से प्रकाशित ऐतिहासिक उपन्यास।

बहाउद्दीन गरशास्प को शरण दे दी। इससे चिढ़कर मुहम्मद तुगलक और वारंगल के काकतीय शासक ने मिलकर कम्पिला पर आक्रमण कर दिया। कम्पिलाशासक मारा गया और उसका राज्य दिल्ली सल्तनत के अधीन (1326-27 में) हो गया। कम्पिला के दो कोषधर भाइयों—हरिहर और बुक्का—को बन्दी बनाया और वहाँ उन्हें मुसलमान बना लिया। इसी बीच दक्षिण में मुस्लिम शासन के विरुद्ध विद्रोह प्रारम्भ हुए। कम्पिला के मुस्लिम सरदार ने मुहम्मद तुगलक से सहायता माँगी। इस पर तुगलक ने हरिहर और बुक्का को कम्पिला भेजा। इन भाइयों ने मौक़ा पाकर इस्लाम छोड़ दिया, शक्ति संचित की और एक नये राजवंश की नींव डाली जो इतिहास में 'संगम राजवंश' के नाम से प्रसिद्ध है। वे संगम के पुत्र थे इसलिए यह वंश 'संगम' कहलाया। वे यादववंशी भी कहे गए हैं।

विजयनगर साम्राज्य (1336-1565 ई.)

हरिहर और बुक्का ने अपनी राजधानी की स्थापना के लिए हम्पी क्षेत्र को चुना। यहाँ तुंगभद्रा नदी और तीन पर्वत—हेमकूट, मातंग और माल्यवन्त—थे। अतः इन भाईयों ने इस नदी और बड़े-बड़े शिलाखण्डों वाले इन पर्वतों का उपयोग कर क़िलेबन्दी प्रारम्भ की जिसे पूरा होने में सात वर्षों का समय लगा। मोटे बोल्डरों की दीवालों से इन पर्वतों को जोड़ दिया गया। इस क़िलेबन्दी में आधुनिक होसपेट और कमलापुर तक के क्षेत्र सम्मिलित थे। इसमें सात परकोटे थे। ग्रेनाइट के विशाल शिलाखण्डों की दीवारों के निशान आज भी महल-क्षेत्र में विद्यमान हैं। (सन् 1886 ई. में अकाल पड़ गया था। उस समय राहत पहुँचाने के लिए इस क़िलेबन्दी को तोड़कर अनेक गड्ढे भरवा दिए गए। अनेक द्वार अब भी मौजूद हैं। इनमें से हाथी निकल सकते थे।)

नई राजधानी का नाम विजयनगर रखा गया। यह भी जनश्रुति है कि इन भाइयों ने अपने गुरु विद्यारण्य के नाम पर इसका नाम विद्यानगरी भी रखा था। किन्तु विजयनगर नाम ही सदा प्रयुक्त रहा।

सन् 1347 ई. में दिल्ली सल्तनत के एक तुर्की सरदार ने दौलताबाद पर अधिकार कर लिया। गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाकर बहमनी राज्य की नींव डाली। यह राज्य प्रारम्भ से ही विजयनगर का शत्रु रहा, उससे युद्ध होते रहे और अन्त में इस कारण से भी विजयनगर साम्राज्य नष्ट हुआ।

संगम वंश का प्रथम शासक हरिहर प्रथम था जिसने 1336 से 1357 ई. तक अपने भाई बुक्का के साथ राज्य किया। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के अनुसार, "हरिहर और उसके वंशजों का राज्यधर्म सामान्यतः हिन्दूधर्म था। प्रजा में अधिकांश जैन थे, उनके पश्चात् श्रीवैष्णव, लिंगायत या वीरशैव और फिर सद्शैव की संख्या थी। किन्तु विजयनगर-नरेश प्रारम्भ से ही सिद्धान्ततः सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु, समदर्शी और उदार थे। स्वयं राजधानी विजय-नगर (हम्पी या प्राचीन पम्पा) के वर्तमान खण्डहरों में वहाँ के जैन मन्दिर ही सर्व प्राचीन हैं। वे नगर के सर्वश्रेष्ठ केन्द्रीय स्थान में स्थित हैं, और अनेक विद्वानों के मत से, उनमें से अनेक ऐसे हैं जो वहाँ विजयनगर की स्थापना के पूर्व से ही विद्यमान थे। इससे स्पष्ट है कि यह स्थान बहुत पहले से ही एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र था।"

हरिहर प्रथम का पुत्र राजकुमार विरूपाक्ष अरग का शासक था। उसके समय में 1363 ई. में पार्श्वनाथ बसदि की सीमाओं के सम्बन्ध में जैनों और वैष्णवों में विवाद हुआ। राजकुमार ने दोनों पक्षों को बुलाया और जैनों का पक्ष न्यायोचित ठहराकर एक शिलालेख अंकित करा दिया।

हरिहर के बाद उसका भाई बुक्काराय (प्रथम) राजा हुआ। उसने 1365 से 1377 ई. तक राज्य किया। उसका महासेनापति भी जैन वीर बैचप्प था। बैच का पुत्र इरुग भी उसका एक सेनापति था। इसके समय में सुदूर दक्षिण तक राज्य फैल गया। इस राजा का 1368 ई. का एक शिलालेख धार्मिक उदारता एवं सहिष्णुता के लिए बड़ा प्रसिद्ध है। इसका विषय जैनों और वेष्णवों के बीच विवाद का समाधान है। इसकी नकल राज्य में अनेक स्थानों पर शिलालेख के रूप में लगाई गई थी। संस्कृत और कन्नड़ में यह लेख (यहाँ की भाषा में 'शासन') कल्य (सात्लूर परगना) में चिक्कण्णा के खेत में एक पाषाण पर (अधूरा) तथा श्रवणबेलगोल की भण्डारि बसदि में पूर्व की ओर के प्रथम स्तम्भ पर पाया गया है। इसमें लिखा है— महामण्डलों में वरवीर बुक्काराय के शासनकाल में आनेय गोन्दि, होसपट्टण, पेनगोण्डे और कल्यह नाडुओं (ज़िलों) के जैनों ने यह आवेदन किया कि तिरुमल, तिरुनारायणपुर आदि अन्य अठारह नाडुओं के श्रीवैष्णवों के हाथों जैन अन्याय से मारे जा रहे हैं। इस पर राजा ने जैनों और वैष्णवों के प्रतिनिधियों के हाथ से हाथ मिला दिए और कहा कि जैन और वैष्णव दर्शन में कोई भेद नहीं है तथा जैन दर्शन को पिछली मर्यादा के अनुसार पंच महाविद्या और कलश का अधिकार है। यदि जैन दर्शन की हानि या वृद्धि हुई तो वैष्णवों को इसे अपनी ही हानि या वृद्धि समझनी चाहिए। श्रीवैष्णवों को इस विषय के शासन (शिलालेख) समस्त राज्य की बसदियों में लगा देने चाहिए। जैन और वैष्णव एक हैं, वे कभी दो नहीं समझे जायें। बेलगुल (श्रवणबेलगोल) में वैष्णव अंगरक्षकों की नियुक्ति के लिए राज्य के जैनियों से प्रत्येक घर पीछे प्रतिवर्ष जो एक 'हण' (सिक्का) लिया जाता है उसमें से तिरुमल के तातय्यदेव की रक्षा के लिए बीस रक्षक नियुक्त किए जाएँगे और शेष द्रव्य जैन मन्दिरों के जीर्णोद्धार एवं पुताई आदि में खर्च किया जाएगा। यह नियम प्रतिवर्ष, जब तक सूर्य-चन्द्र हैं तब तक रहेगा। जो कोई इसका उल्लंघन करेगा वह राज्य का, संघ का और समुदाय का द्रोही ठहरेगा। यदि कोई तपस्वी या ग्रामाधिकारी इस धर्म का प्रतिघात करेगा तो वह गंगातट पर एक कपिला गाय और ब्राह्मण का हत्यारा माना जाएगा। अन्त में एक श्लोक दिया है जिसका आशय है—इस पृथ्वी पर जो भी अपनी या दूसरे की वस्तु का अपहरण करता है वह साठ हजार वर्षों तक विष्टा में कीड़ों के रूप में जन्म लेता है।

बुक्का के बाद उसके पुत्र हरिहर द्वितीय (1377-1404 ई.) ने इस क्षेत्र पर राज्य किया। उसके समय में विजयनगर साम्राज्य की सीमा उत्तर में कृष्णा नदी तक पहुँच गई थी। दक्षिण में लंका तक उसने सैनिक अभियान किया था। उसका दण्डाधिनायक इरुग या इरुगप नामक जैन था। उसने 1386 ई. में 'कुन्थु जिनालय' बनवाया था जो आज भी हम्पी में मौजूद है और 'गाणिगित्ति मन्दिर' कहलाता है। उसने 'नानार्थरत्नाकर' नामक कोश ग्रन्थ की रचना भी की थी। हरिहर द्वितीय की 1404 ई. में मृत्यु की घटना का उल्लेख श्रवणबेलगोल के एक शिलालेख में है।

उपर्युक्त राजा के बाद, 1404 से 1420 तक दो राजाओं--बुक्काराय द्वितीय और देवराय प्रथम ने राज्य किया। वे बहमनी शासकों से युद्ध में ही लगे रहे। देवराय प्रथम की रानी भीमादेवी जैन महिला थी। उसने 1410 ई. में श्रवणबेलगोल की मंगायि बसदि में शान्तिनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई थी और दान दिया था। राजा स्वयं भी जैन मुनि धर्मभूषण का भक्त था। सन् 1420 ई. में इटालियन यात्री निकोलो कोण्टी विजयनगर आया था। उसने इस नगर का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

देवराय द्वितीय (1420-46 ई.) एक महत्त्वाकांक्षी, महान् शासक था। बहमनियों से युद्ध करते रहने के अतिरिक्त, उसने उड़ीसा पर भी विजय प्राप्त की, पूरे दक्षिण भारत पर शासन किया और लंका तथा बर्मा से भी कर वसूल किया। सन् 1424 ई. में उसने वरांग की नेमिनाथ बसदि को वरांग ग्राम दान में दिया था। सन् 1426 ई. में उसने विजयनगर के ही पान-सुपारी बाजार में पार्श्वनाथ का एक मन्दिर बनवाया था जो अब भी ध्वस्त अवस्था में मौजूद है। कारकल में बाहुबली की प्रतिष्ठा में वह स्वयं 1432 में सम्मिलित हुआ था। अपने राज्य के प्रथम वर्ष (1420) में ही उसने श्रवणबेलगोल के गोमटेश्वर की पूजा के लिए एक गाँव दान में दिया था। इस नरेश की 1446 में मृत्यु का उल्लेख भी श्रवणबेलगोल के शिलालेखों में है। सन् 1440 में विजयनगर आये फारस के राजदूत अब्दुर रजाक ने भी विजयनगर की बहुत प्रशंसा की है।

देवराय के बाद, लगभग 60 वर्षों तक निर्बल और अल्पकालीन शासकों का राज्य रहा। संगम राजाओं के एक मन्त्री नरसिंह सालुव ने शासन हथिया लिया और 1486 से '92 तक राज्य किया और दक्षिण को फिर विजित किया। इसी काल में 1482 में बहमनी शासक का राज्य पाँच टुकड़ों में बँट गया। इनमें से बीजापुर का सुलतान विजयनगर साम्राज्य का सबसे बड़ा शत्रु सिद्ध हुआ। सालुव वंश के शासक इम्मडि नरसिंह को भी अरसनायक नाम के एक तुलुव सामन्त ने मार डाला और स्वयं शासक बन गया। यह वंश तुलुव कहलाता था। उसके बाद वीर नरसिंह भुजबल (1506-9) शासक हुआ। उसका उत्तराधिकारी कृष्णदेवराय (1509-30 ई.) बना। विजयनगर साम्राज्य के इतिहास में उसका शासनकाल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। उसके शासनकाल को स्वर्णयुग कहा गया है। उसे अपने सैनिक-अभियानों में सफलता ही सफलता मिली। उसने पूरे दक्षिण भारत पर अधिकार कर लिया, बहमनी सुलतान को धूल चटाई, और उड़ीसा पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित किया। 1520 ई. में उसने रायचूर के युद्ध में बीजापुर के सुलतान को हराकर बीजापुर पर कब्जा कर लिया किन्तु प्रजा पर कोई अत्याचार नहीं किया, बल्कि आत्म-समर्पण करने वाले सैनिकों को क्षमा कर दिया। उसने पुर्तगालियों से भी राजनयिक सम्बन्ध स्थापित किए। साहित्य और कला का भी वह प्रेमी था। उसने संस्कृत और तेलुगु में रचना की। विट्ठल मन्दिर, हजारा राममन्दिर आदि हम्पी के मन्दिरों, गोपुरों आदि का उसने संवर्धन किया। उसके समय में सिंचाई के लिए नहरों का जाल बिछा। पुर्तगाली यात्री डोमिंगोपाइस और नूनिज़ ने इस नगरी (विजयनगर) और राजा के ऐश्वर्य, त्योहारों, सेना, लोगों, प्रथाओं का बड़ा रोचक एवं विस्तृत वर्णन किया है जो 'विजयनगर एम्पायर' नामक नेशनल बुक ट्रस्ट की पुस्तक में छपा है।

कृष्णदेवराय सभी धर्मों का आदर करता था। जैन धर्म का भी वह आदर करता था।

सन् 1516 ई. और 1519 ई. में उसने चिंगलपुट ज़िले की त्रैलोक्यनाथ बसदि को दो गाँव दान में दिए थे। बल्लारी ज़िले की एक बसदि को 1528 ई. में उसने दान दिया था और शिलालेख अंकित कराया था। मूडबिद्री की गुरु बसदि को भी उसने स्थायी वृत्ति दी थी। सन् 1530 ई. के "एक जैन शिलालेख में स्याद्वाद मत और जिनेन्द्र के साथ आदिवराह और शम्भु को नमस्कार करना इस नरेश द्वारा राज्य की पारम्परिक नीति के अनुसरण का परिचायक है।" —(डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन)। वराह विजयनगर शासकों का राजकीय चिह्न था।

कृष्णदेवराय के बाद, अच्युतराय और सदाशिवराय नामक दो निर्बल शासकों ने 1530 से 1542 तक राज्य किया। उनके बाद कृष्णदेवराय के दामाद रामराय (अरविडु वंश) ने अपने को राजा घोषित कर दिया। रामराय ने दक्षिण की मुस्लिम सल्तनत बीजापुर (आदिलशाही) को समाप्त करने की योजना बनाई किन्तु वह सफल नहीं हो सकी। उसके दावपेचों को देखकर अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा और बीदर के सुलतानों ने अपनी रक्षा के लिए सेनाएँ इकट्ठी कीं और सबने मिलकर विजयनगर पर हमले के लिए प्रस्थान किया। कृष्णा नदी के किनारे 18 जनवरी 1565 के दिन तलिकोटा नामक स्थान पर दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। विजयनगर की जीत होने ही वाली थी कि इस साम्राज्य के मुस्लिम सेनापतियों और सिपाहियों ने धोखा दे दिया। (कहा जाता है कि विजयनगर की सेना में दस हज़ार मुस्लिम सिपाही थे।) युद्ध में, रामराय का हाथी घायल हो गया। रामराय ने पास खड़े घोड़े पर कूदने का प्रयत्न किया किन्तु अहमदनगर के सुलतान ने उसका सिर उड़ा दिया और उसे भाले पर टाँगकर प्रदर्शित किया। सेना में भगदड़ मच गई और एक साम्राज्य का अन्त हो गया।

सुलतानों की सेना ने विजयनगर को लगातार पाँच महीनों तक लूटा और नष्ट किया। हथौड़ों से प्रतिमाएँ, मन्दिर, कला-कृतियाँ नष्ट की गईं। नर-संहार भीषण रूप से हुआ और कुछ ही समय के बाद राजधानी वीरान हो गई और उसमें सिंह जैसे हिंसक जन्तु घूमने लगे। जो नगर अपने चौड़े मार्गों, छायादार वृक्षों, नहरों, मन्दिरों तथा नीबू और सन्तरों की बहुतायत एवं हीरे जवाहरात के व्यापार तथा धार्मिक सहिष्णुता एवं साहित्यिक अभिवृद्धि के लिए प्रसिद्ध था, वह एक पुरानी स्मृतिमात्र रह गया। बीजापुर की अधीनता के बाद यह क्षेत्र औरंगज़ेब के साम्राज्य का अंग बन गया।

एक सावधानी

हम्पी के अवशेषों को देखने के लिए यहाँ का नक्शा अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा बहुत-सी अच्छी चीज़ें छूट जाएँगी और पर्यटक का आना व्यर्थ हो सकता है। विरूपाक्ष मन्दिर के पास रामकृष्ण मिशन की पुस्तक दूकान से एक नक्शा निःशुल्क मिलता है जो कि लांगहर्स्ट की पुस्तक से लिया गया है किन्तु उसमें 'गाणिगित्ति' जैन मन्दिर नहीं है। कुछ अन्य क्षेत्र भी नहीं हैं। इसलिए यह उचित होगा कि पर्यटक इस पुस्तक में दिए गए क्रम से भ्रमण करे।

ऊपर यह कहा गया है हम्पी में कलावशेष 26 कि.मी. के घेरे में फैले हुए हैं। इसका यह अर्थ बिलकुल नहीं है कि पर्यटक को 26 कि.मी. के क्षेत्र में घूमना है। वास्तव में, ये अवशेष मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किए जाते हैं—(1) मन्दिर-क्षेत्र जो कि थोड़े-से पहाड़ी क्षेत्र और तुंगभद्रा नदी के किनारे-किनारे फैला हुआ है। इस क्षेत्र में वृक्षविहीन ग्रेनाइट पत्थर की

काली चट्टानें हैं, जंगल या जंगली जानवर नहीं है। नदी में, उसके किनारों पर, हेमकूट और मातंग पर पड़ी ये चट्टानें कहीं हाथी जैसी विशालकाय, तो कहीं भैंस जैसी, कहीं बिना सहारे या सीधी खड़ी हुई-सी जान पड़ती हैं। पर्यटक न चाहे तो मातंग पहाड़ पर न चढ़े हालांकि वहाँ से सूर्यास्त, सूर्योदय तथा हम्पी और आसपास के क्षेत्र का सुन्दर दृश्य दिखाई पड़ता है। चूंकि ये चट्टानें गरम हो जाती हैं इसलिए सुबह के समय इधर का पर्यटन ठीक रहता है। जैनेतर जनता का तीर्थ स्थान (पम्पा तीर्थ) होने के कारण यह यात्रा-पथ सूना नहीं रहता। कुल मिलाकर नदी, शिलाखण्डों, मन्दिरों का यह दृश्य बहुत दिनों तक पर्यटक के स्मृति-पटल पर बना रहता है। मन्दिर-क्षेत्र में कुछ भाग सड़क है और कुछ भाग पैदल-यात्रा का है जो बहुत ही आनन्द-दायी है।

(2) दूसरा क्षेत्र—महल का क्षेत्र है। यह मैदानी भाग है। यहाँ महल, हस्तिशाला, सिंहासन टीला, खुदाई में प्राप्त जैन मन्दिर, भूमिगत मन्दिर और सड़क के किनारे गानिगित्ति जैन मन्दिर हैं। इस क्षेत्र में वाहन से भी यात्रा की जा सकती है।

यदि पर्यटक इस क्षेत्र की यात्रा दो बार में दो दिन करे तो उसे अधिक आनन्द आएगा। एक दिन मन्दिर-क्षेत्र की और दूसरे दिन महल-क्षेत्र की। कुछ लोग एक ही दिन में और वह भी पैदल-यात्रा कर डालते हैं, दर्शनीय स्थलों के पास से केवल गुजर जाते हैं और उनका इतनी दूर द्रव्य व्यय करके आना निष्फल जाता है। स्थानीय लोग या गाइड गानिगित्ति जैन मन्दिर क्षेत्र की ओर जाने से कतराते हैं। कह देते हैं कि 'उधर कुछ नहीं है।' ऐसे लोगों की बात पर ध्यान नहीं देना चाहिए। यह अधिक अच्छा होगा कि यहाँ दिए गए क्रम से यात्रा की जाए।

होसपेट से हम्पी के लिए दो मार्गों की सरकारी बसें चलती हैं। एक तो, कड्डीरामपुर होते हुए हम्पी जाती है और विरूपाक्ष मन्दिर के सामने के हम्पी बाज़ार में समाप्त होती है। मन्दिर-क्षेत्र के लिए कड्डीरामपुर होकर हम्पी जाने वाली बस लेनी चाहिए। दूसरी बस, कमलापुर होकर हम्पी, उसी स्थान पर, जाती है। यह महल-क्षेत्र से कुछ दूरी से जाती है। जैन पर्यटक को परामर्श दिया जाता है कि वह महल-क्षेत्र देखने के लिए कमलापुर या उससे आगे कम्पली की बस लें, कमलापुर के दूसरे स्टॉप पर उतरें, वहाँ से कम्पली (Kampli) सड़क पर एक-दो फर्लांग पैदल चलकर 'गानिगित्ति' जैन मन्दिर देखें, वापस उसी स्थान पर आ जाएँ। वहीं भारतीय पुरातत्त्व विभाग का कार्यालय है और एक सड़क संग्रहालय (museum) के लिए मुड़ती है। वहाँ से लौटकर महल-क्षेत्र देखें। सड़क पर लिखा है—हम्पी 4 कि. मी.। सब कुछ देखने के बाद कमलापुर से होसपेट की बस ली जा सकती है। कमलापुर एक गाँव है और होसपेट से 11-12 कि. मी. की दूरी पर है।

मन्दिर एवं अन्य कलावशेष

यात्रा-क्रम : 1

हम्पी के अवशेषों के ऐतिहासिक वर्णन में ए. एच. लांगहर्स्ट की पुस्तक 'हम्पी इन रुइन्स' से सहायता ली गई है। (श्री लांगहर्स्ट भारतीय पुरातत्त्व विभाग के उस समय के दक्षिणी मण्डल के अधीक्षक थे। उनकी यह पुस्तक 1925 ई. में प्रकाशित हुई थी। उनके मत को यहाँ या तो उद्धृत किया गया है या उसका सारांश दिया गया है, किन्तु ऐसा करते समय

उनके नाम का उल्लेख अवश्य किया गया है। होसपेट से हम्पी (मन्दिर-क्षेत्र) तक पक्की सड़क है। उस पर बसें चलती हैं। रास्ते में अनन्तशयनगुडी नामक गाँव और कड्डीरामपुर आते हैं जहाँ कुछ मुस्लिम कब्रें हैं। होसपेट आने वाली सड़क पर 7 कि. मी. के बाद, एक सड़क मुड़ती है जो कि मन्दिर-क्षेत्र (हम्पी) की ओर जाती है। सीधी सड़क कमलापुर चली जाती है।

मन्दिर-क्षेत्र की बस पर्यटक को हम्पी बाज़ार में उतार देती है। यह बाज़ार 35 गज चौड़ा और 800 गज लम्बा है। किसी समय यहाँ व्यापार की धूम थी—हीरे-जवाहरात और सभी वस्तुओं की। यहाँ व्यापारियों, अधिकारियों के भवन थे। उनके अवशेष पाषाण के स्तम्भों, भग्न मकानों में अब भी हैं जिनमें कुछ लोग बस गए हैं। बाज़ार अब भी यहाँ है। उसमें पूजा-सामग्री, पुस्तकें, ठण्डे पेय आदि मिलते हैं। यहीं कर्नाटक सरकार का एक छोटा-सा पर्यटन कार्यालय भी है।

1. विरूपाक्ष मन्दिर—बाज़ार से पश्चिम दिशा में यहाँ का सर्वाधिक प्रसिद्ध विरूपाक्ष या पम्पापति मन्दिर है जिसमें अब भी पूजन होती है। यह मन्दिर तुंगभद्रा नदी के किनारे है। इसका गोपुर (प्रवेशद्वार) नौमंजिला है और 52 मीटर ऊँचा है। उसमें ऊपर तक जाने के लिए सीढ़ियाँ भी हैं। एक मत यह है कि यह गोपुर बिस्तप्पा ने चौथी शताब्दी में बनवाया था और बिस्तप्पा गोपुर कहलाता था। दूसरा मत यह है कि इसे देवराज द्वितीय के एक अधिकारी टिप्पा (1422-46) ने बनवाया था और उसकी मरम्मत कृष्णदेवराय ने 1510 ई. में कराई थी। केवल 60 वर्षों में ही मरम्मत की आवश्यकता पड़ गई यह कुछ अटपटा लगता है। एक हजार वर्ष के बाद मरम्मत की बात ठीक जँचती है। यह मन्दिर और उसका अहाता बड़ा विशाल है। उसमें तीर्थ-यात्रियों के ठहरने की भी व्यवस्था है। इसकी एक विशेषता यह है कि तुंगभद्रा नदी की एक संकीर्ण धारा मन्दिर की छत पर से होती हुई रसोईघर में नीचे गिरती है और फिर बाहर बह जाती है। इसमें छोटे गोपुर भी हैं और अनेक छोटे-छोटे मन्दिर भी हैं। इसलिए यह एक प्रकार का मन्दिर-समूह ही है। तीन मंज़िल का एक छोटा गोपुर कृष्णदेवराय ने 1510 ई. में बनवाया था। मुख्य मन्दिर पूर्वाभिमुखी है। इसके चित्र सुन्दर हैं। अर्जुन, दशावतार, दिक्पाल, शिव आदि का अंकन अच्छा बन पड़ा है। गर्भगृह में एक सँकरा, प्रदक्षिणा-प्राकार है। इसका शिखर गुम्बज-जैसा है। उसमें विरूपाक्ष लिंग (शिवलिंग) स्थापित है। मन्दिर के अहाते में पातालेश्वर, नवदुर्गा आदि अनेक छोटे मन्दिर हैं। दक्षिण-पश्चिम में सरस्वती की काले पाषाण वाली प्रतिमा से युक्त एक मन्दिर है। दो भुजाओं वाली आसीन सरस्वती वीणा बजा रही है और उसके मस्तक के पीछे सुन्दर प्रभावली है। यहाँ पार्वती और भुवनेश्वरी के दो मन्दिरों को पुरातत्त्वविद् बारहवीं सदी का मानते हैं अर्थात् विजयनगर साम्राज्य की स्थापना से पहले के। लाँगहर्स्ट ने यह मत व्यक्त किया है कि इस मन्दिर-समूह के मन्दिर विभिन्न कालावधियों में निर्मित हुए हैं और यह सम्भावना व्यक्त की है कि (1336 ई. में विजयनगर की नींव पड़ने से पहले ही इस स्थल पर जैनों का कोई मन्दिर रहा हो।) "It is possible that the Jains had a temple on this site long before the founding of Vijayanagar in 1336". (पृष्ठ 26)।

2. हेमकूट—विरूपाक्ष मन्दिर के दक्षिण की पहाड़ी हेमकूट के नाम से प्रसिद्ध है। इस पर स्थित मन्दिर 'जैन-मन्दिर समूह' कहलाते हैं (चित्र क्र. 24)। इन्हें देखने के लिए

हम्पी बाजार से होसपेट जाने वाली सड़क पर थोड़ी-सी दूर ही पैदल चलना होता है। वहाँ 'Jain group of Temples' लिखा है। यहाँ इस मन्दिर-समूह का मानचित्र प्रदर्शित है। इसी के साथ, जैन मन्दिर (त्रिकूटाचल) शैली के मन्दिर का चित्र भी दिया गया है। हेमकूट के मन्दिर ध्वस्त अवस्था में हैं। उनमें इतनी तोड़-फोड़ हुई है कि जैन चिह्नों का पता नहीं लगता। मूर्ति तो है ही नहीं। ये मन्दिर त्रिकूटाचल या समूह में तीन मन्दिर हैं अर्थात् इनमें तीन गर्भगृह हैं। मन्दिरों की यह शैली जैनकला की विशेषता मानी जाती है। ऐसा ही एक जैन मन्दिर (पार्श्वनाथ बसदि) हम्पी में भी मौजूद है जिसे देवराय द्वितीय ने 1426 ई. में बनवाया था। त्रिकूट-शैली के जैन मन्दिर बड्डुमणी (प्राचीन वर्धमानपुर), प्रगतुर और बेलगाँव में भी हैं। इनके सोपानबद्ध शिखर भी जैन शैली के माने जाते हैं। इन त्रिकूट-मन्दिरों का स्तम्भोंयुक्त एक केन्द्रीय मण्डप होता है। एक मन्दिर उत्तरमुखी है तो शेष दो मन्दिरों का प्रवेश पूर्व और पश्चिम से है। यह भी सम्भव है कि इनमें से कुछ शिव-मन्दिर हों या किसी समय रूपान्तरित किये गए हों। लाँगहर्स्ट का मत है कि कुछ मन्दिरों की निर्माण-शैली इतनी साधारण है कि इन्हें सातवीं शताब्दी के पल्लव-मन्दिरों की श्रेणी में रखा जा सकता है और वे विजयनगर साम्राज्य की स्थापना से पहले के हैं। जिन मन्दिरों में कुछ उत्कृष्ट कलाकारी है वे चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी से भी पहले के हो सकते हैं। इनकी दीवारें बड़े-बड़े शिलाखण्डों को जोड़कर निर्मित की गई हैं। इनके चौकोर स्तम्भ भी पाषाण के हैं। जो भी हो, ये मन्दिर प्राचीन हैं और जैन मन्दिरों के रूप में आज तक प्रसिद्ध हैं।

3. रत्नत्रय-कूट (आधुनिक श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम)—जैन मन्दिर समूह के सामने की पहाड़ी पर एक और बोर्ड पर लिखा है—'श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम'। यह जिस पहाड़ी पर स्थित है उसे 'रत्नकूट' कहा गया है। इसकी स्थापना स्वामी सहजानन्द घन (भद्रमणि) ने 1960 ई. में की थी। वे संघ से अलग हो गए और उन्होंने नामहीन होकर अपना नाम सहजानन्द रख लिया। उनकी तपस्या के समय यहाँ हिंसक जीवों और व्यन्तरों का उपद्रव बताया जाता है। किन्तु अब आश्रम, मन्दिरों और अनेक भवनों का निर्माण हो चुका है तथा 'विजयनगर स्टील प्लांट' की भी योजना है। इस आश्रम का अहाता बहुत बड़ा है। पानी-बिजली सभी तरह की सुविधा है।

आश्रम में प्राकृतिक शिलाओं से निर्मित एक गुफा है जो कि ऊँचे स्थान पर है। दो-तीन बड़ी-बड़ी शिलाएँ इस गुफा का निर्माण करती हैं। इसी में चन्द्रप्रभ की दिगम्बर मूर्ति विराजमान है। इसका फर्श पक्का है। यहाँ ध्यान चलता रहता है, टेप भी चलते हैं। मन्दिर में श्रीमद्राजचन्द्र, सहजानन्द घन के चित्र लगे हैं। यहीं एक गुरु-मन्दिर भी है जिसका सभा-मण्डप काफी बड़ा है। इस मन्दिर में श्रीमद्राजचन्द्र, सहजानन्द घन और जिनदत्तसूरि की मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं। इस आश्रम की मान्यताओं से कुछ को असहमति हो सकती है किन्तु चन्द्रप्रभ मन्दिर दर्शनीय है ही। ठहरने की सुविधा भी उत्तम है। यह स्थान शान्त, रमणीक और साधना के उपयुक्त है। पता इस प्रकार है—श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम, रत्नकूट, हम्पी, पोस्ट ऑफिस—कमलापुरम्, रेलवे स्टेशन होसपेट, जिला बल्लारी (कर्नाटक)।

4. पार्श्वनाथ के चरण या विष्णुपाद—हेमकूट पर्वत पर ही दो गणेश-मन्दिर हैं जो कि 'साशिवेकालु' और 'कड़लेकालु' गणेश-मन्दिर कहलाते हैं। प्रथम मन्दिर की गणेश-प्रतिमा

2.4 मीटर ऊँची है। वह खुले मण्डप में है किन्तु इन्हें 'सरसों गणेश' कहा जाता है। प्रतिमा खण्डित है। कडलेकालु मन्दिर की खण्डित गणेश-प्रतिमा 4.5 मीटर ऊँची है किन्तु उसे भी 'चना गणेश' कहा जाता है। ये नाम शायद व्यंग्य में दिये गए हैं।

साशिवेकालु गणेश की दाहिनी ओर एक छोटा-सा मन्दिर है। यह मन्दिर चट्टान पर बने उन दो चरणों के आसपास बनाया गया है जिनके चारों ओर एक नाग है। पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग, भारत सरकार द्वारा 1983 ई. में प्रकाशित 'हम्पी' नामक अँग्रेज़ी पुस्तक में डी. देव-कुंजारि ने लिखा है कि इन चरणों को साधारणतः विष्णु के चरण माना जाता है। नाग द्वारा आवृत चरण विजयनगर में, तुंगभद्रा नदी के किनारे कई स्थानों पर पाये जाते हैं। किन्तु उनका क्या महत्त्व है यह स्पष्ट नहीं है।

उपर्युक्त चरणों का स्पष्टीकरण दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय के निदेशक (डायरेक्टर) स्व. श्री शिवराममूर्ति ने अपनी अमर कृति 'South—Panorama of Jaina Art' (1983) में किया है। ये चरण इस पुस्तक की चित्र सं. 2 हैं। उसमें उद्धृत पार्श्वनाथ के ऊपर छपे एक उलटे और एक सीधे चरण का अर्थ पार्श्वनाथ की सर्वज्ञता (चहुँ ओर सभी पदार्थ देख सकने की क्षमता) बताया है और नाग को इन चरणों का रक्षक बताया है। यह स्पष्टीकरण जैन मान्यता के अनुरूप है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इनसे भी इस क्षेत्र में पार्श्वनाथ का प्रभाव और प्राचीन हम्पी-वासियों द्वारा नागफलकों या नाग की पूजा समझ में आती है। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि विरूपाक्ष मन्दिर पहले नागदेवता को समर्पित था।

श्री शिवराममूर्ति ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक के बारहवें पृष्ठ पर लिखा है—

"a pair of feet in Hampi represent Parshvanatha's kindness of the snake that he saved from annihilation, which out of his gratitude in his birth as Dharamendra Yaksha canopied him with his hoods and protected him from Kamatha. The feet are here shown in opposite directions to suggest that he could see in all directions like Gautama, the rishi who had eyes even in his feet. The 'kevala-jnana' of Tirthankara that transcends the highest of any other knowledge and is the acme of perfection, is thereby suggested as facing and taking into accounnt every thing all around."

5-6-7-8-9-10—इसी क्षेत्र में 'कृष्ण मन्दिर', 'सरस्वती मन्दिर' (सरस्वती के हाथों में एक ताड़पत्र है), 'बडवी लिंग' (शिव मन्दिर जिसमें 3 मीटर ऊँचा शिवलिंग है), 'उग्रनरसिंह' (प्रतिमा की ऊँचाई 6.7 मीटर) तथा 'चण्डेश्वर मन्दिर' (वैष्णव मन्दिर) और 'बीरभद्र मन्दिर' (बीरभद्र की अब भी पूजित 3.6 मीटर ऊँची प्रतिमा) हैं। इन्हें भी देखा जा सकता है।

इन मन्दिरों को देख लेने के बाद, पर्यटक को वापस हम्पी बाज़ार लौटना चाहिए और विरूपाक्ष मन्दिर के गोपुर की उलटी दिशा में बढ़ना चाहिए।

11. नन्दी—जहाँ बाज़ार का अन्त होता है वहाँ एक खुले मण्डप में नन्दी की विशाल मूर्ति है। यह विरूपाक्ष (शिव) मन्दिर के सामने का नन्दी माना जाता है।

उपर्युक्त नन्दी से पहले ही एक पैदल रास्ता तुंगभद्रा नदी की ओर मुड़ता है। और अब शुरू होती है तुंगभद्रा के सुन्दर एवं मनोहारी तट के किनारे-किनारे मन्दिरों आदि की पैदल-

यात्रा। यह यात्रा लम्बी नहीं है और न ही कुछ भयानक दिखने वाली पहाड़ियों में से होकर। केवल नदी के किनारे-किनारे चलना है जहाँ यात्रियों का हमेशा आवागमन रहता है।

होसपेट से हम्पी बाज़ार तक (एक से लेकर ऊपर लिखे ग्यारहवीं दृश्य-वस्तु तक) की यात्रा बस या कार में भी पक्की सड़क के साथ-साथ की जा सकती है। पैदल-यात्रा विट्ठल मन्दिर पर समाप्त होती है। वहाँ फिर कार या बस आ सकती है और गानिगित्ति मन्दिर तथा महल-क्षेत्र की यात्रा वाहन से की जा सकती है। यदि कार या बस विट्ठल मन्दिर के पास लाती हो तो 'वीरभद्र स्वामी मन्दिर', 'रानी स्नानागार' (क्वीन्स बॉथ) होते हुए कमलापुर स्थित ट्रेवलर्स बंगला और फिर वहाँ से तलारीगेट्टु (Talarigattu) और निम्बापुरम् होते हुए कार या बस विट्ठल मन्दिर पहुँचेगी। पैदल पर्यटकों को महल-क्षेत्र दूसरे चरण में देखना चाहिए अर्थात् प्रथम यात्रा-क्रम विट्ठल मन्दिर पर समाप्त कर अपने स्थान पर लौट आना चाहिए। दूसरे क्रम में अपनी यात्रा होसपेट से कमलापुर, वहाँ से एक फर्लांग दूर गानिगित्ति जैन मन्दिर (कम्पली रोड पर) से पर्यटन प्रारम्भ करना चाहिए।

12. कोण्डनराम मन्दिर—तुंगभद्रा के किनारे चलने पर सबसे पहले यह मन्दिर आता है। इसमें राम, लक्ष्मण और सीता की साढ़े चार मीटर ऊँची प्रतिमाएँ हैं।

13. चक्रतीर्थ—उपर्युक्त मन्दिर के सामने ही एक घाट है जो चक्रतीर्थ कहलाता है। तुंगभद्रा के इस घाट पर लोग नहाते हैं।

14. सूर्यनारायण मन्दिर—राम मन्दिर के पास सूर्यनारायण मन्दिर है जिसमें देवता के सोलह हाथ दिखाए गए हैं।

15. यन्त्रोद्धार हनुमान मन्दिर—राम मन्दिर के कुछ ऊपर इस मन्दिर में गोलाकार यन्त्र में यन्त्रोद्धारक आंजनेय (हनुमान) की मूर्ति है।

16. अनन्तशयन मन्दिर—यह हनुमान मन्दिर के पास है।

17. अच्युतपेट या सूलै बाजार—यहाँ एक बाज़ार था जिसमें देवदासियाँ रहा करती थीं। उनसे जो कर वसूल किया जाता था, उससे दो हज़ार रक्षकों (पुलिस कर्मियों) का वेतन निकल आता था। अब यह सूलै बाज़ार के रूप में जाना जाता है।

18. अच्युतराय मन्दिर—आगे चलकर यह मन्दिर है जिसे अच्युतराय ने बनवाया था और जो तिरुवेंगलनाथ मन्दिर के नाम से जाना जाता था। यह भी मन्दिर-समूह है। गोपुरों के पास का कल्याण-मण्डप ध्वस्त अवस्था में है और इसी प्रकार इसका ऊपरी भाग भी ध्वस्त हो गया है।

19. मातंग पर्वत—उपर्युक्त मन्दिर के पास से मातंग पर्वत पर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। ऊपर वीरभद्र का मन्दिर है। वहाँ से चारों ओर का दृश्य सुन्दर दिखाई देता है।

20. वराह मन्दिर—वापस नदी किनारे की ओर लौटने पर, एक बड़े द्वार से जाने पर, वराह मन्दिर है। द्वार की बायीं ओर की दीवाल पर वराह उत्कीर्ण है। यह विजयनगर शासकों का राजकीय चिह्न रहा है।

21. नदी किनारे का जैन मन्दिर—यह ऊँची चट्टान पर स्थित है। इस पर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसका प्रांगण विशाल है। शिखर सोपानबद्ध है और दक्षिण भारतीय शैली का है। सामने एक ऊँचा स्तम्भ है। कुछ लोग इसे दीप-स्तम्भ कहते हैं।

स्पष्ट जैन-चिह्नों के अभाव म यह मन्दिर विवादास्पद है। कुछ विद्वान इसे वैष्णव मन्दिर सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। किन्तु प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ लांगहर्स्ट ने इसे अपनी पुस्तक के अन्त में दिए गए नक्शे में जैन मन्दिर ही सूचित किया है। इसकी रचना-शैली (शिखर) के आधार पर वे इसे जैन मन्दिर स्वीकार करने के पक्ष में हैं। उनका यह भी विचार है कि इसमें जो वैष्णव मूर्तियाँ आदि हैं वे सब गर्भगृह के बाहर हैं। उससे बाहर इनका उत्कीर्णन किसी समय होता था या कारीगरों को इसकी अनुमति दे दी जाती थी। उन्होंने दक्षिण कन्नड़ में इस प्रकार के उत्कीर्णन का प्रमाण दिया है। यदि पर्यटक चाहे तो आज भी कारकल के चौमुखा जैन मन्दिर के बाहर की दीवाल पर राम, लक्ष्मण और सीता की मूर्तियाँ खुदी हुई देख सकता है। केरल में पुत्तंगडी नामक एक गाँव में एक ध्वस्त जैन मन्दिर है। उसकी बाहरी दीवाल पर विष्णु के दस अवतार उत्कीर्ण हैं। इनमें ऋषभदेव भी हैं जिन्हें वैष्णव जन विष्णु का आठवाँ अवतार आज भी मानते हैं (भागवतपुराण में उनका विशद वर्णन है)। एक समय था जब वैष्णव और जैन बड़े सहयोग से रहते थे। इसी कारण मन्दिरों के गर्भगृहों के बाहर वैष्णव अंकन भी करने दिया जाता था। स्वयं हम्पी में, हज़ारा राम नामक राममन्दिर के बाहर की दीवालों पर तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। शृंगेरी के विद्याशंकर मन्दिर की बाहरी दीवालों पर भी तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं।

आधुनिक युग के प्रख्यात पुरातत्त्वविद् श्री शिवराममूर्ति ने भी अपनी पुस्तक 'साउथ—पेनोरमा ऑफ जैन आर्ट' में इसका चित्र जैन मन्दिर के रूप में ही दिया है।

पर्यटक स्वयं देख सकते हैं कि इस मन्दिर के दो स्तम्भों पर पद्मासन में तीर्थंकर मूर्तियाँ जैसी हैं किन्तु उनके हाथ ऊपर उठे हुए हैं। इस प्रकार की मूर्तियाँ उपदेश-मुद्रा में उपाध्याय परमेष्ठी की बताई जाती हैं। अतः ये उपाध्याय मूर्तियाँ हो सकती हैं। इसके सामने का ऊँचा स्तम्भ मानस्तम्भ ही लगता है।

मन्दिर में हाथियों, नर्तकों, वादकों आदि का सुन्दर उत्कीर्णन है। इसकी दीवाल क़िले जैसी है। अहाता बड़ा है।

इसी के अहाते में एक दो-मंज़िल स्तम्भों पर आधारित खुला मण्डप है। कुछ लोग इसे 'व्यास-मण्डप' कहते हैं जहाँ शिक्षा दी जाती थी। वास्तव में यह उत्सव-मण्डप रहा होगा।

22. सुग्रीव की गुफा—जैन मन्दिर से नीचे उतरने पर सुग्रीव की गुफा बताई जाती है। यह नदी के किनारे पर है। कहा जाता है कि अपने हरण के समय सीता ने जो आभूषण आदि नीचे फेंके थे उन्हें सुग्रीव ने इसी गुफा में रखा था।

23. पत्थर का पुल—गुफा के पास तुंगभद्रा नदी पर पत्थर के एक पुल के कुछ स्तम्भ दिखायी देते हैं। इसका निर्माण चौदहवीं शताब्दी में हुआ था और यह आनेगुन्दी जाने के काम आता था।

24. तुलाभार (राजा की तुला, King's balance)—कुछ आगे चलने पर दो ग्रेनाइटी स्तम्भों व एक आड़ी कड़ी (बीम) से बनी 'राजा की तुला' दिखाई देती है। राज्याभिषेक, दशहरा आदि अवसरों पर यहाँ राजा को स्वर्ण आदि से तौला जाता था और दान दिया जाता था।

25. राय गोपुर—तुलाभार से आगे एक महाद्वार है जो कि शायद अधूरा ही रह गया। अब इसका ध्वस्त अवस्था में कुछ भाग ही शेष है।

26. विट्ठल मन्दिर—हम्पी के मन्दिर-क्षेत्र में यह मन्दिर सबसे आकर्षक और दर्शनीय है। शायद इसे देवराय द्वितीय ने पन्द्रहवीं शताब्दी में बनवाना प्रारम्भ किया था। यह मन्दिर भी अधूरा रह गया। इसका प्रांगण विशाल है। इसका क्षेत्रफल 500 फीट × 300 फीट बताया जाता है। इसके तीन गोपुर अब ध्वस्त अवस्था में हैं। इसका शिखर भी नहीं रहा। यह विट्ठल या विष्णु को समर्पित है। इसमें 23 शिलालेख बताये जाते हैं। इसमें अर्ध-मण्डप या खुला मण्डप, महामण्डप और गर्भगृह हैं। महामण्डप में 56 स्तम्भ हैं। उसमें सैनिकों, हंसों और अश्वों का सुन्दर उत्कीर्णन है। दशावतार भी उत्कीर्ण किये गए हैं। कमल का अंकन भी दर्शनीय है। इसमें प्रदक्षिणापथ भी है।

मन्दिर के अहाते में एक संगीत-मण्डप या रंगमण्डप भी है। यह भी विशाल है। इसके लगभग 4 फीट के छोटे-छोटे स्तम्भों को उँगलियों से ठपठपाने पर संगीतमय ध्वनि निकलती है। केवल यही एक विशेषता पर्यटक को आश्चर्य में डाल देती है।

कल्याण-मण्डप नामक एक और 62 फीट चौड़ा मण्डप है। यह ऊँची चौकी पर है। मोर, तोतों, देवी-देवताओं आदि के चित्र या अंकन अद्भुत कारीगरी के नमूने हैं।

पाषाण का एक रथ भी इस मन्दिर के प्रांगण में देखने लायक है। इसे गरुड़ मन्दिर कहते हैं। इसके पहिए घूम सकते हैं ऐसा कहा जाता है।

विट्ठल मन्दिर पहुँचने पर तुंगभद्रा नदी के किनारे के हम्पी के मन्दिर-क्षेत्र की यात्रा समाप्त होती है। यहाँ से वाहन द्वारा तलारिकट्टे होते हुए कमलापुर जाया जा सकता है या वापस हम्पी बाज़ार लौटकर अपने विश्राम-स्थल की ओर।

आनेगुन्दी—यदि पर्यटक चाहे तो विट्ठल मन्दिर से आगे की सड़क पर तलारिकट्टे गाँव और वहाँ से नाव में तुंगभद्रा नदी पार कर आनेगुन्दी पहुँच सकता है। यहाँ भी क़िले की दीवारों, मन्दिरों आदि के अवशेष बिखरे पड़े हैं। यह भी एक समय राजधानी रहा है। अब यह एक गाँव है।

आनेगुन्दी में भी एक जैन मन्दिर है जो कि चौदहवीं शताब्दी का बताया जाता है। यहीं एक चट्टान पर कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। उनके दोनों ओर चँवरधारी और भक्तजन हैं। तुंगभद्रा नदी की धारा में एक शिला पर चरण और संभवतः सल्लेखना दृश्य है।

यात्रा-क्रम : 2

कमलापुर गाँव की सीमा से बाहर कम्पिली (Kampili) सड़क पर पुरातत्त्व विभाग का कार्यालय है। उसके सामने की सड़क पर सीधे एक-दो फर्लांग की दूरी पर हम्पी का प्रसिद्ध 'गानिगित्ति' जैन मन्दिर है। जहाँ कम्पिली 21 कि. मी. लिखा है वहीं यह मन्दिर है।

1. गानिगित्ति जैन मन्दिर—कन्नड़ में गानिगित्ति का अर्थ होता है 'तेलिन'। न जाने किस कारण से यह आजकल तेलिन का मन्दिर कहलाता है। डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन का मत है कि किसी तेलिन ने इसका जीर्णोद्धार कराया होगा। लेकिन इस बात को पुष्ट करने वाला कोई शिलालेख भी तो यहाँ नहीं है। अतएव संभावना यही है कि जब विजयनगर उजड़ गया, तब जिसके जी में जो आया वह उसे अपने अधिकार में कर बैठा। सम्भव है किसी तेलिन ने इसमें अपना अड्डा जमा लिया हो। इस प्रकार के उदाहरण ऐहोल में भी मिले हैं। एक

पागल स्त्री एक मन्दिर में रहने लगी थी, इसलिए वहाँ का एक मन्दिर हुचिमल्ली (पागल स्त्री का) मन्दिर कहलाता है। एक अन्य मन्दिर में लाडखाँ रहने लगे थे, इसलिए वह लाडखाँ मन्दिर के नाम से जाना जाता है। स्वयं हम्पी बाज़ार में आज भी अनेक परिवार प्राचीन अवशेषों में अपना घर बना बैठे हैं।

इस मन्दिर के सामने तीस-चालीस फीट ऊँचा एक मानस्तम्भ है जिसे कुछ लोग 'दीप-स्तम्भ' कहते हैं (दीपस्तम्भ में ऊपर से नीचे तक दीप बने होते हैं—सभी ओर)। अब इस मानस्तम्भ पर मूर्ति नहीं है। इस स्तम्भ के नीचे जो शिलालेख है उससे ज्ञात होता है कि इसका निर्माण 1386 ई. में हुआ था। लेख के अनुसार, विजयनगर के राजा हरिहर का दण्डाधिनायक मन्त्री चैच था। उसका पुत्र इरुग या इरुगप आचार्य सिंहनन्दि का शिष्य था। इरुग भी एक सेनापति था। उसी ने कर्णाट के कुन्तल विषय (ज़िले) में 'चारुशिलामय' कुन्थु जिननाथ का यह चैत्यालय बनवाया था। मन्दिर के प्रांगण में कन्नड़ में एक शिलालेख और भी है।

मन्दिर के प्रवेशद्वार पर पाषाण का एक सिरदल है। उस पर पद्मासन में तीर्थंकर मूर्ति उत्कीर्ण है। तीर्थंकर छत्रत्रय से युक्त हैं और उनके दोनों ओर चँवर हैं। मन्दिर के सामने के भाग की छत समतल है। उस पर जो मुँडेर है वह ईंट और मसाले की बनी है। उसके तीन बड़े आलों में भग्न अवस्था में तीन पद्मासन मूर्तियाँ भी पहचानी जा सकती हैं। सामने के मण्डप की अब छत नहीं रही। सभामण्डप के प्रवेशद्वार की चौखट पर मकर और पत्रावली की सुन्दर नक्काशी है। सिरदल पर कमल उत्कीर्ण है। नवरंग मण्डप में चार मोटे स्तम्भ हैं जिन पर नक्काशी कम है। गर्भगृह के प्रवेशद्वार के सिरदल पर पद्मासन में महावीर विराजमान हैं। उनसे ऊपर भी पद्मासन में तीर्थंकर मूर्ति है। गर्भगृह में अब कोई मूर्ति नहीं है। मन्दिर उत्तराभिमुखी है। साथ ही, एक छोटा गर्भगृह भी है जो पूर्वाभिमुखी है। मन्दिर का निर्माण मोटी-मोटी लम्बी शिलाओं से किया गया है। शिलाओं की कुल तीन पंक्तियों में छत आ जाती है। मन्दिर का शिखर सोपानबद्ध है, ऊपर वह ड्रम-जैसा हो गया है। शिखर की ऊँचाई 10-12 फीट होगी।

मन्दिर का अहाता बड़ा है। बीते समय को देखते हुए मन्दिर अच्छी हालत में है और इस समय भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के संरक्षण में है।

गानिगित्ति मन्दिर के पास ही 'भीम द्वार' है। यह विजयनगर में प्रवेश का एक प्रमुख द्वार रहा होगा।

जैन मन्दिर से सामने एक पहाड़ी दिखाई देती है जो कि 'माल्यवंत पर्वत' के नाम से मशहूर है। बताया जाता है कि यहाँ श्री रामचन्द्र ने कुछ दिनों निवास किया था। यहीं एक रघुनाथ मन्दिर भी है।

कमलापुर के पूर्व में भी एक बहुत बड़ा मन्दिर है। यह 'पट्टाभिराम मन्दिर' कहलाता है। अब उसमें मूर्ति नहीं है। इसमें भी एक कल्याण-मण्डप है।

2. संग्रहालय—गानिगित्ति मन्दिर से पुरातत्त्व विभाग के कार्यालय वापस लौटना चाहिए। ट्रेवलर्स बंगला के सामने से जो सड़क हम्पी पॉवर हाउस की ओर जाती है उस पर एक-दो फर्लांग की दूरी पर पुरातत्त्व विभाग का एक सुन्दर संग्रहालय है। इसके हॉल में और

खुले प्रांगण में अनेक जैन मूर्तियाँ आदि हैं। हॉल में एक तीर्थंकर मूर्ति पद्मासन में है, दो चँवरधारी आसपास हैं जो कि सिर से ऊपर छत्रत्रय तक खड़े दिखाये गए हैं। कायोत्सर्ग मुद्रा में पाँच फणों से युक्त सुपार्श्वनाथ की मूर्ति के ऊपर भी (फणों के ऊपर) पद्मासन में तीर्थंकर विराजमान हैं। दो-तीन नागफलक भी यहाँ हैं। यहाँ एक 'थाली-शिला' है जिसमें कटोरियाँ बनी हैं। खुले प्रांगण में मुख्य रूप से बाहुबली की खण्डित मूर्ति, कमल में चरण और एक शिला में दो जोड़ी चरण आदि हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। संग्रहालय के तीनों ओर ढेर सारी मूर्तियाँ हैं। उसके भण्डार में भी मूर्तियों का एक बड़ा संग्रह है।

और अब हम्पी के महल-क्षेत्र की ओर। कमलापुर के पुलिस स्टेशन और सार्वजनिक निर्माण विभाग के निरीक्षण बंगला के सामने एक स्तम्भ पर लिखा है—हम्पी 4 कि. मी.। वहीं 'Welcome Hampi Pampa Kshetra' का बोर्ड लगा है। यहीं से महल-क्षेत्र का पर्यटन प्रारम्भ होता है।

इस यात्रा में सबसे पहले चन्द्रशेखर मन्दिर आता है। इस मन्दिर से भी एक पगडण्डी गानिगित्ति मन्दिर की ओर जाती है।

चन्द्रशेखर मन्दिर से थोड़ी-सी दूरी पर अष्टकोण स्नानागार (Octagonal bath) है। यह ध्वस्त अवस्था में है।

उपर्युक्त स्नानागार से वापस लौटने पर 'चन्द्रशेखर मन्दिर' के पास एक चौकोर 'जल-शिखर' (Water tower) है। सम्भवतः यहाँ से विजयनगर के लिए जल की पूर्ति की जाती हो।

3. रानी स्नानागार—शिखर के बाद हम 'रानी स्नानागार' (Queen's bath) पहुँचते हैं। यह स्नानागार या 'स्वीमिंग पूल' 50 फीट लम्बा और 6 फीट गहरा है। इसमें सजावट-पूर्ण गलियारे और छज्जे हैं। बाहर से यह राजस्थानी हवेली जैसा दिखाई देता है।

4. पत्थर की नहरें—स्नानागार तक पहुँचते-पहुँचते पर्यटक को क़िले की दीवारों के अवशेष दिखाई देते हैं। आश्चर्य होता है कि लगभग तीन फीट मोटी और चार फीट ऊँची लम्बी-लम्बी शिलाओं को किस प्रकार यहाँ लाया और जमाया गया होगा। कभी-कभी ऐसा आभास होता है कि शायद बिना मसाले के ही इन्हें एक-दूसरे पर रच दिया गया था। फिर उससे भी अधिक इंजीनियरिंग की सूचक हैं पत्थर की नहरें और 'बहते झरने'। ये नहरें आवश्यकतानुसार पाषाण-स्तम्भों के ऊपर से ले जाई गई हैं। विजयनगर साम्राज्य के युग में इस शहर में इन नहरों का जाल बिछा था। उनसे पेय पानी, सिंचाई का पानी, स्नानागारों का पानी आदि प्राप्त होता था। होसपेट से कमलापुर के रास्ते में अब भी ऐसी नहरें दिखाई दे जाती हैं। कमलापुर से पहले एक तालाब है। उसमें भी इन नहरों से पानी पहुँचाया गया है। यही कारण है कि यहाँ चावल, गन्ना और अन्य प्रकार की हरियाली या उपज अब भी होती है। उस युग में नीबू और संतरों का भी उत्पादन खूब होता था।

5. खुदाई स्थल—पुरातत्त्व विभाग की ओर से इस स्थान के पास खुदाई की जा रही है। अभी कुछ ही समय पूर्व, यहाँ एक बावड़ी निकली थी जिसमें सुन्दर कलाकारी युक्त सीढ़ियाँ निकली हैं।

खुदाई काफी विस्तृत क्षेत्र में हो रही है। महानबमी डिब्बा तथा महल-क्षेत्र के पास जो खुदाई हो रही है उसमें बहुत प्राचीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। दूसरी शताब्दी ई. का एक

ब्राह्मी शिलालेख मिला है। चालुक्य शासकों का 1076 ई. का एक और शिलालेख भी प्राप्त हुआ है। यहाँ एक भूमिगत कक्ष भी प्रकाश में आया है जिससे अनुमान है कि यहाँ चालुक्य-कालीन कोई सांधार (प्रदक्षिणापथ युक्त) मन्दिर था। पुरातत्त्वविदों का यह अनुमान कि चालुक्य राजाओं का महल इस जगह था, इस खुदाई से गलत सिद्ध हो गया है। जहाँ राज-दरबार लगता था उसके दक्षिण में भी विजयनगर-साम्राज्य से पहले के अवशेष मिले हैं। इनमें एक सुसज्जित चौकी (अधिष्ठान) पर एक मन्दिर था जिसके एक मण्डप में 60 स्तम्भ थे और दूसरे मण्डप में 100 स्तम्भ। लेखक की इस क्षेत्र की यात्रा के बाद समाचार प्रकाशित हुआ है कि खुदाई में दो प्राचीन जैन मन्दिर प्रकाश में आए हैं। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि हम्पी में जैन मन्दिरों की संख्या काफी अधिक थी। उनकी संख्या या प्रतिशत भी बहुत अधिक रहा होगा। निश्चित ही यह क्षेत्र विजयनगर राजधानी की स्थापना से पहले ही एक प्रसिद्ध प्राचीन जैन केन्द्र रहा होगा।

6. महानवमी डिब्बा या दशहरा डिब्बा या राजसिंहासन मंच (throne platform) या विजय-सदन (House of Victory)--यह पाषाण निर्मित एक विशाल मंच है जिसे कृष्णदेव राय ने अपनी उड़ीसा-विजय के उपलक्ष्य में बनवाया था। यहाँ दशहरा उत्सव मनाया जाता था और, एक विदेशी यात्री के अनुसार, राजा अपना वैभव देखा करता था। उस समय आज के राज्य की गणतन्त्र दिवस जैसी परेड इसके सामने हुआ करती थी। यह मंच 15 फीट चौड़ा, 65 फीट लम्बा और करीब 40 फीट ऊँचा है। इस मंच पर कलात्मक स्तम्भ थे और अनेक तल के मण्डप थे जो आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दिये गए।

इस मंच की दीवालों पर नक्काशी ध्यान से देखने योग्य है।

पूर्व दिशा की दीवाल पर हाथी, ऊँट, घोड़ों, नर्तकियों, होली का दृश्य आदि कलाकारी के सुन्दर नमूने हैं। इनके बारे में पुरातत्त्वविद् लांगहर्स्ट ने लिखा है, "There is pronounced Jaina style about all these older bas-reliefs." इसी के पास 1883 ई. में स्वेल (Swell) को एक शिलालेख मिला था जिसमें जैनाचार्य मलधारीदेव के मरण का वृत्तान्त है। ये आचार्य श्रवणबेलगोल के मल्लिषेण मलधारीदेव (1129 ई.) के रूप में पहचाने गए हैं। यहाँ हंस और मगरमच्छों का जो उत्कीर्णन है, उसके बारे में भी लांगहर्स्ट का मत है कि यह शैली या इस प्रकार की नक्काशी, जैन और बौद्धों के अनुरूप "a favourite design of the early Jain's and Buddhists" है। (इस क्षेत्र में (हम्पी में) एक भी बौद्ध अवशेष प्राप्त नहीं होने से यहाँ बौद्ध प्रभाव का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।)

इसी मंच की पूर्वी दीवाल के पास एक कक्ष है। उसकी दीवाल पर दो विदेशी राजदूतों (एक चीनी और एक अरबी) का अंकन है। इन्हें भी ध्यान से देखना चाहिए। यहीं एक ही पत्थर का ऐसा दरवाज़ा है जो हर बात में लकड़ी का दरवाजा मालूम पड़ता है।

उत्कीर्णन में आदमी की शेर से लड़ाई, शिकार के दृश्य और राजा के अश्व प्रदर्शित हैं। नर्तकियों और स्त्री-संगीतकारों आदि को देखकर भी लांगहर्स्ट ने लिखा है, "Perhaps, nowhere is the Jaina influence more marked than in the bas-reliefs."

यहाँ सैनिकों आदि की केश-विन्यास शैली भी ध्यान देने लायक है। उनके बाल लम्बे होते थे और वे चोटी गूँथते थे। इन्हें देखकर भी लांगहर्स्ट ने यह मत व्यक्त किया है, "The

warriors who represent nobles or captains and the king are portrayed wearing their hair in the Jaina style."

7. राजमहल और राजदरबार—महानवमी डिब्बा के पास ही विजयनगर राजाओं के महल की ग्रेनाइट पत्थर की चौकी बताई जाती है जिस पर हाथी, अश्वों और नर्तकों का सुन्दर अंकन है। किन्तु हाल की खुदाई के कारण संशय उत्पन्न हो गया है कि राजमहल इसी स्थान पर था।

इसी के पास एक भूमिगत कक्ष है जो कि हरे पाषाण से निर्मित है। यह किस काम आता था स्पष्ट नहीं है। कुछ लोग इसे एक मंदिर मानते हैं।

राजदरबार महानवमी डिब्बा के पश्चिम में स्थित है। अब वहाँ कोई भवन नहीं है केवल चौकी बची है। अनुमान है कि इसमें एक सौ स्तम्भ रहे होंगे। उनके खाँचे अब भी देखे जा सकते हैं जो कि एक पंक्ति में दस के हिसाब से हैं। अरब यात्री अब्दुर्रजाक़ के अनुसार, यह सबसे ऊँचा भवन था।

8. हजारा-राम मन्दिर (भव्य, दर्शनीय एवं कलापूर्ण)—यह एक वैष्णव मन्दिर है। श्री रामचन्द्र के रूप में यहाँ विष्णु की प्रतिष्ठा है किन्तु शैव मूर्तियाँ भी हैं। इस मन्दिर में राज-घराने के लोग पूजन किया करते थे। यह 200 फीट लम्बा और 110 फीट चौड़ा है। इसके प्रांगण के आसपास 24 फीट ऊँची दीवाल है ताकि एकान्त में राजपुरुष आराधना कर सकें। इसका शिखर 50 फीट ऊँचा है। इसमें सुन्दर चमकीले रंगों में चित्रकारी है। इसका नाम हजारा-राम पड़ने का एक कारण यह बताया जाता है कि इसमें राम के हज़ारों चित्र हैं। इसके स्तम्भ काले पाषाण के चमकदार पॉलिश के हैं।

मन्दिर में गर्भगृह, नवरंग, शुकनासी और कल्याण मण्डप हैं। इसके अर्धमण्डप में रामायण के दृश्यों का सुन्दर उत्कीर्णन है। स्तम्भों पर गणेश, महिषासुरमर्दिनी, हनुमान और 'विष्णु के दस अवतार' अंकित हैं। इसमें इतने चित्र हैं कि इसे 'चित्र गैलरी' भी कहा जाता है। इसका शिखर दक्षिण भारतीय शैली का है।

राम-मन्दिर में तीर्थंकर मूर्तियाँ—उपर्युक्त मन्दिर में तीर्थंकर मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण हैं। उनमें एक है गर्भगृह के पीछे की दीवाल पर। 10 इंच की इस पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति के ऊपर शिखर जैसा बना है। यह मूर्ति पीछे के आँगन से दिखाई देती है। यहाँ एक नक्काशीदार स्तम्भ भी है।

दूसरी मूर्ति प्रवेशद्वार से दाहिनी तरफ की दीवाल पर उत्कीर्ण है। शेष अंकन ऊपर कही गई मूर्ति की ही तरह है। मूर्ति पद्मासन मुद्रा में है।

यह मन्दिर विशाल है, अच्छी हालत में है और अवश्य ही ध्यान से देखने लायक है। इसके पीछे अम्मन-मन्दिर या देवी-मन्दिर भी है।

राम-मन्दिर की दाहिनी ओर, सड़क के किनारे एक दृश्य-स्थल (view-point) बना है जहाँ से विजयनगर के अवशेष देखे जा सकते हैं।

9. भूमिगत मन्दिर—पास ही में एक मन्दिर है जो कि जमीन के अन्दर है। उसका गोपुर दो मंज़िल का है। उसका ऊपरी भाग ध्वस्त हो गया है। पूरा मन्दिर ही ध्वस्त अवस्था में है। उसमें पानी भरा रहता है। कहते हैं कि उसमें एक नहर है। उसके महामण्डप की छत से

24. हम्पी—हेमकूटम् : मन्दिरों की पंक्ति; पन्द्रहवीं शती के आस-पास ।
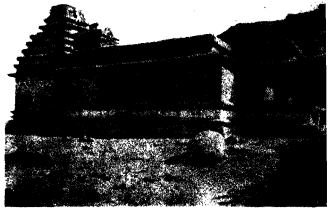
25. चिप्पगिरि—जैन बसदि : पर्वत पर स्थित बसदि का बाह्य दृश्य ।

26. बाग़ली—स्थानीय संग्रहालय में तीर्थंकर तथा अन्य मूर्तियाँ; बारहवीं शती के आस-पास।

27. हरपनहल्ली—होस बसदि : कलात्मक नाग-प्रतीक; लगभग तेरहवीं शती।

28. हरपनहल्ली— होम बसदि : भगवान बाहुबली;
लगभग बारहवीं शती ।

29. उज्जैनी—शैवों द्वारा अधिकृत जैन बसदि : छत का दृश्य;
लगभग ग्यारहवीं शती ।

लगकर 'दीप या ध्वज (?) स्तम्भ' जैसी रचना है। सम्भवतः यह मानस्तम्भ हो। श्री देव-कुंजारि के अनुसार, इसके स्तम्भों की निर्मिति गानिगित्ति जैन मन्दिर के स्तम्भों की भाँति है। यह प्राचीन मन्दिर है। इसके स्तम्भों पर सर्पों की आकृतियाँ बनी हुई हैं। तुलना के लिए, [illegible]र करें। केरल के वायनाड ज़िले के सुल्तान बत्तारी (Sultan Battery) नामक स्थान के विशाल ध्वस्त जैन मन्दिर के स्तम्भों पर भी सर्प की आकृतियाँ हैं।

10. सिस्टर बोल्डर्स—इस मन्दिर से सड़क-मार्ग हम्पी बाज़ार की ओर जाता है। थोड़ी दूर पर दो प्राकृतिक चट्टानों से एक मेहराब-जैसी बन गई है। इसलिए इन्हें 'सिस्टर बोल्डर्स' (अक्का तठागिगुण्डु) कहा जाता है।

इन चट्टानों से आगे के स्मारकों का वर्णन यात्रा-क्रम 1 में आ चुका है।

अब वापस चलिए राम-मन्दिर की ओर। रास्ते में 'दण्डनायक का अहाता' और 'टक-साल' हैं।

राममन्दिर के लगभग सामने ऊँची दीवालों से घिरा एक अहाता है जिसे रनिवास (Zanana Enclosure) कहा जाता है। बताया जाता है कि यहाँ महलों में रानियाँ रहा करती थीं। अब यहाँ केवल चौकी ही दिखाई पड़ती हैं, महल नहीं, आगे बढ़ने पर पर्यटन विभाग का केन्टीन है।

11. कमल-महल (Lotus-Mahal) (स्थानीय लोगों की भाषा में चित्राग्नि-महल)—यह एक बड़े अहाते में है। यह एक दो-मंजिल वाला खुला मण्डप है। ऊपर जाने के लिए एक सँकरा जीना है जो कि बाद में बनाया गया जान पड़ता है। इसे कमल-महल कहने का कारण यह है कि इसकी रचना कमल के आकार की है। इसमें लकड़ी का प्रयोग नहीं किया गया है। यह हिन्दू और मुस्लिम निर्माण-कला का एक अच्छा नमूना माना जाता है। बताया जाता है कि इसका उपयोग रानी द्वारा बैठकों आदि के लिए किया जाता था।

हजारा-राम मन्दिर से उत्तर के क्षेत्र को बाज़ार-क्षेत्र बताया जाता है। इसमें कुछ अवशेष ऐसे हैं जो विजयनगर साम्राज्य की स्थापना से पहले के जान पड़ते हैं।

राम-मन्दिर और रनिवास के क्षेत्र में एक-दो छोटे-छोटे मन्दिर भी हैं। इनमें 'येलम्मा' का मन्दिर भी है जिसमें कुरुब जाति के लोग अब भी पूजन करते हैं। यह भी विजयनगर की स्थापना से पहले का बताया जाता है।

12. गजशाला (Elephant Stables)—यह एक ऊँचा गुंबददार भवन है और अब भी अच्छी हालत में है। इसमें ग्यारह मुख्य हाथियों के लिए अलग-अलग जगह बनी हुई हैं। इसकी गुंबदों में भी विभिन्नता है। इनमें चित्रकारी भी है। हाथियों को बाँधने का कोई निशान नहीं होने के कारण कुछ विद्वान इसे गजशाला नहीं मानते। किन्तु अरब यात्री अब्दुर्रज़ाक के अनु-सार, हाथी छत से लटकी जंजीरों से बाँधे जाते थे। इनमें प्रकाश की भी अच्छी व्यवस्था है।

13. पान-सुपारी बाज़ार के दो जैन मन्दिर—गजशाला के पीछे दो ध्वस्त जैन मन्दिर हैं। दोनों ही खेतों में आ गए हैं। उनके लिए रास्ता 'कमल-महल' की ओर से है।

यहाँ, शिव मन्दिर के पास, एक ध्वस्त जैन मन्दिर है। उसके सिरदल पर एक पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति उत्कीर्ण है जिसमें दरार पड़ गई है। मन्दिर की छत भी अब शेष नहीं रही।

उपर्युक्त मन्दिर के सामने एक और विशाल ध्वस्त जैन मन्दिर है। यह लगभग तीस

फीट चौड़ा और अस्सी फीट लम्बा होगा। इसमें प्रवेशद्वार कम ऊँचा है। उसके सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर हैं और उन पर तीन छत्र हैं। अग्रमण्डप या बरामदा पार करने के बाद जो प्रवेशद्वार आता है उसके सिरदल पर भी पद्मासन में तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह के प्रवेश-द्वार के सिरदल पर भी पद्मासन तीर्थंकर और चँवर का अंकन है। गर्भगृह से पहले का मण्डप विशाल है और उसमें गोल तथा चौकोर स्तम्भ है। गर्भगृह की दीवालें भी लम्बे और चौकोर पाषाणों से बनाई गई हैं। श्री देवकुंजारि का मत है कि, "Stylistically, the temple resembles the group on Hemakutam hill." अर्थात् इसकी शैली हेमकूट के मन्दिरों जैसी है।

उत्तर-पश्चिमाभिमुखी इस मन्दिर में 1426 ई. का एक संस्कृत शिलालेख है। उसमें कहा गया है कि 'कर्नाट देश में विजयनगर नगरी अपने महलों के लिए प्रसिद्ध है। उसके शासक इस प्रकार प्रसिद्ध हैं—शक्ति में बुक्क, दान में हरिहर, शौर्य में देवराज, ज्ञान में विजयभूपति और विद्याविनय में देवराज। इसी देवराज द्वितीय ने 1426 में 'पर्णपूगीफलापण' (पान-सुपारी बाज़ार) में मुक्तिवधू के प्रिय भर्तार पार्श्वनाथ जिनेश्वर का, भव्य परितोष के लिए, धर्मकीर्ति के लिए अखिल धर्मसेतु शिलामय चैत्यालय बनवाया।'

प्रसंगवश यह भी उल्लेखनीय है कि विजयनगर के इसी राजा देवराज द्वितीय ने 1424 ई. में वरांग के नेमिनाथ मन्दिर के लिए वरांग गाँव दान में दिया था, यह बात वहाँ के शिला-लेख से ज्ञात होती है।

उपर्युक्त मन्दिरों के साथ हम्पी (विजयनगर) की यात्रा समाप्त होती है। पर्यटक को कमलापुर या भूमिगत मन्दिर के पास की सड़क से राजचन्द्र आश्रम या अपने स्थान लौटकर वापस गदग की ओर प्रस्थान करना चाहिए।

बल्लारी जिले के अन्य जैन-स्थल

उपर्युक्त जिला भी जैन धर्म का अनुयायी रहा है। यहाँ जिन स्थानों पर जैन अवशेष या जैन मन्दिर हैं, उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

चिप्पगिरि (Chippagiri)

बल्लारी ज़िले में ही चिप्पगिरि नामक स्थान पर एक पहाड़ी पर विशाल जैन मन्दिर है (देखें चित्र क्र. 25)।

बागली (Bagali)

बागली नामक इस स्थान पर एक ध्वस्त जैन बसदि 11वीं शताब्दी की है जिस पर इस समय शैव लोगों का अधिकार है। उसके गर्भगृह के द्वार के सिरदल पर एक छोटे आले में पद्मासन में तीर्थंकर मूर्ति उत्कीर्ण है। शुकनासी में भी तीर्थंकर विराजमान हैं। स्थानीय संग्रहालय में खण्डित पार्श्वनाथ और धरणेन्द्र आदि की मूर्तियाँ हैं (देखें चित्र क्रमांक 26)।

हरपनहल्ली (Harpanhalli)

हरपनहल्ली में होस बसदि (नया मन्दिर) और कोट बसदि नामक दो जैन मन्दिर हैं। होस बसदि में कुछ आकर्षक एवं प्राचीन जैन प्रतिमाएँ आदि हैं। यहाँ एक ही फलक पर चौबीस तीर्थंकरों के चरण हैं। यह निर्मिति 18वीं शताब्दी की है। ऐसा अंकन अन्यत्र नहीं पाया जाता। 17वीं शताब्दी की लगभग साढ़े-तीन फुट ऊँची पद्मासन पार्श्वनाथ प्रतिमा पर नौ फण इस प्रकार बने हैं कि वे अठारह मालूम पड़ते हैं। एक अन्य फलक पर सात फणी नाग इस प्रकार गुथा है कि एक आकर्षक आकृति बनती है (देखें चित्र क्र. 27)। यहाँ दसवीं सदी की नेमिनाथ की एवं बारहवीं सदी की बाहुबली (चित्र क्र. 28) की कांस्य प्रतिमाएँ भी हैं।

इसी नगर की कोट बसदि में भी ग्यारहवीं सदी से लेकर सत्रहवीं सदी तक की प्राचीन मूर्तियाँ हैं। चार सुन्दर चौबीसी भी इस जिनालय में हैं, जिनके मूलनायक अजितनाथ (?), तथा महावीर, शान्तिनाथ एवं अन्य एक तीर्थंकर हैं। धरणेन्द्र की भी दो-एक सुन्दर मूर्तियाँ यहाँ स्थापित हैं।

कोगलि (Kogali)

यहाँ की पार्श्वनाथ बसदि इस समय ध्वस्त अवस्था में है। इसका निर्माण-काल पाँचवीं या छठी शताब्दी है।

मन्दारगुट्टि (Mandargutti)

यहाँ दसवीं सदी की एक कायोत्सर्ग पार्श्वनाथ की मूर्ति है जिस पर सात फणों छाया है। यहीं पद्मासन में पार्श्वनाथ की एक मूर्ति चौदहवीं शताब्दी की है।

उज्जैनी (Ujjaini)

उज्जैनी या उज्जिम (Ujjim) नामक स्थान पर ग्यारहवीं सदी की एक जैन बसदि (चित्र क्र. 29) पर इस समय शैव लोगों का अधिकार है।

स्मरण रहे, इसी ज़िले में प्राकृत भाषा में अशोक के शिलालेख प्राप्त हुए हैं जिनसे इस प्रदेश पर मौर्य शासकों का शासन सिद्ध होता है। मान्यता है कि इस वंश के मूल संस्थापक सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य थे।

हुबली

अवस्थिति एवं मार्ग

हम्पी से हुबली पहुँचने के लिए मार्ग इस प्रकार है : हम्पी—होसपेट—कोप्पल—लक्कुण्डि —गदग—(वहाँ से 34 कि.मी.) हुबली (Hubli)।

पूना-बंगलोर राजमार्ग पर स्थित यह नगर धारवाड़ से केवल 21 कि.मी. दूर है। बेलगांव

से यह 92 कि.मी. दूर है। सड़क और रेल यातायात का यह एक प्रमुख केन्द्र है। यहाँ का बस स्टैण्ड सुविधाजनक और सभी प्रमुख स्थानों की बसों के लिए एक अच्छा केन्द्र है। रेलवे स्टेशन से बस स्टैण्ड की दूरी लगभग 2 कि.मी. है।

बम्बई-पूना-बंगलोर रेलवे लाइन पर यह मीटरगेज का एक बड़ा जंक्शन है। गोआ या बेलगाँव से भी यहाँ रेल द्वारा पहुँचा जा सकता है। दोनों ही स्थानों की गाड़ियाँ लोंढ़ा और धारवाड़ होते हुए यहाँ पहुँचती हैं। धारवाड़ से भी यहाँ सात-आठ लोकल गाड़ियाँ आती हैं। आन्ध्रप्रदेश के प्रमुख जंक्शन गुंतकल (259 कि.मी.) से भी यह सीधी मीटरगेज रेल-सेवा द्वारा जुड़ा हुआ है। सोलापुर-बीजापुर-बागलकोट-गदग-हुबली-रेलमार्ग (कुल 353 कि.मी.) भी इसे सोलापुर और बंगलोर से जोड़ता है।

बेलगाँव (धारवाड़ होकर) या गोआ (धारवाड़ होकर) से सीधे ही यहाँ पहुँचने से दर्शनीय, प्राचीन कलाकेन्द्र ऐहोल, पट्टदकल, बादामी और हम्पी तथा लक्कुण्डि छूट जाते हैं इसलिए इन स्थानों की यात्रा करने के बाद यहाँ पहुँचना उचित है। चूंकि हुबली अच्छा शहर है, इसलिए यह और भी अच्छा होगा कि पर्यटक इसे अपना केन्द्र बनाएँ और यहाँ से 21 कि.मी. दूर स्थित धारवाड़ को देखकर यहीं वापस आ जाएँ (आवागमन की बहुत अच्छी सुविधा है), क्योंकि हुबली से ही उसे लक्ष्मेश्वर—बंकापुर होते हुए दक्षिण कर्नाटक की या जोग-झरनों की यात्रा करनी है।

हुबली एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र—विशेषकर सूती-वस्त्र और बीड़ी उद्योग से सम्बन्धित है।

प्राचीनता की दृष्टि से यह नगर ग्यारहवीं सदी का जान पड़ता है। इसका पुराना नाम पूर्वदवल्ली (Purvadvalli—पुराना गाँव), पूर्बल्लि (Purballi), पुर्वल्लि (Purvalli) या पूर्वदल्ली-(Purvadalli)—पुराना गाँव, तथा पुब्बल्लि (Pubballi) था। कालान्तर में यही हुबली (Hubli) या हुब्बली हो गया।

जैन मन्दिर

वर्तमान में हुबली के दो भाग हैं—1. होस हुबली (नयी हुबली) और 2. हले हुबली (पुरानी हुबली) जिसे स्थानीय जनता 'रायर हुबली' भी कहती है। दोनों ही में जैन मन्दिर हैं।

अनन्तनाथ मन्दिर—पुरानी हुबली में एक किला है। उसमें तीर्थंकर अनन्तनाथ का एक प्राचीन देवालय है। यहाँ ब्रह्मदेव की मूर्ति के लेख से ज्ञात होता है कि यह मन्दिर 12वीं शताब्दी में बना था। ब्रह्मदेव की मूर्ति महादेवी नामक किसी श्राविका ने बनवाई थी। यहाँ यापनीय संघ के आचार्य रहते थे।

उपर्युक्त बसदि में एक घण्टा है। उस पर लेख है कि यह घण्टा किसी अन्य टूटे घण्टे से बनाया गया था जो कि इस मन्दिर में पिछले 1100 वर्षों से था।

मन्दिर में दसवीं से सोलहवीं सदी तक की प्रतिमाएँ हैं। लगभग दो फुट की कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ की मूर्ति पर छत्रत्रयी, सात फण, मस्तक के दोनों ओर चँवर तथा जँघाओं तक खड़े धरणेन्द्र और पद्मावती हैं (देखें चित्र क्र. 30)। छः फीट ऊँची एक चौबीसी है जिसके

मूलनायक चौदहवें तीर्थंकर अनन्तनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। उनके आस-पास की चाप पर अन्य 23 तीर्थंकर हैं। छत्र केवल एक ही है और मस्तक के दोनों ओर केवल चँवर का अंकन है। यक्ष-यक्षी भी फलक पर आसीन दिखाए गए हैं। ललितासन में पद्मावती और अम्बिका (कालम्मा ?) (देखें चित्र क्र. 31) तथा त्रिभंग मुद्रा में ब्रह्मयक्ष की मूर्तियाँ भी हैं। देव घोड़े पर सवार हैं। मन्दिर में लकड़ी का प्रवेशद्वार सत्रहवीं सदी का है। उस पर उत्तम नक्काशी है।

पुरानी हुबली में एक 'पार्श्वनाथ मन्दिर' भी है।

नयी हुबली में तीन दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। इनके अतिरिक्त बोर्डिंग हाउस का मन्दिर भी है। मार्ग इस प्रकार है—रेलवे स्टेशन से स्टेशन रोड पर लगभग एक कि.मी. दूर जैन बोर्डिंग हाउस है। उसके पास से ही मूरुसविर (Moorusavir) मठ के लिए सड़क जाती है। इस मठ का प्रवेश-द्वार लगभग 50 फुट ऊँचा है। उसकी घड़ी दूर से ही दिखाई देती है। इस मठ से बाईं ओर का मार्ग 'बोगारगल्ली' जाता है। यह गल्ली आजकल 'महावीर गल्ली' कहलाती है। इसमें अधिकांश जैन परिवार निवास करते हैं और बरतनों की अधिकांश दूकानें जैनों की हैं। हुबली में लगभग 500 जैन परिवार हैं। इसी गली में यह मन्दिर स्थित है।

बोगारगल्ली में एक तरफ चन्द्रप्रभ मन्दिर और आदिनाथ मन्दिर हैं तथा दूसरी तरफ शान्तिनाथ मन्दिर है।

चन्द्रप्रभ मन्दिर—यह मन्दिर मठ के बिलकुल पास सड़क पर ही है। यह एक-मंज़िल है। शिखर साधारण और गोल है। इसका मण्डप भी छोटा है। प्रवेशद्वार पर गजलक्ष्मी का सुन्दर अंकन है। यहाँ पीतल की डेढ़ फुट ऊँची प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है। उसकी प्रभावली बहुत ही सुन्दर है। इसी प्रकार चौबीसी और नन्दीश्वर भी पीतल के हैं। बाहुबली की भव्य प्रतिमा भी इसी धातु की बनी हुई है।

आदिनाथ मन्दिर—उपर्युक्त मन्दिर से आगे 'आदिनाथ मन्दिर' है। यह मकानों के साथ लगा हुआ है और इसका कोई अहाता भी नहीं है। इसलिए पूछ लेना चाहिए। इस पर शिखर भी नहीं है। यह मन्दिर 300 वर्ष पुराना बताया जाता है। इसमें काले पाषाण की तीन फुट ऊँची कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर आदिनाथ की भव्य प्रतिमा है। उस पर छत्रत्रयी है और यक्ष-यक्षी भी अंकित हैं। फलक पीतल का है और उस पर कीर्तिमुख है। श्वेत पाषाण की, पद्मासन में, नेमिनाथ और चन्द्रप्रभ की मूर्तियाँ भी हैं। पार्श्वनाथ की काले पाषाण की भी एक मूर्ति है। एक चौबीसी भी यहाँ है जिसके मूलनायक तीर्थंकर पार्श्वनाथ हैं। मन्दिर की छत लकड़ी की है। लकड़ी के अनेक स्तम्भ भी हैं।

आदिनाथ मन्दिर के पीछे भी अजितनाथ जैन श्वेताम्बर मन्दिर है जिसमें चाँदी की बड़ी-बड़ी प्रतिमाएँ हैं। उसकी छत पर भी सुन्दर अंकन है। इसी के पास कँचनारगल्ली नामक छोटी-सी गली में श्री मरुधर श्वेताम्बर संघ (मारवाड़ी) का श्री शान्तिनाथ जिनालय भी है जिसकी नक्काशी, स्तम्भों पर चित्रकारी, पौराणिक दृश्य आदि देखने लायक हैं।

शान्तिनाथ मन्दिर—उपर्युक्त मन्दिरों के सामने की पंक्ति में ही तीर्थंकर शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर है। यह लगभग 500 वर्ष पुराना है। यह भी, मेन रोड पर ही, मकानों की पंक्ति में है और उसके सामने बरतनों की दो-तीन दूकानें हैं। उस पर तीन शिखर दिखाई

देते हैं।

इस मन्दिर में दसवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी की मूर्तियाँ हैं। ग्यारहवीं सदी की पाँच फुट ऊँची कायोत्सर्ग मूर्ति शान्तिनाथ की है। उस पर छत्रत्रयी और मकरतोरण हैं। यक्ष-यक्षी भी आसन पर अंकित हैं। शान्तिनाथ की यह मूर्ति काले पाषाण की है और वह केन्द्रीय गर्भगृह में विराजमान है। गर्भगृह के प्रवेशद्वार के सिरदल पर पद्मासन में तीर्थंकर मूर्ति उत्कीर्ण है। उसके ऊपर भी कायोत्सर्ग मुद्रा में एवं पद्मासन में तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। गर्भगृह में प्रवेश के लिए चन्द्रशिला है। उसके द्वार की चौखटों पर नर-नारी (शायद भक्त) और यक्ष का अंकन है। एक नागफलक भी है। बाएँ कायोत्सर्ग एवं पद्मासन में पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ हैं। नेमिनाथ की दसवीं सदी की प्रतिमा अर्धपद्मासन में है। दो-तीन अन्य तीर्थंकर प्रतिमाएँ भी हैं जो दसवीं ग्यारहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी की हैं।

उपर्युक्त मन्दिर में पंच बालयति (अर्थात् वे पाँच तीर्थंकर जिनका विवाह नहीं हुआ था) की मनोज्ञ प्रतिमाएँ एक ही फलक पर हैं। इसका समय 12वीं सदी अनुमानित है। ये तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। बीच की प्रतिमा बड़ी है। शेष तीर्थंकर उसके कन्धों तक हैं। मस्तक के दोनों ओर चँवर एवं लताएँ हैं। यहाँ पार्श्वनाथ की 16वीं सदी की, और इसी सदी की ललितासन में पद्मावती की मूर्तियाँ भी हैं। मन्दिर के भीतर पाषाण-स्तम्भों से युक्त एक खुला मण्डप है। उसके अगले दो छोरों पर दो देवकुलिकाएँ हैं जिनमें प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इस कारण यहाँ तीन शिखर दिखाई पड़ते हैं।

चन्द्रप्रभ मन्दिर—दिगम्बर जैन बोर्डिंग में चन्द्रप्रभ मन्दिर है। उसमें चन्द्रप्रभ के अतिरिक्त पार्श्वनाथ की पीतल की दो कायोत्सर्ग प्रतिमाएँ भी हैं। हरे पाषाण की भी एक तीर्थंकर मूर्ति है। पद्मावती की भी दो प्रतिमाएँ हैं। मन्दिर छोटा है।

हुबली रेलवे-स्टेशन से यह बोर्डिंग लगभग एक किलोमीटर है और बस-स्टैण्ड से लगभग दो किलोमीटर। यह स्टेशन-रोड पर अवस्थित है। इसमें कॉलेज के छात्र रहते हैं किन्तु स्थान होने पर यात्रियों को भी ठहरा लिया जाता है। यात्रियों के लिए यहाँ एक कमरा और एक हॉल है। बोर्डिंग हाउस दक्षिण भारत जैन सभा, सांगली के अधीन है। इसी के साथ ही बाजार क्षेत्र है।

संस्थाएँ

यहाँ की अन्य संस्थाएँ हैं—महावीर ट्रस्ट का हाई स्कूल, महावीर एज्युकेशन सोसाइटी का आई. टी. आई., तथा वर्धमान सहकारी बैंक।

यह भी सूचना है कि यहाँ के शान्तिनाथ जैन ट्रस्ट द्वारा एक धर्मशाला का निर्माण किया जाएगा। फिलहाल बोर्डिंग हाउस में ठहरने की जगह मिल सकने की ही सम्भावना है (मुख्य सड़क पर बोर्डिंग का बोर्ड लगा है। बोर्डिंग कुछ अन्दर की तरफ है) अन्यथा स्टेशन के बाहर स्टेशन रोड पर अच्छे होटल भी हैं। स्टेशन पर भी रिटायरिंग रूम उपलब्ध हैं।

कर्नाटक में हुबली तक तो हिन्दी और मराठी से काम चल जाता है। आगे कन्नड़ का अधिक प्रचार है किन्तु हिन्दी समझने और बोलने वाले मिल जाते हैं।

विशेष सूचना

हुबली को केन्द्र बनाकर अब 29 कि. मी. दूर धारवाड़, और समय हो तो, 'अमीनबावि' की यात्रा आसानी से की जा सकती है। कर्नाटक के अगले यात्रा-क्रम में हुबली वापस लौटना आवश्यक है। जोग झरनों और अतिशय क्षेत्र हुमचा के लिए हुबली से सिरसी पहुँचना होता है। सिरसी या सागर के लिए हुबली से भी बम्बई आदि दूर के स्थानों से आने वाली एक्सप्रेस बसों में कभी-कभी जगह मिल जाती है। सिरसी के लिए दो मार्ग हैं। एक, कलघटगी और येल्लापुर होते हुए (दूरी 191 कि.मी.)। दूसरा, हुबली से कुण्डगोल, लक्ष्मेश्वर (80 कि.मी.), वहाँ से बंकापुर (36 कि. मी.) तथा हनगल और आतूर (जंगल भरा रास्ता) होते हुए सिरसी (कुल 160 कि.मी. के लगभग)। जैन पर्यटकों के लिए दूसरे रास्ते की सिफ़ारिश की जाती है ताकि वह लक्ष्मेश्वर का सहस्रकूट देख सकें। वहाँ धर्मशाला नहीं है। जिनके पास अपना वाहन नहीं है उनके लिए यह अच्छा होगा कि वे लक्ष्मेश्वर देखकर वापस हुबली आ जाएँ और हुबली से सीधे सिरसी चले जाएँ।

धारवाड़

अवस्थिति एवं मार्ग

धारवाड़ (Dharwar) कर्नाटक का एक प्रमुख जिला है। प्राचीन समय में यहाँ जैन धर्म का काफी प्रसार था और आज भी है।

पूना-बंगलोर राजमार्ग पर स्थित यह शहर बेलगाँव से 80 कि. मी. और हुबली से 21 कि. मी. दूर है। यहाँ गोआ से भी सीधे पहुँचा जा सकता है। पणजी से लोंढ़ा नामक स्थान 100 किलोमीटर है और वहाँ से एक सड़क सीधी धारवाड़ आती है। लोंढ़ा से धारवाड़ 62 कि. मी. है। इस स्थान से बेलगाँव और कारवाड़ के लिए भी सड़क-मार्ग है।

बम्बई-पूना-मिरज (बड़ी लाइन, मिरज से छोटी लाइन) बेलगाँव-लोंढा होते हुए रेल-मार्ग धारवाड़ (दक्षिण-मध्य रेलवे) पहुँचता है और हुबली होते हुए बंगलोर में समाप्त होता है।

धारवाड़ ऊँची-नीची भूमि पर सह्याद्रि की तलहटी में बसा होने के कारण एक सुन्दर स्थान लगता है। ऊँची भूमि के कारण शहर का कुछ भाग छिपा-सा जान पड़ता है। यहाँ का मौसम भी अच्छा होता है। मार्च के अन्त में और अप्रेल के प्रारम्भ में सबसे अधिक गरमी पड़ती है और अप्रैल के अन्त में गरज के साथ वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। अपनी जलवायु के कारण इसे छोटा महाबलेश्वर कहा जाता है। सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का भी यह केन्द्र है। यहीं है एक ऊँची पहाड़ी पर धारवाड़ विश्वविद्यालय। उसी में है कन्नड़ अनुसंधान संस्थान (Kannada Research Institute)। इस संस्थान का एक सुनियोजित बड़ा संग्रहालय (museum) है जिसमें बहुत अधिक संख्या में जैन मूर्तियाँ संग्रहीत हैं। यहाँ रेडियो-स्टेशन भी है।

शान्तिनाथ मन्दिर

धारवाड़ में एक ध्वस्त क़िला भी है। उल्लेख है कि विजयनगर शासक के अधिकारी धारराव ने इसे बनवाया था और इसी धारराव के नाम पर यह नगर धारवाड़ कहलाया। यहीं यह जैन मन्दिर भी है।

उपर्युक्त शान्तिनाथ मन्दिर द्रविड़ शैली का है। इस पर शिखर नहीं है। इसमें कमलासन पर पार्श्वनाथ की काले पाषाण की साढ़े आठ फुट ऊँची प्रतिमा है जिसके दोनों हाथ खण्डित हैं। इसमें संभवतः सर्वाह्न यक्ष और द्वारपालिका की खण्डित मूर्तियाँ भी हैं। इस मन्दिर की छत पर भगवान नेमिनाथ अपने पूर्ण परिकर के साथ प्रदर्शित हैं। छत पर इस प्रकार का अंकन असाधारण है। भगवान नेमिनाथ के चारों ओर कोनों में आकाशचारी विद्याधर (?) उत्कीर्ण हैं। उनके आस-पास संभवतः आठ दिक्पाल (?) या चँवरधारी हैं। इसी प्रकार युगल रूप में अश्वारोही, गजारोही, मकर आदि चित्रित हैं। तीर्थंकरों की खड्गासन में धातु-प्रतिमाएँ भी हैं। उनके साथ यक्ष-यक्षी भी प्रदर्शित हैं। मकर-तोरण, कीर्तिमुख और कलश की भी संयोजना है।

यहाँ एक मानस्तम्भ भी है जिसका आधार भाग ताँबे का है। उस पर लेख अंकित है। यहाँ आसीन पद्मावती की प्रभावली युक्त पाषाण प्रतिमा भी है। इस प्रकार यह मन्दिर असाधारण और इस कारण दर्शनीय है।

कन्नड़ शोध संस्थान एवं संग्रहालय (धारवाड़ विश्वविद्यालय)

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, यहाँ के विश्वविद्यालय के कन्नड़ शोध सस्थान (KRI) का एक बड़ा संग्रहालय है। उसे हर जैन पर्यटक को देखना चाहिए। उसमें प्राचीन एवं भव्य जैन मूर्तियाँ आदि काफ़ी संख्या में संग्रहीत हैं।

उपर्युक्त संस्थान की स्थापना 1939 में बम्बई सरकार ने की थी। तबसे अब तक यह संस्थान कन्नड़ साहित्य और कर्नाटक के इतिहास के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। सन्-1958 में इस संस्थान में 'Guide to the Kannada Research Institute, Museum' प्रकाशित की थी। उसमें लक्कुण्डि और हुदुवल्ली से प्राप्त मूर्तियों आदि का विस्तृत परिचय दिया गया है। इसी संस्थान का एक अन्य प्रकाशन है 'Jain Images in KRI'। इस संस्थान ने कर्नाटक में प्राप्त शिलालेखों के कुछ जिलेवार खण्ड प्रकाशित किए हैं और शेष खण्ड भी प्रकाशनाधीन हैं। उनसे जैन-धर्म सम्बन्धी नयी जानकारी कर्नाटक के सम्बन्ध में प्राप्त होने की सम्भावना है। इस पुस्तक की सामग्री-संकलन के समय प्रोफ़ेसर एम. एम. कुलबर्गी संस्थान के अध्यक्ष और संग्रहालय के निदेशक थे। उन्हें जैन पुरातत्त्व की अच्छी जानकारी है। लेखक को उन्होंने अलमारियों में सुरक्षित तीर्थंकरों आदि की सुन्दर कांस्य प्रतिमाएँ दिखायीं जो कि लक्कुंडि और डम्बल आदि अनेक स्थानों से प्राप्त हुई हैं और जिन्हें सजाकर रखने का उनका प्रयत्न है। उन्होंने यह भी सूचना दी कि कर्नाटक में ताड़पत्र पर लिखे लगभग दस हज़ार जैन ग्रन्थ हैं जिनका सूचीकरण एवं संरक्षण आवश्यक है।

विश्वविद्यालय में 'कन्नड ऐतिहासिक अनुसंधान सोसाइटी' (Knnada Historical
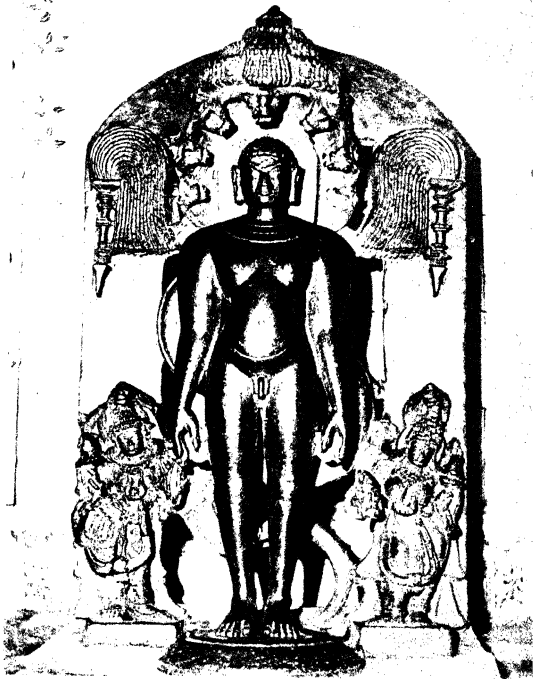
30. हुबली—अनन्तनाथ बसदि : तीर्थंकर पार्श्वनाथ; अगल-बगल में धरणेन्द्र और पद्मावती, दसवीं शती ।

31. हुबली—अनन्तनाथ बसदि : एक जैन यक्षी, स्थानीय नाम कालाम्बा(?) ; सोलहवीं शती।

32. धारवाड़—कन्नड शोध संस्थान में प्रदर्शित तीर्थंकर मूर्ति का मस्तक ।

33. धारवाड़—कन्नड़ शोध संस्थान में प्रदर्शित ब्रह्मदेव ।
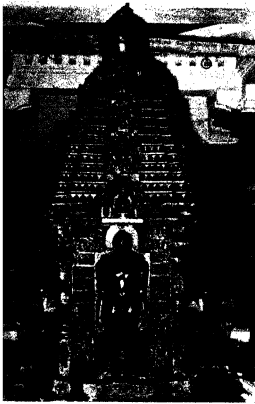
34. लक्ष्मेश्वर—शंख-जिनालय : सहस्रकूट जिनालय की लघु आकृति; लगभग ग्यारहवीं शती ।
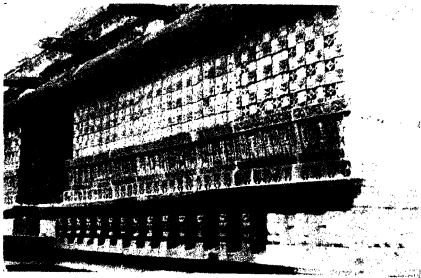
35. लक्ष्मेश्वर—शंख जिनालय का पूर्व की ओर से बाह्य दृश्य; लगभग ग्यारहवीं शती ।

Research Society) भी कार्यरत है। यह सब विश्वविद्यालय केम्पस में हैं।

कन्नड़ संस्थान को हाल ही में एक खेत से पीतल की ढाई फुट ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थंकर प्रतिमा प्राप्त हुई है।

संग्रहालय में अधिकांश प्रतिमाएँ 11वीं-12वीं शताब्दी की हैं। उनमें से कुछ खण्डित भी है (देखें चित्र क्रमांक 32)।

संग्रहीत जैन कला-वस्तुओं में मूर्तियों के अतिरिक्त चरण, सल्लेखना दृश्य, निषधि (स्मारक), यक्ष-यक्षी, नन्दीश्वर और बाहुबली की प्रतिमा मुख्य हैं। ब्रह्मदेव यक्ष की मूर्ति (चित्र क्र. 33) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये पाषाण, कांस्य और पीतल से निर्मित हैं। यहाँ छह फुट ऊँची पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है तो एक फुट ऊँची तीर्थंकर मूर्ति भी है। नन्दीश्वर की ऊँचाई केवल नौ इंच है। प्रतिमाएँ आदि गलियारे में (हॉल के) तथा प्रदर्शन-बक्सों (डिस्प्ले-केस) में भी भली प्रकार सजाकर रखी गई हैं। मूर्तियों का संग्रह अमीनबावि, लक्कुंडि, डम्बल के खेतों आदि से किया गया है। उनकी खोज निरन्तर जारी रहती है और संग्रह में वृद्धि होती रहती है। कुछ कलाकृतियों का यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

तेरहवीं शताब्दी की एक निषधि में ऊपर तीर्थंकर मूर्ति उत्कीर्ण है तो नीचे उपाध्याय की मूर्ति, जिसके हाथ में उसका चिह्न पुस्तक है। कीर्तिमुख और मकर-तोरण से युक्त बहुत-सी कांस्य प्रतिमाएँ इस संग्रहालय में हैं जिनकी कला दर्शक को आकर्षित करती है। ब्रह्मदेव की भी चार फुट ऊँची एक मूर्ति वहाँ हैं। यहाँ भूत, भविष्य और वर्तमान की बहुत सुन्दर तीन चौबीसियाँ अर्थात् त्रिकाल-चतुर्विंशतिका भी है। मूलनायक कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर पार्श्वनाथ हैं। एक ओर इसी मुद्रा में सुपार्श्वनाथ भी हैं। तीन चापों (arches) में तीर्थंकरों की लघु-आकृतियाँ हैं जिनकी संख्या 72 होगी। नीचे यक्ष-यक्षी हैं। अशोक-वृक्ष,स्तम्भयुक्त चाप (Pillared arch) और कीर्तिमुख की संयोजना के कारण यह दर्शक का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करती है।

कामनकट्टी का जैन मन्दिर तथा अमीनबावि की नेमिनाथ बसदि

स्थानीय बस-स्टैण्ड से लगभग दो-तीन किलोमीटर की दूरी पर कामनकट्टी में भी एक जैन मन्दिर है। इसी बस-स्टैण्ड से अमीनबावि की नेमिनाथ बसदि जो कि तीन चार किलोमीटर की दूरी पर है, देखी जा सकती है। वहाँ सीधी बसें भी जाती हैं।

धारवाड़ में स्टेशन-रोड (नया नाम सन्मति-रोड) पर जी. पी. ओ. के सामने सन्मति जैन बोर्डिंग है। यह बस-स्टैण्ड से लगभग एक-डेढ़ किलोमीटर है। यहाँ भी ठहरने की सीमित व्यवस्था सम्भव है।

हुबली के प्रसंग में यह परामर्श दिया गया था कि हुबली को केन्द्र बनाना चाहिए और धारवाड़ देखकर वापस हुबली लौट जाना चाहिए। हुबली के बाद अगला दर्शनीय स्थल लक्ष्मेश्वर है।

लक्ष्मेश्वर

यहाँ के बहुत प्राचीन 'शंख मन्दिर' (जैन मन्दिर) में सहस्रकूट (एक हजार जिन-मूर्तियों **का एक साथ अंकन**) एक ऐसी कलाकृति है जो बहुत ही कम देखने को मिलती है।

अवस्थिति एवं मार्ग

लक्ष्मेश्वर (Lakshmeshwar) सड़क-मार्ग द्वारा हुबली और गदग से जुड़ा हुआ है। **कुण्डगोल** (38 कि. मी.) होते हुए हुबली से लक्ष्मेश्वर 78 कि. मी. है। खेद है कि कर्नाटक **बसरूट और पर्यटन नक्शे** में यह सड़क नहीं है।

निकटतम रेलवे-स्टेशन गुडगेरी है जो कि पूना-हुबली-बंगलोर मीटरगेज लाइन पर **दक्षिण रेलवे के अन्तर्गत** आता है। वहाँ से लक्ष्मेश्वर लगभग 15 किलोमीटर है।

वर्तमान में लक्ष्मेश्वर एक बड़ा गाँव है जो कि धारवाड़ ज़िले के सिरहट्टी तालुक के अन्तर्गत आता है। यहाँ पहले 101 जैन मन्दिर थे, अब केवल दो रह गए हैं—शंख बसदि और अनन्तनाथ बसदि। जैन परिवारों की संख्या भी पन्द्रह है। न कोई धर्मशाला है और न कोई पाठशाला। अत: यहाँ के मन्दिर देखकर आगे बढ़ना चाहिए। बस-स्टैण्ड के आस-पास कुछ जैन परिवार रहते हैं।

एक प्राचीन नगर

लक्ष्मेश्वर एक प्राचीन नगर है। यहाँ 53 शिलालेख हैं। यहाँ बोली जाने वाली कन्नड़ शुद्ध मानी जाती है। शिलालेखों में इस नगर के अनेक नाम आते हैं। जैसे—पुलिगेरे, हुलिगेर, पुग्गिरे, पोरिगेरे और पुलिकर नगर। पुलिगेर का अर्थ होता है—चीते के तालाब का नगर। ये शिलालेख 7वीं से 16वीं शताब्दी तक के हैं।

'शंख बसदि' सातवीं सदी की या उससे पहले की निर्मित जान पड़ती है। यहाँ 700 ई. के एक शिलालेख में उल्लेख है कि पूज्यपाद अकलंक की परम्परा के उदयदेव पण्डित चालुक्य शासक विजयादित्य द्वितीय (696-733 ई.) के राजगुरु थे। इस राजा ने उपर्युक्त गुरु को इस मन्दिर के लिए दान आदि दिया था। 734 ई. के एक अन्य शिलालेख में उल्लेख है कि राजमान्य विकीर्णक ने 'शंख जिनालय' के जीर्णोद्धार एवं मण्डन (सजावट) के लिए भूमिदान दिया था। इससे स्पष्ट है कि 734 ई. में यह मन्दिर मरम्मत के लायक हो चुका था। शंख मन्दिर में पत्थर की लम्बी शिला पर 968 ई. के एक लेख में गंग या कोंगु वंश की वंशावली दी गई है। उसमें उल्लेख है कि मारसिंह देव कोंगणिवर्मा ने जिन्हें गंगकंदर्प भी कहते थे, जयदेव नामक पुरोहित को दान दिया था। इस लेख में इस मन्दिर को 'गंगकंदर्प भूपाल जिनेन्द्र मन्दिर' कहा गया है। संभवत: काफ़ी मरम्मत या जीर्णोद्धार कार्य के कारण यह नाम दे दिया गया है।

एक शिलालेख से यह सूचना प्राप्त होती है कि चालुक्य शासक विजयादित्य (696-733 ई.) की छोटी बहिन कुंकुम महादेवी ने यहाँ 'आने सेज्जे' बसदि का निर्माण कराया था और वहीं सल्लेखना भी धारण की थी।

इस स्थान की 'पेर्माडि बसदि' के दर्शन चालुक्य भुवनैकमल्ल के सामन्त राजा जयकीर्ति ने 1074 ई. में किये थे। यह भी ज्ञात होता है कि 1113 ई. में 'गोग्गय्या बसदि' में इन्द्रकीर्ति पण्डितदेव रहते थे। 1295 ई. में यहाँ की शान्तिनाथ बसदि के लिए सोमय्या ने दान दिया था।

चोलराज सोमेश्वर प्रथम ने इस नगर पर आक्रमण किया था और यहाँ के जैन मन्दिरों को नष्ट कर दिया था।

स्थानीय अनुश्रुति के अनुसार, आदय्या नामक वीरशैव ने सोमनाथ से सोमेश्वर की मूर्ति एक जैन बसदि में स्थापित की और उस बसदि को पाषाण निर्मित करा दिया। यह घटना 11वीं-12वीं सदी की बताई जाती है। आजकल यह सोमेश्वर मन्दिर कहलाता है। इस घटना का उल्लेख 'सोमेश्वरचरिते' में भी है।

महाकवि पम्प की काव्य-भूमि

एक हज़ार से अधिक वर्ष की प्राचीन कन्नड़ के आदिकवि हैं महाकवि पम्प। उनके दो महाकाव्य प्रसिद्ध हैं 'आदिपुराण' (जैन-रचना) और 'विक्रमार्जुन-विजय'। कवि पम्प ने आदि-पुराण की रचना लक्ष्मेश्वर के 'शंख जिनालय' या 'सहस्रकूट जिनालय' में की थी।

महाकवि पम्प जन्म से ब्राह्मण थे किन्तु उन्होंने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था। 'मैसूर' (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास—NBT) के लेखक न. स. रामचन्द्रैया के शब्दों में, "वह एक ही साथ 'कवि' और 'कलि' (वीर) दोनों थे।...पम्प के सभी वर्णन उनके प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर हैं—शान्ति तथा युद्ध, प्रासाद और कुटीर, गाँव और नगर। उनका व्यक्तित्व सम्पूर्ण था। उन्हें इस बात पर गर्व था कि उनके अन्दर काव्य-धर्म और धर्म दोनों के लिए ही समान सम्मान है। वह इहलोक और परलोक दोनों की ही रक्षा कर सकते थे। तभी तो उन्होंने दो महाकाव्य लिखे—जैन धर्म का वर्णन करने के उद्देश्य से 'आदिपुराण' और लौकिक बातों का वर्णन करने के लिए 'विक्रमार्जुन-विजय'। इस प्रकार उन्होंने अपने दो महाकाव्यों द्वारा चम्पू-काव्य की अर्थात् मिश्रित गद्य-पद्य की प्रथा चलायी।" वे कन्नड भाषा के महान् प्रथम कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनका इस भाषा-साहित्य के इतिहास में बड़ा महत्त्व है। उनके द्वारा प्रवर्तित चम्पू-काव्य शैली दो सौ वर्षों तक कन्नड़ साहित्य में बड़ी लोकप्रिय रही।

शंख जिनालय

लक्ष्मेश्वर का 'शंख जिनालय' (देखें चित्र क्र. 35) किसी समय एक विशाल जैन मन्दिर रहा होगा। उसका अहाता निश्चय ही बड़ा है। यह भी सम्भव है कि इसके साथ छोटे मन्दिर भी इसी अहाते में रहे हों। जैसे ही हम मन्दिर के समीप पहुँचते हैं, हमें सड़क के किनारे ही एक चबूतरे पर तीन छत्र और कीर्तिमुख स्थापित दिखाई पड़ते हैं। इनके पास एक खम्भा गड़ा है। ऐसा जान पड़ता है कि यह चबूतरा किसी मन्दिर की चौकी रहा होगा। यहीं प्रवेश-सीढ़ियों का जंगला है। यह भी सम्भव है कि मन्दिर का कुछ भाग अब मकानों में परिवर्तित हो गया हो।

वर्तमान में शंख जिनालय एक विशाल मन्दिर का शेष भाग जान पड़ता है। यहाँ अब भी पूजन-अर्चन होता है। बाहर खण्डित मूर्तियाँ और कड़ियाँ (Beams) पड़ी हैं। मन्दिर के

सामने साधारण-सा मानस्तम्भ है और बलिपीठ भी है। सामने से मन्दिर एकदम साधारण लगता है। प्रवेश-सीढ़ियों से पहले चन्द्रशिला है। प्रवेश-द्वार के दोनों ओर की दीवालें साधारण हैं, उन पर कोई नक्काशी नहीं है। किन्तु मुंडेर के ऊपर द्रविड़ शैली का उत्कीर्णन है। उससे भी ऊपर का भाग क़िले के नमूने का दिखता है।

मन्दिर में गर्भगृह, बड़ा अर्धमण्डप और उससे भी बड़ा महामण्डप तथा रंगमण्डप हैं। इस प्रकार एक अविशिष्ट बसदि होते हुए भी यह मन्दिर विशाल है। वास्तुविदों का मत है कि इसके जीर्णोद्धार एवं संवर्धन के कारण इसके भीतरी और बाहरी भागों में परिवर्तन होता रहा है (प्राचीन मन्दिरों में ऐसा होता ही है)। 'जैन कला और स्थापत्य' (भारतीय ज्ञानपीठ) में श्री सौन्दर राजन् ने यह मत व्यक्त किया है कि, "निर्मम विध्वंस और नाम-मात्र की पूजा के होते हुए भी यह भव्य मन्दिर छठी शती तक के अपने अतीत की यशोगाथा कह रहा है।"

प्रवेशद्वार के सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। प्रवेशद्वार पर पत्थर की जाली जैसा सुन्दर उत्कीर्णन है। इस बसदि के रंगमण्डप के तीन द्वार हैं—दक्षिण में, उत्तर में और पश्चिम में। इसकी चौकी (अधिष्ठान) पर व्यालवरि का जीवन्त अंकन है। मन्दिर के स्तम्भों और दीवालों पर लेख खुदे हुए हैं। तीनों प्रवेशद्वारों के सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकरों का उत्कीर्णन है। उसकी धरन (beams) पर भी पद्मासन में तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं।

सहस्रकूट—पर्यटक को सबसे अधिक आकर्षित करने वाली यहाँ की दुर्लभ कलाकृति है सहस्रकूट अर्थात् एक हज़ार जिन-प्रतिमाओं का एक ही शिलाखण्ड पर उकेरा जाना या यों कहें कि एक हज़ार प्रतिमाओं का छोटा-सा मन्दिर (देखें चित्र क्र. 35)। यह सहस्रकूट 11वीं सदी का है। इसकी ऊँचाई 5 फुट 3 इंच है। इसमें चारों ओर मूलनायक की कायोत्सर्ग मुद्रा में ढाई फुट ऊँची काले पाषाण की चमकदार पालिशवाली भव्य मूर्तियाँ हैं। उनके घुटनों के आस-पास पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ अंकित हैं। उनके दोनों ओर दो स्तम्भ हैं। मूलनायक के मस्तक से ऊपर का भाग त्रिकोणात्मक है। नीचे का भाग चतुष्कोण है। ऊपरी भाग में आलों में पद्मासन एवं कायोत्सर्ग तीर्थंकरों की कुछ बड़ी मूर्तियाँ है। शेष जिन-प्रतिमाएँ पद्मासन में हैं और उनका आकार छोटा है। सबसे ऊपर कीर्तिमुख है। और एक चतुष्कोणीय शिखर की आकृति है। कुल मिलाकर यह सहस्रकूट अकेला ही लक्ष्मेश्वर आने-जाने का सारा श्रम दूर कर मन में आनन्द और श्रद्धा का संचार कर सकता है।

शंख बसदि के नवरंग मण्डप के स्तम्भों पर बेलगाँव जैसी सुन्दर निर्मिति है। छत पर भी कमल का अच्छा अंकन हुआ है। यहाँ 10वीं और 11वीं शताब्दी की पद्मावती देवी एवं कूष्माण्डिनी देवी की क्रमशः 2 फुट और 4 फुट ऊँची मूर्तियाँ भी हैं। प्रवेश से बायीं ओर की पूरी दीवाल पर पत्र-पुष्प का बहुत ही मनोहारी अंकन है। गर्भगृह के अतिरिक्त उसके सामने के मण्डप में भी मूर्तियाँ विराजमान हैं। जो द्रविड़ शैली का उत्कीर्णन यहाँ है उसका बहुत-सा भाग नष्ट हो गया है। उसमें देवियाँ, मौक्तिक मालाएँ तथा कायोत्सर्ग तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह की इसी ओर की पूरी दीवाल पर नर्तकियों आदि की छोटी आकृतियाँ अंकित हैं।

मन्दिर की पिछली दीवाल पर जो अंकन है वह विशेष रूप से आकर्षक या ध्यान देने योग्य है। यद्यपि उसका भी बहुत-सा भाग नष्ट हो गया है तदपि तीर्थंकरों की पद्मासन एवं

कायोत्सर्ग मुद्रा में लघु मूर्तियाँ सुन्दर ढंग से उत्कीर्ण की गई हैं। विशेष रूप से शिखर पर बहुत ही सूक्ष्म कारीगरी है। यहीं अंकित हैं—देवियाँ, नर्तकियाँ, यक्षियाँ, सिंह और मिथुन आदि। दाहिनी दीवाल पर भी बायीं ओर की दीवाल जैसा उत्कीर्णन है। साथ ही उसमें पाषाण का जालीदार झरोखा, व्याल तथा कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्तियाँ भी हैं। नीचे के भाग की दीवाल पर कोई उत्कीर्णन नहीं है। शायद यहाँ मरम्मत की गई है। प्रवेश से दायीं ओर की, उससे आगे की दीवाल पर भी बाँयी ओर की दीवाल की भाँति उत्कीर्णन है। सामने से मन्दिर देखने पर जो निराशा होती है उसकी पूर्ति इन अंकनों तथा सहस्रकूट के दर्शनों से भालीभाँति हो जाती है।

अनन्तनाथ बसदि

यह स्थानीय बस स्टैण्ड के निकट एक बड़े अहाते में है। कहीं-कहीं, शायद भूल से, इसे आदिनाथ बसदि कहा गया है। यह भी 10वीं सदी का मन्दिर जान पड़ता है। बाहर से देखने पर यह मन्दिर क़िलेनुमा जान पड़ता है। इसके बाहर एक नागफलक है। मन्दिर में एक गर्भगृह है। उसके सामने वेदी पर अनेक मूर्तियाँ विराजमान हैं। उससे आगे का मण्डप काफी बड़ा है। उसमें लगभग 30 स्तम्भ हैं और एक देवकुलिका। आकार में ये तीनों एक-दूसरे से छोटे होते चले गए हैं और इस प्रकार बसदि को भव्यता प्रदान करते हैं। देवकुलिका के प्रवेशद्वार पर भी पद्मासन में तीर्थंकर विराजमान हैं। इसमें तीन फुट ऊँची कायोत्सर्ग मुद्रा में सात फणों से युक्त पार्श्वनाथ की मूर्ति है। इसकी चौखट पर भी सुन्दर नक्काशी है। बसदि का प्रवेशद्वार पंच-शाखा प्रकार का है। उस पर मनोहारी उत्कीर्णन और सिरदल पर पद्मासन में तीर्थंकर प्रदर्शित हैं। अच्छी नक्काशी के मामले में यह बसदि निराश नहीं करती। उसका सुन्दर प्रदर्शन इसकी पिछली दीवाल पर है। उसमें त्रिकोणात्मक शिखरयुक्त आले हैं। उनके भी आस-पास हाथियों का अंकन है। बसदि का शिखर कटनीदार है।

लक्ष्मेश्वर कस्बे की इस अनन्तनाथ बसदि में मूलनायक अनन्तनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में काले पाषाण की 5 या 6 फुट ऊँची सुन्दर मूर्ति है। उस पर एक ही छत्र है। भामण्डल पीतल का है। दोनों ओर चँवरधारी हैं तथा इन तीर्थंकर के यक्ष किन्नर और यक्षिणी अनन्तमती घुटनों तक बैठे हुए प्रदर्शित हैं। मूर्ति दसवीं शताब्दी की है। दसवीं सदी की ही एक पार्श्वनाथ मूर्ति और एक खण्डित चौबीसी भी यहाँ है। ग्यारहवीं सदी की 6 फुट ऊँची एक चौबीसी के मूलनायक आदिनाथ कायोत्सर्ग में हैं। उनके एक ओर पार्श्वनाथ तथा गोमुख यक्ष तथा दूसरी ओर सुपार्श्वनाथ एवं पद्मावती उत्कीर्ण हैं। शेष तीर्थंकर गोलघेरों में हैं, मकर-तोरण की योजना है और इस पर कन्नड़ में एक लेख है। इसी शताब्दी की एक पंचतीर्थिका (पाँच तीर्थंकरों की मूर्तियाँ) भी यहाँ देखी जा सकती है। एक-दो चौबीसियाँ और भी हैं। उनमें 14वीं सदी की कांस्य की चौबीसी के पादासन पर नौ ग्रह उत्कीर्ण हैं। ग्यारहवीं सदी की पद्मावती और ब्रह्मयक्ष की मूर्तियाँ भी हैं जो कि अतिशययुक्त बताई जाती हैं। दसवीं सदी की एक सरस्वती मूर्ति के बाएँ हाथ में पुस्तक है।

लक्ष्मेश्वर से बंकापुर होते हुए सिरसी के लिए प्रस्थान करना चाहिए। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, लक्ष्मेश्वर में धर्मशाला के रूप में ठहरने की व्यवस्था नहीं है।

बंकापुर

यह स्थान, धारवाड़ ज़िले में ही, लक्ष्मेश्वर से 36 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। यहाँ अब कोई जैन मन्दिर नहीं है किन्तु प्राचीन काल की इसकी महत्ता जान लेना उपर्युक्त होगा।

वर्तमान में, इस स्थान से दो तीर्थंकर मूर्तियाँ लेख सहित प्राप्त हुई हैं।

जैन-पुराण का पाठक जिनसेनाचार्य द्वितीय के 'महापुराण' (संस्कृत) से भलीभाँति परिचित होगा। उनकी इस अनुपम एवं काव्यमयी कृति के बयालीस अध्यायों में भगवान ऋषभदेव का चरित्र वर्णित है। बयालीसवें अध्याय में चक्रवर्ती भरत अन्य राजाओं को राज-नीति का उपदेश देते हैं। इस अध्याय के लेखन के बाद, महान् आचार्य जिनसेन स्वर्गवासी हो गए। यह विशालकाय भाग 'आदिपुराण' कहलाता है। उनके शेष कार्य को (अन्य 23 तीर्थंकरों का संक्षिप्त जीवनवृत्त लिखकर) उनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने पूरा किया। उनके द्वारा रचित भाग 'उत्तरपुराण' कहलाया। काल की गति कितनी विचित्र है कि जिनभक्त राष्ट्रकूट सम्राट अमोघवर्ष प्रथम (804 से 880 ई.) के जीवनकाल में मान्यखेट में आचार्य जिनसेन ने जिस विशाल ग्रन्थ 'महापुराण' की रचना की थी, उसका अन्तिम भाग आचार्य गुणभद्र ने बंकापुर में अमोघवर्ष के बंकापुर स्थित जैनधर्मानुयायी सामंत वीर बंकेयरस के समय में पूर्ण हुआ। उसके बाद आचार्य गुणभद्र भी स्वर्गवासी हो गए, और बंकेयरस भी। किन्तु 898 ई. में आचार्य गुणभद्र के शिष्य लोकसेन ने इस अनुपम कृति का सार्वजनिक वाचन एवं पूजन बंकेयरस के पुत्र लोकादित्य के शासनकाल में किया।

बंकापुर प्राचीन काल में एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र था। बंकेयरस के नाम पर ही यह नगर बंकापुर कहलाया। बताया जाता है कि यहाँ के कुछ मन्दिर मस्जिद बना दिए गए। गजलक्ष्मी, मूर्तियों के लिए आले, पुष्पावलियुक्त 60 स्तम्भों वाली रंगस्वामी नगरेश्वर बसदि भी तो मस्जिद बन गई।

बंकापुर से हनगल, संतेकोप एवं आतूर होते हुए सिरसी का मार्ग है। आतूर से जंगल का रास्ता भी पड़ता है।

धारवाड़ जिले के अन्य जैन-स्थल

धारवाड़ ज़िले में जैन धर्म का बहुत व्यापक प्रसार रहा है। इस ज़िले में लगभग तीस स्थानों पर जैन मन्दिर या जैन अवशेष हैं जिनमें से लक्कुण्डि, लक्ष्मेश्वर (पूर्व वर्णित), अम्मिन-बावि आदि तो कला और इतिहास आदि की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं ही, निम्नलिखित स्थानों का भी अपना एक इतिहास है।

रोण (Ron)

यह स्थान बादामी से 32 कि. मी. की दूरी पर मुख्य सड़क पर स्थित है। यहाँ की पार्श्व-

नाथ बसदि में दसवीं सदी की प्रतिमाएँ हैं। एक सुन्दर चौबीसी यहाँ लगभग साढ़े तीन फीट ऊँची है। उसके मूलनायक पार्श्वनाथ हैं, उन पर सात फणों की छाया है, यक्ष-यक्षी और मकर-तोरण हैं।

कोटुमचगी (Kotumachgi)

रोन तालुक के इस स्थान पर भी पार्श्वनाथ बसदि है। उसमें ग्यारहवीं सदी की प्रतिमाएँ हैं। एक कायोत्सर्ग तीर्थंकर प्रतिमा पर एक ही छत्र है और मकरतोरण का सुन्दर अंकन। पाँच फणों वाली एक पार्श्वनाथ प्रतिमा के साथ यक्ष-यक्षी, मकर-तोरण और कीर्तिमुख, एवं एक छत्र की सुन्दर संयोजना है। सर्पों के गले की सिलवटों का उत्कीर्णन विशेष रूप से आकर्षक है (देखें चित्र क्र. 36)।

नरेगल (Naregal)

यहाँ एक नारायण मन्दिर (चित्र क्र. 37) है जो किसी समय जैन मन्दिर था। वहाँ पार्श्वनाथ और आदिनाथ की खण्डित प्रतिमाएँ हैं और चौबीसी की चौकी में प्रतिमाओं के लिए खाँचे बने हैं। गर्भगृह के द्वार के सिरदल पर जो आकृति थी वह निकाल दी गई है। ये प्रतिमाएँ 10वीं एवं 11वीं सदी की हैं।

नविलगुन्द (Navilgund)

यहाँ की आदिनाथ बसदि अब खण्डहर है। यह भी 10वीं सदी की है। उसमें 10वीं और 11वीं सदी की मूर्तियाँ हैं। मुखमण्डप के नीचे बलिपीठ, शुकनासिका में एक आसीन तीर्थंकर, कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर आदिनाथ, उनके दाएँ तीर्थंकर पार्श्वनाथ, बाएँ सुपार्श्वनाथ की मूर्तियाँ हैं। चन्द्रप्रभ की भी एक भव्य प्रतिमा है (देखें चित्र क्र. 38)। ज्वालामालिनी देवी का प्राचीन मन्दिर भी यहाँ है।

पड़ेसुर (Padesur)

यहाँ की चन्द्रनाथ बसदि में तेरहवीं सदी की ढाई फीट ऊँची चन्द्रप्रभ की प्रतिमा अर्धपद्मासन में है। उसका आसन टूट गया है और भामण्डल साधारण है। दीवाल में बनी क्षतिग्रस्त चौबीसी के मूलनायक कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर आदिनाथ हैं। उनके बाएँ-दाएँ पार्श्व और सुपार्श्व हैं। यह अंकन 12वीं सदी का है। सुखासन में ज्वालामालिनी की मूर्ति 14वीं सदी की है। यह स्थान नविलगुन्द तालुक में है।

बटेगेरी (Bategeri)

गदग तालुक के इस स्थान में 11वीं सदी की खण्डित तीन मूर्तियाँ यक्षिणियों की पाई गई हैं जिनमें से एक चक्रेश्वरी है।

गदग (Gadag)

यहाँ से भी 9वीं और 10वीं सदी की खण्डित तीर्थंकर मूर्तियाँ मिली हैं। उनमें से भगवान पार्श्वनाथ की एक मनोज्ञ प्रतिमा है।

कलसापुर (Kalsapur)

यहाँ भी एक ध्वस्त जैन बसदि है। यहाँ नौवीं शताब्दी की दस फुट ऊँची, कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर की एक बहुत ही सुन्दर मूर्ति है (देखें चित्र क्र. 39)। कुछ अन्य खण्डित तीर्थंकर मूर्तियाँ भी यहाँ से प्राप्त हुई हैं।

मालसमुद्रम् (Malasamudram)

गदग तालुक के इस स्थान की पार्श्वनाथ बसदि में महावीर या नेमिनाथ की लगभग तीन फुट ऊँची प्रतिमा है। प्रतिमा का लेख मिटा हुआ है। आसन पर सिंह अंकित है, घुटनों के पास यक्ष-यक्षी हैं। मकर-तोरण के अतिरिक्त चँवरधारी भी कटिहस्तमुद्रा में हैं। समय 10वीं सदी। ग्यारहवीं सदी की पार्श्वनाथ और और सुपार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ भी यहाँ हैं।

मूलगुन्द (Mulgund)

गदग तालुक का यह स्थान दसवीं सदी में एक प्रमुख जैन केन्द्र था। यहाँ जो 'त्रिकूट बसदि' है, उसका निर्माण 902 ई. में हुआ था। यहाँ के शिलालेख से ज्ञात होता है कि जब मुसलमानों ने यहाँ की पार्श्व बसदि पर आक्रमण किया तब हनसोगे के ललितकीर्ति भट्टारक के शिष्य सहस्रकीर्ति ने उसकी रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी थी। मुसलमानों द्वारा भग्न आदिनाथ की मूर्ति नागभूप की पत्नी वनदाम्बिके ने 1672 में यहाँ स्थापित की थी। यहीं पर कवि नयसेन ने कन्नड़ में 'धर्मामृत' नामक जैन सिद्धान्त प्रतिपादक ग्रन्थ की रचना 1113 ई. में की थी (इसका हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है)।

उपर्युक्त मन्दिर विशाल रहा होगा। उसका जीर्णोद्धार किया गया है। किन्तु उसके गर्भगृह पर शिखर नहीं है। यहाँ तीस फुट ऊँची एक विशाल शिला पर उत्कीर्ण अधूरी और क्षतिग्रस्त तीर्थंकर प्रतिमा खड्गासन में है जो कि दसवीं शताब्दी की है। चौदहवीं सदी की एक चौबीसी (आठ फुट) यहाँ श्री कुलकर्णी के घर में है। उसके मूलनायक आदिनाथ हैं। मन्दिर के गर्भगृह के प्रवेशद्वार के सिरदल पर पद्मासन में तीर्थंकर प्रतिमा उत्कीर्ण है। उसके ऊपर भी तीर्थंकर की लघु प्रतिमाएँ हैं। बसदि का सामने का भाग भी ध्वस्त हो गया है।

अदरगुंची (Adargunchi)

यहाँ से भी दसवीं शताब्दी की महावीर स्वामी की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है।

अण्णिगेरी (Annigeri)

हुबली के निकट के इस स्थान की प्रसिद्धि कन्नड़ महाकवि पम्प की माता का जन्म-स्थान

36. कोट्टुमचगी—पार्श्वनाथ बसदि, तीर्थंकर पार्श्वनाथ; ग्यारहवीं शती।
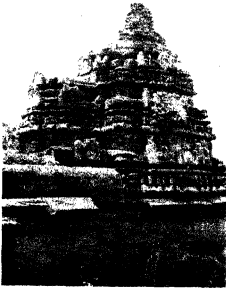
37. नरेगल—नारायण मन्दिर नामक जैन बसदि का बाह्य दृश्य; लगभग दसवीं शती।

38. नविलगुंड—आदिनाथ बसदि : अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ।

39. कलमापुर—जैन बसदि के खण्डहर : कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर मूर्ति ।
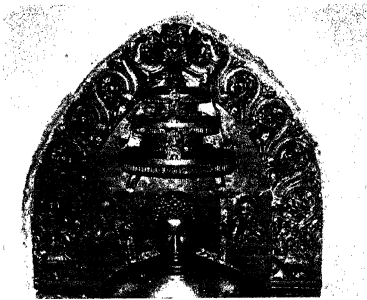
40. बुदर्रसिंगी—भगवान आदिनाथ : चौबीसी का परिकर (ऊर्ध्व भाग) ग्यारहवीं शती।
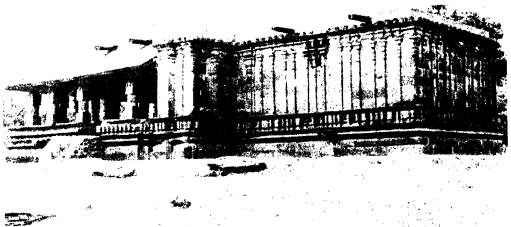
41. डंबल (जि० धारवाड़)—पार्श्वनाथ बसदि का बाह्य दृश्य; सत्रहवीं शती।

42. गुडिगेरी (जि० धारवाड़)—महावीर बसदि में चँवरधारी युग्म सहित तीर्थंकर मूर्ति; दसवीं शती ।
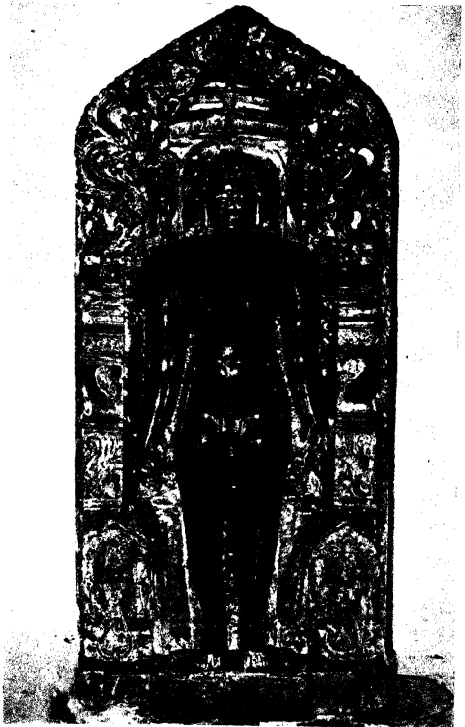
43. आरट्वाल (जि० धारवाड़)—पार्श्वनाथ बसदि में कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर मूर्ति; लगभग ग्यारहवीं शती।

44. गुत्तल (जि० धारवाड़)—तीर्थंकर पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्ति; लगभग दसवीं शती।

45. हवेरी (जि० धारवाड़)—मुद्दु-माणिक्य बसदि में पार्श्वनाथ की परिकर सहित आसीन मूर्ति; लगभग दसवीं शती।

46. अग्गिनबावि (जि० धारवाड़)—पार्श्वनाथ बसदि में तीर्थंकर आदिनाथ, चौबीसी सहित; लगभग ग्यारहवीं शती।

होने के कारण भी है। यहाँ के शिलालेख से जैन मन्दिर का अच्छा इतिहास मिलता है। यहाँ 750 ई. में चालुक्य शासक के ग्रामाधिकारी द्वारा मन्दिर बनवाए जाने का उल्लेख है। बेलुबल प्रदेश के शासक गंग पेर्माडि ने यहाँ 'गंग पेर्माडि जिनालय' बनवाया था जिसे राजाधिराज चोल ने नष्ट कर दिया था। बाद में उसे चालुक्य सम्राट त्रैलोक्यमल्ल प्रथम सोमेश्वर ने 1053 ई. में इसी स्थान पर मार डाला था। बाद में पुलिगेरे (लक्ष्मेश्वर) के महामण्डलेश्वर ने 1071 ई. में उस जिनालय का जीर्णोद्धार कराया।

यहाँ की सीढ़ियों (बारहवीं सदी) के जंगले पर एक हाथी पर शेर को हमला करते दिखाया गया है। शेर ने हाथी के मस्तक पर पंजा रख दिया है। सिंह के मुंह से पत्रावली की एक सुन्दर डिजाइन भी सीढ़ियों के जंगले पर दिखाई गई है।

बुदरसिंगी (Budersingi)

हुबली तालुक के अन्तर्गत इस स्थान से भी जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें एक चौबीसी प्रमुख है जिसके मूलनायक तीर्थंकर आदिनाथ हैं। उनके दोनों ओर पार्श्वनाथ एवं सुपार्श्वनाथ उत्कीर्ण है।

छब्बि (Chabbi)

हुबली के समीपस्थ इस स्थान का 'धोर जिनालय' एक हज़ार वर्ष प्राचीन है। इसमें मूल मूर्ति शान्तिनाथ की है। जिस समय (नौवीं शताब्दी में) पांचाल नामक जैन माण्डलिक यहाँ राज्य करता था, उस समय इस जगह का नाम शोभनपुर था। सन् 1060 ई० में यहाँ आचार्य कनकनन्दी का समाधिमरण हुआ था। यहाँ जैनों के सौ से ऊपर घर बताए जाते हैं। एक समय यहाँ सात मन्दिर थे।

बन्निकोप्पे (Bannikoppe)

शिरहट्टी तालुक में यह स्थान है। यहाँ की पार्श्वनाथ बसदि आकर्षक है। उसका शिखर अनेक तल वाला है। हाथी, तारों आदि का भव्य अंकन है।

डम्बल (Dambal)

गदग से लगभग 20 कि.मी. पर, इस स्थान से ग्यारहवीं और बारहवीं सदी की अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इनमें पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रमुख है। यहाँ सत्रहवीं सदी की एक पार्श्वनाथ बसदि भी है जो अब खण्डहर हो गई है (देखें चित्र क्र. 41)। यहाँ एक क़िले में ध्वस्त जैन मन्दिर है।

गुडिगेरि (Gudigeri)

यह स्थान लक्ष्मेश्वर के निकट कुण्डगोल तालुक में है। ईस्वी सन् 1073 में भुवनैकमल्ल द्वितीय सोमेश्वर के अधीनस्थ पेर्गडे प्रभाकर ने यहाँ एक जिनालय 'महावीर बसदि' का निर्माण कराया था। इसमें महावीर स्वामी की मूर्ति है (देखें चित्र क्र. 42)। यहाँ अधिकांश प्रतिमाएँ

ग्यारहवीं शती की हैं। एक तीर्थंकर प्रतिमा के ऊपर छत्रत्रयी और लताएँ हैं जिनमें गोल-गोल घेरों में संगीत-मंडली है। यहाँ अम्बिका और पद्मावती यक्षिणियों की भी ग्यारहवीं सदी की मूर्तियाँ हैं। एक नागफलक भी है जिस पर पार्श्वनाथ की मूर्ति उत्कीर्ण है।

कोन्नूरु (कोयनूरु) (Konnuru)

गोकाक तालुक में एक परमेश्वर मन्दिर है जो पहले जैन मन्दिर था। इस मन्दिर के सिरदल पर एक उभरे आले में आसीन तीर्थंकर की मूर्ति उत्कीर्ण है। उसके साथ छत्रत्रयी और दोनों ओर चँवरधारी भी हैं। इसका समय 10वीं शताब्दी है। एक खण्डित धरणेन्द्र (सम्भवतः) की भी मूर्ति यहाँ है।

प्रथम राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष ने अपने सामन्त बंकेय द्वारा इस स्थान पर निर्मित जिनालय के लिए 'तलेयूरु' नामक गाँव और अन्य भूमि दान में दी थी। इसका समय सन् 860 ई. है।

कलकेरी (Kalkeri)

हनगल तालुक के इस स्थान पर बारहवीं शताब्दी में 'अनन्तनाथ तीर्थंकर बसदि' का निर्माण हुआ था। कमलसेन मुनि की प्रेरणा से महाजनों ने भी इस मन्दिर के लिए दान दिया था।

यहाँ के जिनालय में 19वीं सदी की यक्षी पद्मावती की एक प्रतिमा है। उसके ऊपर सात फण युक्त पार्श्वनाथ हैं। फण के पास भी तीर्थंकर प्रतिमा है। सोलहवीं सदी की, ब्रह्मयक्ष की भी एक प्रतिमा है। इसी प्रकार आदिनाथ (10वीं सदी) की खंडित प्रतिमा, ग्यारहवीं सदी की एक तीर्थंकर प्रतिमा और सती-स्मारक तथा एक नागफलक (10वीं सदी) भी यहाँ से प्राप्त हुए हैं।

हनगल (Hangal)

यहाँ का वीरभद्र मन्दिर पहले एक जैन मन्दिर था ऐसा जान पड़ता है। गर्भगृह के अलंकृत प्रवेशद्वार के सिरदल पर कोई मूर्ति थी जिसे छैनी से निकाल दिया गया है।

एलावत्ति (Elavatti)

हनगल तालुक में एक 'एला जिनालय' है। इसकी गुम्बद नष्ट हो गई है। यह मन्दिर दसवीं शताब्दी का जान पड़ता है। यहाँ इसी सदी की आदिनाथ और पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ हैं। कांस्य की ग्यारहवीं सदी की अम्बिका यक्षी की प्रतिमा पर तीर्थंकर नेमिनाथ अंकित हैं।

आरट्वाल (Artala)

शिग्गाँव तालुक के इस स्थान पर पार्श्व-बसदि है। इसका निर्माण चालुक्य शासकों के समय में शक सवत् 1045 में हुआ था। प्रेरक थे मुनि कनकचन्द्र। उस समय बनवासि और हानुगुल्लु प्रदेश में कदम्बकुल का महामण्डलेश्वर तैलपदेव राज्य करता था। इस बसदि में ग्यारहवीं

शताब्दी की प्रतिमाएँ हैं। साढ़े चार फीट ऊँची पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर सात फण हैं और धरणेन्द्र एवं पद्मावती भी उत्कीर्ण हैं (देखें चित्र क्र. 43)। पाँच फीट की एक प्रतिमा यक्ष-यक्षिणी सहित एवं मकर-तोरण से युक्त है। यहाँ सुपार्श्वनाथ और ब्रह्म यक्ष की 11वीं सदी की प्रतिमाएँ भी हैं।

गुत्तल (Guttal)

हवेरी तालुक के इस गाँव में दसवीं सदी की साढ़े तीन फीट ऊँची पार्श्वनाथ की एक मूर्ति कायोत्सर्ग मुद्रा में, सात फण एवं मकर-तोरणयुक्त प्राप्त हुई है (देखें चित्र क्र. 44)।

पुस्तकगच्छ के मलधारिदेव और सोमेश्वर पंडितदेव के शिष्य केतिशेट्टि ने इस ग्राम में 1162 ई. में पार्श्वनाथ का मन्दिर निर्मित कराया था और उसके लिए राजा विक्रमादित्य से दान में भूमि प्राप्त की थी।

हवेरी (Haveri)

यहाँ की 'मुड्डु माणिक्य बसदि' में दसवीं शताब्दी की लगभग साढ़े तीन फीट ऊँची पार्श्वनाथ की पद्मासन मूर्ति है जो छत्रत्रयी, सात फणों से युक्त, सिर से ऊपर तक चँवरधारियों सहित तथा तीन ओर लताओं से अलंकृत है (देखें चित्र क्र. 45)। इसी प्रकार की एक और पार्श्वनाथ की मूर्ति भी यहाँ है।

स्थानीय सिद्धेश्वर मन्दिर में ग्यारहवीं शती के कुछ जैन चिह्न, जैसे चँवरधारी, ब्रह्मयक्ष का अश्व आदि खण्डित अवस्था में हैं।

बताया जाता है कि यहाँ का वीरभद्र मन्दिर किसी समय एक जैन मन्दिर था जो कि ग्यारहवीं शताब्दी का है। उसका शिखर कटनीदार है।

धारवाड़ तालुक और उसके आस-पास के कुछ स्थलों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

अम्मिनबावि (Aminbhavi)

यह स्थान धारवाड़ के बिलकुल निकट है और यहाँ पहुँचने के लिए सिटी बसें भी उपलब्ध हैं। यहाँ की 'पार्श्व बसदि' में दसवीं और ग्यारहवीं सदी की भव्य मूर्तियाँ हैं।

ग्यारहवीं सदी की इस स्थान की एक चौबीसी जैन मूर्तिकला का एक उत्तम उदाहरण है (चित्र क्र. 46)। इसके मूलनायक आदिनाथ हैं। उनकी जटाएँ कन्धों तक प्रदर्शित हैं। मस्तक पर एक अलंकृत छत्र है। उनके दाहिनी ओर के स्तम्भ पर सात फणों से युक्त पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। आदिनाथ के इसी ओर के पादमूल में गोमेद यक्ष को बैठे हुए दिखाया गया है। बाईं ओर सुपार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में तथा यक्षी चक्रेश्वरी हैं। स्तम्भों के छोर पर मकर दिखाए हैं। उनके मुख से पानी के गोल छल्ले निकलते प्रदर्शित हैं। इन छल्लों में और उनके बाहर 24 तीर्थंकरों की लघुमूर्तियाँ हैं। आदिनाथ के मस्तक के दोनों ओर एक-एक चँवर उत्कीर्ण हैं। लगभग तीन फुट की इस चौबीसी में जितना सूक्ष्म और सुन्दर अंकन हुआ है वह केवल देखने से ही समझ में आ सकता है। ऐसा उत्कीर्णन बहुत कम पाया जाता है। पाँच सिंहों के आसन पर दसवीं सदी की साढ़े चार फुट ऊँची महावीर स्वामी की प्रतिमा भी अलंकृत फलक

पर है। इसी सदी की एक पार्श्वनाथ प्रतिमा पर सात फणों की छाया है, छत्र एक ही है और मूर्ति मकर-तोरण से युक्त है। धरणेन्द्र एवं पद्मावती भी प्रदर्शित हैं।

बेलवत्ति (Belvetti)

शिलालेख के अनुसार, यहाँ अनेक जैनाचार्य रहते थे और संवणूरु निवासी बम्मिशेट्टी ने शोभकृत संवत्सर में यहां 'ब्रह्म जिनालय' का निर्माण कराया था।

हूविन सिग्गलि (Huvin Siggali)

शिलालेखानुसार एक श्रावक ने यहाँ 1245 ई. में शान्तिनाथ जिनालय का निर्माण कराया था तथा पुलिगेरे के माण्डलिकों ने दान दिया था।

कागिनिले (Kaginile)

चालुक्यराज प्रथम जगदेकमल्ल के शासनकाल में 1030 ई. में इस ग्राम के निवासी जिन-धर्मभक्त कामदेव और उसके पुत्र ने यहाँ जैन मन्दिर बनवाया था। तत्कालीन श्री आयतवर्मा ने यहीं रहकर कन्नड़ में आचार्य समन्तभद्र के 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' की टीका लिखी थी। गाँव के एक स्तम्भ पर खुदे लेख से ज्ञात होता है कि दानविनोद वैरिनारायण लेंकमरसण्णा आदित्यवर्मा ने यहाँ 'कार्णूगण मेषपाषाण गच्छ बसदि' और मानस्तम्भ का भी निर्माण कराया था।

करगुदरि (Kargudari)

सन् 1149 में यहाँ महावड्डव्यवहारि कल्लिशेट्टि ने 'विजय पार्श्वनाथ' मन्दिर का निर्माण कराके बसदि को भूमिदान किया था। आचार्य नागचन्द्र भट्टारक उसकी देखभाल करते थे।

मतंगि (Matangi)

एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि कलचुरि राजा बिज्जलदेव के शासनकाल में हानगल्लु के कलिदेव शेट्टि ने यहाँ एक चतुर्विंशति तीर्थंकर-मन्दिर का निर्माण 1265 ई. में कराके भट्टारक नागचन्द्र को कुछ दान के साथ सौंप दिया था।

मुगद (Mugad)

यहाँ की पार्श्वनाथ बसदि में अधिकांश प्रतिमाएँ ग्यारहवीं सदी की हैं। पार्श्वनाथ की पाँच फुट ऊँची कायोत्सर्ग मूर्ति पर सात फणों की छाया है और कीर्तिमुख है। उनके यक्ष धरणेन्द्र पर तीन फण अंकित हैं। पार्श्व की एक कांस्यमूर्ति क्षतिग्रस्त है। तेरहवीं सदी की एक चौबीसी के मूलनायक आदिनाथ हैं। तीर्थंकरों की पंक्तियों में सबसे ऊपर सुपार्श्वनाथ हैं जो कि पाँच फणों से युक्त हैं। पद्मावती की भी एक आकर्षक प्रतिमा है। देवी के केश लहराते हुए प्रदर्शित हैं।

राणिबेन्नूरु (Ranibennuru)

शिलालेख से ज्ञात होता है कि ईस्वी सन् 959 में नागुल पोल्लबयु नामक भक्त महिला ने यहाँ नागुल जिनबसदि का निर्माण कराया था।

संगूरु (Sanguru)

विजयनगर के राजा हरिहर के समय में गोवद शासक माधव के सेनापति नेमण्णा ने 1395 ई. में संगूरु के पार्श्वनाथ जिनालय को नाना प्रकार का दान दिया था। नेमण्णा के पिता और पितामह ने इसी मन्दिर में समाधिमरण किया था।

तडकोड (Tadkod)

यहाँ भी एक पार्श्वनाथ बसदि है। उसमें ग्यारहवीं और बारहवीं सदी की प्रतिमाएँ हैं। उनमें एक विशिष्ट नागफलक भी है।

उपर्युक्त फलक में त्रिछत्र के नीचे अनेक फण के नाग आपस में गुँथे हुए हैं। उत्तर भारत में क्षेत्रपाल की भाँति ऐसे नागफलक दक्षिण भारत में कई स्थानों पर मिलते हैं। बसदि में सप्त फणयुक्त कायोत्सर्ग प्रतिमा विराजमान है जिस पर कन्नड़ में लेख है। कन्धों तक जटावाले आदिनाथ अर्धपद्मासन में हैं। उनका भामण्डल क्षतिग्रस्त है। मूर्ति पर कन्नड़ लेख है। पद्मावती के मुकुट में एक फण से युक्त पार्श्वनाथ का अंकन है। देवी त्रिभंग मुद्रा में है। एक भग्न शिला शायद सल्लेखना से सम्बन्धित है।

स्वादी मठ : एक उपेक्षित प्राचीन केन्द्र

अवस्थिति एवं मार्ग

यह स्थान सिरसी से 22 कि. मी की दूरी पर हुबली-येल्लापुर-सिरसी मार्ग पर स्थित है। अब यह कारवाड़ (Karwar, पुराना नाम उत्तर कनारा North Kanara) ज़िले के सिरसी तालुक में एक गाँव है। यह सोदे भी कहलाता है और इसका प्राचीन नाम सोदकेरे है। इसे सोंडा भी कहते हैं। जैन मठ तो इस गाँव से भी अलग ऐसे स्थान में है जिसके आस-पास आठ-दस जैन परिवार ही रहते हैं। वास्तव में, इसे भुला दिया गया है। यहाँ पहुँचने के लिए कुछ बातों पर ध्यान देना ज़रूरी है। जो बस सिरसी से स्वादी गाँव जाती है उसी से वापस लौटना चाहिए। सिरसी से सुबह आठ बजे की बस ली जाए तो दोपहर डेढ़ बजे की बस से स्वादी से वापस लौटा जा सकता है

स्वादी में तीन मठ हैं—एक तो स्वादी गाँव में है जो कि 'वादिराज मठ' कहलाता है। बताया जाता है कि यह पहले जैन मठ था किन्तु अब यह शैव मठ है। उसके सामने मानस्तम्भ जैसी रचना दिखाई देती है।

जैन मन्दिर

जैन मठ के लिए स्वादी गाँव तक जाना भी आवश्यक नहीं है। सिरसी से हुबली जाने वाली सड़क जहाँ स्वादी गाँव के लिए मुड़ती है उसी तिराहे पर उतर जाना चाहिए। इस तिराहे को 'वादिराज क्रॉस' भी कहते हैं। इसके आस-पास कुछ आदिवासी या कृषक निवास करते हैं और यह छोटा गाँव 'कमटगेरी' कहलाता है। वैसे बंकापुर की ओर से आने पर यह सिरसी से पहले पड़ता है। अपना साधन होने पर इसे पहले भी देखा जा सकता है।

यहाँ चार अवशेष देखने में आते हैं। 1. सीढ़ियोंदार एक सुन्दर छोटा सरोवर। इसके लिए सड़क के पास से बैलगाड़ी का रास्ता-जैसा मार्ग जाता है। इस सरोवर में चारों ओर सीढ़ियाँ हैं। 2. सरोवर से कुछ ही दूरी पर जंगल से घिरा एक छोटा किन्तु ध्वस्त जैन मन्दिर है। उसमें अब मूर्ति नहीं है। सामने ऊँचा मानस्तम्भ है। 3. ध्वस्त मन्दिर से ही एक और छोटा ध्वस्त मन्दिर दिखाई देता है। वह भी खाली है, केवल क्षेत्रपाल शेष हैं। उसकी मूर्ति मठ में विराजमान कर दी गई। 4. जैन मठ और मन्दिर।

जैन मठ आठवीं सदी से पहले का बताया जाता है। यह 'भट्ट अकलंक मठ' कहलाता है और इस के भट्टारक भट्ट अकलंक कहलाते हैं। संगीतपुर के पट्टाचार्य अकलंकदेव का यहाँ समाधिमरण हुआ था। कन्नड़ भाषा के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शब्दानुशासन' (व्याकरण) की रचना भट्टाकलंक ने यहीं की थी। उनका समाधिमरण यहाँ 1577 ई. में हुआ था। यहीं उनकी समाधि है। यह स्थान ही प्राचीन अकलंक-पीठ है।

मठ इस समय जीर्णशीर्ण अवस्था में है किन्तु भट्टारक जी उसी में निवास करते हैं और धर्मलाभ देते हैं। मठ में कड़ियाँ (Beams) लकड़ी की हैं। उन्हें सहारा देने के लिए लकड़ी के ही मोटे-मोटे स्तम्भ हैं। छत भी लकड़ी की है। बाहर से मठ एक साधारण मकान जान पड़ता है।

मठ के बाहर का सूक्ष्म निरीक्षण करने से स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ किसी समय पाषाण का बड़ा भवन रहा होगा। कुर्सी आदि के पत्थर देखे जा सकते हैं। बड़े-बड़े पाषाण-खण्ड आज भी यहाँ पड़े हैं।

जैन मठ के वर्तमान भट्टारक भट्ट अकलंक जी सौम्य एवं स्नेहपूर्ण व्यक्तित्व के स्वामी हैं। आर्थिक दृष्टि से खस्ता हालत में होने पर भी यह मठ प्राचीन परम्परा को जीवित रखे हुए है। इन्दौर के कुछ दानियों ने यहाँ भवन-निर्माण के लिए कुछ आर्थिक सहायता भी दी है। मठ की आर्थिक स्थिति थोड़ी-सी खेती पर निर्भर है।

जैन मठ से संलग्न प्राचीन जैन मन्दिर छोटा-सा है। उसके मूलनायक आदिनाथ हैं। वे स्तम्भयुक्त मकरतोरण में विराजमान हैं। मन्दिर में चन्द्रप्रभ और बाहुबली की भी मूर्तियाँ हैं। कूष्माण्डिनी देवी और सर्वाह्न यक्ष भी स्थापित हैं।

मन्दिर के द्वार के सिरदल पर यक्ष-मूर्ति और द्वार-शिला पर कमल तथा द्वार के दोनों ओर द्वारपाल हैं।

मन्दिर और मठ रजिस्टर्ड ट्रस्ट हैं। मठ का पता इस प्रकार है—

स्वस्ति श्री भट्टाकलंक भट्टारक स्वामी जी,
ग्राम—स्वादी (सोदे)Swadi
पो.—सोंडा(Sonda)
तालुक—सिरसी (Sirsi)
ज़िला—कारवाड़ (Karwar), कर्नाटक

· यहाँ से वापस सिरसी लौटना चाहिए।

जोग-झरने : दर्शनीय स्थल

कभी-कभी पर्यटक का मन करता है कि मन्दिर-मूर्तियाँ देखने के साथ ही यदि प्राकृतिक सौन्दर्य भी देखने को मिल जाए तो कितना अच्छा रहे ! यदि ऐसा स्थान यात्रा-क्रम के बीच में हो तो और भी अच्छा। ऐसी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं 'जोग झरने' (Jog Falls)।

मार्ग

हुबली-बंगलोर रेलमार्ग (दक्षिण रेलवे) पर, बिरूर (Birur) नामक स्थान से मीटरगेज की एक लाइन बिरूर-तालगप्पा तक है (बीच में शिमोगा और सागर आते हैं)। तालगप्पा से ये झरने सड़क-मार्ग द्वारा सोलह कि. मी. हैं।

सड़क-मार्ग द्वारा सिरसी से यहाँ पहुँचने के लिए सिद्धपुर (सिद्धापुर Siddhapur), वहाँ से तालगप्पा होते हुए यहाँ पहुँचा जाता है। सिरसी से तालगप्पा तक एक्सप्रेस और सेमी-लक्ज़री बसें भी चलती हैं। सिरसी से भी सीधी बस चलती है। ठहरने आदि की दृष्टि से यह उपर्युक्त होगा कि पर्यटक सिरसी से सागर जाए और वहाँ बाज़ार क्षेत्र में ठहरकर, बस द्वारा जोग-झरने देख आये। वैसे इन झरनों पर भी ठहरने की अच्छी सुविधाएँ हैं।

यहाँ ठहरने के लिए झरनों के ठीक सामने वुडलेण्ड्स होटल (शाकाहारी और सस्ता), निरीक्षण बंगला तथा सरकारी यूथ होस्टल (सस्ता तथा शाकाहारी) या पास ही के करगल नामक स्थान में कुछ लॉज हैं। ये सब शिमोगा ज़िले में हैं। झरने जहाँ से गिरते हैं वहाँ भी पी. डब्ल्यू. डी. का गेस्ट हाउस है जो कि कारवाड़ ज़िले में आता है। अगर पुल ठीक नहीं हुआ तो परेशानी होती है। शिमोगा ज़िले की हद में ठहरना ही उचित है।

जोग झरने वास्तव में झरने नहीं, बल्कि शरावती नदी है। यह चार बड़े-बड़े झरनों के रूप में बँटकर, 960 फीट की ऊँचाई से नीचे घाटी में गिरकर, एक ऐसा सुन्दर दृश्य उपस्थित करती है जो अन्यत्र दुर्लभ है। उसकी इन चार धाराओं के भी बड़े सुन्दर नाम रखे गए हैं। बाएँ से दाएँ देखना शुरू करें तो पहली धारा या झरना 'राजा' कहलाती। यह धारा सबसे बड़ी है। उसके पास की दूसरी धारा 'रोअरर' (Roarer) कहलाती है क्योंकि उसके गिरने से जोर की आवाज़ होती है। तीसरी धारा का नाम' (Rocket) है। यह सँकरे मार्ग से आकर गिरती है,

दबाव जोर का होना है, इस कारण राकेट जैसी आवाज करती है। चौथी और अन्तिम धारा का नाम 'रानी' है क्योंकि यह बिना शोर मचाए गिरती है।

शरावती की ये चारों धाराएँ फिर नदी का रूप धारण कर अगले 17 कि. मी. का मार्ग तय कर अरब सागर में जा मिलती हैं।

उपर्युक्त झरनों का आनन्द लेने के लिए बैठने आदि की सुन्दर व्यवस्था है। साथ ही वुडलेण्ड्स आदि होटल हैं। सबसे अच्छा मौसम सितम्बर-अक्टूबर है। गर्मियों में धाराएँ कुछ क्षीण पड़ जाती हैं।

सागर से जोग-झरनों तक जाते समय रास्ते में तालगप्पा आता है जहाँ पहाड़ी पर टूरिस्ट बंगला और पहाड़ी के नीचे सुन्दर सरोवर है। आगे चलकर शरावती नदी बिजली योजना (1947 में प्रारम्भ हुई थी) का बाँध आता है। काजू के अनेक पेड़ और आदिवासियों के या कृषकों के समूह दिखाई देते हैं। इन लोगों के सिर पर सुपारी या अन्य किसी पत्ते की टोपी भी देखने लायक होती है। यहीं महात्मा गाँधी पनबिजली केन्द्र है। वास्तव में यह शरावती घाटी है।

झरनों के बाद यदि पर्यटक चाहे तो गेरसोप्पा की ओर जा सकता है या सागर वापस लौटकर अपनी आगे की यात्रा प्रारम्भ कर सकता है। अपना साधन होने पर सिरसी-तालगप्पा-जोग झरने-तालगप्पा-सागर मार्ग ठीक रहेगा।

कारवाड़ जिले के अन्य जैन-स्थल

कारवाड़ ज़िले का नया नाम है। वैसे यह उत्तर कनारा (North Kanara) कहलाता था। प्राचीन काल में यह प्रदेश 'बनवास' कहलाता था।

यह ज़िला जैनधर्म का एक सुप्रसिद्ध केन्द्र रहा है। जैन स्मारकों या विद्यापीठ के अतिरिक्त जैनधर्म के महान् ग्रन्थ 'षट्खण्डागम' का प्रारम्भ भी इस 'वनवास' में हुआ।

बनवासि (Banvasi)

यह स्थान सिरसी से 25 कि. मी. की दूरी पर है। यहाँ कदम्ब वंश के राजाओं की भी राजधानी थी। इस वंश के अनेक राजा जैनधर्म के अनुयायी या पोषक थे। लोग यह अर्थ भी निकालते हैं कि श्री रामचन्द्र के वनवास के कारण यह प्रदेश बनबास/बनवासि कहलाया।

महावीर स्वामी के निर्वाण को साढ़े छह सौ वर्ष हो चुके थे। इतने समय तक उनके उपदेशों की मौखिक परम्परा ही प्रमुख थी किन्तु उनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा था। यह स्थिति जानकर गिरिनगर (जूनागढ़) में तपस्या एवं ज्ञान-प्रसार में रत आचार्य धरसेन चिन्तित हुए। उन्होंने दक्षिण प्रदेश के मुनि-संघ से दो योग्य शिष्य भेजने का अनुरोध किया। फलस्वरूप पुष्पदन्त और भूतबलि ये दो मुनि उनके पास भेजे गए। आचार्य

ने उनकी परीक्षा ली और अपने देश वापस भेज दिया। पुष्पदन्त और भूतबलि का मूल नाम कुछ और ही था। दोनों ही की दन्त-पंक्तियाँ असुन्दर थीं। अलौकिक प्रभाव से उनकी दन्त-पंक्ति सुन्दर हो गईं और उन्हें पुष्पदन्त एवं भूतबलि ये नये नाम दिए गए। पुष्पदन्त ने अपने भानजे मुनि जिनपालित को आचार्य धरसेन द्वारा उपदिष्ट ज्ञान प्रदान किया और अन्त में बनवासि में आकर आगम को पुस्तक का रूप दिया। एक नई परम्परा प्रारम्भ हुई। आचार्य पुष्पदन्त इसके प्रारम्भकर्ता हुए। पुष्पदन्त और भूतबलि ने छह खण्डों में जो ज्ञान लिपिबद्ध किया, वह 'षट्खण्डागम' कहलाया। उसका प्रारम्भिक भाग पुष्पदन्त की रचना है और शेष भाग भूतबलि की, जिसे उन्होंने तमिल देश में पूरा किया था। उसकी पूर्ति पर मुनि संघ ने ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को इस लिखित शास्त्र की पूजा की और इस दिन को श्रुतपंचमी नाम दिया गया। तभी से श्रुतपंचमी आज तक मनाते चले आ रहे हैं। इस प्रकार बनवासि जैन शास्त्र के इतिहास में अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान रखता है। आचार्य पुष्पदन्त का समय ई. सन् 50 से 80 *माना गया है। वीर निर्वाण संवत् के अनुसार वे संवत् 663 के बाद हुए हैं।*

कन्नड़ के महाकवि पम्प के लिए भी यह स्थान प्रेरणाप्रद था। समय की गति विचित्र है! इस प्रसिद्ध जैन स्थल में अब केवल दस जैन परिवार रह गए हैं। यहाँ स्वादी मठ की एक शाखा है।

बनवासि में 'चन्द्रप्रभ बसदि' नामक एक मन्दिर है। उसमें ग्यारहवीं सदी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक की प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। मन्दिर में सोलहवीं सदी की एक चौबीसी है जिसके मूलनायक कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर आदिनाथ हैं। उनके तीनों ओर पद्मासन में तीर्थंकरों की मूर्तियाँ हैं। यक्ष-यक्षी का भी अंकन है। ग्यारहवीं सदी की कायोत्सर्ग मुद्रा में, लगभग साढ़े चार फुट ऊँची, मकरतोरण एवं यक्ष-यक्षी सहित प्रतिमा है। एक कांस्य-प्रतिमा भी है जिसके साथ परिकर नहीं है। उसका आसन उलटे प्याले की तरह है। चौदहवीं सदी की एक कांस्य तीर्थंकर प्रतिमा का आसन भी स्टूल की तरह का है। घोड़े पर सवार ब्रह्म यक्ष की मूर्ति भी यहाँ है जिसके पृष्ठभाग के फलक पर कमल पर आसीन एक तीर्थंकर लघु मूर्ति है। पद्मावती की एक 14वीं सदी की मूर्ति के मस्तक पर पार्श्वनाथ का अंकन है।

गेरुसोप्पा (Gerusoppa)

यह होन्नवर तालुक में है। जोग-झरनों के पास ही स्थित यह सुन्दर स्थल एक पर्यटक केन्द्र भी माना जाता है। किसी समय यहाँ चन्नवैरादेवी नामक एक जैन रानी राज्य करती थी। उसे यहाँ का राज्य अपनी माता से उत्तराधिकार में मिला था। पुर्तगालियों ने 1542 ई. में उसे हराकर न केवल उसका राज्य ही छीन लिया अपितु यहाँ के जैन मन्दिरों को भी जी भरकर नष्ट किया। ईसाई धर्म का प्रचार करने में पुर्तगाली अँग्रेजों से भी कट्टर थे। इसका प्रमाण आज भी गोवा में अत्यधिक संख्या में चर्चों की विद्यमानता से मिलता है।

यहाँ के मन्दिरों आदि का प्रबन्ध हुमचा के भट्टारक स्वामी जी द्वारा किया जाता है। गेरुसोप्पा किसी समय एक प्रमुख जैन केन्द्र था। सन् 1360 में यहाँ तीर्थंकर अनन्तनाथ बसदि का निर्माण हुआ था। सन् 1563 में शान्तिनाथ बसदि का निर्माण सालुवनायक ने करवाया

था। यहाँ नेमिनाथ मन्दिर भी बना। इस स्थान के अनेक भव्यों ने श्रवणबेलगोल के मन्दिरों का उद्धार कराया था। यहाँ चतुर्मुख बसदि, नेमिनाथ बसदि, पार्श्वनाथ बसदि और ज्वालामालिनी बसदि नामक चार मन्दिर हैं। कुछ ध्वंसावशेष भी हैं।

'चतुर्मुख बसदि' का समय 15वीं या 17वीं सदी माना जाता है। इसके ध्वस्त स्तम्भों को मन्दिर के आस-पास पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। मन्दिर की चौकी पर पशु-पक्षियों का सुन्दर उत्कीर्णन है। उसके भीतरी स्तम्भों पर भी सुन्दर कारीगरी है। मन्दिर में चैत्य-गवाक्ष भी है। सिरदल पर पद्मासन में तीर्थंकर प्रतिमा और गर्भगृह के प्रवेशद्वार पर द्वार-पालों का अंकन है। चौमुखे की चार प्रतिमाएँ 15वीं शताब्दी की और आठ फुट ऊँची हैं। ये स्तम्भोंयुक्त चाप के अतिरिक्त, छत्रत्रयी से शोभायमान हैं। एक प्रतिमा ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ की है। इसकी पहिचान यक्ष-यक्षी ईश्वर और गौरी से होती है। दूसरी प्रतिमा विमलनाथ की है जो कि अपने लांछन वराह से युक्त है। तीर्थंकर मल्लिनाथ की तीसरी प्रतिमा की पहिचान यक्ष-यक्षी कुबेर और अपराजिता के वाहनों से होती है। चौथी प्रतिमा महावीर स्वामी की है। वे यक्ष-यक्षी मातंग और सिद्धायिका से तथा उनके वाहन से पहचाने जाते हैं। यह मन्दिर 'जलमन्दिर' भी कहलाता है।

'नेमिनाथ बसदि' में तीर्थंकर नेमिनाथ पद्मासन में छत्रत्रयी से युक्त हैं। उनके यक्ष-यक्षी भी अंकित हैं। चँवरधारियों का अंकन सिर से ऊपर तक है। प्रतिमा पर मकर-तोरण है। मूर्ति 14वीं सदी की और लगभग साढ़े सात फुट ऊँची है।

'पार्श्वनाथ बसदि' की भगवान पार्श्वनाथ की पद्मासन प्रतिमा पन्द्रहवीं सदी के आस-पास की है और लगभग पाँच फुट ऊँची है। उस पर एक ही छत्र है। यक्ष-यक्षी घुटनों तक हैं, सर्पकुण्डली तथा मकरतोरण भी अंकित हैं।

'ज्वालामालिनी बसदि' एक अलग ही मन्दिर है। उसमें ग्यारहवीं सदी की यक्षी लगभग दो फुट ऊँची है। वह समभंग मुद्रा में है। उसके आठ हाथ चित्रित हैं। इस मन्दिर में भी खण्डित चौबीसी और तीर्थंकर पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग तथा पद्मासन मूर्तियाँ हैं। ये भी 14वीं और 15वीं सदी की हैं।

भटकल (Bhatkal)

यह स्थान गेरुसोप्पा से थोड़ी ही दूर पर समुद्र के किनारे स्थित है। किसी समय यहाँ मोतियों का व्यापार होता था। इस कारण इसे 'मोती भटकल' भी कहते थे। यहाँ 'जटप्पा नायकन चन्द्रनाथेश्वर बसदि' है। उसके सामने मानस्तम्भ है। मन्दिर की अधिकांश छत ढलुआ है।

हाड़ुवल्लि (Haduvalli)

यह स्थान भटकल तालुक में है। इसका प्राचीन नाम संगीतपुर था। यह तौलवदेश के अन्तर्गत आता है। किसी समय समृद्ध इस नगर का राजा सालुवेन्द्र जैन धर्म का अनुयायी था। उसके समय में जैन धर्म की खूब उन्नति हुई। वह चन्द्रप्रभ का भक्त था। उसने 1488 ई. में

अपने जैन मन्त्री को एक गाँव दान में दिया था। मन्त्री पद्मण्णा ने भी 1499 ई. में पद्माकरपुर में पार्श्वनाथ का एक मन्दिर निर्माण कराया था।

यहाँ की 'चौबीसा बसदि' ध्वस्त अवस्था में है। यह झाड़ियों से घिरी हुई है। किन्तु यहाँ की पन्द्रहवीं शताब्दी की लगभग दो फुट ऊँची कांस्य की त्रिकाल चौबीसी आकर्षक है। उस पर भूत, भविष्य और वर्तमान के कुल 72 तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं।

यहाँ प्रकृति का दृश्य भी बड़ा सुहावना है। हरी-भरी पहाड़ियाँ मन मोह लेती हैं।

इसी बसदि में घोड़े पर सवार ब्रह्म यक्ष की मूर्ति है। घोड़े का एक पैर सिंह पर आक्रामक मुद्रा में है। ललितासन में कमल पर विराजमान सरस्वती (?) की मूर्ति भी है। देवी के हाथ में पुस्तक है। यक्ष और सरस्वती दोनों ही खण्डित हैं। ये मूर्तियाँ 14-15वीं सदी की हैं।

इस स्थान की चन्द्रनाथ बसदि में लगभग चार फुट ऊँची चन्द्रप्रभ की संगमरमर की 13वीं सदी की अर्धपद्मासन में मूर्ति है। एक अन्य चन्द्रप्रभ मूर्ति कायोत्सर्ग मुद्रा में है। पार्श्वनाथ की 4 फुट ऊँची प्रतिमा (15वीं सदी) तथा कांस्य की एक पंचतीर्थिका (एक ही फलक पर पाँच तीर्थंकरों की मूर्तियाँ) भी है जिसके मूलनायक 'शंख' लांछन के आधार पर तीर्थंकर नेमिनाथ जान पड़ते हैं। यह प्रतिमा आठ इंच ऊँची तथा तेरहवीं सदी की है।

हाडुवल्लि में एक और 'चन्द्रनाथ बसदि' है। उसमें कायोत्सर्ग मुद्रा में लगभग छह फुट ऊँची चन्द्रप्रभ की प्रतिमा के साथ यक्ष एवं यक्षी (ज्वालामालिनी), छत्रत्रयी और कीर्तिमुख सहित मकर-तोरण का अंकन है। पन्द्रहवीं शती की पार्श्वनाथ की मूर्ति खण्डित है। यहाँ 14-15वीं सदी का एक वीरगल (वीर-स्मारक) भी है, जिसमें यह वर्णन है कि किस प्रकार इस वीर ने युद्ध किया। उसमें वीर जट्टिग को घोड़े पर सवार दिखाया गया है। यहाँ दो तीन वीरगल और भी हैं। मन्दिर इस समय ध्वस्त अवस्था में है।

स्थानीय पार्श्वनाथ बसदि में एक नागपट्ट पर दो नाग आपस में गुँथे दिखाए गए हैं। उनके दोनों ओर भी एक-एक नाग है। इसी प्रकार एक स्तम्भ पर नाग के चित्रण से एक आकर्षण डिजाइन बन गई है। ये अंकन 15वीं सदी के हैं।

यहाँ हरिपीठ में संगमरमर की 24 तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं।

मुरडेश्वर (Murdeshwar)

भटकल तालुक के इस स्थान पर पार्श्व बसदि में 14वीं सदी की कायोत्सर्ग मुद्रा में चार फुट ऊँची प्रतिमा है। उस पर छत्रत्रयी है और नौ फणों की छाया है। धरणेन्द्र और पद्मावती (घुटनों तक), चँवरधारी और मकर-तोरण भी हैं। भगवान पार्श्वनाथ की एक साढ़े चार फुट ऊँची, 1539 ई. की पद्मासन मूर्ति भी है। यहाँ एक सती का स्मारक भी है। पद्मावती की खण्डित मूर्ति भी इस बसदि में है। यहाँ एक आकर्षक नागफलक भी है जिसमें तीन नाग आपस में गुँथे दिखाए गए हैं।

बीलगि (श्वेतपुर) (Bilagi)

सिद्धापुर तालुक के इस स्थान की 'रत्नत्रय बसदि' प्राचीन है। उसका निर्माण 1570 ई.

में प्रारम्भ हुआ था। यहाँ अनेक आचार्य श्रवणबेलगोल परम्परा के हुए हैं। उनमें से आचार्य विजयकीर्ति प्रथम की प्रेरणा से भटकल नगर का निर्माण हुआ था।

उपर्युक्त बसदि में अधिकांश प्रतिमाएँ 15वीं सदी की हैं। मकर-तोरण से मण्डित तीर्थंकर पार्श्वनाथ की लगभग चार फुट ऊँची प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है। उसके साथ यक्ष-यक्षी अंकित हैं। इन्हीं तीर्थंकर की एक और पाँच फुट ऊँची कायोत्सर्ग मूर्ति यक्ष-यक्षी, मकर-तोरण और कीर्तिमुख सहित है। 15वीं सदी की लगभग चार फुट ऊँची महावीर स्वामी की कायोत्सर्ग प्रतिमा कमलासन पर विराजमान है। आदिनाथ की पद्मासन प्रतिमा के साथ यक्ष-यक्षी, तोरण और कीर्तिमुख के साथ 'गजकेसरी' का अंकन आकर्षक है। स्तम्भों के ऊपर अंकित गजकेसरी के मुख से जल के फव्वारे छूट रहे हैं। धरणेन्द्र की अद्‌भुत मूर्ति के अंकन में देखने लायक हैं—ऊँचा मुकट, तीन हाथों में सर्प और धोती की सुन्दर स्पष्ट सिलवट। पद्मावती के हाथों में भी कमल की कलियाँ दिखाई गई हैं। यहाँ कुछ खण्डित मूर्तियाँ भी हैं। मन्दिर का शिखर बेसर शैली का है।

गुण्डबल (Gundbala)

होन्नवर तालुक के इस स्थान में ग्यारहवीं सदी की 'रत्नत्रय बसदि' है। इसमें 10वीं और 11वीं सदी की अधिकांश प्रतिमाएँ हैं। ग्यारहवीं शताब्दी की साढ़े पाँच फुट ऊँची, उलटे कमलासन पर स्थित (चित्र क्रमांक 52) तीर्थंकर आदिनाथ की एक प्रतिमा पर कन्धों तक जटा प्रदर्शित हैं। एक चौबीसी है जिसके मूलनायक का लांछन नहीं है। तीन-छत्र, यक्ष-यक्षी (घुटनों के पीछे) तथा दो पंक्तियों में शेष तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं।

यहाँ 'सूरस्थ बसदि' नामक एक मन्दिर और है। उसमें भी एक चौबीसी है जिसके मूलनायक तीर्थंकर आदिनाथ हैं। इसके प्रदक्षिणा-पथ में दसवीं सदी की तीन खड्‌गासन तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं जिन पर मकर-तोरण है। इसी सदी की एक पार्श्वनाथ की प्रतिमा भी है जिस पर सात फणों की छाया है। यह साढ़े पाँच फुट ऊँची है (चित्र क्र. 53)। यहाँ गणेश और ब्रह्मयक्ष की मूर्तियाँ भी हैं। दसवीं सदी की ही पद्मावती और धरणेन्द्र की प्रतिमाएँ भी यहाँ हैं। इसी शताब्दी की सरस्वती की एक सुन्दर प्रतिमा ललितासन में है। उसके ऊँचे मुकुट में एक लघु तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। यह लगभग ढाई फुट की है।

मनकी (Manki)

होन्नवर तालुक के ही इस स्थान पर एक 'शान्तिनाथ बसदि' है। प्रतिमा बारहवीं सदी की और लगभग तीन फुट ऊँची है। शान्तिनाथ खड्‌गासन में हैं, घुटनों तक चँवरधारी अंकित हैं और मकर-तोरण भी है।

इस मन्दिर के एक स्तम्भ के चारों ओर रामायण की कहानी उत्कीर्ण है। उस पर कीर्तिमुख है, कन्नड़ में छह पंक्तियों का एक लेख है और अन्य आकर्षक डिजाइन हैं। पन्द्रहवीं सदी के इस स्तम्भ की ऊँचाई सात फट है (देखें चित्र क्र. 54)।

वैगल्लि (Vaigalli)

यह स्थान कुमुट तालुक में है। यहाँ भी 'पार्श्वनाथ बसदि' है। उसकी चौबीसी और एक स्मारक फलक खण्डित हैं। लेख मिट-सा गया है।

कुमुट (Kumut)

यहाँ का 'पार्श्वनाथ देवालय' बारहवीं शताब्दी या इससे भी प्राचीन है। इसमें पार्श्वनाथ की मूर्ति की स्थापना मूलसंघ के सूरस्थगण चित्रकूटगच्छ के श्री मुकुन्ददेव ने की थी। यहाँ समाधिमरण करने वालों में प्रमुख हैं—मुनि नागचन्द्र, श्रावक साविवेट्ट तथा श्राविका कंचलदेवी।

हुमचा

उत्तर भारत में राजस्थान के दो अतिशय क्षेत्र प्रसिद्ध हैं। एक है दिल्ली-कोटा-बम्बई रेलवे लाइन पर श्री महावीरजी और दूसरा है अलवर ज़िले का तिजारा। दोनों ही अत्यधिक संख्या में (विशेषकर उत्तर भारत के) यात्रियों को आकर्षित करते हैं। यदि कोई यह पूछे कि कर्नाटक में भी क्या कोई ऐसा अतिशय क्षेत्र है? तो उसका उत्तर होगा—हाँ, हुमचा है। यहाँ की पद्मावती देवी के अतिशय के कारण यहाँ बड़ी चहल-पहल रहती है और प्रतिदिन सैकड़ों की संख्या में यात्री आते हैं।

इस स्थान के नाम का वास्तविक उच्चारण हुंचा (Humcha) है।

अवस्थिति एवं मार्ग

सड़क-मार्ग द्वारा हुमचा तीन स्थानों से सीधे पहुँचा जा सकता है। सागर से आनन्दपुरम्, रिपनपेट होते हुए हुमचा कुल 64 कि. मी. (रास्ते में छोटी पहाड़ियाँ, घाटियाँ और कुछ भाग वन), दक्षिण में तीर्थहल्ली से यह 29 कि. मी. और शिमोगा से लगभग 60 कि. मी. है।

यहाँ दक्षिण रेलवे के बिरूर-तालगप्पा मार्ग पर स्थित आनन्दपुरम् और अरसालु-(Arasalu) नामक दो रेलवे स्टेशनों से पहुँचा जा सकता है। आनन्दपुरम् से बस द्वारा हुमचा के लिए लगभग 40 किलोमीटर की यात्रा करनी होती है। अरसालु से भी बस द्वारा लगभग 23 कि. मी. यात्रा कर वहाँ पहुँचा जा सकता है।

सागर से मूडबिद्री आदि की मिनी बसें और बड़ी बसें दोनों ही हुमचा आती हैं। मिनी बसें मठ के चौक के अन्दर तक आ जाती हैं।

इस अतिशय क्षेत्र का इतिहास लगभग 1300 वर्ष पुराना है। प्राचीन शिलालेखों में इसके नाम के अनेक रूपान्तर मिलते हैं। कनकपुर शिलालेख में यह पोम्बुर्च्चपुर, पट्टि पोम्बुच्चा, पोम्बुर्च्चा, पोम्बुच्चा, होम्बुचा नामों से अभिहित है। इस क्षेत्र को लोग होम्बुज, होम्बुजा, पोम्बुच्च, होम्बुच्च, हुमचा एवं हुंचा भी कहते हैं। राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत नाम हुंचा है।

स्थानीय जैन मठ होम्बुज और होम्बुजा दोनों नामों का प्रयोग करता है।

इस क्षेत्र का नाम होन्नु + पुच्च इन दो शब्दों से बना है। 'होन्नु' का अर्थ है सोना और 'पुच्च' से खदान का अर्थ सिद्ध है। अर्थात् वह स्थान जहाँ सोने की खदान हो। वास्तव में यहाँ सोने की खदान नहीं है किन्तु इस स्थान का सम्बन्ध अतीत काल की उस घटना से है जिसमें यहाँ के राजा जिनदत्त को पद्मावती देवी की कृपा से लोहे को भी सोना बनाने की शक्ति प्राप्त हुई थी। यही होन्नुपुच्च बिगड़ते-बिगड़ते होम्बुज या हुंचा हो गया है। मलेनाडु जनपद में स्थित यह क्षेत्र बिलेश्वर पहाड़ी की तलहटी में बसा हुआ है।

एक अतिशय-क्षेत्र

अतिशय-क्षेत्र के रूप में इसकी प्रसिद्धि के चार कारण हैं—(1) कमठ क उपसर्ग के समय पार्श्वनाथ की रक्षा करने वाली यक्षिणी पद्मावती (यहाँ के लोग पद्माम्बा भी कहते हैं) की मूर्ति, जो मनौतियों—विशेषकर महिलाओं के सौभाग्य की रक्षक के रूप में—दूर-दूर तक जैन-अजैन जनता में सदियों से प्रसिद्ध है, (2) यहाँ का 'लक्की' (लोकिक) वृक्ष जो सदा हरा-भरा रहता है, (3) लगभग 1300 वर्षों पूर्व निर्मित 'मुत्तिनकेरे' (मोतियों का तालाब) जो कभी नहीं सूखता और (4) तुंगभद्रा नदी की सहायक कुमुदवती नदी का उद्गम-स्थल जो कुमुदतीर्थ कहलाता है।

हुमचा में सबसे महत्त्वपूर्ण अतिशय पद्मावती (लोकियव्बे) देवी है जिसका अलग मन्दिर पार्श्वनाथ मन्दिर के समीप ही स्थित है। यहाँ लोग पूजा-अर्चना कर मनौतियाँ मनाते हैं। कहा जाता है कि यदि किसी भक्त का कार्य सिद्ध होने की संभावना हो तो देवी के दाहिने भाग से फूल गिरता है (यहाँ फूल चढ़ाए जाते हैं)। यह कार्यक्रम या सिलसिला यहाँ प्रतिदिन हर समय चलता रहता है। भक्तों की भीड़ लगी रहती है। लोग बसों, कारों व अन्य सभी साधनों से यहाँ पहुँचते हैं।

क्षेत्र का रोचक घटनापूर्ण इतिहास

इस क्षेत्र का इतिहास एक रोचक कहानी है। लगभग 22 शिलालेख यहाँ के मन्दिरों आदि का इतिहास बताते हैं। यह कहानी यहाँ की पंचकूट बसदि (पंचबस्ती) के प्रांगण के एक पाषाण (1077 ई. के एक बहुत बड़े शिलालेख) पर संस्कृत तथा कन्नड़ में खुदी हुई है। लगभग 1680 ई. में कवि पद्मनाभ द्वारा कन्नड़ में रचित 'जिनदत्तरायचरित्रे' में भी यहाँ के सान्तर राजवंश की उत्पत्ति की कथा वर्णित है। इस काव्य का दूसरा नाम 'पद्मावतीचरित्रे' या 'अम्मनवरचरित्रे' भी है। कथा रोमांचकारी घटनाओं से भरपूर है।

सूरसेन देश में, उत्तर मथुरा नाम की नगरी में, राहु नाम का एक राजा हुआ है जो महाभारत के युद्ध में, कुरुक्षेत्र में, लड़ा था। उसकी जीत पर प्रसन्न होकर नारायण ने उसे एक शंख और वानर-ध्वज दिया था। वह मथुरा-भुजंग के नाम से प्रसिद्ध था। उसका जन्म उग्रवंश में हुआ था (भगवान पार्श्वनाथ भी इसी वंश के थे)। उसकी कई पीढ़ियों के बाद, इस वंश में सहकार नामक राजा हुआ। उसकी पटरानी का नाम श्रियादेवी था। वे दोनों जिनभक्त थे।

मुनि सिद्धान्तकीर्ति के भी वे भक्त थे। उनके तीन पुत्रियाँ हुईं किन्तु कोई पुत्र नहीं था। रानी इस कारण चिन्तित रहती थी। मुनिराज से पूछने पर उन्होंने बताया कि पद्मावती देवी की कृपा से उन्हें शीघ्र ही पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी। गर्भावस्था में रानी ने स्वप्न में हंसी पक्षी के एक शिशु को समूह से बिछुड़कर एक अन्य तालाब में प्रवेश करते देखा। फल पूछने पर मुनिराज ने बताया कि रानी एक तत्त्वज्ञानी पुत्र को जन्म देगी किन्तु वह जब सोलह वर्ष का होगा तब उस पर विपत्ति आएगी और वह किसी दूसरे नगर में जाकर रहने लगेगा। समय आने पर रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम जिनदत्त रखा गया। (यही बालक आगे चलकर दक्षिण में हुम्मच के सान्तर राजवंश का मूल पुरुष हुआ।)

कुछ समय पश्चात् राजा को सूचना मिली कि उसके सीमा-प्रदेश के लोगों ने कर, भेंट आदि देना बन्द कर दिया है। यह सुन राजा उन लोगों को दण्डित करने के लिए राजधानी से चला। जाते समय उसने मुनिराज की वन्दना की। मुनि सिद्धान्तकीर्ति ने उसे बताया कि विजय तो उसकी होगी किन्तु कुल के लिए एक बाधा है, उससे सावधान रहना होगा। किन्तु वापस लौटते समय राजा पद्मिनी जाति की एक अत्यन्त सुन्दर व्याधकन्या पर आसक्त हो गया। मन्त्री के समझाने के वावजूद भी, वह उससे विवाह की हठ कर बैठा। आखिर मन्त्री ने शबर को बुलाकर अपनी कन्या से राजा का विवाह कर देने का आग्रह किया। वृद्ध शबर ने पहले तो यही विचारा कि राजा का हीनकुल की कन्या पर प्रेम चंचल है। किन्तु जब राजा ने अपना आग्रह दोहराया तो उस भील ने राजा से निवेदन किया, "मेरी पुत्री से उत्पन्न पुत्र को आप वही प्रेम और सम्मान देंगे जो कि एक औरस पुत्र को मिलता है।" राजा ने इस पर यह प्रतिज्ञा की कि शबरी से उत्पन्न पुत्र ही राजा होगा और उसका वचन असत्य नहीं होगा। दोनों का विवाह हो गया।

राजा सहकार नववधू को अपनी नगरी में ले आया और उसे एक अलग महल में रखा। रानी श्रियादेवी को जब इस बात का पता चला तो उसने बहुत विलाप किया। जब राजा ने उसके मुख से सुना कि "राजा ने मेरे साथ धोखा किया है, अन्याय किया है", तो उसने रानी से कहा, "मेरे पूर्वजन्म के दुष्कर्म ने मुझसे यह पाप करवाया है। तुम दुखी मत होओ। मैं तुम्हारे ही पुत्र को राज्य सौंपकर अलग रहूँगा।" रानी ने इस घटना को अपने ही कर्म का दोष मानकर, एक मुनिराज के सम्मुख दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। मुनिवर ने उसे समझाया कि, "अभी तुम्हारे अपने पुत्र को बड़ा हो जाने दो, उसके बाद ही दीक्षा लेना।" इधर राजा ने जिनदत्त को युवराज पद दे दिया। रानी ने भी ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया।

अब राजा समस्त राजकार्य भुलाकर शबरी रानी के साथ जलक्रीड़ा, वनक्रीड़ा आदि नाना क्रीड़ाएँ करते हुए शबरी-महल में ही अपना सारा समय बिताने लगा। वह केवल भोजन करने के लिए अन्तःपुर में आता था। एक दिन उसे शबरी रानी के साथ शतरंज खेलते-खेलते संध्या हो गई और रात्रि का समय निकट आ गया। भोजन के लिए जब जाने लगा तो शबरी रानी ने उसे रोक लिया और अपने साथ ही भोजन करने का आग्रह करने लगी। जब राजा तैयार नहीं हुआ तो उसने राजा से उसका भोजन ही देखने के लिए कहा। उसे मद्य-मांस मिश्रित भोजन परोसा गया। शबरी ने सेवकों को विदा किया और राजा का आलिंगन कर उसे वह

भोजन खिलाने लगी। राजा ने उस दिन के बाद से भोजन के लिए अन्तःपुर में जाना भी छोड़ दिया।

एक दिन रसोइये को मांस नहीं मिला तो उसने शूली पर चढ़ाए गए एक व्यक्ति का मांस पकाकर राजा को परोस दिया। सहकार को वह रुचिकर लगा। उसके पूछने पर रसोइये ने डरते-डरते नरमांस की घटना राजा को सुना दी। क्षुब्ध न होकर राजा ने प्रतिदिन इसी प्रकार का मांस पकाकर परोसने का आदेश दे दिया। अब उस नगरी में जो भी नया व्यक्ति आता उसका वध कर, राजा को मांस खिलाया जाने लगा। इससे प्रजा में बड़ी खलबली मच गई, फुसफुसाहट बढ़ने लगी, असन्तोष फैलने लगा। उससे घबराकर रसोइये ने राजा से कहा कि "अब मैं नर-मांस जुटाने में असमर्थ हूँ। हाँ, यदि किसी व्यक्ति को आप हाथ में नीबू देकर मेरे पास भेजेंगे तो मैं उस व्यक्ति का मांस पका दिया करूँगा।" इस प्रकार राजा का नर-मांस भक्षण बढ़ता ही गया।

परिस्थिति को देखकर बुद्धिमान महामन्त्री ने राजा सहकार से जिनदत्त का राज्याभिषेक करने की अनुमति माँगी। राजा ने सहमति दे दी। शबरी रानी को जब यह समाचार मिला तो वह राजा सहकार पर विश्वासघात का आरोप लगाकर प्राण दे देने की धमकी देने लगी। राजा ने उसे बताया कि उसके पुत्र मारिदत्त को भी उसने अलग राज्य दे दिया है तो भी वह नहीं मानी। उसने राजा से कहा, "जिनदत्त आपके लिए भी घातक सिद्ध होगा।" उसने इस बात पर जोर दिया कि राजा के नर-मांस भक्षण से प्रजा असन्तुष्ट हो चुकी है और जिनदत्त के साथ मिलकर राज-विद्रोह करने वाली है। राजा को शबरी की यह बात जँच गई। दोनों ने मिलकर अन्त में यह योजना बनाई कि जिनदत्त को हाथ में नींबू देकर पाकशाला में भेजा जाए।

राजा सहकार और शबरी रानी की योजना के अनुसार, जिनदत्त को हाथ में नीबू देकर पाकशाला भेजा गया किन्तु रास्ते में उसे शबरी का पुत्र मारिदत्त मिल गया। उसने बड़े भाई से वह नीबू ले लिया और स्वयं ही पाकशाला में रसोइये को नीबू देने के लिए चला गया। राजा के आदेशानुसार रसोइये ने मारिदत्त का वध कर डाला और उसका माँस सहकार और शबरी के सामने परोस दिया।

राजा-रानी ने भोजन के समय मारिदत्त की अनुपस्थिति का कारण पूछा तो रसोइये ने नीबू लेकर आए मारिदत्त सम्बन्धी घटना उन्हें बता दी। सहकार और शबरी के क्रोध की सीमा नहीं रही। उन्होंने जिनदत्त के वध के लिए सेना को आदेश दे दिया। उधर श्रियादेवी ने जब यह संवाद सुना तो वह जिनदत्त के प्राणों की रक्षा के लिए चिन्तित हो उठी। दोनों माँ-बेटे, आचार्य सिद्धान्तकीर्ति के पास पहुँचे। गुरु ने जिनदत्त को परामर्श दिया कि, "तुम अश्वशाला के उस घोड़े पर, जो अपना दहिना पैर उठाकर खड़ा हो, सवार होकर दक्षिण दिशा की ओर तुरन्त चले जाओ। और हाँ, पद्मावती देवी की यह प्रतिमा भी साथ लेते जाओ। जब भी सेना तुम्हारा पीछा करे, उसे तुम यह मूर्ति दिखा देना, तुम्हारे सब कष्ट दूर हो जाएँगे।" जिनदत्त माता से उसी समय विदा लेकर अश्व पर वहाँ से भाग निकला। पीछा करती सेना को उसने जब पद्मावती की प्रतिमा दिखाई तो सेना के लोग मूर्च्छित हो गये और उसे पकड़ नहीं सके। जिनदत्त सुदूर दक्षिण में (आज के हुमचा तक) आ गया।

47. गेरुसोप्पा (जि० उत्तर कनारा)—चतुर्मुख बसदि में सर्वतोभद्र प्रतिमा।
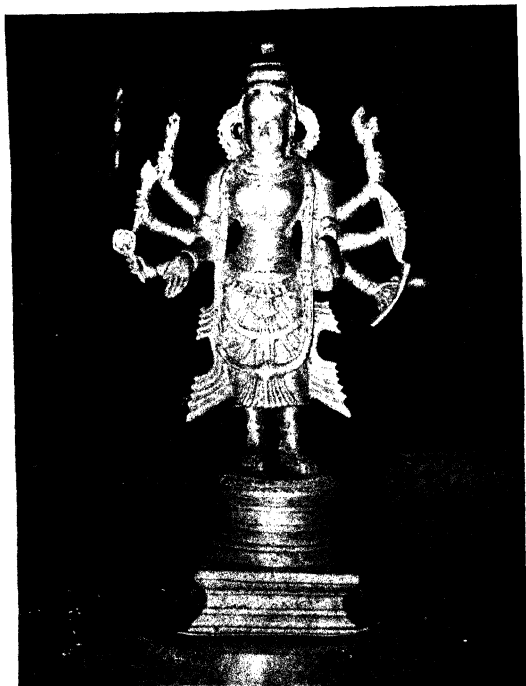
48. गेरुसोप्पा (जि० उत्तर कनारा)—ज्वालामालिनी बसदि में यक्षी ज्वालामालिनी की कांस्य मूर्ति; लगभग चौदहवीं शती।

49. गेरुसोप्पा (जि० उत्तर कनारा)—ज्वालामालिनी बसदि में एक चौबीसी; लगभग तेरहवीं शती।

50. हाडुवल्ली (जि० उत्तर कनारा)—चौबीसी बसदि में त्रिकाल-चौबीसी की कांस्य मूर्ति; लगभग पन्द्रहवीं शती।
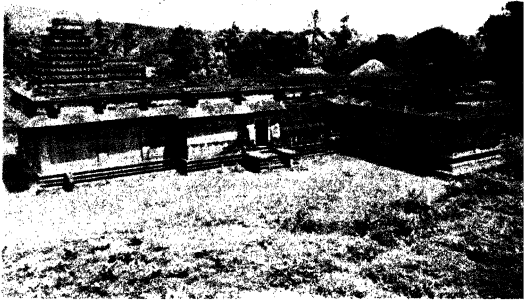
51. बीलगि (जि० उत्तर कनारा)—रत्नत्रय बसदि का बाह्य दृश्य; बेसर शैली के मन्दिर का उदाहरण।

52. मुंडबल (जि० उत्तर कनारा)—रत्नत्रय बसदि में तीर्थंकर आदिनाथ की अर्धपद्मासन मूर्ति; लगभग ग्यारहवीं शती।

53. गुंडबल (जि० उत्तर कनारा)—सूरम्थ बसदि में कायोत्सर्ग आसन में तीर्थंकर पार्श्वनाथ; लगभग दसवीं शती।

54. मनकी (जि० उत्तर कनारा)—शान्तिनाथ बसदि के समीप स्थित सात फीट ऊँचे स्तम्भ पर रामकथा के दृश्यों का अंकन।

55. हुमचा (जि० शिमोगा)—पार्श्वनाथ बसदि का सामने का दृश्य।
इसके पीछे शैलोत्कीर्ण शिल्प सातवीं शती का है!
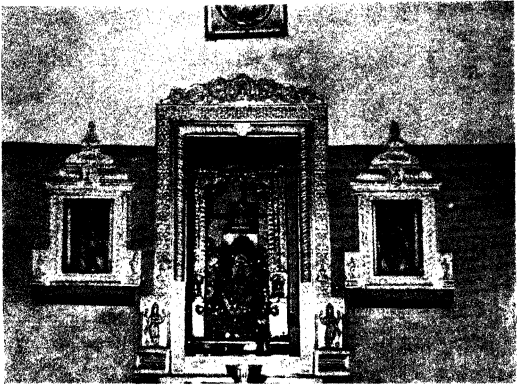
56. हुमचा (जि० शिमोगा)—पद्मावती बसदि : गर्भगृह में यक्षी पद्मावती की प्रसिद्ध मूर्ति ।

57. हुमचा (जि० शिमोगा)—बोगार बसदि में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की परिकर सहित आसीन मूर्ति; लगभग ग्यारहवीं शती ।

थका-माँदा जिनदत्त एक निर्गुण्डि (लक्की/लोक्कि) वृक्ष पर देवी की प्रतिमा लटकाकर गहरी निद्रा में सो गया। तभी स्वप्न में उसे पद्मावती का यह सन्देश सुनाई पड़ा : "जिनदत्त तुम अब यहीं बस जाओ, सेना तुम्हारी हो जाएगी, स्थानीय भील आदि तुम्हारी सहायता करेंगे। मेरी इस मूर्ति से यदि तुम लोहे का स्पर्श करा दोगे तो वह सोना बन जाएगा। अतः यहीं अपनी राजधानी बनाओ।" स्वप्न की दिव्यवाणी पर जिनदत्त को सहसा विश्वास नहीं हुआ। किन्तु जब वह मूर्ति को लेकर आगे बढ़ने का प्रयत्न करने लगा तो मूर्ति वृक्ष से हिली ही नहीं। अब उसे भविष्यवाणी पर विश्वास हो गया। इसी बीच शत्रु-सेना भी 'जिनदत्त की जय' 'पद्मावती की जय' करती हुई उससे मिल गई। स्थानीय आदिवासियों ने भी उसका स्वागत किया और सहयोग किया। इस प्रकार जिनदत्त ने मूर्ति के स्पर्श से प्राप्त सोने की सहायता से नई राजधानी का निर्माण किया, पद्मावती का एवं पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया और सुख से राज्य करने लगा। उसके गुरु सिद्धान्तकीर्ति और माता श्रियादेवी भी वहाँ आ गये। उसका विवाह भी दक्षिण मथुरा के पांड्य राजा की पुत्री पद्मिनी और इसी राजा के भाई वीर पांड्य की कन्या मनोराधिनी के साथ हो गया।

कालान्तर में अपने कुकृत्य के फलस्वरूप, उत्तर मथुरा का राजा सहकार और शबरी रानी भी काल को प्राप्त हुए। वहाँ की पीड़ित जनता ने जिनदत्त से शासन सँभालने की प्रार्थना की। जिनदत्त ने अपने एक पुत्र को वहाँ का शासन सौंप दिया। श्रियादेवी ने भी पति की मृत्यु के बाद आर्यिका की दीक्षा ले ली।

पोम्बुर्च्चपुर का शासन करते हुए जब जिनदत्त को अनेक वर्ष बीत गये, तब पद्मावती देवी ने उसकी परीक्षा लेनी चाही। देवी ने स्थानीय तालाब (मुत्तिन केरे—मोतियों के तालाब) में दो मोती उत्पन्न किये। उनमें से एक तो शुद्ध और निर्दोष था और दूसरा कम चमकदार तथा दोषपूर्ण। कर्मचारियों से जब ये मोती राजा को मिले तो उसने शुद्ध मोती अपनी पत्नी को दे दिया और सदोष मोती पद्मावती देवी को भेंट कर दिया। दूसरे दिन जब राजा पद्माम्बा के दर्शन करने गया तो वह ठगा-सा रह गया। देवी की नाक में उसकी पत्नी का शुद्ध मोतीवाला नकफूल चमक रहा था। सही स्थिति का पता चलने पर जिनदत्त को बहुत पश्चात्ताप हुआ और वह देवी के समक्ष गिड़गिड़ाने लगा। उसे यह दिव्यवाणी सुनाई दी, "जिनदत्त, इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है। इसमें दोष तो काल का है। तुम्हारे पिता ने भी स्त्री के मोह में पड़कर नर-माँस खाया और अपने पुत्र का अप्रत्यक्ष वध कराया। तुम भी अपनी पत्नी से विशेष आसक्त हो गये हो। तुम्हारी विपत्ति के समय वह कहाँ थी!" यह सुन जिनदत्त पश्चात्तापवश रुदन करने लगा। तब देवी ने फिर कहा, "जिनदत्त, मैं यहाँ नहीं ठहर सकती। मेरी पारसमूर्ति (जिसके स्पर्श से लोहे का सोना बन जाता था) अब रसवापी में उतर जायेगी। मेरी दूसरी पाषाण-मूर्ति स्थापित करो। वही तुम्हारी और भक्तों की रक्षा करेगी।"

उदास राजा के देवी से यह पूछने पर कि देवी का सान्निध्य कैसे प्राप्त होगा, दिव्य-वाणी सुनाई दी कि "जब तक (1) यह लोक्की वृक्ष नहीं सूखेगा, (2) यहाँ के सरोवर में पानी रहेगा, (3) कुमुदवती की धारा बहती रहेगी तथा (4) मेरी दाहिनी ओर से मनोकामना-पूर्ति की सूचक पुष्प-वृष्टि होती रहेगी, तब तक मेरा सान्निध्य बना रहेगा।"

जब पारस मूर्ति रसवापी में उतर गई तब जिनदत्त ने होलुवापी (क्षीरवापी) में तैरती पाषाण की पद्मावती देवी की मूर्ति प्रतिष्ठापित की। कुछ समय बाद उसने अपने पुत्र जयकीर्ति को राज्य देकर दैगम्बरी दीक्षा ले ली।

हुमचा की पंचबसदि के आँगन में 1077 ई. का जो शिलालेख है उससे ज्ञात होता है कि जिनदत्त ने सिंहरथ नाम के असुर को मारा था इसलिए जक्कियब्बे (देवी) प्रसन्न हुई और उसने जिनदत्त को सिंह का लांछन (चिह्न) दिया। अन्धकासुर नाम के असुर को मारकर उसने अन्धासुर नाम का नगर बसाया। कनकपुर में आकर उसने कनकासुर का वध किया तथा कुन्द के क़िले में रहनेवाले कर और करदूषण को भगा देने से पद्मावती देवी प्रसन्न हुई और प्रसन्न होकर उसने वहाँ (कनकपुर में) एक लोक्कि वृक्ष पर वास करना शुरू किया तथा लोक्कियब्बे का नाम धारण कर उसके लिए एक राजधानी के रूप में शहर बसा दिया।

जिनदत्त का समय लगभग 800 ई. अनुमानित किया जाता है। उसने सान्तालिगे-हजार प्रदेश पर अधिकार करके 'सान्तर राजवंश' की नींव डाली। उसके उत्तराधिकारी 1172 ई. तक जैन धर्म के आराधक बने रहे। स्वयं जिनदत्त ने 'जिनपादाराधक' (जिनेन्द्र के चरणों की पूजा करने वाला), 'पद्मावती-लब्धवरप्रसाद' आदि उपाधियाँ धारण की थीं। पद्मावती देवी उसकी कुलदेवी के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इस देवी की प्रतिष्ठा आज भी, लगभग 1300 वर्षों के बाद भी, वृद्धि पर ही है।

हुमचा का सान्तर राजवंश : परिचय शिलालेखों से

जैन धर्मावलम्बी जिनदत्तराय द्वारा इस स्थान पर जिस सान्तर राजवंश की स्थापना 800 ई. के लगभग की गई थी, उस वंश ने लगभग 400 वर्षों तक राज्य किया। जैन धर्म की प्रगति के लिए, उसे एक सुदृढ़ आधार देने के लिए, जिनमन्दिरों आदि के निर्माण में वह अपने द्रव्य का सदुपयोग करता रहा। अन्तिम वर्षों में इनकी राजधानी कारकल हो गई थी। अन्तिम नरेश भी वीरशैव हो गया था। यहाँ संक्षेप में, इस वंश द्वारा निर्मित जिनालयों का परिचय दिया जा रहा है—

यहाँ की प्राचीनतम जैन बसदि का नाम 'पालियक्क' था और उसका निर्माण 878 ई. के लगभग हुआ था। पार्श्वनाथ बसदि की पश्चिमी दीवाल पर उत्कीर्ण शिलालेख में उल्लेख है कि तोलापुरुष विक्रम सान्तर की पत्नी पालियक्क ने यह बसदि अपनी माता की स्मृति में 'पाषाण बसदि' के रूप में बनवाई थी (सम्भवतः पहले काष्ठ के मन्दिर बनते थे)। एक अन्य लेख में उल्लेख है कि 897 ई. में इसी विक्रम नरेश ने मौनिसिद्धान्त भट्टारक के लिए एक 'पाषाण बसदि' बनवाई थी। इस राजा ने 'दानविनोद' आदि उपाधियाँ धारण की थीं। यह लेख 'गुड्डद बसदि' की बाहरी दीवाल पर है।

इसी स्थान की 'सूळे' (सूळे—वेश्या) बसदि के सामने के पाषाण पर 1062 ई. के शिलालेख में उल्लेख है कि जिनपादाराधक त्रैलोक्यमल्ल वीर सान्तरदेव सान्तलिगे के राज्य-काल में 'पट्टणसामि जिनालय' को मोलकेरे गाँव दान में मिला था। दानी पट्टणसामि सेट्टि ने प्रतिमा को रत्नों से मढ़ दिया था। उसके पास सोना, चाँदी, मूंगा आदि रत्नों की एवं

पंचधातु की प्रतिमाएँ थीं। पार्श्व बसदि के मुखमंडप के दक्षिण स्तम्भ पर 1062 ई. का ही एक लेख है जिसके अनुसार इस राजा ने अपने नगर में बहुत-से जिनमन्दिर बनवाये थे। उसकी पत्नी ने नोकियब्बे बसदि के सामने मकर-तोरण और बल्लिगावि में चागेश्वर नाम का मन्दिर बनवाया था और वह दानवती के रूप में प्रसिद्ध हुई थी।

चन्द्रप्रभ बसदि की बाहरी दीवाल पर शिलालेख में उल्लेख है कि भुजबल सान्तरदेव शान्तलिगे ने अपनी राजधानी पोम्बुर्च्च में 'भुजबल सान्तर जिनालय' के लिए 1065 ई. में अपने गुरु कनकनन्दी को हरवरि ग्राम दान में दिया था।

'सूळेबसदि' के सामने मानस्तम्भ पर 1077 ई. का ही यह शिलालेख है कि वीर सान्तर के ज्येष्ठ पुत्र तैलपदेव ने, जो भुजबल सान्तर के नाम से भी प्रसिद्ध था, पट्टणसामि द्वारा निर्मित तीर्थ बसदि के लिए बीजकन् वयल् का धन दिया था।

पंचबसदि के आँगन के एक पाषाण पर 1077 ई. का एक बहुत बड़ा शिलालेख है जिसमें इस वंश की वंशावली दी है। उसमें उल्लेख है कि जब नन्निसान्तर राज्य कर रहा था, तब उसकी मौसी चट्टलदेवी आदि ने पंचकूट बसदि का निर्माण प्रारम्भ कराया। उसकी नींव पण्डित श्रेयांस ने रखी थी। इस अवसर पर अनेक प्रकार के दान दिये गए थे। यह बसदि 'उर्वीतिलक' भी कहलाती है।

उपर्युक्त नरेश के अनुज ने 1087 ई. में 'पंचकूट बसदि' के लिए अपने गुरु वादीभसिंह को दान भेंट दी थी। 'क्षत्रचूडामणि' और 'गद्यचिन्तामणि' नामक ग्रन्थ इन्हीं की रचनाएँ हैं।

सन् 1103 में चट्टलदेवी की प्रेरणा से 'पव बसदि' के सामने एक और बसदि की नींव रखी गई थी। इस धर्मपरायणा महिला की तुलना चेलना, सीता आदि प्रसिद्ध महिलाओं से की गयी है। वह पल्लवनरेश कडुवेट्टि की रानी थी किन्तु शायद वैधव्य के कारण अपने सान्तर परिवार में वापस आ गई थी।

विक्रम सान्तर द्वितीय ने 1147 ई. में अपनी बहिन पंपादेवी के सहयोग से पंचबसदि में उत्तरीय पट्टशाला का निर्माण कराया था। यह शिलालेख हुमचा में तोरण बागिल के उत्तर की ओर के स्तम्भ पर है। उसमें लिखा है कि पोम्बुर्च्च के सान्तर राजा श्रीवल्लभ अपर नाम विक्रम सान्तर की बड़ी बहिन पंपादेवी बड़ी जिनभक्त थी। उसने एक ही महीने में उर्वी-तिलक बसदि के साथ-साथ शासन-देवता स्थापित कराया था। पंपादेवी से अत्तिमब्बे के समान उदार बाचलदेवी का जन्म हुआ। इस जिनभक्ता ने पोन्न के 'शान्तिपुराण' की एक हज़ार प्रतियाँ अपने खर्च से लिखवाईं और सोने तथा रत्नों की 1500 जिन-प्रतिमाएँ बनवाई थीं। लेख के अनुसार पंपादेवी, श्रीवल्लभ तथा बाचलदेवी ने 'पंच बसदि' की उत्तरीय पट्टशाला बनवाकर वासुपूज्य सिद्धान्तदेव के पाद-प्रक्षालनपूर्वक दान दिया था।

पद्मावती मन्दिर के प्रांगण में दाएँ हाथ के स्तम्भ पर 1268 ई. के लेख में कहा गया है कि धनिक जकप के पुत्रों ने बहुशोभायुक्त चट्टला-मण्डप बनवाया और लिखवाया कि 'जैन शासन चिरकाल तक बढ़े। इसका प्रचार करने वालों में सद्धर्म, बल, आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य की अभिवृद्धि हो।'

आचार्य-परम्परा

जैन आचार्यों की परम्परा की दृष्टि से भी यहाँ के शिलालेख बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। तोरण बागिल के दक्षिणी स्तम्भ पर 1077 ई. के एक शिलालेख से यह परम्परा जानकारी के लिए उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जाती है : वर्धमान स्वामी के तीर्थ में गौतम गणधर हुए। उनके पश्चात् बहुत से त्रिकालज्ञ मुनियों के होने के बाद, क्रमशः कोण्डकुन्दाचार्य, श्रुत-केवली भद्रबाहु, बहुत से आचार्यों के व्यतीत होने के बाद समन्तभद्र स्वामी, सिंहनंद्याचार्य, अकलंकदेव, कनकसेनदेव (जो वादिराज नाम से भी प्रसिद्ध थे), ओडेयदेव (श्री विजयदेव), दयापाल, पुष्पसेन, सिद्धान्तदेव, वादिराजदेव ('षट्-तर्कषण्मुख' तथा 'जगदेकमल्ल-वादि' नाम से भी प्रसिद्ध), कमलभद्रदेव, अजितसेनदेव हुए। अजितसेनदेव के सहधर्मी शब्द-चतुर्मुख तार्किक-चक्रवर्ती वादीभसिंह हुए। उनके बाद कुमारसेनदेव मुनीन्द्र और उनके बाद श्रेयांसदेव —यहाँ नामावली समाप्त होती है।

जैन मठ

यहाँ का जैन मठ अत्यन्त प्राचीन है। मठ के सभी भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति कहलाते हैं। यह संस्था ही इस क्षेत्र की रक्षा और संवर्धना करती रहती है। मठ की स्थापना कुन्दकुन्दान्वय के नन्दिसंघ (मूलसंघ ?) द्वारा की गई थी। इसके प्रमुख आचार्य हैं—आचार्य समन्तभद्र, विद्यानन्दि, विशालकीर्ति और मुनि नेमिचन्द्र।

जैन मठ के वर्तमान भट्टारक हैं स्वस्तिश्री पट्टाचार्य देवेन्द्रकीर्ति स्वामीजी। वे एक युवा भट्टारक हैं। उन्होंने गणित में बी-एस. सी. और दर्शनशास्त्र में एम. ए. उपाधियाँ प्राप्त की हैं। उनका पट्टाभिषेक 1971 ई. में हुआ था। थोड़े ही समय में उनकी प्रेरणा से यहाँ महावीर भवन, देवेन्द्र भवन, कुन्दकुन्द विद्यापीठ भवन, भोजनालय, डाक-तार भवन, सिद्धान्त भवन, चित्रभवन, पद्मय्या भवन, चाँदी का रथ, मठ का जीर्णोद्धार आदि निर्माण-कार्य सम्पन्न हुए हैं। भगवान पार्श्वनाथ की 21 फीट ऊँची संगमरमर की प्रतिमा भी आपकी प्रेरणा का फल है। भट्टारकजी ने अनेक देशों में जैन धर्म का प्रतिनिधित्व किया है। वे आठ-दस बार विदेश-यात्रा कर चुके हैं। अँग्रेजी पर आपका अच्छा अधिकार है।

जैन मठ के अधीन 36 मन्दिर हैं। पाँच तीर्थों—हुमचा, वरंग, कुन्दाद्रि, कारकल आदि का संचालन यहीं से होता है।

क्षेत्र-दर्शन

इस अतिशय-क्षेत्र का दर्शन यदि एक क्रम से किया जाए तो उचित होगा। यहाँ क्रमबद्ध यात्रा कराने का प्रयत्न किया जाएगा।

हुमचा क्षेत्र के परिसर में प्रवेश करते ही 'महावीर भवन' नाम का एक दो-मंजिला आधुनिक भवन है। उसके चारों ओर छतरी में तथा छज्जे में भी बाहुबली हैं। यहाँ के हॉल में पाण्डुक शिला पर, कमलासन पर, भगवान महावीर की चार फीट ऊँची प्रतिमा है। इस भवन में हिन्दी, अँग्रेजी, मराठी, तमिल और कन्नड ग्रन्थों का संग्रह किया जा रहा है। यहाँ

लगभग 1500 ताडपत्रीय ग्रन्थ हैं। वरंग मठ में भी इस प्रकार के शास्त्र हैं। इस भवन में प्रवचन की भी व्यवस्था है। इस भवन के पीछे पद्माम्बा ट्रस्ट मैसूर का दो-मंजिला भवन है जहाँ रथोत्सव के समय यात्रियों को 6 दिन तक निःशुल्क ठहरने और भोजन की व्यवस्था की जाती है।

उपर्युक्त भवन के पास ही 'रथ-घर' है। उसमें सुन्दर ढंग से उत्कीर्ण लगभग 15 फीट ऊँचा लकड़ी का रथ है। चाँदी का करीब दस फीट ऊँचा एक और रथ भी यहाँ है।

उपर्युक्त रथों का प्रयोग रथोत्सव के समय किया जाता है। यह उत्सव मूल नक्षत्र (मार्च मास) में 6 दिनों तक होता है। इस समय पद्मावती देवी का जुलूस 6 दिनों तक पूरे गाँव में निकाला जाता है। देवी के वाहन इस प्रकार होते हैं—एक दिन सिंहवाहन, दूसरे दिन सर्पवाहन, गजवाहन और विसर्जन के दिन चाँदी की पालकी। इस उत्सव के अवसर पर साहित्य सम्मेलन, धर्म सम्मेलन आदि आयोजित किये जाते हैं। उत्सव में लगभग दस हज़ार जैन-अजैन भाग लेते हैं।

लक्की मरा—पद्मावती मन्दिर के पीछे, यहाँ एक 'लक्की मरा' है। 'लक्की' वृक्ष का नाम है। इसे संस्कृत में निर्गुण्डि कहते हैं। कन्नड़ में 'मरा' का अर्थ होता है वृक्ष। लक्की वृक्ष को 'करि लक्की' भी कहते हैं। बताया जाता है कि यह कभी नहीं सूखता, सदा हरा-भरा रहता है। इसकी जड़ पद्मावती देवी की प्रतिमा के आसन के नीचे बताई जाती है। यह चारों ओर से कुछ ऊँची पक्की दीवाल से घिरा हुआ है। इसके तीन ओर अंकन है। एक नागफलक है। घोड़े पर जिनदत्तराय अंकित हैं। पद्मावती एवं पार्श्वनाथ भी अंकित हैं। भक्त लोग इस वृक्ष की पूजा करते हैं और नीचे गिरी पत्तियाँ ले जाते हैं। सर्प-दंश के लिए भी इसकी मन्त्रित पत्तियों का उपयोग किया जाता है।

मक्कल बसदि (मक्कल—बालक)—इस नाम का एक छोटा-सा मन्दिर यहाँ की धर्मशाला में है। शिलानिर्मित इस मंदिर में चार फीट ऊँची पार्श्वनाथ की सातफणों से युक्त प्रतिमा है। यक्ष-यक्षी एवं मस्तक से ऊपर तक चँवरधारी भी अंकित हैं। बाहर एक कुलिका में क्षेत्रपाल भी हैं।

पुरानी धर्मशाला एक-मंजिला है। उसमें तीस कमरे हैं, बिजली-पानी की व्यवस्था है। कुछ बड़े कमरों में पूरी बस के यात्रियों के लिए भी प्रबंध किया जाता है। यहीं पास में विशिष्ट व्यक्तियों के लिए अतिथिगृह भी है। इसी के पीछे पद्माम्बा प्रौढ-शाला है जिसमें सातवीं से ग्यारहवीं तक की कक्षाएँ लगती हैं।

एक नई धर्मशाला पुरानी धर्मशाला के पीछे बनाई गई है। वह तीन-मंज़िल है। उसमें स्नानागार युक्त 36 कमरे हैं। इस धर्मशाला में चार बिस्तरों वाले स्नानागारयुक्त चार बड़े कमरे भी हैं। यह धर्मशाला मठ से लगी हुई है। नई धर्मशाला और पार्श्वनाथ बसदि के बीच में पत्थर-जड़ा विशाल प्रांगण है। उसके बाद ही होम्बुज जैन मठ है। इस प्राचीन विशाल मठ में 18 इंच मोटे लकड़ी के स्तम्भ हैं, जिनके ऊपरी भाग में सूक्ष्म नक्काशी है। छत भी लकड़ी की है। मठ में ऊपर भट्टारक-निवास है और नीचे की मंज़िल में मठ का कार्यालय। मठ में ही एक विशाल भोजनशाला है जिसमें सौ-दो सौ व्यक्ति एक साथ भोजन कर सकते हैं।

यहाँ यात्रियों को निःशुल्क भोजन कराया जाता है। यात्री भंडार में दान दे देते हैं। ठहरने की व्यवस्था भी निःशुल्क है। मठ की गौशाला और खेती भी है।

मठ के बीचोंबीच नेमिनाथ मन्दिर है। प्रतिमा श्वेत संगमरमर की पद्मासन में है। प्रवेश-द्वार पर लगभग 5 फीट ऊँचे काष्ठ-निर्मित द्वारपाल हैं। इसी प्रकार मन्दिर के प्रवेशद्वार पर काष्ठ के ही पाँच फीट ऊँचे यक्ष-यक्षी भी हैं। यहाँ 10वीं से 16वीं शताब्दी की प्रतिमाएँ पार्श्वनाथ आदि तीर्थंकरों की तथा अष्टधातु की पद्मावती एवं सरस्वती की मूर्तियाँ भी हैं। इस बसदि में एक फुट ऊँची अष्टधातु की चन्द्रप्रभ की खड्गासन प्रतिमा भी है।

'सिद्धान्त बसदि' में कुछ दर्शनीय विशेष प्रतिमाएँ भी हैं जिनके दर्शन की अलग से व्यवस्था है।

तीर्थयात्री जब इस क्षेत्र के अहाते में प्रवेश करता है तो उसे एक बड़ा आहाता दिखाई पड़ता है। सामने लम्बी-लम्बी अनेक सीढ़ियाँ तथा मानस्तम्भ दिखाई देते हैं। इसी अहाते में हैं 'पार्श्वनाथ बसदि' और 'पद्मावती मन्दिर'। एक ही आँगन में तीर्थंकर और यक्षिणी के अलग-अलग मन्दिर यात्रियों को सबसे अधिक आकृष्ट करते हैं। यहाँ प्रायः मेला लगा रहता है। विशेषकर दक्षिण भारत के जैन-जैनेतरों का यहाँ ताँता लगा रहता है। लोग बसों, कारों में भरकर आते हैं और पूजन-मनौती आदि के बाद अपने स्थानों को लौट जाते हैं। यहाँ उत्तर भारत के महावीरजी और अतिशय क्षेत्र तिजारा जैसा वातावरण उप-स्थित होता है। वैसे यहाँ पाँच-छह जैन परिवार ही हैं, उनकी स्थिति अच्छी नहीं है, वे कृषि पर निर्भर करते हैं। किन्तु यात्रियों के कारण क्षेत्र में विशेष चहल-पहल रहती है।

पार्श्व बसदि-- यह इस स्थान का सम्भवतः सबसे प्राचीन मन्दिर (चित्र क्र. 55) है। यह कहा जा चुका है कि यहाँ ईस्वी सन् 950, 1062 तथा 1256 के शिलालेख हैं। मन्दिर दो-मंज़िला है। ऊपर की मंज़िल में तीर्थंकर अनन्तनाथ और पार्श्वनाथ की तीन मूर्तियाँ हैं। इसके स्तम्भ और तोरण ग्रेनाइट पाषाण के हैं। गर्भगृह में बीच में पार्श्वनाथ की प्रतिमा लगभग पाँच फीट ऊँची है, उस पर छत्रत्रयी सप्तफणावली और मस्तक से ऊपर तक चँवरधारी हैं। पार्श्वनाथ प्रतिमा के आसपास (दोनों ओर) अन्य तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। गर्भगृह से आगे, कुछ बड़े मण्डप के प्रवेशद्वार के एक ओर कांस्य का नन्दीश्वरद्वीप है जिसकी चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में तीर्थंकर-प्रतिमाएँ प्रदर्शित हैं। दूसरी ओर कीर्तिमुख सहित स्तम्भयुक्त चाप के नीचे पद्मासन में लगभग चार फीट ऊँची पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। चित्रण छत्रत्रयी और सप्तफण सहित है। इन दोनों के पास अर्थात् मण्डप के दाएँ और बाएँ छोर पर कमलासन पर लगभग सात फीट ऊँची काले पाषाण की पार्श्वनाथ की, सम्भवतः सातवीं सदी की, बहुत मनोहारी प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है। उनके दोनों ओर कमठ के उपसर्ग के दृश्य उत्कीर्ण हैं। मूर्ति पर छत्र एक ही है और सातफणों की छाया है। एक ओर कमठ उपसर्ग कर रहा है और दूसरी ओर उसकी पत्नी। सबसे ऊपर कमठ को भगवान पर शिला फेंकते हुए दिखाया गया है तो उसकी पत्नी को छुरिका जैसी वस्तु लिये हुए। उसके नीचे कमठ तीर-कमान का प्रयोग कर रहा है तो उसकी पत्नी के हाथ में तलवार है। उससे भी नीचे इन्होंने सिंह का रूप धारण किया और सिंह के नीचे दोनों ने प्रमत्त हाथी का रूप धारण किया है। भगवान पर कमठ ने घनघोर

वर्षा और ओलों की वृष्टि भी की थी। भयंकर वर्षा के कारण जब भगवान का शरीर नाक से से भी ऊपर तक पानी में डूबने को हुआ, तब धरणेन्द्र और पद्मावती का आसन कम्पायमान हुआ। अपने पूर्वजन्म (नाग-नागिन) के रक्षक पार्श्वनाथ पर उपसर्ग जान वे तुरन्त दौड़े आए। धरणेन्द्र ने भगवान पर फणों की छाया की और पद्मावती ने छत्र से पार्श्वनाथ को ढक लिया। इस फण और छत्र का चित्रण भी इसी प्रतिमा के साथ है। जब कमठ और उसकी पत्नी को अपने उपसर्ग बेकार जाते दिखे तो उन्हें ज्ञान हुआ कि वे तीर्थंकर पर उपसर्ग करके घोर पाप कर रहे हैं। वे पछताए और हाथ जोड़कर उन्होंने भगवान से क्षमा माँगी। उन्हें यहाँ क्षमा माँगते हुए और भक्तिपूर्वक नमन करते चित्रित किया गया है। पार्श्वनाथ की मूर्ति के साथ इस प्रकार का अंकन बहुत ही कम मिलता है। यही कारण है कि यह अंकन दर्शक को याद रहता है। यहीं पर ग्यारहवीं सदी की अम्बिका या कूष्माण्डिनी देवी (नेमिनाथ की यक्षी) की मूर्ति भी लगभग तीन फीट ऊँची है। प्रदक्षिणा-पथ में सिंह का खंडित अंकन भी प्राचीन जान पड़ता है। पार्श्वनाथ-प्रतिमा से आगे के मण्डप में लकड़ी के 6 फीट ऊँचे दो द्वारपाल दोनों ओर हैं। पंचशाखा प्रकार का सुन्दर द्वार भी है। मन्दिर ऊँचे चबूतरे पर है। प्रवेश के लिए सीढ़ियाँ हैं और मन्दिर के सामने बलिपीठ है। पार्श्वनाथ बसदि के प्रांगण में बहुत-से स्मारक-पाषाण और उत्कीर्ण प्रस्तर-खण्ड आदि पड़े हुए हैं। इसी मन्दिर के बाजू में ऋषिमण्डल यन्त्र और कलिकुण्ड यन्त्र हैं। कलिकुण्ड यन्त्र में 8 बीजाक्षर हैं—ह, भ, म, र, घ, झ, स और ख। ये अष्ट मन्त्राक्षर आठ कर्मों का नाश करते हैं। मन्दिर के सामने मानस्तम्भ भी है।

पद्मावती मन्दिर—पार्श्व बसदि से लगभग सटा पद्मावती मन्दिर है। यह 'पद्मावती गुडि' या 'अम्मनवर बसदि' भी कहलाता है। पद्मावती के इस मन्दिर के सामने लगभग 50 फीट ऊँचा एक बहुत प्राचीन मानस्तंभ है। इसमें ऊपर यक्ष और नीचे तीर्थंकर मूर्ति है। इसका तथा मन्दिर का जीर्णोद्धार भी हो चुका है। उसके गर्भगृह में पार्श्वनाथ की यक्षी पद्मावती की भव्य प्रतिमा है (देखें चित्र क्र. 56)। देवी के हाथों में अंकुश, पाश और पुस्तक हैं तथा चौथा हाथ अभयमुद्रा में है। वे ललितासन में हैं। सवा फीट ऊँची यह प्रतिमा ग्यारहवीं सदी की है। प्रतिमा के उत्कीर्णन में देवी की क्षीण कटि ध्यान देने योग्य है। यक्षिणी के मुकुट पर संबंधित तीर्थंकर की पद्मासन मूर्ति होती है किन्तु यहाँ देवी के मस्तक के ऊपर संगमरमर की पार्श्व-नाथ की मूर्ति है जिस पर सात फणों की छाया है। ऊँ कीर्तिमुख के रूप में है। चाँदी के फ्रेम की कुलिका के ऊपर पार्श्वनाथ विराजमान हैं। स्वस्तिक और शिखर भी है। मकरतोरण की भी संयोजना है। पद्मावती पारम्परिक वेशभूषा में मुकुट, स्वर्ण-आभूषणों से मण्डित है। यह मूर्ति 'उत्सव मूर्ति' कहलाती है। गर्भगृह के द्वार की चौखट चाँदी की है। उसके सिरदल पर पद्मासन में पार्श्वनाथ और यक्ष-यक्षी हैं। गर्भगृह में प्रवेश से पहले के हॉल में, दोनों तरफ आलों में, दो और सुन्दर पद्मावती प्रतिमाएँ हैं। इसी सभामण्डप में भक्तों की भीड़ जमा होती है। इस सभामण्डप से पहले काफी बड़ा एवं खुला मण्डप है। अन्दर जाने से पहले भीतरी सभामण्डप की बाहरी दीवाल के पास लगभग 6 फीट ऊँची एक-एक द्वारपालिका दोनों ओर हैं। उन पर कीर्तिमुख हैं तथा दोनों ओर वादक-वृन्द का सुन्दर उत्कीर्णन है। पाषाण-निर्मित इस मन्दिर के सामने एक ध्वजस्तम्भ भी है।

सन्ध्या के समय पद्मावती मन्दिर में नगाड़ों, घण्टों की ध्वनि के साथ देवी की आरती होती है। फिर देवी की प्रतिमा का, बाहर लाकर गाजे-बाजे सहित पालकी में जुलूस निकाला जाता है, वापसी में पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रदक्षिणा की जाती है। मन्दिर में भी आरती की जाती है और नारियल, केला आदि फलों से पूजा की जाती है।

पद्मावती देवी मुख्य रूप से स्त्रियों की आराध्य देवी है। कर्नाटक में ऐसी स्त्रियाँ कम ही होंगी जो देवी की मनौतियाँ नहीं मानती हों, साड़ी, आभूषण आदि भेंट कर दर्शन नहीं करती हों। लोगों का यह अटूट विश्वास है कि देवी की प्रसन्नता से मनोकामना पूरी होती है। नारियल, फूल आदि श्रद्धापूर्वक चढ़ाने पर यदि देवी के दाहिनी ओर से फूल गिरे तो मनोकामना पूरी होगी ऐसा माना जाता है। हर शुक्रवार को देवी को विशेष रूप से अलंकृत किया जाता है और विशेष पूजन होती है। देवी के पूजन के लिए यह दिन शुभ माना जाता है।

पंचकूट बसदि या पंचबसदि—यह यहाँ का प्राचीन मन्दिर है जो कि धर्मशाला क्षेत्र से आगे है। पाँच गर्भगृह वाला या पाँच मन्दिरों का समूह यह मन्दिर 10वीं या 11वीं शताब्दी का अनुमानित किया जाता है। यह पाषाण निर्मित है। इस समय यह भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में है। इसके पाँच गर्भगृहों में क्रमशः चन्द्रप्रभ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी और ऋषभनाथ की लगभग चार फीट ऊँची प्रतिमाएँ हैं। पद्मावती की दो प्राचीन मूर्तियाँ भी हैं। प्रवेशद्वार के एक ओर धरणेन्द्र की और दूसरी ओर पद्मावती की मूर्तियाँ हैं जो लगभग नौ फीट ऊँची हैं। नवरंग में सरस्वती और सिद्ध भगवान की पद्मासन प्रतिमाएँ भी हैं। इसके द्वार का अंकन सुन्दर है। सिरदल पर दोनों ओर चँवरधारियों सहित पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति भी देखी जा सकती है।

उपर्युक्त बसदि का मुखमण्डप खुला एवं स्तम्भाधारित है। सोपान-जँगले पर सुन्दर हाथी और सिंह उत्कीर्ण हैं। मन्दिर की चौकी की ऊँचाई लगभग 6 फीट है। लम्बाई-चौड़ाई 80 फीट × 40 फीट के लगभग होगी। मन्दिर के सामने बलिपीठ चार स्तम्भों से आवृत है। उसके सामने एक सोपान-जँगले में ऊपर गजलक्ष्मी, मकर-तोरण और कीर्तिमुख हैं। दो स्तम्भों पर लेख हैं। मन्दिर के सामने एक चतुर्मुख ब्रह्मदेव स्तम्भ है। नीचे के भाग में संगीत मण्डली, पालकी में राजा-रानी, राजा का जुलूस उत्कीर्ण हैं। हाथी और व्याल भी प्रदर्शित हैं। एक द्वारपाल लगभग 9 फीट ऊँचाई का है। मन्दिर पर शिखर नहीं है। छत चौरस पाषाण की है। मन्दिर के अहाते में एक त्रिकोण पाषाण में देवनृत्य का दृश्य अंकित है। यहाँ स्मारक-पाषाण भी है।

उपर्युक्त मन्दिर के अहाते में एक छोटा पार्श्वनाथ मन्दिर भी है। उस पर भी शिखर नहीं है, छत ढलुआ है। सिरदल पर तीर्थंकर और कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ की मकर-तोरणयुक्त मूर्ति है। उसके पीछे के भाग में कलश आदि उत्कीर्ण हैं।

यहीं, पंचबसदि की सीमा में ही, चन्द्रप्रभ का छोटा मन्दिर भी है।

मुत्तिन केरे (मोती का तालाब)—यह उपर्युक्त प्राचीन मन्दिर से थोड़ी ही दूरी पर है। यह 1300 वर्ष पुराना है। एक किलोमीटर के लगभग लम्बा है। चौड़ाई कहीं कम है तो कहीं ज्यादा। इसमें जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं। यह बहुत गहरा है और पानी की कितनी ही कमी

क्यों न हो जाए, यह कभी सूखता नहीं। बरसात में पानी ऊपर तक आ जाता है। इसमें कमल के फूल खिले रहते हैं। अपनी अविच्छिन्न जलाशयता के कारण यह तालाब अतिशययुक्त माना जाता है।

पंचबसदि के पास से ही एक पगडण्डी मठ के नारियल के खेतों तक जाती है। वहीं कुछ दूरी पर एक स्थान है जहाँ किसी समय 'सान्तर राजाओं का महल' था। यह महल लकड़ी का था जो जलकर भस्म हो गया। इसका प्रमाण भी मिलता है। यदि इस स्थान की मिट्टी खोदी जाए तो अनाज जले चावल (Carbonised rice) आज भी प्राप्त होता है। स्कूल बनाते समय यहाँ से कुछ मूर्तियाँ भी निकली थीं।

कुन्दकुन्द विद्यापीठ

उपर्युक्त स्थान के पास की पहाड़ी पर एक दो-मंजिला कुन्दकुन्द विद्यापीठ है। यहाँ लगभग सौ विद्यार्थियों को मैट्रिक तक की शिक्षा, धार्मिक शिक्षा के साथ ही, दी जाती है।

विद्यापीठ के पीछे सन् 978 ई. में विक्रम सान्तर द्वारा बनवाई गई विशाल बाहुबली बसदि थी जिसकी अब केवल चौकी ही शेष रह गई है। मन्दिर के विभिन्न भागों का एक ढेर पत्थरों के ढेर के रूप में पड़ा है।

उपर्युक्त मन्दिर में बाहुबली की कुछ जीर्ण प्रतिमा लगभग पाँच फीट की है जो कि विद्यापीठ के हाल में रखी हुई है। वह उलटे कमलासन पर विराजमान है, छत्र एक ही है। बाहुबली के सिर पर जटाएँ प्रदर्शित हैं जो तीन लटों के रूप में, दोनों कन्धों तक आई हैं। लताएँ पैरों पर ही हैं, हाथों पर नहीं। बाँबी भी नहीं हैं। उत्कीर्ण भामण्डल चापाकार है।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ की नवनिर्मित विशाल मूर्ति—विद्यापीठ के पीछे पहाड़ी थी। उसे समतल कराया गया है। इस प्रकार प्रायः खुले प्रांगण में जयपुर में निर्मित 23 फीट ऊँची नीले संगमरमर की मूर्ति खुले आकाश के नीचे स्थापित की गई है। उस पर सर्प का लांछन है। सर्प-कुण्डली पैरों तक आई है। आर. सी. सी. की चौकोर चौकी पर, जिसके ऊपर के भाग में संगमरमर लगा है, यह मूर्ति स्थापित है। पाषाण-फलक जँघाओं तक आया है। इतनी विशाल मूर्ति के लिए और कोई आधार (Support) नहीं है। यह प्रतिमा नवनिर्मित है।

कुमुदवती तीर्थ—यह जैन तीर्थ माना जाता है। बिल्लेश्वर गाँव के पास स्थित इस तीर्थ के लिए एक रास्ता पार्श्वनाथ की नवीन प्रतिमा के पास से और दूसरा रास्ता मठ के पीछे से भी दो पगडंडियों के रूप में है। यहाँ एक चौकोर कुण्ड है जो जमीन से लगभग 10 फीट नीचा है। इसके चारों ओर सीढ़ियाँ बनी हैं। बीच में हाथी की आकृति और ऊपर की पाषाण-रचना में पुष्प उत्कीर्ण हैं। यहाँ एक प्रणाली से पानी की स्वच्छ शीतल धारा सदा ही कुण्ड में गिरती रहती है। यही कुमुदवती नदी का उद्गम स्थान है। यह धारा कहाँ से आती है यह ज्ञात नहीं हो सका। वैसे इसके ऊपर की पहाड़ी मिट्टी की है। नदी के उद्गम के कारण भी इसे तीर्थ कहते हैं। जैन-जैनेतर सभी इसे मानते हैं। जिन-प्रतिमाओं के अभिषेक के लिए यहाँ से प्रतिदिन हाथी पर रखकर जल लाया जाता है। गाँव के लोग भी यहाँ से पानी ले जाते हैं। यहाँ एक टीले पर नागफलक है। एक छोटे फलक पर नाग आपस में गुँथे हुए हैं। फलक के

नीचे बकरी का चिह्न है। अनुमान है कि यहाँ कोई मन्दिर रहा होगा। शिलाएँ पड़ी हैं और जगती के समान रचना दिखाई देती है। समीप में ही एक छोटा तालाब है।

गुड्डद बसदि—गुड्डद का अर्थ है पहाड़ी। सन् 897 ई. के एक शिलालेख में इसका उल्लेख है। यहाँ किसी समय भगवान बाहुबली की प्रतिमा थी। अब मन्दिर नष्ट हो गया है।

सूळे बसदि—कन्नड में 'सूळे' का अर्थ है वेश्या। सम्भवतः किसी वेश्या ने यह मन्दिर बनवाया था। इसके सामने दो शिलालेख हैं। यह एक छोटा-सा एक-मन्दिर है, उस पर शिखर नहीं है। यहाँ महावीर स्वामी की पाँच सिंह के आसन पर पद्मासन मूर्ति है, उसके छत्र टूट गए हैं, चँवरधारी हैं। मूर्ति की पूजन नहीं होती। मन्दिर जंगली झाड़ियों से घिरा हुआ है। उसके दोनों ओर शिलाएँ अस्त-व्यस्त अवस्था में पड़ी हैं। यहाँ एक शिलालेख करीब 10 फीट ऊँचा है।

उपर्युक्त मन्दिर से कुछ ही दूरी पर, पगडण्डी पर, झाड़ियों के नीचे एक पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति पड़ी हुई है।

बोगार बसदि—बोगार किसी का नाम था। यह मन्दिर अशोक वृक्ष के बगीचे के अन्दर है।

ग्यारहवीं शताब्दी के इस मन्दिर का जीर्णोद्धार भी हो चुका है। इसमें लगभग तीन फीट ऊँची महावीर स्वामी की पद्मासन मूर्ति है। यहाँ 10वीं या 11वीं सदी की पार्श्वनाथ (चित्र क्र. 57), चन्द्रप्रभ आदि तीर्थंकरों की बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ भी हैं। मन्दिर की दीवार पर पुरानी कन्नड में शिलालेख भी हैं। खुले प्रांगण में यक्षी सिद्धायिका, कूष्माण्डिनी देवी और अनेक नागफलक हैं। इसके ऊपर कवेलू (टाइल्स) की छत है। ऊपर जाने का रास्ता बन्द कर दिया गया है। शिखर द्रविड़ शैली का है। शिखर पर हाथी, पद्मासन तीर्थंकर और विद्याधर-पंक्ति का उत्कीर्णन है। इसके अहाते की दीवाल प्राचीन है। इसके सोपान-जँगले पर व्याल का अंकन है। जीभ का आकार सूँड जैसा है। पीछे की ओर भी व्याल, देवी और हाथी प्रदर्शित हैं। यहाँ सूळे बसदि से भी पगडंडी आती है और मठ के पास से भी रास्ता है।

सान्तर राजाओं के समय की मिट्टी की दीवार भी यहाँ काफी ऊँची है। उसका अहाता बड़ा है और वह गाँव के आसपास तक फैला है।

होम्बुज मठ में विभिन्न प्रकार के अभिषेकों आदि की एक सूची है और उसके लिए दान की राशि भी निर्धारित है।

कर्नाटक के इस अतिशय-क्षेत्र में यात्रियों को ठहरने तथा भोजन की सभी अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यहाँ अनुसंधान केन्द्र के निर्माण की योजना भी है। क्षेत्र का पता इस प्रकार है—

स्वस्ति श्री भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति जी
ग्राम—हुंचा (Humcha), पिनकोड-577436
जिला—शिमोगा (Shimoga), कर्नाटक
टेलीफोन—Humcha 22

शिमोगा जिले के अन्य जैन स्थल

सागर तालुक जैनधर्म का एक प्रसिद्ध प्रदेश रहा है, ऐसा लगता है। यहाँ अब भी अनेक जैन बसदियाँ अवशिष्ट हैं।

बिदिनूरु (Bidnur)

यहाँ की पार्श्वनाथ बसदि में चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी की प्रतिमाएँ हैं। छत्रत्रय, यक्ष-यक्षी, मकर-तोरण से युक्त एक चौबीसी लगभग ढाई फीट ऊँची, 14वीं सदी की है। इसी सदी की एक चौबीसी सर्वतोभद्रिका कुछ खण्डित किन्तु मनोहर है। उसमें चारों ओर कायोत्सर्ग एक-एक तीर्थंकर के साथ पाँच-पाँच पद्मासन तीर्थंकरों की संयोजना है। एक 'पंचतीर्थिका' भी पन्द्रहवीं सदी की है जिसमें बीच में एक पद्मासन तीर्थंकर और उनके आसपास दो-दो और तीर्थंकर पद्मासन में हैं। ईसा की 14वीं या 15वीं सदी की ही तीन-चार कांस्य-मूर्तियाँ भी यहाँ हैं। ब्रह्मयक्ष भी घोड़े पर सवार प्रदर्शित हैं। एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि यहाँ रामनाथ ने शक संवत् 1410 में एक चैत्यालय का निर्माण कराकर उसमें आदीश्वर स्वामी की मूर्ति प्रतिष्ठित करायी थी।

बकोड़ और उसके आसपास की जैन बसदियाँ

हलेमन बसदि—इस बसदि में अधिकांश प्रतिमाएँ 10वीं और 11वीं सदी की हैं। यहाँ कम-से-कम चार कांस्य-चौबीसी हैं जो कि नौ इंच से लेकर डेढ़ फुट तक की ऊँचाई की हैं। ये 10वीं से 13वीं सदी तक की हैं। एक चौबीसी पर चाप के साथ करि-मकर प्रदर्शित हैं। एक 'त्रितीर्थिका' भी यहाँ है। उसमें सम्भवतः शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ खड्गासन में हैं (चित्र क्र. 58)। ये छत्रत्रयी, चँवरधारियों एवं मकर-तोरण से युक्त हैं। सुपार्श्वनाथ के अतिरिक्त पद्मावती की मूर्ति भी है जिसका प्रभामण्डल कमल की आकृति का है। यक्षी ज्वालामालिनी की आकृति के आसपास आग की लपटें प्रदर्शित हैं।

ओलगेरे बसदि—इसमें भी कांस्य की 15वीं सदी की चौबीसी है जिसके मूलनायक पार्श्वनाथ हैं। उन पर 9 फणों की छाया है। दो पंक्तियों में, वृत्तों में 23 तीर्थंकरों की लघु मूर्तियाँ हैं।

कतिनकेरे बसदि—यहाँ भी कांस्य की चौबीसी है जिसके मूलनायक आदिनाथ (?) हैं। यह अंकन 15वीं सदी का है। कायोत्सर्ग मुद्रा में अनन्तनाथ की एक साढ़े चार फीट ऊँची 11वीं सदी की प्रतिमा है। अभिनन्दननाथ की एक आकर्षक किन्तु असामान्य प्रतिमा के साथ यक्ष यक्षेश्वर अपने वाहन हाथी पर सवार है और यक्षी वज्रशृंखला हंस पर आसीन है। मूर्ति के आसपास 13 तीर्थंकर और उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार का अंकन असाधारण जान पड़ता है। पद्मावती (14वीं सदी) और एक तीर्थंकर प्रतिमा (10वीं सदी) भी यहाँ हैं।

कडरूर बसदि—चौदहवीं सदी की, यहाँ की चौबीसी के मूलनायक महावीर स्वामी हैं। वे पद्मासन में हैं और यक्ष-यक्षी सहित हैं। शेष तीर्थंकर भी पद्मासन में हैं।

पटेल के घर की बसदि—इसमें दसवीं शताब्दी की आठ इंच ऊँची 'पंचतीर्थिका' कांस्य-प्रतिमा है। उसमें सप्त फणावली से युक्त पार्श्वनाथ प्रमुख हैं। उनके दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में दो तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। नौ फणों से युक्त पद्मासन पार्श्वनाथ की भी एक प्रतिमा है।

करूर बसदि—यहाँ की पार्श्वनाथ बसदि के सामने की ओर धरणेन्द्र की एक सुन्दर मूर्ति है।

धरणेन्द्र का यक्ष वाहन कछुआ भी यहाँ एक ओर दिखाया गया है। धरणेन्द्र अर्धयोग-पट्ट में आसीन है। उसका करण्ड मुकुट ऊँचा है और फण की छाया है। यह 11वीं सदी का अंकन है। ऊँचाई लगभग तीन फीट है। पद्मावती की भी इसी प्रकार की सुन्दर प्रतिमाएँ 10वीं और 11वीं सदी की हैं। सर्वाह्न यक्ष भी अपने धर्मचक्र के साथ यहाँ आसीन हैं। उपर्युक्त बसदि में 10वीं सदी की घिसी-खण्डित चौबीसी, खण्डित पार्श्वनाथ प्रतिमा (11वीं सदी), कांस्य की पार्श्वनाथ प्रतिमा (11वीं सदी), पन्द्रहवीं सदी की अभिनन्दनाथ प्रतिमा (पाषाण की), त्रितीर्थिका और 15वीं सदी की चौबीसी आदि भी हैं।

कलड़ी (Kaladi)

यहाँ की बसदि में 12वीं से 15वीं सदी तक की प्रतिमाएँ हैं। तीर्थंकर पार्श्वनाथ की 1328 ई. (लेख के अनुसार) की कांस्य प्रतिमा विशेष आकर्षक है। मूर्ति पद्मासन में छत्रत्रयी से युक्त, यक्ष-यक्षी तथा चँवरधारियों सहित हैं। आकाशचारी विद्याधरों के हाथों में मालाएँ हैं और 'अभिषेक करता हाथी' विशेष आकर्षण है। पन्द्रहवीं सदी की एक कायोत्सर्ग प्रतिमा सप्तफण युक्त है। उसके साथ धरणेन्द्र और पद्मावती भी अंकित हैं। पंचतीर्थिका यद्यपि खराब हो गयी है, तदपि उस पर अशोक वृक्ष का सुन्दर अंकन है। एक अन्य 'पंचतीर्थिका' भी है। कुछ खण्डित प्रतिमाएँ भी हैं।

इन्दुवनी बसदि—इस बसदि में 15वीं सदी की मूर्तियाँ हैं। यहाँ कांस्य तीर्थंकर मूर्ति के साथ न तो परिकर है और न ही छत्र। यहीं एक स्मारक के आले में तीर्थंकर की पद्मासन मूर्ति है। दोनों ओर मानस्तम्भ भी है। इस पर कन्नड लेख भी है।

आवलिनाडु (Avalinadu)

यह सोरब तालुक में हैं। इसका प्राचीन नाम हिरिय आवलि था। यह 15वीं सदी में प्रसिद्ध जैन केन्द्र था। यहाँ अनेक मुनियों और श्रावकों ने समाधिमरण किया था।

कुप्पटूरु (Kubattur)

सोरब तालुक का यह स्थान 11वीं से 15वीं सदी तक जैन धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र और नागर खण्ड का 'तिलक प्राय' था। सन् 1077 ई. में कदम्ब राजवंश की रानी माललदेवी ने यहाँ पार्श्वनाथ बसदि का निर्माण कराया था। यहां के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि यहाँ अनेक जैन मन्दिर थे।

पार्श्वनाथ बसदि की मूर्तियाँ तथा अन्य कलावशेष सब 11वीं शताब्दी के हैं। लगभग

साढ़े छह फीट ऊँची पद्मासन में पार्श्वनाथ प्रतिमा पर सप्तफणों की छाया है, छत्रत्रयी है। यक्ष-यक्षी कन्धों से ऊपर तक उत्कीर्ण हैं। लताओं का भी अंकन है। चार फीट की एक और पार्श्वनाथ प्रतिमा है। आदिनाथ की एक खण्डित मूर्ति भी है। संभवतः महावीर की प्रतिमा भी है। सिरदल पर तीर्थंकर और गजसिंह का अंकन है। नागपुरुष का भी अंकन है जो कि संभवतः धरणेन्द्र है।

बन्दलिके (Bandalike)

सोरब तालुक के इस स्थान की 'शान्तिनाथ बसदि' या 'बन्दलिके बसदि' इस समय ध्वस्त अवस्था में है (चित्र क्र. 59)। यह ग्यारहवीं सदी की है। इसके सिरदल पर तीर्थंकर मूर्ति उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी और द्वारपाल का भी उत्कीर्णन है। अब इसमें मूर्ति नहीं है।

सन् 911 ई. में राष्ट्रकूट राजा कन्नरदेव जब मलखेड में राज्य करता था, तब यह एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र था। उसका महासामन्त कलिविट्टरस बनवासि में राज्य करता था। उसके अधीन सामन्त नागार्जुन था जो नागर खण्ड का शासक था। किसी युद्ध में उसकी मृत्यु हो गई तो सम्राट ने उसकी पत्नी जक्कियब्बे को शासक नियुक्त किया। उसने कुशलतापूर्वक राज्य किया। किन्तु जब रोग ने उसे आ घेरा तो उसने अपनी पुत्री को राज्य सौंप दिया और बन्दलिके तीर्थ में जाकर सल्लेखना ग्रहण कर ली। उसी के नाम पर या उसके द्वारा निर्मित कराए जाने के कारण यहाँ की बसदि 'जक्कियब्बे बसदि' कहलाती है। होय्सल सेनापति रेचरस भी यहाँ दर्शनार्थ आया था। यह बसदि दूर-दूर के लोगों को आकर्षित करती थी।

बलिगावि (Baligavi)

शिकारपुर या शिकारीपुर तालुक के इस स्थान की जैन बसदि भी अब ध्वस्त अवस्था में है।

ग्यारहवीं सदी में यह एक जैन केन्द्र था। यहाँ एक जैन मठ भी था। विक्रमादित्य षष्ठ ने यहाँ के 'चालुक्य पेर्माडि जिनालय' को दान दिया था। कहा जाता है कि सन् 1068 ई. में जैन कवि और सेनापति ने यहाँ की काष्ठनिर्मित आदिनाथ बसदि को परिवर्तित कराकर उसके स्थान पर पाषाण का मन्दिर बनवा दिया था। किन्तु आज यहाँ केवल शिलालेख ही यहाँ की गाथा सुनाते हैं।

उपर्युक्त स्थान पर पार्श्वनाथ और अम्बिका की तीन-तीन फीट ऊँची खंडित प्रतिमाएँ हैं हैं जो कि ग्यारहवीं सदी की हैं।

चिक्क मागडि (Chikkamagadi)

यह भी शिकारीपुर तालुक में है। यहाँ के बसवण्णा मन्दिर के एक स्तम्भ पर खुदे लेख के अनुसार, कदम्बराज बोप्पा के सामन्त शंकर ने यहाँ 1182 ई. में शान्तिनाथ चैत्यालय बनवाया था और बलिपुर के राजा सूर्याभरण ने इस मन्दिर के लिए सुपारी के 500 पेड़ और सहस्र पुष्पवाटिकाओं से सुशोभित एक उद्यान दान में दिया था (चित्र क्र. 60)। होय्सल राजा बल्लालदेव के दण्डनाथ रेचण ने भी इसके लिए एक गाँव दान में दिया था। यह बसदि 14वीं सदी की है। उसके सामने एक अद्भुत मानस्तम्भ भी है। इस स्थान पर एक वीरगल भी है।

उद्धरे/ऊद्रि (Udri)

शिकारीपुर तालुक का यह स्थान भी प्रसिद्ध जैन केन्द्र था। यहाँ 'पंच बसदि', 'कनक-बसदि' और 'एरग जिनालय' नामक तीन मन्दिर थे। 'ऊद्रि बसदि' 12वीं सदी में निर्मित हुई थी। यह एक छोटा-सा मन्दिर (चित्र क्र. 61) है। यहाँ विमान में ऊपर एक छत्रत्रयीयुक्त पद्मासन तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं जिनके आसपास चँवरधारी हैं। इसकी छत में कमल का अंकन बहुत मनोहारी है। इसका शिखर कटनीदार है। छत ध्वस्त हो गई है। शुकनासा पर आसीन तीर्थंकर दोनों ओर यक्ष-यक्षी सहित हैं। नवरंग मण्डप की छत पर पूर्ण विकसित कमल उत्कीर्ण है (चित्र क्र. 61 A)। दरवाजे के सिरदल पर एक तीर्थंकर मूर्ति विराजमान है। एक तीर्थंकर मूर्ति का यक्ष त्रिमुख ललितासन में है। यहाँ अम्बिका की मूर्ति भी है।

हेग्गेरि (Heggeri)

शिमोगा के चिक्कनायकनहल्लि तालुक के इस स्थान पर होय्सलनरेश नरसिंहदेव के महासामन्त गोविदेव ने यहाँ पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण कराकर दान दिया था।

कुन्दनबेट्ट (Kundanbetta)

यहाँ की बसदि में तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की लांछन सहित पद्मासन मूर्ति है। प्रभामण्डल साधारण-सा है। चँवरधारी सिर से ऊपर तक अंकित हैं।

आनेकल (Anekal)

यहाँ 'होयसल बसदि' नामक मन्दिर है। इस मन्दिर का विशेष विवरण सम्प्रति प्राप्त नहीं है।

नरसिंहराजपुर

नरसिंहराजपुर कर्नाटक के चिक्कमंगलूरु ज़िले में है। ई. सन् 1915 से पहले इस स्थान का नाम येदेवल्ली (Yedevalli) था। उपर्युक्त सन् में यहाँ युवराज कान्तिरव नरसिंहराज वेडियर का आगमन हुआ। उस खुशी में इसका नाम नरसिंहराजपुर कर दिया गया।

अवस्थिति एवं मार्ग

हुमचा से यहाँ पहुँचने का मार्ग इस प्रकार है—हुमचा से तीर्थहल्ली (35 कि. मी.), वहाँ से कोप्पा (25 कि. मी.) और वहाँ से नरसिंहराजपुर (22 कि. मी.)। हुमचा से कोप्पा तक का मार्ग छोटी पहाड़ियों, छोटी घाटियों से होकर है। कोप्पा से नरसिंहराजपुर घाट-क्षेत्र है, ऊँची

हरी-भरी पहाड़ियाँ और जंगल हैं। एक मिनी बस नरसिंहराजपुर से कारकल भी जाती है। बिरूर (Birur) और शिमोगा से भी बस द्वारा पहुँचा जा सकता है। शिमोगा से बहुत-सी बसें आती हैं। बस स्टैण्ड मठ से एक कि. मी. दूर है। बस वाले मठ के सामने से भी सवारी ले लेते हैं या वहाँ उतार देते हैं। यहाँ एकमात्र सवारी आटोरिक्शा है। निकट रेलवे-स्टेशन पूना-बंगलोर रेलवे लाइन पर बिरूर जंक्शन है। बिरूर-तालगप्पा लाइन पर शिमोगा भी पास पड़ता है।

क्षेत्र दर्शन

इस क्षेत्र का नाम 'सिंहदन गद्दे' जैन मठ या बसदि या ज्वालामालिनी है। सिंह + दन (गाय) + गद्दे (खेती) से मिलकर इस मठ का नाम बना है। बताया जाता है कि लगभग 650 वर्ष पूर्व, आचार्य समन्तभद्र गेरुसोप्पे (जोग झरनों के पास एक स्थान) से जब ज्वाला-मालिनी यक्षी (चन्द्रप्रभ की यक्षी) की मूर्ति यहाँ लाये थे तब उन्होंने एक खेत में सिंह और गाय को साथ-साथ निर्भीक विचरण करते देखा तो उन्होंने प्राचीन शान्तिनाथ मन्दिर के पास ही ज्वालामालिनी की मूर्ति प्रतिष्ठापित कर, यक्षी के मन्दिर का निर्माण करवाया। तब से यह स्थान 'सिंहदनगद्दे' कहलाने लगा।

ज्वालामालिनी मूर्ति यहाँ लाने का कारण यह था—गेरुसोप्पे में चन्नवैरादेवी नामक जैन रानी का राज्य था। लड़ाई में पुर्तगालियों ने रानी को हरा दिया और जैन मन्दिरों को भी जी-भरकर नष्ट किया। इस विनाशलीला के साक्षी वहाँ के ध्वस्त जैन मन्दिर अब भी हैं।

इस स्थान की एक चतुर्मुखी प्रतिमा का अंकन बहुत ही सुन्दर है। यह चौदहवीं शताब्दी की मानी जाती है और विजयनगर काल के प्रारम्भिक समय की कृति बताई जाती है।

यहाँ कुल 6 मन्दिर हैं। ये प्राचीन और अर्वाचीन दोनों प्रकार के हैं।

चन्द्रप्रभ या चन्द्रनाथ मन्दिर प्राचीन मन्दिर के स्थान पर नया बना है। उसमें विराज-मान चन्द्रप्रभ की मूर्ति पद्मासन में है। यह संगमरमर की है और लगभग 4 फुट ऊँची है। उस पर चन्द्रप्रभ का लांछन हरिण उत्कीर्ण है। वेदी साधारण है। गर्भगृह के बाहर एक हॉल (सभामण्डप) है जिसके तीन ओर बरामदे हैं। सामने एक खुला प्रांगण भी है। मन्दिर चौकोर है। उसके स्तम्भों पर भी डिजाइन है। प्रवेशद्वार का सिरदल पाषाण-निर्मित है और उस पर पद्मासन में तीर्थंकर मूर्ति है तथा नीचे यक्ष-यक्षी। मन्दिर का नया द्वार आकर्षक है, उस पर पुष्पावली का सुन्दर उत्कीर्णन है। प्रवेशद्वार की सीढ़ियों के दोनों ओर व्याल का अंकन है। मन्दिर चौकोर-पाषाणों से निर्मित है। उस पर कुछ ऊँचा शिखर भी है। इस मन्दिर के निर्माण में साहू श्रेयांस प्रसाद जी ने डेढ़ लाख रुपये का दान दिया था।

दूसरा मन्दिर श्री पार्श्वनाथ स्वामी जैन मन्दिर कहलाता है। यहाँ के एक शिलालेख के अनुसार, इस मन्दिर का निर्माण विजयनगर के शासक कृष्णदेवराय के शासनकाल में हुआ था। मन्दिर और उसमें विराजमान प्रतिमा और भी प्राचीन बताए जाते हैं। शिलालेख मन्दिर में लगा है किन्तु गर्भगृह सहित मन्दिर नया बन गया है। यह एक सांधार या प्रदक्षिणापथ युक्त मन्दिर है। गर्भगृह के आगे दो मण्डप या हॉल हैं और उनसे भी आगे एक खुला बरामदा या अग्रमण्डप है। मन्दिर में चौखटों (फ्रेम) में जड़े चित्र या पेंटिंग्स भी हैं। मूलनायक पार्श्व-

नाथ की लगभग 5 फुट ऊँची कायोत्सर्ग मूर्ति पर 9 फणों की छाया है और छत्रत्रय हैं। दोनों ओर चँवरधारी हैं जो कि ऊपर तक अंकित हैं। वेदी साधारण है। चन्द्रप्रभ की संगमरमर की तीन फुट ऊँची लांछनयुक्त मूर्ति के अतिरिक्त, कुछ आकर्षक कांस्य-मूर्तियाँ भी इस देवालय में हैं। तीर्थंकर प्रतिमाओं के अतिरिक्त सरस्वती और पद्मावती की मूर्तियाँ भी यहाँ स्थापित हैं।

तीसरा मन्दिर चन्द्रनाथ की यक्षी ज्वालामालिनी का है (देखें चित्र क्र. 62)। यह प्रतिमा आचार्य समन्तभद्र द्वारा गेरुसोप्पा से, जैन रानी का राज्य नष्ट हो जाने पर, यहाँ लाई गई थी। हुमचा में जिस प्रकार यक्षी पद्मावती का अलग मन्दिर है उसी प्रकार यहाँ भी ज्वालामालिनी का अलग मन्दिर है। देवी अतिशययुक्त मानी जाती है। वर्ष में एक बार ज्वालामालिनी का महारथोत्सव मनाया जाता है जिसमें दूर-दूर के लोग सम्मिलित होते हैं। उस समय इन्द्रप्रतिष्ठा, नान्दीमंगल, विमान-शुद्धि. पंचामृत-पूजा, श्रीवज्रपंजर यन्त्रधारा, श्री ज्वालामालिनी देवी षोडशोपचार मन्त्र, पुष्पार्चन, अष्टविधार्चन, महाभिषेक, श्री चन्द्रनाथ स्वामी कलशाभिषेक-पूजा, ज्वालामालिनी और बाहुबली स्वामी का महाभिषेक आदि चार-पाँच दिन चलने वाले कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। मन्दिर का बाहरी प्रवेशद्वार लकड़ी का पंचशाखा प्रकार का है, उस पर पुष्पावली का सुन्दर अंकन है। अन्दर का दरवाजा भी लकड़ी का है किन्तु उस पर अंकन कम है। नीचे चँवरधारिणियाँ हैं। गर्भगृह के द्वार की चौखट भी उत्कीर्ण है और उस पर नीचे द्वारपाल प्रदर्शित हैं। गर्भगृह में जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं। ज्वालामालिनी की मूर्ति पीतल की है। उस पर कीर्तिमुख है और एक छोटी तथा एक बड़ी सुन्दर, आकर्षक ढंग से उत्कीर्ण चाप (arch) हैं। मूर्ति के तीन ओर का फ्रेम भी पीतल का है और उस पर भी अच्छी नक्काशी है। मन्दिर की छत लकड़ी की है। टाइल्स (कवेलू, मंगलोर ढंग के) से ढका मन्दिर का शिखर षट्कोण है। मन्दिर में प्रवेश से पहले बड़ा खुला प्रांगण है। उसमें दोनों ओर तीन विशाल स्तम्भ हैं। सामने बलिपीठ है। मन्दिर के चारों ओर खुला प्रांगण है और कंगूरेदार दीवाल है। इसके पीछे सरोवर है जिसमें कमल खिलते हैं। इस प्रकार यह मन्दिर आकर्षक बन गया है।

शान्तिनाथ मन्दिर यहाँ का चौथा मन्दिर है। यह भी प्राचीन मन्दिर था किन्तु अब इसने नवीन रूप धारण कर लिया है। इसमें गर्भगृह के स्थान पर एक वेदी है जिस पर मूलनायक शान्तिनाथ अपने लांछन हरिण के साथ पद्मासन में विराजमान हैं। मूर्ति चार फुट ऊँची संगमरमर की है। वेदी वाला मण्डप कुछ बड़ा है। उसके सामने खुला बरामदा है। मन्दिर के सिरदल पर पद्मासन में तीर्थंकर प्रतिमा है। लकड़ी के दरवाजे पर सुन्दर अंकन है। पुष्पावली के अतिरिक्त दोनों पल्लों पर मानस्तम्भ और स्वस्तिक तथा हाथ के चिह्न से युक्त जम्बूद्वीप की आकृति है। नीचे द्वारपाल भी प्रदर्शित हैं।

पाँचवाँ मन्दिर मठ का मन्दिर है। उसमें भी प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। किसी अन्य स्थान से लाकर विराजित बाहुबली की प्रतिमा के दोनों ओर बाँबियाँ उत्कीर्ण हैं। मन्दिर में पार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पद्मावती और ज्वालामालिनी की मूर्तियाँ भी हैं।

मठ के अहाते में ही, मठ में प्रवेशवाली सड़क के पास, क्षेत्रपाल का छोटा-सा मन्दिर है। यह छठा मन्दिर है।

यहाँ का मठ भी प्राचीन है यह स्पष्ट है। यहाँ के भट्टारक 'स्वस्ति श्री लक्ष्मीसेन भट्टारक पट्टाचार्य स्वामीजी' कहलाते हैं। वर्तमान भट्टारक जी सौम्य मूर्ति और अत्यन्त मधुर स्वभाव के हैं। उनसे मिलना आनन्ददायक एवं प्रेरणाप्रद होता है।

सिंहदनगद्दे मठ में यात्रियों के लिए ठहरने और भोजन की अच्छी व्यवस्था है। पहले से सूचना मिलने पर दो सौ यात्रियों तक को भोजन कराया जा सकता है। ठहरने के लिए तीन परिवार-निवास (फेमिली कॉटेज) हैं जिनके साथ स्नानघर संलग्न हैं। कुछ और निवास बन रहे हैं। दो धर्मशालाएँ हैं। उनमें तेरह कमरों के साथ स्नानघर संलग्न हैं। आश्रम में 14 कमरे और दो बड़े हॉल हैं। एक हॉल में पाँच सौ व्यक्ति बैठ सकते हैं। यहाँ एक सभामण्डप भी बन रहा है। मठ के क्षेत्र में भी दो हॉल हैं।

ज्वालामालिनी नामक, लड़कियों के हाईस्कूल भवन का निर्माण भी चल रहा है।

ब्र. चन्दसागर वर्णी के सम्पादकत्व में 'समन्तभद्रवाणी' नामक एक पाक्षिक कन्नड़ पत्रिका भी प्रकाशित होने लगी है।

मठ की आय का एक साधन दस एकड़ की खेती भी है।

यहाँ के शान्त, स्वास्थ्यवर्धक वातावरण और ठहरने की आधुनिक सुविधाओं के उपलब्ध होने के कारण कुछ पर्यटक तो यहाँ कुछ दिन रम जाते हैं या बार-बार आते रहते हैं। यह बताया जा चुका है कि यहाँ से शहर का बस स्टैण्ड एक कि. मी. दूर है।

क्षेत्र का पता इस प्रकार है—

सिंहदनगद्दे बस्ती मठ (Sinhdanagadde Basti Matha)
पो. नरसिंहराजपुर (Narasimharajapura), Pin—577134
ज़िला—चिक्कमंगलूरु (Chikmagalur) (कर्नाटक)

चिक्कमंगलूरु के जिले के अन्य जैन स्थल

इस जिले में जैन स्थलों का भली प्रकार से सर्वेक्षण नहीं हुआ, ऐसा जान पड़ता है। शिलालेखों से एवं अन्य उपलब्ध जानकारी के अनुसार, यहाँ कुछ सामग्री दी जा रही है।

मेलगी (Melgi)

यह स्थान तीर्थहल्ली से लगभग 10 कि. मी. दूरी पर है। यहाँ तीर्थंकर अनन्तनाथ का लगभग सात-सौ आठ-सौ वर्ष पुराना मन्दिर है। इस समय यह भारतीय पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में है। यहाँ हाथी पर सवार और मस्तक पर धर्मचक्र धारण किये सर्वाह्न यक्ष की लगभग 6 फुट ऊँची मूर्ति है। क्षेत्रपाल की भी लगभग 6 फुट ऊँची एक मूर्ति है।

जयपुरा (Jaipura)

यहाँ की आदिनाथ बसदि में तीर्थंकर आदिनाथ की खड्गासन प्रतिमा एवं अन्य तीर्थंकरों

की धातु-प्रतिमाएँ हैं। मन्दिर की छत ढलुआ है।

मेगुन्द (Megund)

यहाँ छोटी शान्तिनाथ बसदि है। उसकी भी ढलुआ छत पर कवेलू (टाइल्स) लगे हैं। मन्दिर में शान्तिनाथ की पद्मासन प्रतिमा, घुटनों तक अंकित यक्ष-यक्षी सहित है। मकर-तोरण भी उत्कीर्ण है।

हन्तूरु (Hanturu)

मूडगेरे के इस स्थान से प्राप्त शिलालेख के अनुसार, त्रिभुवनमल्ल कुमार बल्लालदेव की बड़ी बहिन सम्यक्त्व-चूड़ामणि हरियब्बरसि ने 'कोडंगिनाड मलेवडि' में स्थित हन्तूरु में रत्नखचित व मणिकलश से युक्त उत्तुंग चैत्यालय का निर्माण कराके उसमें पार्श्वनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित कराई थी। मन्दिर तो होय्सल शासकों से दान मिला था। यह मन्दिर 1052 ई. में सिद्धान्तदेव को देखभाल के लिए सौंप दिया गया था।

मत्तावर (Mattavar)

इस स्थान के शिलालेख का कथन है कि एक बार होय्सल राजा विनयादित्य इस गाँव में आये। ग्रामवासी उन्हें दर्शन के लिए पहाड़ के मन्दिर पर ले गये। इस पर राजा ने ग्राम में मन्दिर नहीं होने का कारण पूछा। माणिक्य शेट्टी ने इसका कारण धन का अभाव बताया। इस पर राजा ने अपने कोष से धन देकर 1069 ई. में यहाँ पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण कराया। इसमें अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने समाधिमरण किया जिनमें सबसे प्रमुख थी जक्कब्बा।

श्रृंगेरी

यह स्थान नरसिंहराजपुर के समीप ही है। रास्ता कोप्पा-बालेहन्नूर होकर है।

आज हिन्दू समाज में इस स्थान की प्रतिष्ठा शंकराचार्य मठ के कारण है। किन्तु यह किसी समय जैनों का गढ़ था, यह बहुत कम लोगों को ज्ञात है। यहाँ के विद्याशंकर मन्दिर के बाहर की ओर आलों में दिगम्बर मूर्तियों का सुन्दर उत्कीर्णन है—धर्मों के सह-अस्तित्व का का प्राचीन प्रमाण। यह मन्दिर चौदहवीं शताब्दी का माना जाता है।

नेशनल बुक ट्रस्ट ने श्री न. स. रामचन्द्रैया द्वारा लिखित तथा श्री सुमंगल प्रकाश द्वारा हिन्दी में अनूदित एक पुस्तक 1973 में प्रकाशित की है। उसके 144-45 पृष्ठों पर व्यक्त विचार एवं जानकारी यहाँ उद्धृत करना प्रासंगिक होगा—

"तुंग के बायें तट पर अवस्थित श्रृंगेरी चिक्कमगलूरु जिले में पड़ता है। यह नाम "ऋष्यशृंग गिरि का एक लोक-प्रचलित रूप है। शंकर के आविर्भाव-काल से पूर्व ही यह स्थान

एक आश्रम अथवा तपोभूमि के रूप में प्रसिद्ध था। यह एक पवित्र स्थान था जिस पर ऋष्यश्रृंग के पिता विभाण्डक जैसे ऋषि-मुनियों के चरणों की धूल पड़ी थी। जैनों ने भी अपनी साधना के लिए इसे आदर्श स्थान माना था। सच पूछा जाये तो श्रृंगेरी जैनधर्म का एक गढ़ ही था। बल्कि इसी कारण शंकर को वहाँ अपना अद्वैत-केन्द्र स्थापित करने के लिए प्रेरणा मिली। शंकर ने दूर-दूर तक की यात्रा की थी और प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा पवित्रीकृत स्थान उन्होंने कितने ही देखे होंगे। तुंग के ही तट पर मत्तू, तीर्थहल्लि और शिवमोग्गा जैसे अनेक पवित्र स्थान मौजूद हैं। इस दृष्टि से इस नदी का स्थान गंगा के बाद ही आता है। बहुत करके शंकर ने यही चाहा होगा कि उनका प्रथम आध्यात्मिक केन्द्र जैनों के किसी गढ़ में ही स्थापित किया जाये। दक्षिण में अपने आध्यात्मिक अभियान पर घूमते हुए उन्होंने आंशिक रूप में जैनधर्म को अपनी धर्म-विजय का लक्ष्य बनाया था। जैन तथा बौद्ध धर्म शंकराचार्य के इस आध्यात्मिक आक्रमण के आगे ठहर नहीं पाये।"

"सुविख्यात श्री 'शारदा मन्दिर' के प्रांगण में लगभग 18 मीटर ऊँचा एक एकाश्म स्तम्भ खड़ा है। यह जैन परम्परा वाला मानस्तम्भ ही है। स्तम्भ के दक्षिण मुख पर एक जैन मूर्ति खुदी हुई है। इससे सिद्ध है कि यह न तो कोई गरुड़ 'कम्बा' है और न ही रूढ़ हिन्दू मन्दिर वास्तुकला का कोई ध्वजस्तम्भ ही।"

"जैनों के गढ़ के पतन के बाद जैनों के स्थान उजड़कर जीर्ण-शीर्ण स्थिति को पहुँच गये। अभी भी लगभग वहाँ एक दर्जन जैन बसदियाँ देखने को मिलती हैं। इस क्षेत्र से एकत्र की गयी कई जैन मूर्तियाँ कॉलेज संग्रहालय में प्रदर्शित हैं।"

प्राचीन पार्श्वनाथ बसदि

एक शिलालेख के अनुसार इस बसदि का निर्माण 1150 ई. में हेम्माडि शेट्टी और सिरियला के पुत्र मारिशेट्टी की स्मृति में हुआ था। सन् 1523 ई. में यहाँ अनन्तनाथ एवं चन्द्रप्रभ की प्रतिमाएँ विराजमान की गई थीं।

स्पष्ट है कि इस मन्दिर के मूलनायक तीर्थंकर पार्श्वनाथ हैं। उनके आसपास अनेक तीर्थंकर मूर्तियाँ पद्मासन और खड्गासन में हैं। इसका मुखमण्डप बड़ा लगता है। शिखर त्रिकोणात्मक है। गर्भगृह के प्रवेशद्वार पर दो-दो की पंक्ति में तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। नवरंग में भी पार्श्वनाथ एवं अन्य तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। मुखमण्डप में एक शिलालेख है। उसके ऊपरी भाग में तीर्थंकर और चँवरधारी हैं।

विशेष सूचना

श्रृंगेरी से कारकल भी जा सकते हैं। किन्तु ऐसा करने से कुन्दाद्रि और वरंग छूट जाएँगे। अतः जो कुन्दाद्रि (चढ़ाई के कारण) नहीं जाना चाहें उन्हें हुलिकल घाट होते हुए हेब्री जाकर वरंग और वहाँ से कारकल जाना चाहिए। तीर्थहल्ली जाकर आगुम्बे घाटी होते हुए मिनी बस द्वारा (रास्ते में कुन्दाद्रि) हेब्री होकर भी वरंग पहुँचा जा सकता है।

कुन्दाद्रि (कुन्दकुन्दबेट्ट)

अवस्थिति एवं मार्ग

यहाँ पहुँचने का मार्ग इस प्रकार है—नरसिंहराजपुर—कोप्पा—तीर्थहल्ली (यहाँ हुमचा से भी सीधे आ सकते हैं)—गुड्डकेरी (गाँव, तलहटी में)—वहाँ से कुन्दाद्रि (पहाड़) पर लगभग 8 कि. मी. गाड़ी से या पैदल। कार का रास्ता भी वर्षा के कारण खराब हो जाता है। कभी-कभी गाड़ी लौटाने की जगह नहीं मिलती। इस स्थान से आगे आगुम्बे गाँव है। यहाँ तक बड़ी बसें आ सकती हैं। उसके बाद आगुम्बे घाटी (14 कि. मी.) है जिसमें से केवल मिनी बसें ही जा सकती हैं। इस घाटी को पारकर हेब्री (Hebri) नामक स्थान से वरंग और कारकल के लिए सड़क जाती है।

एक मिनी बस सागर-हुमचा-तीर्थहल्ली-कुन्दाद्रि-आगुम्बे-कारकल-मूडबिद्री तक है। शृंगेरी से भी यहाँ के लिए बसें आती हैं। नरसिंहराजपुर से भी एक मिनी बस आती है। किन्तु बड़ी बस से कुन्दाद्रि के दर्शनकर वापस तीर्थहल्ली, वहाँ से कलमने के आसपास से हुलिकल घाट की सड़क पकड़ कर हेब्री पहुँचना चाहिए और वहाँ से वरंग तथा कारकल। आगुम्बे घाटी में अनेक मोड़ हैं, घना जंगल है और वर्षा भी बहुत होती है। इसलिए मिनी बस और बड़ी बस के मार्ग का ध्यान रखना चाहिए। बड़ी बस भी आगुम्बे गाँव तक जा सकती है। वहाँ से उतराई प्रारम्भ होती है जो 14 कि. मी. है।

कुन्दाद्रि देखकर नरसिंहराजपुर या हुमचा वापस लौटना चाहिए या वरंग जाना चाहिए। तलहटी के गाँव में कुन्दाद्रि का अर्चक (पुजारी) रहता है। धर्मशाला नहीं है। पहाड़ के ऊपर चार कमरों का सरकारी गेस्ट हाउस और हुमचा मठ के प्रबन्ध की धर्मशाला बिजली-पानी सहित है, एक हॉल के रूप में। पहाड़ पर ठहरने में असुविधा हो सकती है।

कुन्दाद्रि इस समय कर्नाटक के चिक्कमंगलूरु ज़िले के तीर्थहल्ली तालुक के अन्तर्गत आदिवासी इलाके की तीन हज़ार फुट से अधिक ऊँची एक पहाड़ी है। कुन्दकुन्दाचार्य से सम्बन्धित होने के कारण यह प्राचीनकाल से ही एक तीर्थ माना जाता रहा है।

"मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥"

सम्भवतः हर जैन इस नमस्कार-मन्त्र से परिचित है और इसमें नमस्कृत कुन्दकुन्दाचार्य से ही इस पहाड़ी का सम्बन्ध है। यहीं उन्होंने तपस्या की थी। यहीं से वे विदेह क्षेत्र गये थे। इसी पहाड़ी पर उन महान् आचार्य के चरण 13 पंखुड़ियों के कमल में बने हुए हैं।

कुन्दकुन्दाचार्य

कुन्दकुन्दाचार्य का जन्म दक्षिण भारत में पेदथनाडु ज़िले में कौण्डकुन्दपुर नामक गाँव में (एक अन्य मत के अनुसार गुंतकल के समीप कुण्डकुण्डी ग्राम में) ईसा की पहली शताब्दी में या आज से लगभग 1900 वर्ष पूर्व हुआ था। अपने गाँव के नाम पर ये कुन्दकुन्द कहलाए (आज

भी दक्षिण भारत में नाम से पहले गाँव का नाम भी लगता है) । इनका वास्तविक नाम आचार्य पद्मनन्दी बताया जाता है। इनके चार नाम और भी बताए जाते हैं। ये आचार्य भद्रबाहु द्वितीय के अथवा श्रुतकेवली भद्रबाहु के पारम्परिक शिष्य माने जाते हैं। दिगम्बर जैन समाज में इनकी प्रतिष्ठा स्थापित हुई कि तभी से यह समाज मूलसंघ और कुन्दकुन्दान्वय का माना जाता है। ये तमिलवासी थे। दक्षिण भारत के शिलालेखों में इनका नाम 'कोण्डकुन्द' आता है।

इन महान् आचार्य ने जैनधर्म के प्रामाणिक ग्रन्थों की जो रचना की वह अद्वितीय है। प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय, नियमसार आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों तथा 84 पाहुड-ग्रन्थों (प्राकृत में जैनग्रन्थ) की रचना इन्होंने की थी। शायद इसीलिए इन्हें गौतम गणधर के बाद नमस्कार किया जाता है।

कुन्दकुन्दाचार्य के विषय में एक कथा प्रचलित है जिसका सम्बन्ध इस पहाड़ी से है। बताया जाता है कि एक बार इन्हें जैन सिद्धान्तों के बारे में कुछ शंका हुई। उसके समाधान के लिए इन्होंने इसी पहाड़ी पर ध्यान लगाया और पूर्व विदेह क्षेत्र के तीर्थंकर सीमंधर स्वामी के समवसरण में जा पहुँचे। वहाँ वे एक सप्ताह रहे और अपनी शंकाओं का समाधान कर इसी पहाड़ी पर वापस आ गये।

यह भी अनुश्रुति है कि इन्होंने जब ध्यान लगाया तो सीमंधर स्वामी ने 'सद्धर्मवृद्धिरस्तु' (सद्धर्म की वृद्धि हो) कहा। उपदेश के बीच में यह सुनकर भव्य जनों ने तीर्थंकर से इसका प्रसंग पूछा तो सीमंधर स्वामी ने उत्तर दिया कि "मैंने भरत-क्षेत्र के निर्ग्रन्थ कुन्दकुन्द को आशीर्वाद दिया है।" सशरीर अन्यत्र गमन की घटनाएँ अनेक धर्मों व स्थानों में मिलती हैं। अब वैज्ञानिक भी इस तथ्य की ओर ध्यान देने लगे हैं। ईसाई धर्म में भी ऐसी घटनाएँ लिपिबद्ध हैं। इसलिए इस अनुश्रुति पर भी एकदम अविश्वास नहीं करना चाहिए। कुन्दकुन्दाचार्य को तीर्थंकर से दिव्यज्ञान प्राप्त हुआ हो। उनकी रचनाओं को देखते हुए अविश्वास की गुंजाइश कम ही लगती है।

क्षेत्र-दर्शन

कुन्दाद्रि पर एक कुण्ड है जोकि पादुकाश्रम के पास में ही है। इसे 'पापनाशिनी' कहते हैं। इसका जल पीने के काम में आता है। यह कुण्ड प्राकृतिक है एवं पर्वत के शिखर पर है।

यहाँ दो गुफाएँ भी हैं।

उपर्युक्त कुण्ड के किनारे एक प्राचीन पार्श्वनाथ मन्दिर है। इसके सामने एक मानस्तम्भ है। गर्भगृह में पार्श्वनाथ की अद्भुत प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है (देखें चित्र क्रमांक 63)। तीर्थंकर की मूर्ति को एक बड़ा सर्प लपेटे हुए है और अपने सात फणों की छाया पार्श्वनाथ पर कर रहा है। मूर्ति पर उसके दो लपेटे स्पष्ट देखे जा सकते हैं। सर्पकुण्डली पादमूल तक आई है। घुटनों के पास एक यक्ष है। इस प्रकार की प्रतिमा शायद अन्य किसी स्थान पर नहीं है। मन्दिर के द्वार और मण्डप में भी सुन्दर कलाकारी है।

कुन्दाद्रि पर जैन मन्दिरों के खण्डहर, मूर्तियों एवं कलापूर्ण शिलाखण्ड जहाँ-तहाँ बिखरे मिलते हैं। इससे प्रतीत होता है कि यह बहुत प्रसिद्ध तीर्थस्थान रहा होगा। वर्तमान में इसका

प्रबन्ध हुमचा के भट्टारकजी द्वारा किया जाता है।

कुन्दाद्रि का प्राकृतिक सौन्दर्य भी कम नहीं है। यहाँ से सूर्यास्त का दृश्य बड़ा सुन्दर दिखाई देता है।

वरंग

अवस्थिति एवं मार्ग

कर्नाटक के मंगलोर ज़िले (पुराना नाम दक्षिण कन्नड़ ज़िला, South Kanara), में कारकल तालुक के अन्तर्गत यह लगभग दो हज़ार की आबादी वाला एक गाँव है। यह शिमोगा-मंगलोर मार्ग पर स्थित है।

इस गाँव का निकटतम रेलवे स्टेशन मंगलोर है।

सड़क-मार्ग द्वारा यह कारकल से 24 कि. मी. की दूरी पर है। नरसिंहराजपुरा या या कुन्द्रादि से बड़ी बस के मार्ग पर स्थित हेब्री से या आगुम्बे घाटी उतरकर छोटी बस द्वारा हेब्री नामक स्थान से यह आठ कि. मी. है। हेब्री से बड़ी बसें यहाँ आ सकती हैं हालांकि आगुम्बे घाटी होकर सागर या नरसिंहराजपुरा जानेवाली छोटी बसें भी यहाँ से आती-जाती हैं। यहाँ पहुँचने के लिए बस की अच्छी सुविधा है। यह स्थान तुलुनाडु प्रदेश में आता है।

किसी समय यहाँ हेगड़े सामन्त शासन करते थे। बोडर-कोटे नामक एक छोटा क़िला यहाँ की पहाड़ी पर देखा जा सकता है। मंगलोर के उप-न्यायालय (सब कोर्ट) में 1424 ई. का एक लेख कन्नड और संस्कृत भाषा में तीन ताम्रपत्रों पर है। उसके अनुसार वरंगना गाँव को वहाँ की नेमिनाथ बसदि (मन्दिर) के लिए विजयनगर के राजा देवराय ने दान में दिया था। ये ताम्रपत्र एक अँगूठी के द्वारा जुड़े हुए हैं। अँगूठी पर एक मोहर लगी है जिसपर एक जैन मूर्ति है।

वरंग में एक जल-मन्दिर है जिसके कारण इस स्थान को 'कर्नाटक की पावापुरी' कहा जाता है।

यात्रियों की सुविधा के लिए सड़क पर 'श्री वरंग दिगम्बर जैन मन्दिर' कन्नड़ और नागरी में दो स्थानों पर लिखा हुआ है। सड़क से मठ तक जाने के लिए पक्की सड़क भी है और एक पगडण्डी भी। क्षेत्र सड़क से लगा हुआ है।

इस क्षेत्र का इतिहास अभी ज्ञात नहीं है।

क्षेत्र-दर्शन

वरंग में तीन मन्दिर हैं—1. मठ का चन्द्रनाथ मन्दिर, 2. जलमन्दिर (चतुर्मुख बसदि) और 3. नेमिनाथ बसदि।

स्थानीय जैन मठ होम्बुज (हुमचा) जैन मठ के नियन्त्रण में कार्य करता है। वास्तव में,

मठ का कोई अलग भवन नहीं है अपितु चन्द्रनाथ मन्दिर के बाहरी बरामदे में ही कामचलाऊ कार्यालय है जिसका कार्य यहाँ पास में ही रहनेवाला अर्चक परिवार देखता है।

चन्द्रनाथ मन्दिर—सामने से देखने पर यह एक साधारण-सा मकान लगता है। उसके गर्भगृह पर छोटा कलश है और कवेलू की छत है। मन्दिर में प्रवेश से पहले एक चौक आता है जिसके चारों ओर खुली दालान या बरामदा है। इस खुले स्थान में यात्रियों को भी ठहरा दिया जाता है, अलग से कमरे नहीं हैं। भवन का प्रवेशद्वार लकड़ी का है और उस पर मकर-तोरण, बेल आदि उत्कीर्ण हैं। सिरदल पर पद्मासन पार्श्वनाथ दो चँवरधारियों सहित प्रदर्शित हैं। नीचे यक्ष-यक्षी एवं दोनों ओर दो द्वारपाल हैं। गर्भगृह के प्रवेशद्वार पर भी शृंखला की डिजाइन का सुन्दर उत्कीर्णन है। बसदि में डेढ़-दो फुट मोटे लकड़ी के स्तम्भों का प्रयोग हुआ है। इन पर भी सुन्दर उत्कीर्णन है। कड़ी (बीम्स) पर व्याल अंकित किए गए हैं। छोटे-से गर्भगृह के तीन छोटे-छोटे खण्ड हैं। अन्तिम खण्ड में मूलनायक चन्द्रनाथ की एक फुट ऊँची कायोत्सर्ग मूर्ति है। यह प्रतिमा चन्द्रशिला से निर्मित है। मूर्ति के पीछे से प्रकाश करने पर रोशनी मूर्ति के आर-पार दिखाई देती है। मूर्ति के पीछे मकर-तोरण और कीर्तिमुखयुक्त पीतल का फलक है। अन्य कांस्य तीर्थंकर प्रतिमाएँ भी हैं। प्रतिमाओं से आगे वाले खण्ड में पद्मावती देवी की मूर्ति है। उससे आगे का खण्ड खाली है। गर्भगृह से आगे सभामण्डप या बड़ा हॉल है। उसके बाद चौक।

चतुर्मुख बसदि—उपर्युक्त मन्दिर के पास, सामने ही दिखाई देनेवाली एक छोटी हरी-भरी पहाड़ी की तलहटी में एक सरोवर है। इसी में 'केरे-बसदि' या 'जलमन्दिर' या 'चतुर्मुख बसदि' है (चित्र क्र. 64)। कन्नड़ में केरे का अर्थ होता है तालाब। जब इसमें पानी भरा होता है और कमल के फूल खिले होते हैं तब यह पावापुरी जैसा दृश्य उपस्थित करता है। ऐसे समय में दर्शन के लिए नाव द्वारा जाना होता है। नाव की व्यवस्था क्षेत्र द्वारा की जाती है। यह सरोवर 13 एकड़ में है। कभी-कभी इस सरोवर का पानी सूख भी जाता है।

'केरे बसदि' एक साधारण नक्काशी रहित पाषाण-मन्दिर है। वह ऊँचे चबूतरे पर स्थित है। उस तक जाने के लिए सरोवर के चारों ओर सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। मन्दिर के बाहर चारों ओर खुला चबूतरा है। उसी में लगभग तीन फुट चौड़ा एक कुआँ भी है जिसमें से अभिषेक का जल लिया जाता है। बाहर एक नागफलक भी है। मन्दिर बारह कोण का है। चार त्रिकोणों के रूप में शिखर है। शिखर ताँबे से आवृत है। बसदि चतुर्मुख है। उसका निर्माण इस प्रकार हुआ है कि मूर्ति हर दिशा से दिखाई देती है। मन्दिर में चार तीर्थंकरों की मूर्तियाँ एक ही गोल वेदी पर स्थापित हैं। अन्दर जो प्रदक्षिणा-पथ है वह सँकरा है, मुश्किल से दो फुट चौड़ा होगा। पाषाण-मूर्तियाँ लगभग साढ़े तीन फुट ऊँची कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं।

बसदि के प्रवेशद्वारों पर नागरी में नमस्कार लिखा है। एक द्वार के जिस सिरदल पर 'भगवान पार्श्वतीर्थंकराय धरणेंद्रयक्ष-पद्मावतीयक्षीसहिताय नमः' लिखा है उस दिशा में मकर-तोरण और चँवर सहित सात फणों से युक्त पार्श्वनाथ की मूर्ति है। नीचे धरणेन्द्र और पद्मावती हैं। दूसरी दिशा में 'भगवान नेमि तीर्थंकराय सर्वाह्न-यक्ष कूष्मांडिनी-यक्षी सहिताय नमः' लिखा है। उस ओर नेमिनाथ की यक्ष-यक्षी सहित मूर्ति है (देखें चित्र क्र. 65)। अलंकरण पूर्ववत् है। तीसरी दिशा में, 'भगवान अनन्त तीर्थंकराय पाताल यक्ष अनन्तमति यक्षी सहिताय

नमः' लिखा है। वहाँ अनन्तनाथ की मूर्ति अन्य दो मूर्तियों की भाँति है। किन्तु एक विशेषता यह है कि प्रभावली में पंचपरमेष्ठी का अंकन है तथा एक पार्श्व में ब्रह्म यक्ष और कूष्मांडिनी हैं। चौथी दिशा में 'भगवान शान्ति तीर्थंकराय गरुड़-यक्ष मानसी-यक्षी सहिताय नमः' लिखा है। इस दिशा की शान्तिनाथ मूर्ति उपर्युक्त अलंकरण सहित है।

जलमन्दिर की पद्मावती प्रतिमा अतिशयपूर्ण बताई जाती है। देवी के सामने नारियल, केले, कुंकुम, अगरबत्ती, कपूर और सुपारी तथा फूल चढ़ाए जाते हैं। यहाँ मनौती करने के लिए सभी सम्प्रदायों के लोग आते हैं।

नेमिनाथ बसदि—इस स्थान का सबसे प्रमुख, विशाल (लगभग 70 फुट चौड़ा, 70 फुट लम्बा), नक्काशीदार पाषाण-निर्मित मन्दिर लगभग एक हज़ार वर्ष प्राचीन बताया जाता है (चित्र क्र. 66)। यह तो बताया ही जा चुका है कि 1424 ई. में विजयनगर के शासक देवराय ने इस मन्दिर का दर्शन कर वरंग गाँव दान में दिया था। अतः इसकी प्राचीनता और लोकप्रियता स्वतः सिद्ध है। मन्दिर के पास ही, किन्तु मन्दिर के अहाते से बाहर, मानस्तम्भ दिखाई देता है जो लगभग 45 फुट ऊँचा है। उसके शीर्ष भाग पर चारों ओर कायोत्सर्ग तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। यह स्तम्भ दूर से ही दिखाई देता है और इसके ठीक पास से ही मठ को जानेवाला रास्ता खेतों में से होकर है। इस बसदि में प्रवेश पूर्व दिशा से है। मन्दिर के चारों ओर पक्की दीवाल है और उसका अहाता काफी बड़ा है। अहाते में एक मण्डप भी है। यात्रा या रथोत्सव आदि के समय उसमें भगवान विराजमान किए जाते हैं। मन्दिर के सामने खुला स्तम्भों युक्त बरामदा या मण्डप है। यहाँ एक ध्वजस्तम्भ भी है जिसपर ध्वज फहराया जाता है। प्रवेश करते ही एक तोरणद्वार है जिसपर पद्मासन तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। सोपान-जँगले से पहले ही दोनों ओर लगभग तीन फुट ऊँचे हाथी बने हुए हैं। मन्दिर के प्रथम प्रवेशद्वार पर दोनों ओर नीचे पूर्णकुम्भ का अंकन है। उसके सिरदल पर पद्मासन में तीर्थंकर मूर्ति है। द्वार की चौखट पर नक्काशी भी आकर्षक है। द्वार के दोनों ओर द्वारपाल भी प्रदर्शित हैं। इसी प्रकार यहाँ कन्नड़ में दो शिलालेख भी हैं। अन्दर के विशाल मण्डप में पीतल की चौबीस तीर्थंकरों की कायोत्सर्ग मुद्रा में आकर्षक मूर्तियाँ मकर-तोरण और कीर्तिमुख सहित हैं। इसी कक्ष में तीर्थंकर नेमिनाथ तथा ब्रह्मदेव और पद्मावती देवी की मूर्तियाँ हैं। बाईं ओर के छोटे गर्भगृह में चन्द्रप्रभ की पीतल की मकर-तोरण और कीर्तिमुख युक्त मूर्ति है। यहीं आदिनाथ और पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ भी हैं। सबसे अन्त के गर्भगृह के मूलनायक नेमिनाथ पर्यंकासन में हैं। उनकी प्रतिमा लगभग पाँच फुट ऊँची है और कीर्तिमुख तथा मकर-तोरण से अलंकृत है। उससे पहले का कोष्ठ खाली है। मन्दिर से बाहर दो शिलालेख और हैं। दाहिनी ओर शिखरयुक्त एक कुलिका में क्षेत्रपाल हैं। मन्दिर के बरामदे की पत्थर की छत ढलुआ है। उसके आधार के लिए पाषाण की ही कड़ियाँ (बीम्स) हैं। स्तम्भों की संख्या लगभग पचास होगी। मन्दिर की तीनों दिशाओं (पृष्ठभाग छोड़कर) में मुखमण्डप हैं। मुख्य प्रवेशद्वार के स्तम्भ पर नीचे दोनों ओर कायोत्सर्ग तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। स्तम्भ पर घण्टिकाओं का साधारण-सा अंकन है। एक स्तम्भ पर एक ओर कायोत्सर्ग तीर्थंकर, दूसरी ओर पद्मावती तथा तीसरी ओर एक हाथी अंकित किए गए हैं। इस मन्दिर की लगभग ढाई फुट ऊँची, अनन्तनाथ और आदिनाथ की खड्गासन प्रतिमाएँ होय्सल शासकों के
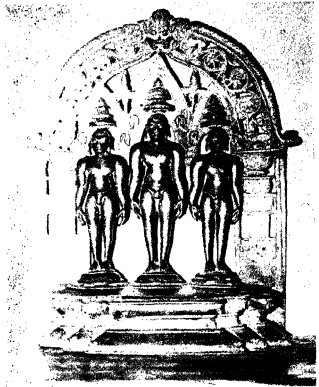
58. बकोड (जि० शिमोगा)—हलेमने बसदि में खड्गासन तीन तीर्थंकरों की कांस्य मूर्तियाँ; लगभग ग्यारहवीं शती।

59. बन्दलिके (जि० शिमोगा)—सोमेश्वर (शान्तिनाथ ?) बसदि का खण्डहर, मुख-मण्डप का दक्षिण-पूर्व की ओर से दृश्य।
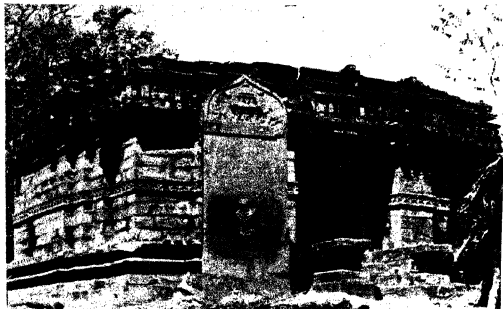
60. चिक्कमागुडि (जि० शिमोगा)—बसवण्णा बसदि का सामने का दृश्य, विशाल शिलालेख दर्शनीय; लगभग चौदहवीं शती।
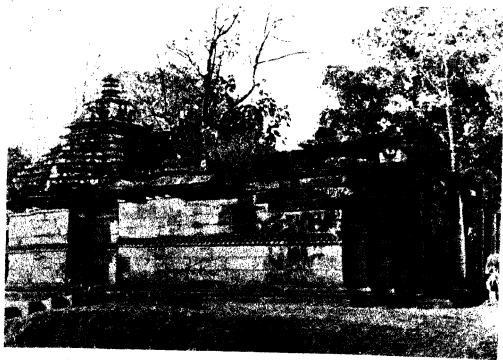
61. उद्रि (जि० शिमोगा)—उद्रि बसदि का बाह्य दृश्य। शिखर की विशिष्ट शैली दर्शनीय; लगभग बारहवीं शती।
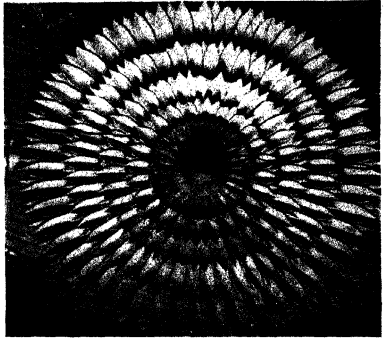
61 A. उद्रि (जि० शिमोगा)—उद्रि बसदि : कमल के आकार में उत्कीर्णित छत।

62. नरसिंहराजपुर (जि० चिक्कमंगलूर)—ज्वालामालिनी बसदि में यक्षी ज्वालामालिनी की पुष्प-मालाओं से अलंकृत मूर्ति।

63. कुन्दाद्रि—पार्श्वनाथ बसदि : तीर्थंकर पार्श्वनाथ की एक बड़ी तथा एक छोटी दर्शनीय मूर्ति ।

64. वरंग—केरे बसदि : जलाशय में स्थित मन्दिर का दृश्य ।
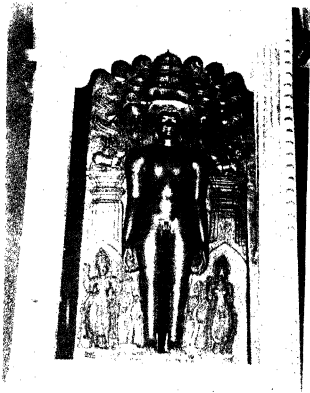
65. वरंग—केरे बसदि : तीर्थंकर नेमिनाथ की कायोत्सर्ग मूर्ति, अष्ट प्रातिहार्यों का अंकन।

66. वरंग—नेमिनाथ बसदि का पूर्व की ओर का दृश्य।
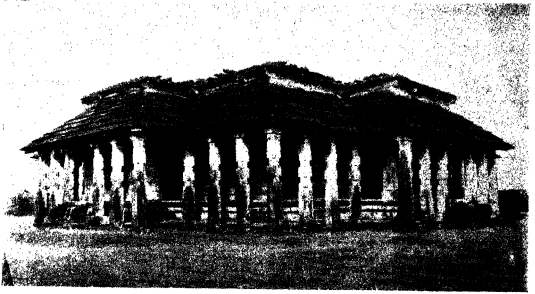
67. कारकल—चतुर्मुख बसदि : दक्षिण-पश्चिम से बाह्य दृश्य ।

68. कारकल—गोम्मटेश्वर बसदि : गोम्मटेश्वर की विशाल मूर्ति ।
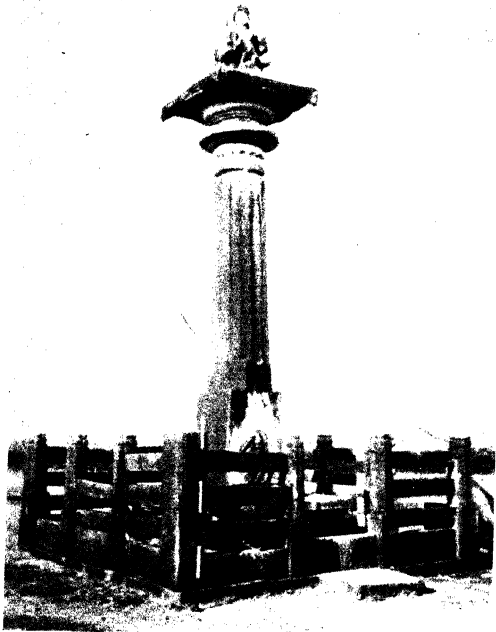
69. कारकल—गोम्मटेश्वर बसदि : गोम्मटेश्वर के सम्मुख ब्रह्मदेव स्तम्भ ।

समय की मानी जाती हैं। यह मन्दिर यद्यपि शिला-निर्मित है तदपि इसमें आवरण के लिए ताँबे का भी प्रयोग किया गया है। इस बसदि को 'हिरे बसदि' भी कहते हैं।

वरंग तुलुनाडु (तुलु—एक बोली है उससे सम्बन्धित प्रदेश) के अन्तर्गत आता है। इस तुलु प्रदेश में बैलों की दौड़ की प्रतियोगिता विशेष आकर्षण एवं आयोजन का विषय है। यह प्रतियोगिता वरंग में भी आयोजित की जाती है। इस प्रदेश में विशिष्ट देवताओं के उत्सव का भी रिवाज़ है। वरंग में, हस्त नक्षत्र (फरवरी) में रथोत्सव या यात्रा आयोजित की जाती है। श्रुतपूजा का उत्सव भी यहाँ मनाया जाता है।

नेमिनाथ मन्दिर के पास ही क्षेत्र की ओर से चलाई जानेवाली एक पाठशाला है।

श्रवणबेलगोल के वर्तमान भट्टारक स्वस्ति श्री चारुकीर्तिजी की यह जन्मभूमि है।

ठहरने की अपर्याप्त सुविधा के कारण यह परामर्श दिया जाता है कि यात्री मूडबिद्री में ठहरें, वहाँ से बस से आकर यहाँ की यात्रा करें। पास में कारकल भी है। कुछ लोग कारकल में लॉज में ठहर सकते हैं। सामान सहित आनेवाले यात्रियों का यहाँ ठहरना असुविधाजनक हो सकता है।

वरंग क्षेत्र का पता इस प्रकार है—

श्री वरंग (Varang) दिगम्बर जैन मठ,
ग्राम—वरंग, पिनकोड 576144
तालुक—कारकल (Karkal)
ज़िला—मंगलोर (Mangalore), कर्नाटक

कारकल

[42 फुट ऊँची बाहुबली की मूर्ति]

कारकल एक तालुक (तहसील) है जो कि मंगलोर/मंगलूर ज़िले (पुराना नाम दक्षिण कन्नड़, South Kanara) के अन्तर्गत आता है।

अवस्थिति एवं मार्ग

यह स्थान वरंग से 24 कि. मी., मूडबिद्री से 26 कि. मी. और मूडबिद्री होते हुए मंगलोर से 63 कि. मी. की दूरी पर मंगलोर-शिमोगा मार्ग पर स्थित है। इस मार्ग पर बसों की अच्छी सुविधा है।

निकटतम रेलवे स्टेशन और हवाई अड्डा मंगलोर है।

उपर्युक्त मार्ग पर चलनेवाली बसें यात्री को यहाँ के बाजार में स्थित बस स्टेण्ड पर छोड़ती हैं। वहाँ से मूडबिद्री की ओर जानेवाली सड़क पर, लगभग एक कि. मी. की दूरी पर, बाहुबली की विशाल मूर्ति, प्रसिद्ध चतुर्मुख बसदि और जैन मठ तथा धर्मशाला आदि के लिए मार्ग है।

जिस काले रंग की वृक्षहीन छोटी पहाड़ी पर एक चतुर्मुख बसदि है, वह सड़क से बिलकुल लगी हुई है। वहाँ नागरी में चतुर्मुख मन्दिर का बोर्ड लगा है। कुछ और दूरी पर जाने पर, मूडबिद्री की सड़क जहाँ मुड़ती है, वहाँ भी 'जैन धर्मशाला' का बोर्ड नागरी में है। उस पर 'जैन प्रवासी मन्दिर' (नागरी में) और अँग्रेजी में 'Jain Travellers Bungalow' लिखा है। यहाँ से ही बाहुबली की मूर्ति के लिए रास्ता जाता है। मानस्तम्भ नीचे से ही दिखाई देता है। यहीं जैन मठ का बोर्ड भी दिखाई देता है। बस स्टॉप भी जैन मठ के पास है। मठ के पास श्री बाहुबली श्राविकाश्रम और श्री बाहुबली मन्दिर हैं। आगे गोमटेश्वर धर्मशाला है। इसमें सात कमरे और दो हॉल हैं। इसका अहाता बड़ा है। स्वच्छ, शान्त वातावरण भी है। मगर गर्मियों में यहाँ ठहरना विशेष कष्टदायक होता है। इसका प्रबन्ध श्री जैन धर्म जीर्णोद्धारक संघ, कारकल (रजि.) द्वारा किया जाता है। नगर में आने-जाने के लिए एकमात्र साधन आटोरिक्शा है।

कन्नड में कारकल (करिकल्लु) का अर्थ होता है 'काला पत्थर'। यहाँ का ग्रेनाइट पत्थर बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ निर्मित करने के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। हमारे अपने समय में ही दिल्ली की साढ़े तेरह फुट ऊँची महावीर की पद्मासन मूर्ति, फीरोजाबाद और धर्मस्थल की विशाल बाहुबली प्रतिमाएँ यहीं से बनकर गई हैं। इस प्रकार की शिलाएँ अन्यत्र दुर्लभ हैं।

कारकल जहाँ जैन धर्मानुयायियों के लिए एक तीर्थ-स्थान है वहीं जैनेतर जनता के लिए यह इतिहास और कला का एक अनुपम क्षेत्र है।

इतिहास

प्राचीन काल से ही कारकल एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र रहा है, यह एक समृद्ध व्यापारिक नगर तो था ही। इसके संक्षिप्त इतिहास पर दृष्टिपात करना उचित होगा।

हुमचा के प्रसंग में यह कहा जा चुका है कि अपने नरभक्षी पिता और विमाता के अत्याचारों से पीड़ित जैन धर्मानुयायी राजकुमार जिनदत्त ने उत्तर मथुरा से दक्षिण में आकर सान्तर नामक राजवंश की नींव पद्मावती देवी की कृपा से डाली। उसके उत्तराधिकारी जैनधर्म के प्रतिपालक ही रहे। किन्तु राजधानी हुमचा से कलस और फिर वहाँ से कारकल स्थानान्तरित हो गई। बारहवीं सदी के अन्त में इस वंश के शासकों पर लिंगायत मत का भी प्रभाव हो गया था, ऐसा कुछ लोगों का मत है। किन्तु कारकल के अनेक शिलालेख इस बात के साक्षी हैं कि कारकल में लगभग 500 वर्ष (तेरहवीं से सत्रहवीं सदी) तक शासन करने वाले सान्तर राजा मुख्य रूप से जैनधर्म के ही अनुयायी बने रहे, भले ही उन्होंने अन्य धर्मों के प्रति उदारता क्यों न दिखाई हो। ऐसी मान्यता है कि पद्मावती देवी ने एक बार 'भैरवी' का रूप भी धारण कर इन शासकों की सहायता की थी। इस कारण इस वंश के शासकों के नाम के साथ भैरव का भी प्रयोग होने लगा। ये शासक होय्सल, विजयनगर और इक्केरि राजाओं के सामन्त थे।

तेरहवीं शताब्दी की बात है, उस समय यहाँ जैनों के लगभग 700 घर थे, (अब कारकल में 50-60 जैन परिवार ही हैं)। सभी व्यापार आदि करके सरल परिणामी जीवन व्यतीत करते थे। किन्तु यहाँ सात ग्रामों का 'एलुनाडु कापिट्ट हेग्गडे' नामक जो शासक था वह जैनों एवं अन्य प्रजाओं पर अत्याचार करता था। उसी समय हुमचा के जैन शासक मूडबिद्री की यात्रा पर आये

हुए थे। लोगों ने उनसे अपने कष्ट का हाल कह सुनाया। इस पर भैरवराय ने हुमचा से सेना बुलाई और हेग्गडे को परास्त कर शासन से हटा दिया। फिर भैरवराय ने यहाँ एक राजमहल और उसके मध्य में एक जिन-मन्दिर बनवाया तथा अपनी राजधानी को 'पाण्ड्यनगर' नाम दिया। सन् 1262 ई. में भैरववंशी पाण्ड्यदेव ने यहाँ अपने हाथियों को पानी पीने के लिए 'आने केरे' (आने=हाथी, केरे=तालाब) का निर्माण कराया था। कारकल के समीप ही आज भी स्थित 'हिरियंगडि' नामक स्थान पर लोकनाथ देवरस के शासनकाल में, 1334 ई. में श्रावकों ने यहाँ की प्रसिद्ध शांतिनाथ बसदि और 60 फुट ऊँचा मानस्तम्भ बनवाया था। यहीं, जैन मन्दिरों के पास ही, सन् 1416 में रामनाथ नामक शासक ने एक सरोवर निर्माण कराके उसे अपना नाम दिया। यह आज भी 'रामसमुद्र' कहलाता है।

यहाँ के शासक भैररस ओडेय का पुत्र जब 1418 ई. में श्रवणबेलगोल के गोम्मटेश्वर के दर्शन करके लौटा तो उसने भी ऐसी ही मूर्ति कारकल में बनवाने का निश्चय किया। जब वह राजगद्दी पर बैठा तो उसने वर्तमान गोम्मटेश की विशाल मूर्ति 1432 ई. में स्थापित करायी। अभिनव पाण्ड्यदेव ने 1457 ई. में हिरियंगडि की नेमिनाथ बसदि को दान दिया था। हिरिय भैरवदेव ने 1462 ई. में यहाँ जैन मठ की स्थापना कराई जो कि आज भी विद्यमान है। प्रसंग यों उपस्थित हुआ कि पनसोगे और मूडबिद्री दोनों के ही भट्टारक उसके गुरु थे। एक बार राजा ने 'सौभाग्य नोंवि' नामक व्रत करने में सहायता के लिए मूडबिद्री के भट्टारकजी को निमन्त्रित किया किन्तु मूडबिद्री के शासक भी यही व्रत कर रहे थे। इसलिए उन्होंने एक त्यागी को कारकल भेज दिया। राजा इससे अप्रसन्न हुआ और उसने उन त्यागी का ही पट्टाभिषेक करवाकर यहाँ पनसोगे मठ की शाखा स्थापित कर दी और भट्टारकजी को ललितकीर्ति नाम दे दिया।

इम्मडि भैरवराय सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु था। पुर्तगालियों ने गोआ में अत्याचार किए थे। उसके परिणामस्वरूप जब वहाँ के सारस्वत ब्राह्मण इस नरेश के आश्रय में आये तो इस शासक ने न केवल उन्हें आश्रय दिया अपितु उनके लिए 'वेंकटरमण देवस्थान' भी बनवा दिया। भैरव द्वितीय ने 1586 ई. में यहाँ का सुप्रसिद्ध चतुर्मुख मन्दिर बनवाया था। कीर्ति का लोभ क्या नहीं करा लेता। यहाँ के शासक दामगि इम्मडि भैरवराय को जब यह पता चला कि वेणूर में भी कारकल जैसी गोम्मटेश मूर्ति प्रतिष्ठापित होनेवाली है तो उसे लगा कि इससे कारकल की कीर्ति कम होगी। इसलिए मूर्ति की प्रतिष्ठा को रोकने के लिए उसने वेणूर के शासक के विरुद्ध 1602 ई. में युद्ध छेड़ दिया जिसमें वह हार गया था। अगले शासक वीर पाण्ड्य के समय में वेणूर की अजिल रानी मधुरक्का थी। उसने वेणूर के गोमटेश्वर का महामस्तकाभिषेक कराना चाहा तो वीरपाण्ड्य इससे सहमत नहीं हुआ। इस पर रानी ने उसे ग्राम भेंट में दिया तब कहीं महामस्तकाभिषेक सम्पन्न हो सका। वीर पाण्ड्य से आगे इस वंश का इतिहास नहीं है और न ही उनके वंशज अब विद्यमान हैं। जो भी हो, इन शासकों के युग में कारकल में अद्वितीय जैन स्मारकों का निर्माण हुआ जिन्हें देखने वास्तुविद्, कलाप्रेमी और तीर्थयात्री सभी आते हैं।

क्षेत्र-दर्शन

चतुर्मुख (चौमुखी) बसदि या त्रिभुवनतिलक चैत्यालय—आजकल इसे इन दो नामों से जाना जाता है किन्तु इसके निर्माण सम्बन्धी शिलालेख में इसे 'त्रिभुवनतिलक जिन चैत्यालय' और 'सर्वतोभद्र चतुर्मुख' कहा गया है (देखें चित्र क्र. 67)।

इस मन्दिर के निर्माण की भी एक अनुश्रुति है। यहाँ के राजा भैरवराय के शासनकाल में एक बार शृंगेरी मठ के शंकराचार्य कारकल आये। राजा ने उनका आदरपूर्वक स्वागत-सत्कार किया। जब वे वापस जाने लगे तो राजा ने उनसे अनुरोध किया कि वे कुछ दिन और कारकल में ठहरें। इस पर शंकराचार्य नरसिंह भारती ने कहा कि वैदिक देवस्थान रहित स्थान पर वे अधिक नहीं रुकेंगे। यह सुनकर राजा ने (1567 ई. में) जो मन्दिर जिनेन्द्रदेव के लिए बनवाया था उसमें ही शेषशायी विष्णु की मूर्ति स्थापित करवा दी और उसके लिए 'नेल्लिकारू' गाँव भी दान में दे दिया। आजकल यह 'अनन्तशयन देवस्थान' कहलाता है। सुन्दर शिल्प-कलायुक्त यह मन्दिर भी यहाँ के दर्शनीय स्थानों में से एक है। जैन मन्दिर के लिए प्रस्तावित स्थान को जैनेतर मन्दिर के लिए दे देने पर यहाँ के भट्टारक ललितकीर्ति अप्रसन्न हुए। सदा की भाँति जब राजा उनके दर्शन के लिए गया तो उन्होंने उसे 'धर्मद्रोही' कहा। अपने गम्भीर स्वभाव के अनुसार राजा ने उत्तर दिया कि राजा को समभावी या सबको एक ही दृष्टि से देखनेवाला होना चाहिए, यही उसका कर्त्तव्य है। फिर भी, उसने भट्टारकजी को सन्तुष्ट करने के लिए यह प्रतिज्ञा की कि वह 'अनन्तशयन देवस्थान' से भी अधिक सुन्दर जैन मन्दिर बनवाएगा। तदनुसार 'चतुर्मुख बसदि' का कार्य प्रारम्भ हो गया। बाहुबली की मूर्ति पहले से ही उसके सामने की पहाड़ी पर प्रतिष्ठित थी।

चतुर्मुख बसदि में 1586 ई. का संस्कृत तथा कन्नड़ में एक शिलालेख है। उसमें वीतराग को नमस्कार करके कहा गया है कि राजा भैरवेन्द्र ने देशीगण पनसोगा के भट्टारक ललिकीर्ति मुनीन्द्र के उपदेश से यह मन्दिर बनवाया। लेख में पोम्बुर्च्च (हुमचा) की पद्मावती और पार्श्वनाथ तथा दोर्बलि (बाहुबली) के आशीर्वाद की कामना की गई। भैरवेन्द्र की माता का नाम गुम्मटाम्बा था। भैरवेन्द्र जिनदत्तराय (जैन सान्तर वंश के संस्थापक) का वंशज था और जिन गंधोदक से उसका शरीर पवित्र था। उसने निःश्रेयस् सुख की प्राप्ति के लिए कारकल की पाण्ड्यनगरी (कारकल की उपनगरी) में गुम्मटेश्वर के पास की कैलासगिरिसन्निभ चिक्कबेट्ट (छोटी पहाड़ी) पर सर्वतोभद्र (जिसमें चारों ओर मूर्ति होती हैं) चतुर्मुख रत्नत्रय रूप त्रिभुवन-तिलक जिन-चैत्यालय का निर्माण स्वर्णकलश की स्थापना कर कराया और उसमें अरनाथ, मल्लिनाथ तथा मुनिसुव्रतनाथ की मूर्तियाँ तथा पश्चिम दिशा में चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ स्थापित कराईं।

इसी लेख से ज्ञात होता है कि इसके लिए तेलार नामक गाँव दान में दिया गया था जिससे 700 'मूडे' (धान्य) की प्राप्ति थी। इंजाल और तल्लूर गाँवों से भी आय होती थी जिससे पूजन का खर्च चलता था। नित्य पूजन के लिए 14 स्थानिक (पुजारी) नियुक्त थे। सबसे अधिक भीड़ पश्चिम द्वार की बेदी पर होती थी क्योंकि वहाँ चौबीसी थी। मन्दिर में बसनेवाले ब्रह्म-

चारियों को आठ कम्बल शनि-निवारण के लिए और आवश्यक वस्तुएँ मन्दिर की ओर से दी जाती थीं। यह ब्यौरा शिलालेख में दिया गया है। वर्तमान में यह मन्दिर सरकार द्वारा संरक्षित स्मारक है। किन्तु इसमें आज भी विधिवत् पूजन होती है।

चतुर्मुख बसदि की रचना एक विशाल मण्डप के रूप में की गई है। उसका प्रवेशद्वार उन्नतहै। यहाँ चारों ओर स्तम्भयुक्त चार प्रवेशमण्डप हैं। इसी प्रकार चारों ओर बरामदा भी है। चारों ओर मुखद्वार भी हैं। ऊपरी आवरण ढलुआ है और बहुत सुन्दर दिखता है। वह एक के ऊपर एक शिला सँजोकर बनाया गया है। संभवतः एक अटूट चट्टान पर निर्मित यह मन्दिर दूर से ही पर्यटक का ध्यान आकर्षित करता है। इस मन्दिर में कुल 108 स्तम्भ हैं जिनमें से 40 मन्दिर के अन्दर हैं और 68 उससे बाहर। उसके विशाल 28 स्तम्भों पर विविधतापूर्ण सुन्दर नक्काशी है।

गर्भगृह के प्रवेशद्वार के सिरदल पर पद्मासन में तीर्थंकर प्रतिमा उत्कीर्ण है। उसमें तीन तरफ क्रमशः अरहनाथ, मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ की प्रतिमाएँ और चौथी ओर चौबीस तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। श्रुतस्कन्ध, ब्रह्मदेव और पद्मावती की प्रतिमाएँ भी हैं। मूर्तियों का आसन उत्कीर्ण है, और उसे प्रत्येक दिशा में तीन-तीन सिंह सँभाले हुए हैं। यह आसन वर्गाकार है। गर्भगृह के चारों ओर गन्धकूट हैं, एक उससे बाहर और तीसरा उससे भी बाहर है। इसी प्रकार दो प्रदक्षिणा-पथ हैं तथा तीसरा प्रदक्षिणा-पथ बाहर से भी है। मन्दिर के दक्षिण द्वार से पहले सोपान-जंगला है जिसपर व्याल अंकित हैं। प्रथम प्रवेशद्वार के सिरदल पर गजलक्ष्मी, उससे ऊपर पद्मासन तीर्थंकर और द्वारपाल भी अंकित हैं। उससे दाहिने स्तम्भ पर गणेश का अंकन है तथा नीचे के दाहिनी ओर के स्तम्भ पर आपस में गुँथे सर्प प्रदर्शित हैं।

इस मन्दिर में काले पाषाण की सात फुट ऊँची कायोत्सर्ग तीन मूर्तियाँ हैं। ये तीनों अलग-अलग किस्म के पाषाणों से निर्मित हैं। उनके पीछे कोई आधार (Support) नहीं है। उनके हाथ और पैरों के बीच से दरवाज़ा (सामने का) दिखता है। निर्माण की यह एक विशेषता है। दीपावली से एक दिन पहले प्रतिमाओं पर तिल का तेल लगाकर और उन्हें पोंछकर पूजा की जाती है। इसी प्रकार यहाँ एक छोटा-सा दर्पण लगा है जिसमें इस मन्दिर के सामने की पहाड़ी पर खड़ी बाहुबली की मूर्ति दिखाई पड़ती है। पश्चिम द्वार की ओर आठ फुट ऊँचा शिलालेख है। उत्तर में, दीवालों पर राधा-कृष्ण उत्कीर्ण है। एक वर्ग में दो सर्प और संगीत मंडली का उत्कीर्णन है। प्रवेशद्वार के सामने के स्तम्भ पर 'गजवृषभ' का सुन्दर अंकन है—शरीर बैल और हाथी का किन्तु मुख एक ही। यदि इसको हाथ से आधा ढँका जाए तो हाथी और दूसरा भाग आधा ढँका जाए तो वृषभ दिखाई देता है। यहीं पेड़ पर चढ़ता एक आदमी भी उत्कीर्ण है। उसके नीचे कमल युक्त सरोवर है। पूर्व दिशा में भी, नर्तक-दल अंकित है। इस ओर के दो स्तम्भों पर कायोत्सर्ग प्रतिमाएँ भी हैं। दीवाल पर राम, सीता, हनुमान, लक्ष्मण और गरुड़ उत्कीर्ण हैं। इसी प्रकार दो साधु कमण्डलु लिये अंकित हैं। अन्य मतों के पूज्य पुरुषों का भी अंकन उस युग के जैनों की समदर्शिता और सहिष्णुता के ठोस प्रमाण हैं। जैन मन्दिरों में इस प्रकार के अंकन मन्दिर के बाहर ही किए जा सकते थे। मन्दिर के चारों ओर स्तम्भों एवं दीवाल पर नाना प्रकार का सूक्ष्म अंकन है। उसे ध्यान से देखना चाहिए। छत में पुष्प का अंकन मनो-

हारी है, विशेषकर सौ दलों वाला एक ही पुष्प। प्रतिमाओं को विशेष ध्यान से देखने पर, विशेषकर उनके अन्तर से दिखनेवाले द्वार आदि आश्चर्यकारी हैं। मन्दिर के पूर्व में नीचे रामसमुद्र नामक तालाब दिखाई देता है और आगुम्बे घाटी तथा चारमाडि पहाड़ियों का सुहावना दृश्य आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो जाता है।

कारकल के गोम्मटेश

श्रवणबेलगोल की 57 फुट ऊँची बाहुबली प्रतिमा वहाँ के पहाड़ की एक चट्टान को काटकर बनाई गई है लेकिन कारकल के गोम्मटेश की मूर्ति (देखें चित्र क्रमांक 68) का निर्माण अपने वर्तमान स्थान से लगभग एक कि. मी. की दूरी पर हुआ था और उसे वहाँ से वर्तमान पहाड़ी पर लाकर स्थापित किया गया था। प्रतिमा के निर्माण का इतिहास बड़ा दिलचस्प है।

गोम्मटेश की मूर्ति की प्रतिष्ठा ई. सन् 1436 में हुई थी। एक विदेशी कलाविद् वालहाउस ने लिखा है कि इस मूर्ति को देखकर उन्हें परियों की कहानी याद आ जाती है कि किस प्रकार उनका किला था, उसका परकोटा और आसपास के प्राकृतिक दृश्य थे। यहाँ की पहाड़ी, मूर्ति और परकोटा तो यह भावना जगाते ही हैं, उसके निर्माण की रोचक कहानी कोई भी बड़े चाव से सुन और सुना सकता है। हमें इसका विवरण चदुरचन्द्रभ नामक कन्नड़ कवि की रचना 'कार्कलद गोमटेश्वर चरिते' (रचना-काल 1646 ई.) में प्राप्त होता है। कवि स्वयं इसी तुलुनाडु प्रदेश का निवासी था। उसे यहाँ के शासक भैरवराय का भी आश्रय प्राप्त था।

सन् 1418 ई. में राजा भैरवराय का पुत्र (युवराज) वीर पाण्ड्य भैररस उत्तर देश की यात्रा करके जब श्रवणबेलगोल पहुंचा तो वहाँ की बाहुबली मूर्ति के दर्शन कर अत्यन्त आनन्द विभोर हुआ। वहीं उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि वह भी ऐसी ही प्रतिमा का निर्माण कारकल में करायेगा। सन् 1432 ई. में वह राज्य सिंहासन पर बैठा और अपनी कीर्ति अजर-अमर करने के लिए उसने मूर्ति-निर्माण का कार्य प्रारम्भ करवा दिया। राजा को अपने महल के बाईं ओर, पार्श्व में ही, तत्काल एक उन्नत शिला दिखाई पड़ी। वह भट्टारक ललितकीर्ति को अपने साथ लेकर शिला दिखाने के लिए निकल पड़ा। ललितकीर्ति के यह कहने पर कि वे जहाँ आये हैं वहाँ की वज्रशिला से गोम्मटेश मूर्ति का निर्माण किया जा सकता है, राजा ने तत्काल शिला की पूजा की और इस प्रतिमा के निर्माण का कार्य समारोहपूर्वक शिल्पियों को सौंप दिया। राजा ने शिल्पियों को यह कहकर प्रोत्साहित किया कि उन्हें पुण्य और यश का भागी बनना चाहिए। उसके बाद भट्टारकजी ने शिल्पियों को बाहुबली की कथा सुनाई।

शुभ मुहूर्त में राजज्योतिषी की सलाह पर यह कार्य प्रारम्भ करने से पहले राजा ने शिल्पियों को मुहूर्त-भेंट देकर संतुष्ट किया। मूर्ति-निर्माणकर्ताओं ने एक वर्ष तक तन्मयतापूर्वक परिश्रम करके मूर्ति का स्थूल आकार तैयार कर लिया। अब यह समस्या उत्पन्न हुई कि मूर्ति को वर्तमान पहाड़ी पर कैसे ले जाया जाए। (मूर्ति अपने वर्तमान स्वरूप में 42 फुट ऊँची और लगभग 80 टन वजन की है। अपनी अनगढ़ अवस्था में वह और भी वजनी तथा लम्बी रही होगी।) मूर्ति को खूब गठी हुई रस्सियों से बाँधा गया, और बीस पहियों की एक लम्बी गाड़ी बनाई गई। इस गाड़ी को खींचने में स्वयं राजा, दण्डनायक, सौभाग्यवती स्त्रियाँ, पुरुष और

आबालवृद्ध हजारों लोग सम्मिलित हुए। जयघोष और गाजे-बाजे के साथ यह गाड़ी बहुत कम आगे सरकती थी। उस समय उसके भार से ऐसा लगता था कि पृथ्वी हिल रही है। राजा और मन्त्री आदि उच्चाधिकारी लोगों का उत्साह बढ़ाते थे। लोगों की थकान दूर करने के लिए राजा स्वयं अपने हाथों से लोगों को मीठे पेय पदार्थ, आम, खजूर आदि फल तथा खाद्य पदार्थ बाँटता था। राजा ने गाड़ी के पहियों में बेशुमार नारियल बँधवाये थे। अन्त में मूर्ति का यह स्थूल आकार एक माह के परिश्रम के बाद वर्तमान पहाड़ी पर पहुँच गया।

गोम्मटेश की मूर्ति को सुघड़ रूप देने का कार्य अब पहाड़ी पर प्रारम्भ हुआ। शिल्पियों के लिए राजा ने 72 खम्भों वाला एक मण्डप बनवा दिया। राजा उन्हें प्रोत्साहित करता रहा था। फिर भी मूर्ति को वर्तमान रूप देने में एक वर्ष और लग गया। जब प्रतिमा तैयार हुई तो उसे खड़ा करने की अत्यन्त कठिन समस्या सामने आई। पहाड़ी एक-सी तो थी नहीं, उसे समतल भी नहीं किया जा सकता था। अस्तु, राजा ने एक हजार सब्बल लगवाए और पच्चीस हजार जनता ने अपनी पूरी ताकत लगाकर मूर्ति को 13 फरवरी 1432 के दिन अपने स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया। उस दिन का वातावरण भी अभूतपूर्व था। राजा स्वयं जयजयकार कर रहा था, मंगलाचरण एवं स्तुति पढ़ी जा रही थीं; कवि,गायक और ललनाएँ कोमल सुमधुर स्वरों में गा रहे थे। बाजे बज रहे थे और घण्टों का निनाद हो रहा था। इस अवसर पर अनेक राजमान्य व्यक्ति और सामन्त एवं अन्य राजा उपस्थित थे। विजयनगर के राजा कृष्णदेवराय भी अपनी नगरी से इस शुभ अवसर पर आये थे।

बाहुबली की मूर्ति-स्तम्भ के बाएँ और दाएँ जो शिलालेख उत्कीर्ण है उसके अनुसार, 'शक राजा के विरोध्यादिकृत वर्ष अर्थात् 1353 वर्ष के फाल्गुन शुक्ल, बुधवार के दिन सोमवंश के भैरवेन्द्र के पुत्र श्री वीर पाण्ड्येशी या पाण्ड्यराय ने यहाँ (कारकल में) बाहुबली की प्रतिमा बनवाकर प्रतिष्ठित कराई। यह प्रतिमा जयवंत रहे। यह कार्य उन्होंने देशीगण के पनसोगे शाखा की परम्परा में होने वाले ललितकीर्ति मुनीन्द्र के उपदेश से किया।'

गोम्मटेश्वर की मूर्ति-स्तम्भ के सामने जो ब्रह्मदेव स्तम्भ है उस पर भी यह आलेख (यहाँ के लोग 'शासन' कहते हैं) उत्कीर्ण है कि 'शक राजा के राक्षस नाम के 1358वें वर्ष में फाल्गुन शुक्ल 12 के दिन, जिनदत्त के वंशज भैरव के पुत्र श्री वीरपाण्ड्य नृपति की प्रत्येक इच्छा पूरी करने के लिए प्रतिष्ठापित यह जिनभक्त ब्रह्म (देव) प्रतिमा तुम्हारी भी मनोकामना पूरी करे।'

श्रवणबेलगोल की मूर्ति की ही भाँति, कारकल में बाहुबली की यह प्रतिमा कवियों, लेखकों एवं कला-पारखियों में कविता, लेखन या विवेचन का विषय रही है। पुरातत्त्व विशारद फर्ग्युसन, पर्सी ब्राउन, शिवराम मूर्ति आदि सभी ने इस पर प्रकाश डाला है। आधुनिक युग में, श्री जी. पी. राजरत्नम् ने अपनी पुस्तक 'कारकल का गोम्मट' में गोम्मट साहित्य का परिचय दिया है जो मराठी और तमिल आदि भाषाओं में भी उपलब्ध है। पर्सी ब्राउन ने इसे 'Carved out of living rock' बताया है। फर्ग्युसन ने इस बात की पुष्टि की है कि सचमुच यह मूर्ति और कहीं से बनाकर लाई गई और यहाँ प्रतिष्ठापित की गई।

गोम्मट का कन्नड़ में अर्थ होता है— सुन्दर, मनोहर तथा उत्तम। जैन पुराणों के अनुसार बाहुबली कामदेव थे। अतः मन्मथ के लिए प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग उनके लिए भी हुआ।

एक समय ऐसा भी आया जब गोम्मटेश की मूर्ति का पूजन बन्द हो गया। तब तत्कालीन भट्टारक ललितकीर्ति जी ने उस समय के शासक दावणि इम्मडि देवराय को इसका बोध कराया। इस राजा ने सन् 1646 की 16 फरवरी सोमवार को इस मूर्ति का महामस्तकाभिषेक कराया। उपर्युक्त कन्नड़ कवि ने इसे देखा था और उसका वर्णन किया है। अभिषेक से पहले पूजनादि का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। राजा ने लोगों के ठहरने के लिए पाण्ड्यपुरी (वर्तमान हिरियंगडी गाँव जो कारकल से लगा हुआ है) में 60 दानशालाओं (धर्मशालाओं) का निर्माण कराया था। पूजोत्सव में शामिल होने वालों के लिए 12 भण्डारों में अनाज आदि का संग्रह किया गया था। मचान बनाने के लिए पाँच हज़ार लोग पेड़ (बल्लियाँ) लाये थे। इस काम में उन्हें दो माह लगे थे। मूडबिद्री, केलदि आदि की जनता और शासकों ने कपड़ा, घी आदि पदार्थों का उदार दान दिया था। पूजा और अभिषेक-कार्य इस प्रकार सम्पन्न हुआ। पहले दिन हिरियंगडी के नेमिनाथ का पूजन हुआ। दूसरे दिन इन्द्रप्रतिष्ठा हुई। सर्वाह्न यक्ष की शोभा-यात्रा भी निकली। रात्रि को नांदी मंगल-विधि सम्पन्न हुई। तीसरे दिन बीजारोपण के लिए शुद्ध मिट्टी का संग्रह किया गया। सोने की थालियों में 18 प्रकार का धान बोया गया। इसके पश्चात् सर्वोषधि शुद्ध जल 12 कलशों में भरा गया। इस जल से मूर्ति शुद्धि की क्रिया संपन्न हुई। युवराज बाहुबली के राज्याभिषेक के बाद, वैराग्य विधि सम्पन्न हुई। उनके योगिराज होने का उत्सव मनाया गया। उनका केवलज्ञानोत्सव भी हुआ, और उसके बाद महामस्तकाभिषेक।

महामस्तकाभिषेक के समय 32 दण्डों के मण्डप में 1008 कुम्भों को सुनियोजित ढंग से रखा गया। उनके नीचे घास फैलाया गया। बाजे-गाजे के साथ सौभाग्यवती स्त्रियाँ 1008 कलशों में जल लायीं। इस जल से गोम्मटेश की भुजाओं और मस्तक पर जल-अभिषेक किया गया। उसके बाद दूध के समान सफेद नारियल के पानी से अभिषेक संपन्न किया गया। इसमें एक लाख नारियलों का पानी काम में लाया गया था। तत्पश्चात् केले के पके फलों, गुड़ और चीनी से भरे तीन सौ घड़ों, घी के 108 कलशों और दूध-दही से अभिषेक सम्पन्न हुआ। फिर चावल के आटे और हल्दी के चूर्ण से अभिषेक हुआ। चावल के आटे से अभिषेक के समय प्रतिमा चाँदी जैसी और हल्दी से अभिषेक के समय सोने जैसी लगती थी। इनके बाद कुमकुम, केशर, कपूर, चन्दन से अभिषेक हुआ। फिर सुगंधित फूलों की वर्षा और शान्ति-पूजन नवग्रह-शान्ति-विधान भी किया गया। संघपूजा, भट्टारक-पादप्रक्षालन, वसंतोत्सव के साथ महामस्तकाभिषेक पूर्ण हुआ।

अब यह महामस्तकाभिषेक बारह वर्ष में एक बार सम्पन्न होता है और प्रतिवर्ष माघ मास में रथोत्सव आयोजित किया जाता है।

काव्य-रचनाओं, स्तुतियों आदि में बाहुबली को गुम्मट, गोम्मट, गोम्मटेश, गोमट-जिन, गोम्मटेश्वर जिन, गोम्मट जिनेन्द्र, गोम्मटदेव कहा गया है।

गोम्मटेश-मूर्ति—जिस चिक्कबेट्ट (छोटी पहाड़ी) पर यह मूर्ति स्थापित है, वह जमीन से लगभग 300 फुट ऊँची है। उस पर जाने के लिए शिला को ही काट-काटकर 182 पुरानी सीढ़ियाँ और 30 नई सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। पहाड़ी इतनी ऊँची है कि मूर्ति के दर्शन दूर से ही होते हैं, यहाँ तक कि मूडबिद्री की ओर जाने वाली बस में से ही मूर्ति का कुछ भाग दिखाई दे

जाता है। प्रतिमा का मुख उत्तर की ओर है। यहाँ लेटराइट मिट्टी से बने दो प्राकार हैं। बाहरी प्रवेशद्वार के सामने एक मानस्तम्भ है। यह 20 फुट ऊँचा है। उस पर खुले में पाँच फुट ऊँची ब्रह्मयक्ष की आसीन मूर्ति है (देखें चित्र क्र. 69)। वीर पाण्ड्य का शिलालेख इस स्तम्भ पर भी है इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अन्दर प्रवेश करते समय पूर्व में शीतलनाथ और पश्चिम में पार्श्वनाथ की चार फुट ऊँची मूर्तियाँ हैं। आगे ध्वजस्तम्भ है। उससे आगे एक प्रवेश-द्वार है। फिर बाहुबली की मूर्ति के दर्शन होते हैं। गोम्मट स्वामी का पादपीठ गोल है और सहस्रदल कमल के अंकन से युक्त है। मूर्ति पाषाण निर्मित अधिष्ठान पर स्थित है और उसके चारों ओर पाषाण से ही निर्मित वेदिका है। कुछ वास्तुविदों का मत है कि मूर्ति की लम्बाई और वजन की दृष्टि से मूर्ति का पादकमल छोटा है जो कि लगभग पाँच फुट ही है। मूर्ति की कुल ऊँचाई 42 फुट है। उसके दाएँ एक शिलालेख है और बायीं ओर 'श्रीवीर पाण्ड्य' खुदा है जिसे राजा के हस्ताक्षर माना जाता है।

प्रतिमा के पीछे जाँघों तक एक शिलाफलक है जिस पर बाँबी और लताओं का अंकन है। पादतल के समीप की बाँबी से सर्प निकलते दिखाए गए हैं। लताएँ जाँघों से लिपटती हुई, भुजाओं को समेटती ऊपर कन्धों तक चली गयी हैं। मूर्ति के उदर पर त्रिवलय (तीन रेखाएँ) लघुतर होती चली गई हैं। इसी प्रकार गले में भी रेखाएँ दिखाई गई हैं। बाल घुँघराले हैं। गोम्मट स्वामी कुछ गम्भीर शान्त मुद्रा में हैं, जो एक तपस्यारत श्रमण के सर्वथा उचित है।

मूर्ति इस समय भारतीय पुरातत्त्व विभाग के नियन्त्रण में एक संरक्षित स्मारक के रूप में है। पूजन होती है।

गोम्मटेशगिरि से पूरा कारकल नगर दिखाई देता है। यहाँ से नारियल के वृक्षों का सुन्दर दृश्य मन को मोह लेता है। यहीं से पश्चिमी घाट की पहाड़ियों का प्रत्यक्ष चित्र भी देखने योग्य है। बाहुबली के पीछे की ओर लगभग एक किलोमीटर की दूरी से एक राजमार्ग कुद्रेमुख जाता है।

कारकल स्थित अन्य मन्दिरों की यात्रा

पार्श्वनाथ मन्दिर—पहाड़ी से नीचे यह मन्दिर है। इसमें पार्श्वप्रभु की लगभग 18 इंच की पद्मासन प्रतिमा है। सफेद संगमरमर की पद्मावती मूर्ति भी है। देवी के चमत्कार के रूप में यह कहा जाता है कि यदि देवी की इच्छा मनोकामना पूर्ण करने की हो तो समीप में ही स्थित रामसमुद्र नामक तालाब में कमल के फूल खिल उठते हैं। मन्दिर पुराना है किन्तु उसका जीर्णोद्धार हो चुका है।

चन्द्रनाथ मन्दिर—दिगम्बर जैन मठ में चन्द्रनाथ मन्दिर है। इसमें पंचधातु की चन्द्रप्रभ की खड्गासन मूर्ति है। कूष्माण्डिनी की भी प्रतिमा है। यहीं पाषाण की तीन फुट ऊँची भट्टारकजी की गद्दी है। वर्तमान भट्टारक स्वस्ति श्री ललितकीर्ति जी की आयु सामग्री संकलन के समय (1985 ई. में) 82 वर्ष थी। लगभग 50 वर्ष पूर्व उनका पट्टाभिषेक हुआ था। यहाँ का मठ 'दानशाला मठ' कहलाता है।

बाहुबली श्राविकाश्रम—इस में भी दर्शन के लिए मूर्ति है। इस आश्रम में छठी-सातवीं से लेकर अभी उपाधि-कक्षा तक की श्राविकाएँ अध्ययन करती हैं। श्री वीरेन्द्र हेग्गड़े जी की माता श्रीमती रत्नम्मा इसकी अध्यक्षा हैं। यहाँ के मन्दिर में सोलह स्वप्नों का सुन्दर अंकन है। णमोकार-मन्त्र नागरी और कन्नड़ में लिखा है। यह आधुनिक मन्दिर है।

बम्मराज बसदि—मठ से कुछ आगे बम्मराज नामक प्राचीन बसदि है जिसका जीर्णोद्धार हो चुका है। मन्दिर छोटा, ढलुआ छत वाला और स्तम्भों से युक्त है। यहाँ पार्श्वनाथ की लगभग तीन फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा है जिसकी सर्पकुण्डली घुटनों तक आई है। प्रतिमा के साथ मकर जल उगलते दिखाए गए हैं।

यहीं रामसमुद्र नाम का तालाब है। उसका जल मीठा है और नहाने आदि के उपयुक्त है। इसे यहाँ के रामनाथ राजा ने बनवाया था।

ऊपर वर्णित मन्दिर आदि एक प्रकार से मठ-क्षेत्र है। इसी में गोमटेश धर्मशाला भी है जिसके तीन अलग-अलग खण्ड हैं। इस क्षेत्र की सड़क मठ-रोड या दानशाला-रोड कहलाती है।

चतुर्मुख बसदि के अर्चक पुजारी श्री नाभिराजेन्द्र का निवास भी पास ही में है। उनके घर में भी एक चैत्यालय है जिसमें पार्श्वनाथ और पद्मावती की प्रतिमाएँ हैं।

श्रवण बसदि—मठ के ठीक सामने की सड़क से हम श्रवण बसदि या चन्द्रनाथ बसदि पहुँचते हैं। इसका निर्माण 1604 ई. में हुआ था। यह मन्दिर हुमचा-मठ के अधीन है। इसके मूलनायक चन्द्रप्रभ हैं जिनकी लगभग चार फुट ऊँची प्राचीन प्रतिमा छत्रत्रयी, मकर-तोरण से युक्त है एवं कमलासन पर विराजमान है। कमलासन पर कन्नड़ में लेख है। यक्षी ज्वाला-मालिनी की मूर्ति भी यहाँ है। मन्दिर के स्तम्भों पर पूर्णकुम्भ का अंकन है। प्रवेशद्वार के सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर और उससे भी ऊपर एक वेदी में पद्मासन मूर्ति है। पूरा मन्दिर मोटे-मोटे पाषाण-स्तम्भों से निर्मित है। उसका मुखमण्डप या सामने का बरामदा तीनों ओर से खुला है, उत्कीर्णित स्तम्भों पर आधारित तथा ढलुआ छत से आच्छादित है। इस स्थान की मूर्ति उसी नेल्लिकर (Nellikar) पाषाण की बनी हुई है जिससे चतुर्मुख बसदि की मूर्तियाँ बनी हैं।

केरे बसदि या चतुर्मुख बसदि—कन्नड़ भाषा में केरे का अर्थ तालाब होता है। यह मन्दिर 300 वर्ष प्राचीन बताया जाता है। यह एक बड़े तालाब में बना है। तालाब गर्मियों में सूख जाता है। उस तक जाने के लिए मुख्य सड़क से ही एक ऊँचा रास्ता है।

इसमें सोपान-जँगला भी है।

बसदि का अहाता बड़ा है। द्वार की चौखट पाषाण-निर्मित है। गर्भगृह लाल मटीले पत्थर का बना है। गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ है। पश्चिम में ऊँचे चबूतरे पर एक शिला-लेख भी है। इस बसदि में कुल 20 स्तम्भ हैं। चारों ओर खुला बरामदा है। मन्दिर जीर्णोद्धार की अपेक्षा रखता है। गोल वेदी पर चार तीर्थंकर-मूर्तियाँ इस प्रकार हैं—पूर्व में आदिनाथ, दक्षिण में चन्द्रप्रभ, पश्चिम में शान्तिनाथ और उत्तर में वर्धमान। मूर्तियों पर छत्रत्रयी और यक्ष-यक्षी भी हैं। शिखर नहीं है।

अरमने बसदि—अरमने का अर्थ है राजमहल। इस बसदि के सामने जैन राजा का

महल था। नागरी, कन्नड़ और अँग्रेजी में श्री आदिनाथ मन्दिर लिखा है। द्वार पर एक हाथी का चित्र बना है। मन्दिर सामने से एक साधारण मकान-जैसा लगता है। इसका अहाता बड़ा है। उसके सामने एक खुला बरामदा है। मन्दिर की दीवालें विशेष लाल पत्थर की बनी हैं। लकड़ी का पुराने ढंग का, पीतल-मढ़ा दरवाजा है। मन्दिर में लकड़ी के ही स्तम्भ हैं और छत भी लकड़ी की है। छत ढलुआ है। चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ है। बसदि में महावीर स्वामी की संगमरमर की मूर्ति है। आदिनाथ एवं अन्य तीर्थंकरों की भी मूर्तियाँ हैं। शिखर नहीं है। यक्ष-यक्षी पीतल के हैं तथा मकर-तोरण एवं कीर्तिमुख से संयुक्त हैं।

व्यन्तर-स्तम्भ—उक्त मन्दिर के दाहिनी ओर पाषाण का एक छोटा स्तम्भ है। बताया जाता है कि उस पर 'कलकुडा' नामक व्यन्तर का वास है। महामस्तकाभिषेक से पहले और हर माह संक्रान्ति में पूजन की जाती है ताकि कार्य निर्विघ्न समाप्त होते रहें। इसी स्तम्भ के पास लाल चम्पा फूल का एक पेड़ है जो 300 वर्ष पुराना बताया जाता है। अब इस ज़मीन पर जैन हाईस्कूल बन रहा है।

नेमिनाथ बसदि—कारकल से बिल्कुल लगा हुआ हिरयंगडी गाँव है। यहीं सड़क मन्दिरों तक जाकर समाप्त हो जाती है। आगे पहाड़ी आ गई है। इस छोटे से क्षेत्र में प्राचीन नेमिनाथ बसदि और प्रसिद्ध मानस्तम्भ है।

अब्बगदेवी बसदि या आदिनाथ बसदि—यह नाम नागरी में भी लिखा है। इसे रानी अब्बग ने बनवाया था। यह लगभग 300 वर्ष पुराना छोटा-सा मन्दिर है जिसका जीर्णोद्धार भी हो चुका है। इसमें मूलनायक आदिनाथ की लगभग तीन फुट ऊँची काले पाषाण की प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है। उसके घुटनों का नवीन चित्रण ध्यान देने योग्य है। पीछे पीतल का फलक है। यहीं सामने के दूसरे कक्ष में पीतल की प्रतिमाएँ हैं। इसके स्तम्भ पाषाण के हैं। प्रदक्षिणा-पथ भी है। छत्र टाइल्स की है।

उपर्युक्त मन्दिर के पास लगभग 15 फुट चौड़ा एक छोटा मन्दिर है। उसकी छत भी टाइल्स की है। अहाता अवश्य कुछ बड़ा है। यहाँ सूचनापट्ट लगा है—'श्री कर्नाटक जैन पुरोहित संघ'। मन्दिर के सामने पीपल का एक पेड़ है जहाँ नागफलक है। मन्दिर में दो तल वाली पीतल की वेदी है। उस पर संगमरमर की महावीर स्वामी की प्रतिमा है। पीतल का भामण्डल भी है। नीचे ब्रह्मयक्ष है। सर्वाह्न यक्ष के मस्तक के ऊपर धर्मचक्र है। पीतल का ही एक नन्दीश्वर द्वीप भी है। आसपास लकड़ी का घेरा और प्रदक्षिणा-पथ है।

गम्मतिकारी बसदि या पार्श्वनाथ बसदि—यह भी एक छोटा मन्दिर है। यह कुछ जीर्ण अवस्था में है। इसमें नेल्लिकेरे पाषाण की ही, लगभग चार फुट ऊँची पार्श्वनाथ की मूर्ति कायोत्सर्ग मुद्रा में है। पादमूल में यक्ष-यक्षी हैं। सर्पकुण्डली घुटनों तक प्रदर्शित है। मन्दिर की छत ढलुआ और पाषाण-निर्मित है।

साठ फुट ऊँचा मनोहर मानस्तम्भ—उपर्युक्त मन्दिर से सड़क के अन्त में एक बहुत ऊँचा मानस्तम्भ दिखाई देता है। यह पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में है। एक ही शिला से निर्मित यह मानस्तम्भ लगभग 60 फुट ऊँचा बताया जाता है। इसका निर्माण 1553 ई. में हुआ था। यह तीस मील दूर, बारकुर से लाया गया था। अनुश्रुति है कि इसे लाते समय राजा से यह बात

हुई थी कि वह इसे मूडबिद्री ले जायेगा। किन्तु यदि नदी पार करके सूर्यास्त से पहले वहाँ नहीं पहुँच सका तो यह कारकल में ही स्थापित कर दिया जायेगा। इसमें हाथी आदि की सुन्दर नक्काशी है और उत्तम मानस्तम्भों में इसकी गणना होती है। इसके चारों ओर कायोत्सर्ग तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। इसी के पास एक ध्वजस्तम्भ भी है।

चाम बसदि या आदिनाथ बसदि—बाईं ओर यह मन्दिर है। चाम एक नाम है। मन्दिर छोटा है—लगभग 20 फुट चौड़ा। शिखर नहीं है। सोपान-जँगला है। प्रवेशद्वार के सिरदल पर पद्मासन में तीर्थंकर-मूर्ति है और नीचे पूर्ण-कुम्भ है। सारा मन्दिर स्थानीय लाल पत्थर का है। ऊपर ग्रेनाइट की छत है। मूलनायक आदिनाथ की लगभग तीन फुट ऊँची प्रतिमा खड्गासन में है।

अनन्तनाथ बसदि—श्रवण बसदि की लाइन में यह मन्दिर स्थित है। उसके सामने बारह स्तम्भों का खुला भद्रमण्डप है। सोपान-जंगला भी है। काले पाषाण की तीन फुट ऊँची अनन्तनाथ की खड्गासन प्रतिमा यक्ष-यक्षी तथा अशोक वृक्ष सहित है। मूर्ति की प्रभावली पाषाण की है। मन्दिर की दीवालें स्थानीय लाल पत्थर की हैं। चारों ओर 22 स्तम्भ हैं और तीन ओर से खुला बरामदा है। छत पर टाइल्स और कलश हैं।

गुरु बसदि—उपर्युक्त मन्दिर के पास ही है। इसके सामने चार स्तम्भों का भद्रमण्डप है। प्रवेश-मार्ग पर तीन फुट ऊँचे दो सुसज्जित हाथी निर्मित हैं। प्रवेशद्वार के दोनों ओर द्वारपाल हैं। नीचे हंस और पूर्णकुम्भ अंकित हैं। सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है। एक ओर वेदी में, कांस्य की मकर-तोरण और कीर्तिमुख युक्त चौबीसी है। अन्य तीर्थंकर-प्रतिमाएँ भी हैं। लकड़ी का गन्धकूट भी यहाँ है। पीतल की एक चौकोर चौबीसी भी इस मन्दिर में है। इसके स्तम्भ पाषाण के हैं। पीछे की ओर पत्थर की जाली है। बाहर तीन फुट चौड़ा बरामदा है। स्तम्भों की कुल संख्या 22 है। बरामदे की ढलुआ छत पाषाण की है। ऊपर तीन छोटे-छोटे कलश हैं। छत टाइल्स की है।

भट्टारक स्मारक—मन्दिर के दाहिनी ओर एक निषधिका है। यहाँ एक अद्भुत भट्टारक स्मारक है। तीन शिलाओं पर अंकन है। शिलाएँ अलग-अलग हैं मगर जुड़ी हुई हैं। उनके शीर्ष भाग में नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमान की मूर्तियाँ पद्मासन में हैं। नीचे 12 मुनियों के चित्र अंकित हैं जिनके नाम हैं (ऊपर की पंक्ति में) : 1. कुमुदचन्द्र, 2. हेमचन्द्र, 3. चारुकीर्ति पण्डितदेव, 4. श्रुतमुनि, 5. धर्मभूषण और 6. पूज्यपाद स्वामी। नीचे की पंक्ति में 1. विमलसूरि, 2. श्रीकीर्ति, 3. सिद्धान्तदेव, 4. चारुकीर्तिदेव, 5. महाकीर्ति और 6. महेन्द्रकीर्ति।

इस स्मारक में एक पुस्तक दिखाई गई है। उसके पास प्रत्येक ओर बीच में भट्टारक हैं और नीचे दो भट्टारक किसी विषय पर चर्चा करते दिखाए गये हैं। यह स्मारक अपने ढंग का एक ही है।

हिरे बसदि या नेमिनाथ बसदि—यह यहाँ का प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर है। यह मानस्तम्भ के पीछे है। नागरी में नाम भी लिखा हुआ है। मानस्तम्भ तो इसके सामने हो ही गया। सामने ही बलिपीठ और ध्वजस्तम्भ भी हैं। मन्दिर बड़ा भव्य है। चतुर्मुख मन्दिर के बाद, बड़े मन्दिरों में इसकी गणना होती है। यह बसदि पाषाण निर्मित है। इसका निर्माण पाण्ड्य चक्रवर्ती के काल

में 1319 ई. में हुआ था।

उपर्युक्त बसदि का प्रवेशद्वार त्रिशाखा प्रकार का है। उसमें नीचे पूर्णकुम्भ और सिरदल पर तीर्थंकर की मूर्ति है। द्वार लगभग 15 फुट ऊँचा है। मन्दिर में जाने के लिए सोपान-जंगला है। इसका द्वार भी लगभग पन्द्रह फुट ऊँचा है। सिरदल पर भी पद्मासन में तीर्थंकर मूर्ति है। नीचे द्वारपाल प्रदर्शित हैं। गर्भगृह में तीर्थंकर नेमिनाथ की लगभग सात फुट ऊँची पद्मासन मूर्ति है जो 600 से अधिक वर्ष पुरानी बताई जाती है। प्रभावली पाषाण की है। मूर्ति के पीछे का फलक मकर-तोरण और कीर्तिमुख युक्त है। मूर्ति का आसन पाषाण का है। मूर्ति की पॉलिश अभी भी चमकदार है। गर्भगृह का द्वार पीतल का है। एक दूसरे प्रकोष्ठ में कांस्य की की छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं। वे भी 600 वर्ष पुरानी बताई जाती हैं। एक तीसरे कोष्ठ में काले पाषाण की आदिनाथ की लगभग चार फुट ऊँची मूर्ति कायोत्सर्ग मुद्रा में मकर-तोरण और कीर्तिमुख सहित है। ब्रह्मयक्ष की मूर्ति भी है। मन्दिर की छत पर कमल-पुष्पों का सुन्दर-अंकन है। प्रदक्षिणा-पथ की संयोजना भी है। प्रवेश-मण्डप में 12 स्तम्भ हैं। प्रवेश करते ही दाहिनी ओर क्षेत्रपाल और उसी ओर 'जिनवाणी' है (एक भामण्डल सामने लगा है)। यही है 'श्री नेमिनाथ श्रुतभण्डार'। मन्दिर के सामने 12 स्तम्भों का भद्रमण्डप भी है। उससे आगे गोपुर है।

यहाँ फाल्गुन मास में पूर्णिमा के दिन रथोत्सव होता है।

आदिनाथ मन्दिर—नेमिनाथ बसदि से दाहिनी ओर अहाते में ही यह एक छोटा मन्दिर है। इसमें पंचधातु की लगभग चार फुट ऊँची आदिनाथ की प्रतिमा है। सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर और नीचे पूर्णकुम्भ हैं। यहाँ के दो स्तम्भों पर सुन्दर नक्काशी है। मन्दिर लगभग बारह फुट चौड़ा है।

चन्द्रप्रभ मन्दिर—यह आदिनाथ मन्दिर के सामने है। इसमें भी पंचधातु की चन्द्रप्रभ की चार फुट ऊँची प्रतिमा है। शेष विवरण आदिनाथ मन्दिर के समान है।

स्पर्शमला पहाड़ी—नेमिनाथ बसदि के पीछे 'स्पर्शमला पहाड़ी' है। अनुश्रुति है कि हाथी के पैर की जंजीर इसके पत्थर के सम्पर्क में आने से सोने की हो गई थी। यहाँ एक सुरंग भी है।

नेमिनाथ बसदि—यह बसदि अवश्य देखने योग्य है। उसमें ऊपर ताँबा लगा है ताकि वजन कम रहे। शिखर नहीं है। तीन छोटे कलश हैं। नीचे कवेलू लगे हैं।

अम्मनवर बसदि—यह बसदि मानस्तम्भ के दाहिनी ओर है। इसके प्रवेश-स्तम्भ पर एक शिलालेख है। सामने मानस्तम्भ के पास ध्वजस्तम्भ भी है। प्रवेश-द्वार के सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है। मूलनायक पार्श्वनाथ की मूर्ति पीतल की है। उसके पीछे मकर-तोरण एवं कीर्तिमुख है। एक ही पंक्ति में आदिनाथ से वर्धमान स्वामी तक चौबीस तीर्थंकरों की एक ही आकार की काले पाषाण की कायोत्सर्ग मुद्रा में छत्रत्रयी से युक्त लगभग दो फुट ऊँची प्रतिमाएँ हैं जो बड़ी भव्य लगती हैं। एक कुलिका में सरस्वती की तीन फुट ऊँची प्रतिमा है। प्रभावली पीतल की है। दूसरी ओर पद्मावती की तीन फुट ऊँची मूर्ति है जोकि हुमचा की पद्मावती मूर्ति से बड़ी है। पीतल का दो फुट का नन्दीश्वर भी है। पूर्णकुम्भ और पवित्र ग्रन्थि का भी अंकन है। गर्भगृह से बाहर के कोष्ठ में पीतल के फ्रेम में अनेक कांस्य-मूर्तियाँ हैं। समवसरण

तथा चँवरधारी आदि भी अंकित हैं।

उपर्युक्त पूरा ही मन्दिर पाषाण का है। उसकी छत पर कमल-पुष्पों का मनोहारी अंकन है। बारह स्तम्भ ऐसे हैं जो नीचे से ऊपर तक सुन्दर नक्काशी के काम से सजे हैं। स्तम्भों पर कायोत्सर्ग तीर्थंकर, मोतियों की मालाएँ, हाथी, पूर्णकुम्भ, नृत्य करती बालाएँ और मृदंग-वादक उत्कीर्ण किये गये हैं। ये अंकन मन्दिर को भव्यता प्रदान करते हैं। चारों ओर ढलुआ छत है। पत्थर का छोटा शिखर भी है। मन्दिर लगभग 60 फुट × 40 फुट है।

गुरुराय बसदि या चन्द्रप्रभ मन्दिर—इसमें काले पाषाण की चन्द्रप्रभ की चार फुट ऊँची मूर्ति है। प्रभावली नहीं है। पाषाण के प्रवेशद्वार के सिरदल पर ऊपर पद्मासन तीर्थंकर और नीचे द्वारपाल हैं। मन्दिर छोटा है। शिखर नहीं है। ताँबे का छोटा कलश है, छत टाइल्स की है। यहाँ मन्दिर की दीवाल पर और अहाते में शिलालेख हैं। खुले बरामदे के प्रवेश-द्वार के सिरदल पर भी पद्मासन तीर्थंकर और नीचे पूर्णकुम्भ का अंकन है। मन्दिर छोटा है।

अड्डगेरि बसदि—इस बसदि के मूलनायक पार्श्वनाथ हैं। उनकी पाषाण-प्रतिमा चार फुट ऊँची है। प्रभावली भी उसी में है। मन्दिर छोटा ही है।

मानस्तम्भ के आसपास नौ मन्दिर हैं। कारकल में कुल 21 मन्दिर हैं।

भुजबलि ब्रह्मचर्याश्रम—इस नाम का गुरुकुल भी इधर ही है। इसमें लगभग 80 छात्र निवास करते हैं। आश्रम में वर्धमान मन्दिर नामक नया मन्दिर है।

क्षेत्र का पता इस प्रकार है—

स्वस्तिश्री भट्टारक ललितकीर्ति जी,
श्री दिगम्बर जैन मठ,
दानशाला रोड, (जैन मठ रोड),
पो. कारकल (Karkal), पिनकोड-574104
जिला—मंगलोर (Mangalore), कर्नाटक

मूडबिद्री

अँग्रेज़ी नक्शों में इस स्थान के नाम Mudabidri तथा Mudabidre दोनों दिए गए हैं। क्षेत्र की परिचय-पुस्तक में Mudabidre है जो नक्शों में नहीं मिलेगा।

इस स्थान का सरकार द्वारा मान्य एवं प्रचलित वास्तविक नाम मूडबिद्री ही है। किन्तु उच्चारण-विभिन्नता के कारण लोग इसे 'मूलबद्री' (उत्तर एवं मध्य भारत के लोग यह नाम अधिक जानते हैं) तथा 'मूलबिद्री' या 'मूडबद्री' भी कह जाते हैं। धार्मिक निष्ठावान कुछ लोग श्रवणबेलगोल को जैनबद्री तथा मूडबिद्री को 'मूलबद्री' तथा 'जैन काशी' भी कहते हैं।

शिलालेखों में इस स्थान को 'वेणुपुर' या 'वंशपुर' तथा 'व्रतपुर' कहा गया है। किसी समय यहाँ बाँसों का घना जंगल रहा होगा इसलिए वंश (बाँस) पुर कहलाया। वेणु का अर्थ भी बाँस होता है। यहाँ अनेक साधु-व्रती लोगों का किसी समय निवास होने के कारण इसे 'व्रतपुर' भी कहा गया।

मूडबिद्री दो शब्दों के योग से बना है। मुडु (पूर्व) और बिदिरु (बाँस) अर्थात् वह स्थान जो मंगलोर आदि बंदरगाहों के पूर्व में है और जहाँ बाँस के वन हैं।

मूडबिद्री एक छोटा किन्तु प्रसिद्ध स्थान है। यह कारकल तालुक (तहसील) और मंगलोर ज़िले के अन्तर्गत है। यह ज़िला पहले दक्षिण कन्नड़ ज़िला कहलाता था किन्तु अब यह मंगलोर ज़िला कहलाता है।

अवस्थिति एवं मार्ग

कारकल से मूडबिद्री केवल 26 कि. मी. दूर है। वेणूर से लगभग 25 कि. मी. और मंगलोर से 37 कि.मी. की दूरी पर यह स्थान है। मूडबिद्री के लिए बसों का सबसे अच्छा साधन मंगलोर से है। वहाँ से लगभग हर आधे घण्टे पर बस यहाँ आती है। जैन मठ बस स्टैण्ड से एक कि.मी. दूर है। आने-जाने का साधन टैक्सी और ऑटो-रिक्शा है। बंगलोर से मंगलोर मुख्य मार्ग यहीं से होकर जाता है। इसलिए बंगलोर (391 कि.मी.) और मैसूर (326 कि.मी.) से भी यह स्थान सीधा जुड़ा हुआ है। श्रवणबेलगोल से यहाँ सीधे आने के लिए 'चन्नरायपट्टण' (श्रवणबेलगोल से 13 कि.मी.) या हासन (श्रवणबेलगोल से 51 कि.मी.) से बस-मार्ग है। बम्बई से मंगलोर की कुल दूरी 936 कि.मी है और इसके लिए बहुत सी आराम-दायक बसें बम्बई और मंगलोर आती-जाती हैं। निकटतम हवाई अड्डा और बंदरगाह मंगलोर है।

सबसे पास का रेलवे स्टेशन भी मंगलोर ही है। दिल्ली से मंगलोर तक मंगलोर एक्सप्रेस (जयंती जनता) तथा केरल एक्सप्रेस लगभग प्रतिदिन यहाँ आती हैं। मद्रास से भी मंगलोर तक सीधी गाड़ियाँ हैं।

मूडबिद्री तुलुनाडु प्रदेश में स्थित है। तुलु एक बोली का नाम है और नाडु का अर्थ ज़िला होता है। यह भूभाग अपनी हरियाली, प्राकृतिक पहाड़ी सौन्दर्य, काजू, नारियल आदि के लिए भी प्रसिद्ध है। सह्याद्रि पर्वत की कृपा से यहाँ वर्षा भी अच्छी होती है और जलवायु

समशीतोष्ण तथा स्वास्थ्यवर्धक है। केरल का सुन्दर प्रदेश भी मंगलोर से 20 कि. मी. के लगभग आगे बढ़ने पर प्रारम्भ हो जाता है।

मूडबिद्री की विभिन्न वर्गों में प्रसिद्धि इस प्रकार है—(1) श्रद्धालु तीर्थयात्री यह आवश्यक मानता है कि श्रवणबेलगोल की यात्रा के बाद यहाँ की यात्रा वह अवश्य करे। वैसे भी यहाँ का जैन मठ श्रवणबेलगोल की ही एक शाखा है। (2) विद्वानों एवं अनुसंधानकर्ताओं के लिए यह एक प्रमुख स्थान है। यहीं से धवल, जयधवल और महाधवल नामक मूलग्रन्थ ताडपत्रों पर प्राप्त हुए थे। यहाँ बहुत-से ताडपत्रीय ग्रन्थ हैं। ताडपत्रीय ग्रन्थों की लिखाई और रंगीन चित्रकारी आश्चर्यजनक हैं। स्व० साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा स्थापित रमारानी जैन शोध संस्थान आधुनिक सुविधाओं से युक्त है। (3) कलाविदों के लिए भी यह क्षेत्र विशेष आकर्षक है। यहाँ का एक हजार खम्भों वाला 'त्रिभुवनतिलकचूड़ामणि' या 'चन्द्रनाथ मन्दिर', यहाँ के मन्दिरों में पकी मिट्टी (clay) आदि की प्राचीन प्रतिमाएँ तथा कुछ दुर्लभ प्रतिमाएँ (विशेष प्रबन्ध द्वारा देख सकते हैं) न केवल कलाविदों पर अपितु तीर्थयात्रियों पर भी एक स्थायी स्मृति छोड़ती हैं। (4) कुछ पाश्चात्य वास्तुविदों ने यह लिखा है कि यहाँ की मन्दिर-निर्माण कला (ढलुआ, लघुतर होती जाती छतें, गवाक्ष आदि) नेपाल और तिब्बत की भवन-निर्माण कला से मेल खाती है। दोनों कलाओं का मेल कब कैसे हुआ यह उन्हें आश्चर्य में डालता है। किन्तु गम्भीरता पूर्वक विचार करने से यह तथ्य सामने आएगा कि तुलुनाडु में जगह-जगह ढलुआ छत के मन्दिर हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि इस प्रदेश में वर्षा बहुत अधिक और जोरों से होती है। अतः यहाँ के मकान और मन्दिर ढलुआ छत के बनाए जाएँ तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। यहाँ से कुछ ही दूर, केरल के कुछ मन्दिरों की छतें तो और भी आश्चर्यकारी हैं। उनमें से कुछ की छतें तो ऐसी लगती हैं जैसे कोई छतरी आधी खोल दी गई हो। इतनी गोल और ढालदार छतें हैं वहाँ की। कारण वही—तेज वर्षा का होना है। (5) उत्तर भारत से आने वाले यात्रियों को यह देखकर आश्चर्य होता है कि यहाँ रात में भी पूजन होती है और केला, नारियल आदि चढ़ाए जाते हैं। फल-पुष्प तो स्थानीय उपज के कारण चढाए जाते हैं यह माना जा सकता है किन्तु रात्रि में पूजन, धूमधाम से आरती, दीपकों की माला, चरणामृत जैसी प्रथाएँ उस काल का स्मरण दिलाती हैं जब जैनधर्म को वैष्णवों, शैवों आदि के कारण घोर संकट का सामना करना पड़ा था और अपने धर्म की रक्षा के लिए जैन गुरुओं, उसके अनुयायियों को अन्य मतों की भी कुछ बातें अपना लेनी पड़ी होंगी। जो भी हो, मूडबिद्री का यह क्षेत्र ऐसे ही अनेक कारणों से महत्त्वपूर्ण है।

प्राचीन वंशपुर या वेणुपुर संबन्धी शिलालेखों में यहाँ के लोगों की प्रवृत्ति, सम्पन्नता, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि का परिचय मिलता है। यहाँ की होस बसदि (नया मन्दिर) जो कि 'त्रिभुवनतिलकचूडामणि चैत्यालय' कहलाती है, के कम से कम चार शिलालेखों में इस प्रकार का वर्णन है। एक शिलालेख में कहा गया है कि "सुन्दर बाग-बगीचों, सुगन्धित पुष्पों की गन्ध से युक्त पवन, चहुँ ओर सुशोभित बाह्य-प्रदेशों से घिरा हुआ, उत्तम जिन मन्दिरों से पवित्र, सुन्दर भवनों से शोभित यह वंशपुर देवांगनाओं के समान पुण्यात्मा स्त्रियों के निवास के कारण मनोहर है।" इसी प्रकार एक और शिलालेख का कथन है कि "वक्ष-भार से कुछ झुकी हुई, हारों के

भार से लचकती हुई, क्षीण कटिवाली नारियाँ किसके चित्त में प्रेम का संचार नहीं करतीं। सज्जनों का समय काव्यशास्त्र की चर्चा में (काव्यशास्त्र विनोदेन) व्यतीत होता है—इस उक्ति को सार्थक करने वाले विद्वानों से तथा हीरा, पन्ना, मोती आदि बहुमूल्य रत्नों एवं रेशम आदि बहुमूल्य वस्त्रों के विक्रेताओं से यह नगर सुशोभित है।"

क्षेत्र का इतिहास

मूडबिद्री क्षेत्र का इतिहास भी अत्यन्त प्राचीन जान पड़ता है। भगवान पार्श्वनाथ ने अपने मुनि-जीवन के 70 वर्षों में घूम-घूमकर जैन-धर्म का उपदेश दिया था। उनका विहार दक्षिण में भी हुआ था। वे नाग जाति की एक शाखा उरगवंश के थे (उरग का अर्थ भी सर्प होता है)। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का मत है: "उनके समय में पूर्व, पश्चिम और दक्षिण भारत के विभिन्न भागों में अनेक प्रबल नाग-सत्ताएँ राजतन्त्रों अथवा गणतन्त्र के रूप में उदित हो चुकी थीं और इन लोगों के इष्ट-देवता पार्श्वनाथ ही रहे प्रतीत होते हैं।" तुलुनाडु और समीपवर्ती केरल में नाग-पूजा और पार्श्वनाथ की अत्यधिक मान्यता, उनके यक्ष धरणेन्द्र और यक्षी पद्मावती के मन्दिर या सम्बन्धित चमत्कार सम्भवतः इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।

भगवान महावीर के अनुयायी जैन राजाओं में हेमांगद देश (कर्नाटक में स्थित) के जीवन्धर और साल्वदेश के राजा का भी नाम आता है। इसके सम्बन्ध में डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने 'भगवान महावीर और उनकी आचार्य परम्परा' नामक ग्रन्थ में लिखा है: "दक्षिण भारत के राजाओं में सालुव नामक एक राजवंश का उल्लेख मिलता है। साल्वमल्ल जिनदास तुलुवदेश पर शासन करते थे।" स्वयं महावीर स्वामी ने भी दक्षिण में विहार किया था।

श्रुतकेवली भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मौर्य का श्रवणबेलगोल के चन्द्रगिरि पर्वत पर आगमन और तपस्या सम्बन्धी वृत्तान्तों और शिलालेखों से ज्ञात होता है कि बारह हज़ार मुनियों के संघ में से केवल आचार्य भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त ही इस गिरि पर रह गए थे और शेष मुनियों को दक्षिण भेज दिया गया था। सम्भव है कुछ मुनियों का इस ओर भी विहार हुआ हो। यह घटना ईसा पूर्व 365 से पहले की है जब आचार्य भद्रबाहु ने शरीर त्यागा था।

ईसा की दूसरी सदी में करहाटक (महाराष्ट्र) में कदम्ब नामक राजवंश की स्थापना हुई। उसके उत्तराधिकारी मयूरवर्मन् (चौथी सदी) ने अपनी राजधानी बनवासि (कर्नाटक) में स्थानान्तरित की। उसका एक उत्तराधिकारी काकुत्स्थवर्मन् जैनधर्म का पोषक था। उसका पुत्र मृगेशवर्मन् (450-478 ई.) भी जैन धर्म का अनुयायी और जैन गुरुओं का आदर करने वाला शासक था। सम्भवतः इन्हीं शासकों के समय में अर्थात् ईसा की पाँचवीं सदी में तुलुनाडु पर इस जिनभक्त वंश का आधिपत्य हो गया था।

मूडबिद्री सम्बन्धी एक अनुश्रुति का सम्बन्ध सातवीं शताब्दी से बताया जाता है। उस समय मूडबिद्री में जैनधर्म प्रतिपालकों का अभाव हो गया था और यहाँ घना जंगल दृश्यमान था। उस सदी में श्रवणबेलगोल से एक मुनिराज का इस क्षेत्र में विहार हुआ। इस स्थान पर पहुँचकर उन्होंने एक जगह (जहाँ इस समय सिद्धान्त बसदि है) एक अपूर्व दृश्य—एक सिंह और एक गाय को एक साथ विचरण करते—जब देखा तो उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि इस

स्थान में कोई-न-कोई अतिशय अवश्य है। अनन्तर उन्हें वहाँ भगवान पार्श्वनाथ की एक विशाल एवं भव्य प्राचीन प्रतिमा के दर्शन हुए। उन्होंने ईस्वी सन् 714 में उसकी प्रतिष्ठा करवाई और एक मन्दिर बनवाया जो कि आगे चलकर 'गुरु बसदि' कहलाया (प्राचीन नाम पार्श्वनाथ बसदि है)।

दसवीं शताब्दी में तुलुनाडु का शासन अलुप या अलुववंशी सामन्तों के हाथों में आ गया। वे भी जिनेन्द्रभक्त थे। इसी वंश के राजा कुलशेखर अलुपेन्द्र प्रथम (बारहवीं सदी) के शासनकाल में तुलुनाडु में जैनधर्म को राजकीय प्रश्रय प्राप्त था। मूडबिद्री के एक शिलालेख में उल्लेख है कि कुलशेखर तृतीय (1355-1590) ने मूडबिद्री की गुरु बसदि (पार्श्व मन्दिर) को दान दिया था। इस लेख में कुलशेखर को भट्टारक चारुकीर्ति के 'श्रीपादपद्माराधक' कहा गया है। यह राजा बड़ा वैभवशाली था और रत्नखचित सिंहासन पर बैठता था।

तुलुदेश बंगवाडि के बंगवंश के भी अधीन रहा। यह वंश 1100 से 1600 तक पृथक् अस्तित्व में रहा। इसके सभी राजा जैनधर्म के अनुयायी थे। पहले यह वंश होय्सल शासकों का सामन्त रहा। वीर नरसिंह बंगनरेन्द्र (1245-1275 ई.) एक कुशल और विद्याव्यसनी शासक था। उसके गुरु आचार्य अजितसेन थे। सोलहवीं सदी में यह वंश विवाह-संबंध द्वारा कारकल के भैररस कुल से संयुक्त हो गया। वह वंश जिनदत्तराय (हुमचा में सान्तर वंश के संस्थापक जैन राजा) की कुल-परम्परा में था।

शिलालेखों में तोलहार जैन शासकों 1169 ई. का भी उल्लेख मिलता है।

कालान्तर में सामन्तगण होयसल राजवंश की अधीनता से स्वतन्त्र हो गए। इनमें चौटर वंशीय राजा भी थे जिनका उल्लेख 1690 ई. के एक शिलालेख में मिलता है। इन्होंने मूडबिद्री को अपनी राजधानी बनाया था। बताया जाता है कि इन्होंने लगभग सात सौ वर्षों तक यहाँ राज्य किया। ये जैनधर्म के प्रतिपालक थे। इनके वंशज आज भी मूडबिद्री में अपने जीर्ण-शीर्ण महल में रहते हैं और सरकार से पेंशन पाते हैं।

साल्व राजवंश का, हाडुवल्लि का महामण्डलेश्वर मल्लिराय परम जिनभक्त था। मूडबिद्री किसी समय उसके अधीन था ऐसा उल्लेख यहाँ के शिलालेख में पाया जाता है।

मूडबिद्री, विजयनगर साम्राज्य के पतन के बाद, टीपू सुलतान के अधिकार में आ गया। उसके बाद यहाँ ब्रिटिश शासन रहा और 1956 में मैसूर राज्य (वर्तमान कर्नाटक) में सम्मिलित कर दिया गया।

क्षेत्र-दर्शन

श्री जैन मठ—बंगलोर-मंगलूर सड़क के एकदम किनारे और मूडबिद्री के लगभग बीचों-बीच स्थित 'जैन मठ' सामने से साधारण दुमंज़िला मकान दिखाई देता है। उसके पास ही धर्मस्थल आदि की दूरी बताने वाला मील का पत्थर लगा है। प्रवेशद्वार पर नागरी लिपि में श्री जैन मठ, उसके नीचे रोमन में यही नाम और उनसे भी नीचे श्री पार्श्वनाथ स्वामी, श्री दानशाला जैन मठ लिखा है। यह स्थान आबादीवाला स्थान है। प्रायः सभी बसें मठ के सामने से आती-जाती हैं। मठ में प्रवेश करते ही पार्श्वनाथ का छोटा-सा मन्दिर

विशेषकर रात्रि के समय रंग-बिरंगे बल्बों से प्रकाशित दिखाई देता है।

बताया जाता है कि मैसूर प्रदेश के समीपस्थ द्वारसमुद्र (आधुनिक हलेबिड) का जैन राजा विष्णुवर्धन जब वैष्णव हो गया (कुछ इतिहासकारों के मत से, वह वैष्णव नहीं हुआ, जैन ही रहा आया) तब उसने जैनों पर अत्याचार किए। सम्भव है, बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में जैनों पर अत्याचार हुए हों। कहा जाता है कि तत्कालीन परिस्थितियों में श्रवणबेलगोल पर भी आँच आई। वहाँ के मठ के भट्टारक चारुकीर्तिजी मठ में सुरक्षित ताडपत्रीय शास्त्रों आदि की सुरक्षा के लिए चिन्तित हो उठे। भ्रमण करते हुए वे मूडबिद्री आये और उन्होंने यहाँ पर जैन मठ की स्थापना करने का निश्चय किया। यह कार्य सन् 1220 ई. में सम्पन्न हुआ। श्रवणबेलगोल तथा बंकापुर से धवल, जयधवल आदि ताड़पत्रों पर लिखे एवं चित्रित मूल्यवान ग्रन्थों आदि को यहाँ सुरक्षित रखा गया। तभी से यह मठ श्रवणबेलगोल के जैन मठ की एक शाखा माना जाता है और यहाँ के भट्टारक भी चारुकीर्ति कहलाते हैं। वर्तमान भट्टारकजी का भी नाम स्वस्तश्री पण्डिताचार्य चारुकीर्ति भट्टारक है। उनका पट्टाभिषेक 1976 ई. में हुआ था। भट्टारकजी का निवास-स्थान भी इसी मठ में है। मठ का भवन काफी पुराना लगता है। उसमें लकड़ी के मोटे-मोटे स्तम्भ हैं और लकड़ी की ही छत है।

मठद (मठ की) बसदि—इसमें काले पाषाण की डेढ़ फीट ऊँची तीर्थंकर पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्ति है। यहीं पर पूजन आदि, जिनमें आरती भी सम्मिलित है, एवं अन्य विधान सपन्न होते हैं। यहाँ की दीवाल पर भरत-बाहुबली के मिलन का सुन्दर चित्र भी बना है। रात्रि को रंग-बिरंगे प्रकाश की छटा होती है।

मठ में प्रबन्धक का कार्यालय भी है। भट्टारकजी की स्वीकृति से ताड़पत्र पर लिखे दुर्लभ ग्रन्थों और दुर्लभ प्रतिमाओं के विशेष दर्शन की भी व्यवस्था है। इसे 'सिद्धान्त-दर्शन' कहते हैं।

मूडबिद्री में ठहरने के लिए तीन स्थान हैं। 1. स्व० साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा स्थापित रमारानी जैन शोध संस्थान में चार फ्लैट हैं। सभी सुविधाओं से युक्त ये फ्लैट विद्वानों, विशिष्ट व्यक्तियों, अनुसंधान-कर्ताओं के लिए हैं। 2. संस्थान के सामने पार्श्वकीर्ति गेस्ट-हाउस है। इसमें नीचे दो और ऊपर पाँच—इस प्रकार सात बड़े कमरे स्नानागार सहित हैं। और भी कमरे बनवाने की योजना है। 3. पुरानी धर्मशाला (मठ से कुछ दूरी पर)। इसकी हालत अच्छी नहीं है। धर्मशाला के जीर्णोद्धार के लिए मठ प्रयत्नशील है।

मठ में टेलीफोन की भी व्यवस्था है।

रमारानी जैन शोध संस्थान—यह मठ के अहाते में ही है। इसे स्व. साहू शान्ति प्रसादजी जैन ने अपनी धर्मपरायणा पत्नी रमारानी के नाम पर उनकी स्मृति में बनवाया था। यहाँ विभिन्न ग्रन्थों की लगभग चार हजार पाण्डुलिपियाँ हैं। अनुसंधानकर्ताओं के लिए यह एक विशिष्ट केन्द्र है। विशेष आकर्षण है उन ग्रन्थों का जो कि ताड़पत्रों पर लिखे हुए हैं।

मूडबिद्री के मन्दिरों का परिचय देने से पहले यहाँ की मूर्तियों की विशेषता के बारे में जान लेना उपयुक्त होगा। मूडबिद्री विभिन्न धातु आदि पदार्थों और विभिन्न ऊँचाइयों की जैन मूर्तियों का एक अद्भुत संग्रहालय है। यहाँ आधे अंगुल से लेकर नौ फीट (पार्श्वनाथ

प्रतिमा, गुरुबसदि में) तक ऊँची प्रतिमाएँ विभिन्न मन्दिरों में हैं। कुछ लघु प्रतिमाओं का आकार यहाँ दिया जा रहा है। बाहुबली (धातु, चार इंच), अनन्तनाथ (पाषाण, पाँच इंच), पद्मप्रभ (पाषाण, तीन इंच), नेमिनाथ (पाषाण, छह इंच), महावीर (पंचधातु, ढाई इंच), खड्गासन तीर्थंकर महावीर (चन्दन, दो इंच), खड्गासन चन्द्रनाथ (ढाई इंच), पार्श्वनाथ (पाषाण, छह इंच), चौबीसी (पन्द्रह इंच), सर्वतोभद्रिका (आठ इंच), पद्मासन पार्श्वनाथ और गुरुबसदि में ताड़पत्र की जिन-प्रतिमा आदि (नौ इंच), सरस्वती (धातु, नौ इंच), ज्वालामालिनी (धातु, छह इंच), कूष्माण्डिनी (बारह इंच) तथा काले पाषाण का मानस्तम्भ (चौबीस इंच) आदि।

यहाँ पकी मिट्टी (clay, लेप्पद बसदि में चार फीट ऊँची मूर्ति) तथा विभिन्न प्रकार के पाषाण, कांस्य, पीतल, पंचधातु, अमृतशिला, स्फटिक आदि रत्नों की विभिन्न आकारों की प्रतिमाएँ भी हैं। होस मन्दिर में तो पंचधातु की आठ फीट ऊँची चन्द्रप्रभ की एक बहुत ही मनोज्ञ प्रतिमा है।

होस बसदि या त्रिभुवनतिलकचूड़ामणि मन्दिर या चन्द्रनाथ-मन्दिर—यह बसदि (देखें चित्र क्र. 70) उपर्युक्त शोध संस्थान से आगे और मठ के बिल्कुल पास में है। एक हज़ार स्तम्भों वाले इस सुन्दर और विशाल मन्दिर का निर्माण, यहाँ के शिलालेख तथा चन्द्रप्रभ के विग्रह (यहाँ व इस प्रदेश में अन्यत्र मूर्ति को 'विग्रह' शिलालेख को 'शासन' कहते हैं) के पादपीठ में अंकित लेख के अनुसार, मंगलूर राज्य के अन्तर्गत नागमण्डल के देशराज ओडेयर के राज्यकाल में 29 जनवरी, 1430 ई. गुरुवार को मूडबिद्री के श्रावकों ने देवराज की आज्ञा से तथा यहाँ के मठ के भट्टारक श्रीमद् अभिनव चारुकीर्ति पण्डिताचार्य के आदेश से कराया था। एक अन्य शासन के अनुसार, इस मन्दिर का नमस्कार-मण्डप यहाँ के श्रावकों ने 1451 ई. में बनवाया था। इस बसदि के सुप्रसिद्ध भैरादेवी-मण्डप का निर्माण भैरादेवी ने 1462 ई. में कराया था। उसी समय चित्रादेवी ने चित्रामण्डप का भी निर्माण कराया था।

उपर्युक्त बसदि (मन्दिर) में गोपुरद्वार मण्डप, भैरादेवी मण्डप, चित्रादेवी मण्डप, नमस्कार मण्डप, तीर्थंकर मण्डप, लक्ष्मी मण्डप (गन्धकुटी) तथा गर्भगृह (मण्डप)—इस प्रकार कुल छह मण्डप हैं जो एक-दूसरे से तथा गर्भगृह से जुड़े हुए हैं और मन्दिर को विशाल आकार प्रदान करते हैं, साथ ही, उसे अपने सुन्दर और कलापूर्ण स्तम्भों के कारण भव्यता प्रदान करते हैं।

चित्रादेवी, भैरादेवी, लक्ष्मीदेवी उन जैन महिलाओं के नाम हैं जिनके नाम पर ये मण्डप बने। इस मन्दिर की तीसरी मंजिल की छत पर ताँबे का आवरण गेरुसोप्पा के महामण्डलेश्वर भैरवराज ने वीरसेन मुनि की आज्ञा से पन्द्रहवीं शताब्दी में चढ़वाया था। बसदि के सामने लगभग 50 फीट ऊँचा एक मानस्तम्भ है। उसका निर्माण 1462 ई. में भैरवराज की रानी नागलदेवी ने कराया था।

मन्दिर में विभिन्न मण्डपों के निर्माण की विभिन्न अवधियों को देखते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि इस मन्दिर में संवर्धन (addition) होते रहे हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि

यह मन्दिर चौथी से छठी शताब्दी के बीच का है। किन्तु मन्दिर की उन्नत शिल्पकला को देखते हुए यह सम्भव नहीं लगता। वैसे भी इसे होस (नया) मन्दिर कहते हैं। यह माना जाता है कि मूडबिद्री के मन्दिरों का निर्माण बारहवीं से सोलहवीं सदी के बीच हुआ है।

त्रिभुवनतिलकचूड़ामणि बसदि का परकोटा बहुत ऊँचा है (करीब 15 फीट) और किसी छोटे किले की दीवाल के समान लगता है। मन्दिर का अहाता भी बड़ा है।

मन्दिर का गोपुर (प्रवेशद्वार) भी काफी ऊँचा है। उस पर और उसके आसपास सुन्दर अंकन है। उसके सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर, चँवरधारी और कीर्तिमुख हैं। द्वार के दोनों ओर इन्द्र-इन्द्राणी बने हैं। उनके नीचे सिंह, हाथी और व्याल प्रदर्शित हैं। द्वार के विशाल चार पल्लू लकड़ी के हैं। उन पर दोनों ओर पद्मासन में तीर्थंकर पार्श्वनाथ विराजमान हैं। नीचे एक घुड़सवार के हाथ में तीर है तो दूसरी ओर के घुड़सवार के हाथ में तलवार है। देवियाँ भी प्रदर्शित हैं। द्वार पार करने के बाद खुला प्रांगण है।

बसदि के सामने लगभग 50 फीट ऊँचा कलापूर्ण मानस्तम्भ है। चौकी से ऊपर कमल, उससे ऊपर पद्मासन में तीर्थंकर तथा सबसे ऊपर के भाग में कलश और घण्टियाँ हैं।

मानस्तम्भ से आगे एक 'ध्वज-स्तम्भ' भी है।

प्रवेशद्वार की सीढ़ियों के पास एक-एक हाथी, दोनों ओर, हैं। हाथियों की पीठ से घण्टियाँ झूलती हुई दिखाई गई हैं। उनके पैरों में सुन्दर आभूषण हैं।

आगे भैरादेवी मण्डप है (देखें चित्र क्र. 71)। मण्डप कला की दृष्टि से सबसे सुन्दर है। इसके स्तम्भों पर उत्कीर्णन अनेक प्रकार का, सूक्ष्म, मनोहारी एवं नानादेशीय है।

इस मण्डप के स्तम्भ लगभग बारह फीट ऊँचे हैं। नीचे से चतुष्कोण और ऊपर कलात्मक ढंग से गोल बनाए गए ये स्तम्भ हैं तो पत्थर के, किन्तु लगते ऐसे हैं मानो वे लकड़ी के हों। इनकी कारीगरी इतनी विविधतापूर्ण एवं मनोहर है कि कोई भी दो स्तम्भ एक-जैसे दिखाई नहीं देते। कुछ स्तम्भ अष्टकोणीय हैं। भैरादेवी मण्डप के स्तम्भों पर 'चीनी ड्रैगन' और जिराफ़ का अंकन भी है। ये पशु भारत में नहीं पाए जाते। ये कैसे होते हैं और इन्हें कैसे अंकित किया जाए इसकी कल्पना निश्चय ही प्राचीन काल के यहाँ के उन व्यापारियों ने शिल्पियों को दी होगी जो समुद्र-मार्ग से देश-देशान्तरों में व्यापार के लिए (विशेषकर रत्नों के) आया-जाया करते थे। ये लोग अपना धर्म निबाहने के लिए हीरे, पन्ने आदि की छोटी-छोटी जिनमूर्तियाँ भी अपने साथ रखते थे और अपने क्षेत्र के मन्दिरों को भेंट भी कर देते थे। जो भी हो, इस प्रकार का नानादेशीय अंकन मूडबिद्री के इस मन्दिर के अतिरिक्त कर्नाटक में सम्भवतः और कहीं नहीं है। बसदि की कड़ियाँ (बीम्स) भी खाली नहीं हैं, उन पर भी नक्काशी है। इस मण्डप की छत के बीच में एक अष्टकोण है। उसमें कमल उत्कीर्ण है और उसकी कलियाँ लटकती हुई दिखाई गई हैं।

उपर्युक्त मण्डप के बाद, एक छोटा-सा बलिपीठ है। फिर एक मण्डप आता है जिसका काष्ठ-द्वार विशाल है। सभा मण्डप में अनेक स्तम्भ हैं। एक मण्डप को कलश-मण्डप भी कहा जाता है क्योंकि उत्सव के समय उसका प्रयोग अभिषेक के लिए किया जाता है। उससे आगे के हॉल या मण्डप में अनेक जिनप्रतिमाएँ हैं। गर्भगृह में चन्द्रप्रभ की पंचधातु की कायोत्सर्ग

मुद्रा में आठ-नौ फीट ऊँची प्रतिमा है जो बहुत सुन्दर है। वह मकर-तोरण से भी अलंकृत है। मूर्ति के दोनों ओर दीपस्तम्भ हैं। प्रकाश में यह प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ लगती है। यहाँ चन्द्रप्रभ की यक्षिणी ज्वालामालिनी की मूर्ति भी है। मन्दिर में राम-लक्ष्मण और सीता का भी अंकन (जैन रामायण के अनुसार) है।

यात्रियों को यह स्मरण रखना चाहिए कि यह मन्दिर तिमंजिला है। दूसरी और तीसरी मंजिल पर भी दर्शन हैं। तीसरी मंजिल की मनोज्ञ प्रतिमाओं को तो यात्री सदा स्मरण रखेगा। दूसरी मंजिल पर जाने के लिए कलशमण्डप में से सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। मुखमण्डप के ऊपर वहाँ एक धातुनिर्मित सहस्रकूट चैत्यालय है। उसमें प्रकाश के लिए पत्थर की जालियाँ बनी हुई हैं। ऊपर की मंजिल (दूसरी) पर सीढ़ियों के पास ही दर्शन हैं। वहाँ गर्भगृह में पद्मासन में महावीर स्वामी की प्रतिमा है। उस पर छत्रत्रयी, मकर-तोरण और कीर्तिमुख की सुन्दर सजावट है। इस दूसरे तल पर एक हॉल है। उसमें भी अनेक स्तम्भ हैं। ये नीचे के स्तम्भों की अपेक्षा छोटे हैं। हॉल में दोनों ओर प्रतिमाएँ हैं। बाईं ओर कुलिका में छत्रत्रयी से युक्त चौबीसी है तथा दाहिनी ओर की कुलिका में पाषाण की पार्श्वनाथ की मूर्ति है। यह यक्ष-यक्षी सहित है, छत्रत्रयी और मकर-तोरण, कीर्तिमुख से सजाई गई है। तीसरी मंजिल का रास्ता महावीर स्वामी वाले गर्भगृह के पास से होकर जाता है। सीढ़ियाँ कुछ संकीर्ण हैं। इस तीसरे तल में कांस्य और स्फटिक प्रतिमाओं का विशाल संग्रह है। तीन दरवाजों के इस गर्भगृह में पद्मासन और कायोत्सर्ग प्रतिमाएँ हैं। वे मकर-तोरण आदि से भी अलंकृत हैं। गर्भगृह के सामने दो दर्पण लगे हैं। इनका उपयोग प्रतिमाओं को रोशनी में दिखाने के लिए किया जाता है।

अकेला 'त्रिभुवनतिलक-चूडामणि' मन्दिर ही यात्री को आनन्दित करने के लिए पर्याप्त है। अब उसे रंग-बिरंगी रोशनी में सप्ताह में दो बार दिखाने की व्यवस्था की गई है। मन्दिर में अनेक शिलालेख हैं जिनका सार ऊपर आ गया है।

गुरुबसदि या सिद्धान्त मन्दिर—मूडबिद्री का यह दूसरा प्रमुख मन्दिर है। इसके निर्माण की तिथि तो ज्ञात नहीं है किन्तु यह ईसा की आठवीं सदी के प्रारम्भ या उससे पहले का अवश्य है। इसका कारण यह है कि इस बसदि में काले पाषाण की पार्श्वनाथ (चित्र क्र. 72) की नौ फीट ऊँची जो कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रतिमा है, उस पर एक लेख है जिसके अनुसार यहाँ के श्रावकों ने इस मूर्ति की प्रतिष्ठा ईस्वी सन् 714 में करवाई थी। ऊपर एक अनुश्रुति का उल्लेख किया जा चुका है जिसके अनुसार किसी समय जंगलों से घिरे इस नगर में गाय और सिंह को एक साथ देखकर श्रवणबेलगोल से आए एक मुनि ने अतिशय का निश्चय किया और बाद में उन्हें यह मनोहारी प्रतिमा मिली। उसी को इस मन्दिर में प्रतिष्ठापित किया गया है। चूँकि गुरु (मुनि) ने इसे ढूँढ निकाला था इसलिए यह मन्दिर 'गुरुबसदि' कहलाया। इसे गुरु बसदि कहने का दूसरा कारण यह है कि मूडबिद्री के भट्टारकों का पट्टाभिषेक इसी मन्दिर में होता है। जो भी हो, मन्दिर और मूर्ति की प्राचीनता स्वतः सिद्ध है। यहाँ ताड़पत्र की भी एक जिन-प्रतिमा है। एक चौबीसी भी यहाँ है।

सिद्धान्त मन्दिर के रूप में इसकी ख्याति का कारण यह है कि इसमें ताड़पत्रों पर

प्राचीन धवल, जयधवल एवं महाधवल नामक सिद्धान्त-ग्रन्थ अंकापुर से लाकर सुरक्षित रखे गए थे। अब ये मठ में स्थानान्तरित कर दिए गए हैं (देखें चित्र क्र. 73)।

बसदि के बाहर एक गद्दीमण्डप है जिसका निर्माण यहाँ के चोलशेट्टी आदि श्रावकों ने 1538 ई. में कराया था। सन् 1924 ई. में यहाँ के तत्कालीन भट्टारकजी ने मन्दिर की छत पर ताँबे का आवरण चढ़वाकर मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था। और पंचकल्याणक कराया था।

इस बसदि में पद्मासन में सम्भवतः आदिनाथ की प्रतिमा है और उसके पीछे एक लघुमन्दिर है जिसके तीन ओर 52 तीर्थंकर-मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। यह संख्या नन्दीश्वर द्वीप की होती है। किन्तु उत्कीर्णन चारों ओर होता है। धातु के एक कमल जैसी रचना में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की एक मूर्ति भी यहाँ है। उसकी आठ पंखुड़ियों में एक आसीन देवता है। यह रचना ऊपर की मंजिल में है। यहीं कुछ दुर्लभ प्रतिमाएँ भी हैं जो सिद्धान्त-दर्शन व्यवस्था के अन्तर्गत दिखाई जाती हैं।

किसी समय भारत में ताड़पत्रों पर शास्त्र लिखने की प्रथा थी। विशेषकर कर्नाटक में लगभग दस हज़ार ग्रन्थ ताड़पत्रों पर लिखे मौजूद हैं ऐसा अनुमान है। ताड़पत्रों पर सुई से कुरेद-कुरेद कर लिखाई की जाती थी। किन्तु धवल, जयधवल और महाधवल ये तीन महान ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें यह पद्धति नहीं अपनाई गई है। ये ग्रन्थ लाख की स्याही बनाकर लेखनी से लिखे गए हैं। उस समय के लेखकों ने सम्भवतः यह नई खोज की थी जो कि इन ग्रन्थों तक ही सीमित रही। लगभग आठ-नौ सौ वर्ष पहले प्राचीन कन्नड़ लिपि में लिखे गए ये ग्रन्थ हमारी अमूल्य धरोहर हैं। इनका प्रकाशन हिन्दी अनुवाद के साथ भी हो गया है।

उपर्युक्त ग्रन्थों में अत्यन्त मनोहर रंगीन चित्र हाशियों में एवं स्वतंत्र रूप से भी बनाए गए हैं। चित्रों के लिए यह आवश्यक नहीं रहा है कि वे विषय से संबंधित ही हों। चित्रों के विषय में सम्मिलित हैं—तीर्थंकर, उपाध्याय मुनि, यक्ष-यक्षी, चँवरधारी, सरस्वती, श्रुतदेवी, श्रावक, प्राकृतिक दृश्य, बादल, वन, लता-वल्लरी, कमल पुष्प (विभिन्न सुन्दर अंकन), मेघाच्छन्न, आकाश की छाया आदि। अन्य अनेक ग्रन्थों जैसे—कल्पसूत्र, कालकाचार्यकथा (14वीं सदी) आदि में भी चित्र हैं। बहुत-से अन्य ग्रन्थों में श्याम-श्वेत चित्र हैं।

पाण्डुलिपि पर इन चित्रों के रंग भी प्राकृतिक हैं और विशेष रीति से बनाए गए हैं। काले, नीले, पीले, हरे और लाल रंग प्राकृतिक पदार्थों—पत्थर, मिट्टी, पेड़ों के छिलकों और रसों, काजल, पुष्पों से प्राप्त रंग आदि सामग्री—को गोंद में घोलकर चिकने बनाये गये हैं। इसी कारण ये रंग आज भी पक्के हैं। पके और सूखे ताड़पत्रों का उपयोग करने के कारण इनके रंग फीके नहीं पड़े हैं।

इन ग्रन्थों में होय्सल नरेश विष्णुवर्धन और उनकी पट्टमहिषी परम जिनभक्ता विदुषी कुशल राजनीतिज्ञ, रूप की प्रतिमा शान्तला के चित्र भी हैं। एक मनोहर चित्र में श्रुतदेवी के साथ मयूर का चित्र तथा यक्षिणी महामानसी का हंस वाहन सहित और यक्ष अजित का उसके वाहन कछुए के साथ चित्रण अत्यन्त सुन्दर है। बहुत-से चित्रों का सुन्दर प्रकाशन भी हो चुका है। ये ग्रन्थ और चित्र भी यात्रियों को अवश्य देखने चाहिए।

बडग बसदि—बडग का अर्थ है उत्तर (दिशा)। चूंकि यह मन्दिर उत्तर दिशा में स्थित है इसलिए इसे 'बडग बसदि' कहा जाता है। बताया जाता है कि यह मन्दिर भी अत्यन्त प्राचीन है। इसके मूलनायक हैं चन्द्रनाथ। प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है तथा अमृतशिला से निर्मित है। इसे छोटा चन्द्रनाथ मन्दिर भी कहते हैं। इसके सामने लगभग 40 फुट ऊँचा मानस्तम्भ है।

शेट्टर बसदि (शेट्टी का मन्दिर)—यह एक प्राचीन मन्दिर है और इसका निर्माण मूडबिद्री के ही बंगोत्तम शेट्टी नामक श्रावक ने कराया था।

उपर्युक्त बसदि सामने से एक साधारण भवन दिखाई पड़ती है। उसकी छत ढलुआ है और उसे ढँकने वाली शिलाएँ ऐसी लगती हैं जैसे लकड़ी के तख्ते एक के ऊपर एक ऊँचे करके जमाए गए हों। मन्दिर पाषाण-निर्मित है। इसके मूलनायक वर्धमान (महावीर) हैं जिनकी काले पाषाण की लगभग तीन फुट ऊँची कायोत्सर्ग मूर्ति यहाँ स्थापित है।

इस मन्दिर के निर्माण के सम्बन्ध में यहाँ के एक शिलालेख में एक अनुश्रुति दी गई है। किन्तु मन्दिर के निर्माण के संवत् के सम्बन्ध में शिलालेख मौन है। इसका निर्माता बंगोत्तम शेट्टी किसी समय व्यापार के लिए देशान्तर गया और वहाँ एक जौहरी के साथ व्यापार करने लगा। उस देश के व्यापारी ने जब शेट्टी का रत्नों की परीक्षा का ढंग और उसमें अत्यन्त कुशलता देखी तो उसने शेट्टी को अपने रत्न-व्यापार में साझीदार बनाने का प्रस्ताव किया। शेट्टी ने प्रस्ताव मान लिया और दोनों मिलकर व्यापार करने लगे। एक दिन वहाँ के राजा ने सभी जौहरियों को अपने महल में निमन्त्रित किया। उस देश का जौहरी शेट्टी को भी अपने साथ ले गया। राजा ने सभी जौहरियों को नींबू के आकार का एक मोती दिखाया और उनसे पूछा कि यह कौन-सा मोती है और इसका क्या मूल्य है। सभी जौहरी उस मोती को देखकर आश्चर्य में पड़ गए तथा कुछ भी बताने में असमर्थ रहे। शेट्टी ने भी मोती को ध्यान से देखा और बिना किसी हिचक के राजा से कहा, "राजन! क्षमा करें। यह मोती असली नहीं है। इसके अन्दर एक मेंढक तथा थोड़ा-सा जल है।" यह सुनकर राजा ने सत्यता की जाँच करने के लिए उस मोती को फोड़ने का आदेश दिया तो जौहरी का कथन सत्य निकला। राजा इससे बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने शेट्टी को बहुत-सा धन और एक ऊँट भेंट में देकर उसे स्वदेश जाने की अनुमति दे दी। शेट्टी जिस समय वर्तमान (शेट्टी) बसदि के पास आया तो ऊँट वहीं लेट गया और पूरी कोशिश करने पर भी वहाँ से आगे नहीं बढ़ा। इस पर शेट्टी ने निश्चय किया कि वह इसी स्थान पर पर एक जैनमन्दिर बनवायेगा। और इस प्रकार निर्माण हुआ शेट्टी बसदि का। इस मन्दिर में बंगोत्तम शेट्टी का एक चित्र भी है। यह भी अनुश्रुति है कि इस मन्दिर में जैन शास्त्रों का अच्छा संग्रह था।

हिरिय/हिरे बसदि—यह मन्दिर 'अम्मनवर बसदि' (माँ का मन्दिर) भी कहलाता है। यह दुमंजिला है और यहाँ के अन्य मन्दिरों की ही भाँति सामने से एक साधारण-सा मकान लगता है। छत भी ढलुआ है। यह एक प्राचीन मन्दिर लगता है। यहाँ के एक शिलालेख में उल्लेख है कि शान्त-कांतण्णा नामक शेट्टी ने इसके नमस्कार-मण्डप का जीर्णोद्धार कराया था। शिलालेख का कुछ भाग अस्पष्ट भी है, इस कारण अन्य विवरण उपलब्ध नहीं है। इस मन्दिर के मूलनायक शान्तिनाथ हैं। उनकी काले पाषाण की प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में लगभग तीन
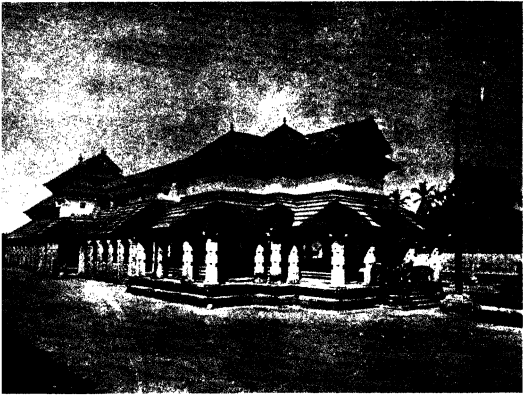
70. मूडबिद्री—त्रिभुवनतिलकचूडामणि मन्दिर का बाह्य दृश्य ।
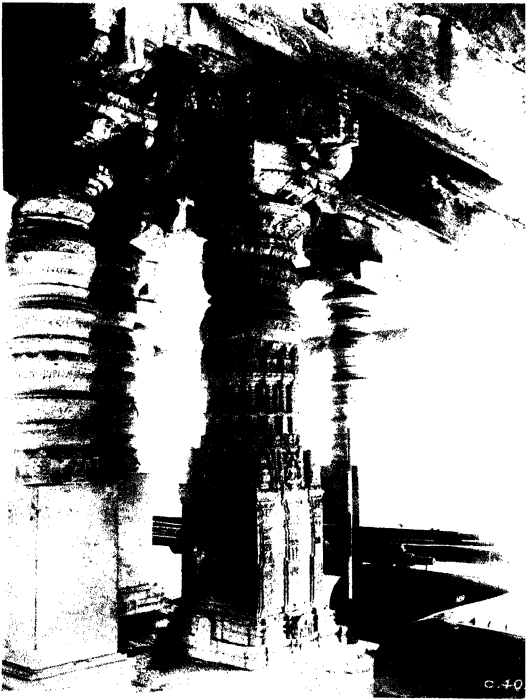
71. मूडबिद्री—चन्द्रनाथ बसदि : भैरादेवी मण्डप के स्तम्भ ।

72. मूडबिद्री—गुरु बसदि : मूलनायक तीर्थंकर पार्श्वनाथ ।
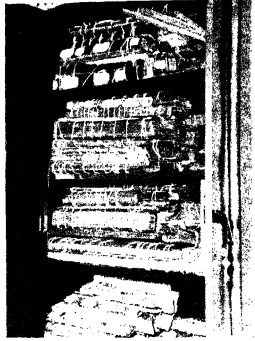
73. मूडबिद्री—सिद्धान्त बसदि : प्राचीन ताडपत्रीय पाण्डुलिपियाँ ।
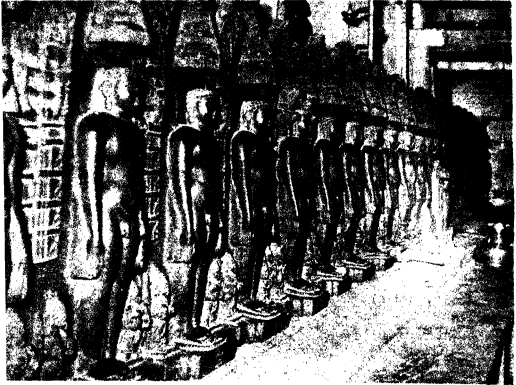
74. मूडबिद्री—अम्मनवार बसदि : चौबीस तीर्थंकरों की पंक्तिबद्ध मूर्तियाँ ।

75. मूडबिद्री—चोटार महल : काष्ठ-स्तम्भ पर उत्कीर्ण नवनारीकुंजर ।
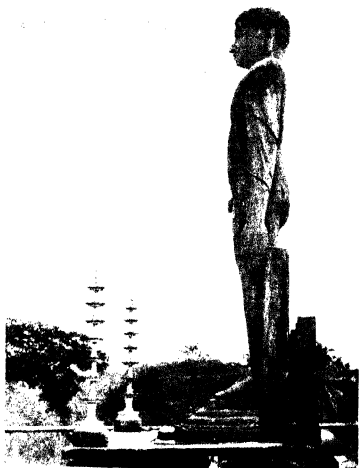
76. मूडबिद्री—गाँव के बाहर समाधियों की कतार।

77. वेणूर—बाहुबली बसदि : बाहुबली की विशाल मूर्ति।

78. वेणूर—शान्तेश्वर बसदि : विशाल शिलाफलक पर अंकित कन्नड़ अभिलेख ।
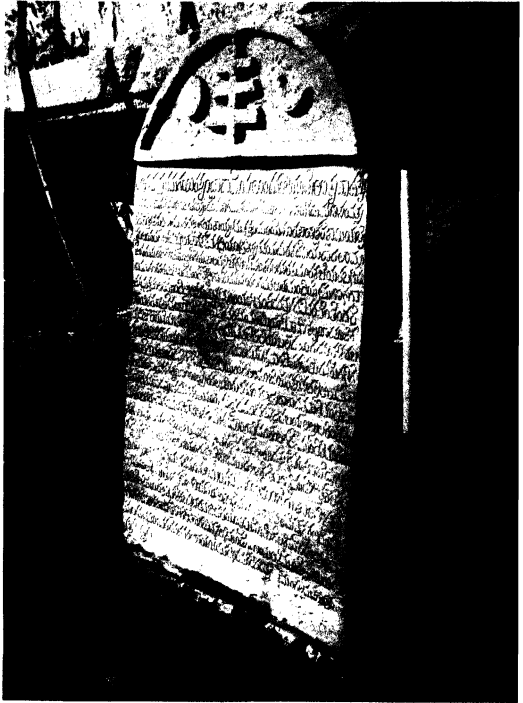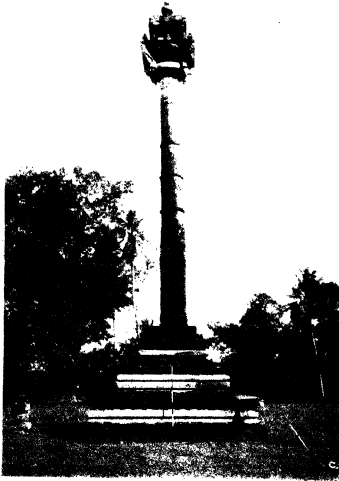
79. वेणूर—शान्तेश्वर बसदि (कल्लु बसदि) : मानस्तम्भ ।

फुट ऊँची है। वे यक्ष-यक्षी सहित हैं। इस मन्दिर की विशेषता यह है कि इसके भीतरी प्राकार में खड्गासन चौबीस तीर्थंकरों (चित्र क्र. 74), सरस्वती और पद्मावती की पकी मिट्टी (clay) की मूर्तियाँ हैं। इस प्रकार की मूर्तियाँ अन्य किसी स्थान पर शायद ही हों। इसकी ऊपर की मंज़िल पर पद्मासन में आदिनाथ की धातुनिर्मित प्रतिमा है। अनुश्रुति है कि इसका निर्माण दीपण्णा शेट्टी नामक जिनभक्त ने कराया था।

बेटकेरि बसदि—इसका मुखमण्डप इसे एक साधारण भवन का आभास देता है। इसके मूलनायक महावीर स्वामी हैं जिनकी पद्मासन में तीन फुट ऊँची संगमरमर की प्रतिमा है। उस पर छत्र है और जल उगलते मकर दिखाए गए हैं अर्थात् यह प्रतिमा मकर-तोरण युक्त है। यह बसदि एक-मंजिला है।

कोटि बसदि—इसका निर्माण 1401 ई. में कोटि शेट्टी नामक जिनधर्मानुयायी ने कराया था। इस कारण इसे कोटि बसदि कहते हैं। इसके मूलनायक तीर्थंकर नेमिनाथ हैं जिनकी प्रतिमा काले पाषाण से निर्मित है और लगभग ढाई फुट ऊँची है। वे यक्ष-यक्षी सहित हैं। चँवरधारी भी उत्कीर्ण हैं। प्रभावली ताम्र-निर्मित है। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार सन् 1924 ई. में मूडबिद्री के ही चोटर राजा धर्मसाम्राजय्या ने कराया था। इसलिए यह मन्दिर उनके वंशजों के नियन्त्रण में है।

विक्रम शेट्टी बसदि—विक्रम शेट्टी नाम के श्रावक ने इस बसदि का निर्माण कराया था, इसलिए यह 'विक्रम शेट्टी बसदि' कहलाता है। इसके सामने लगभग 35 या 40 फुट ऊँचा सुन्दर मानस्तम्भ है। इसके मूलनायक ऋषभदेव हैं। काले पाषाण से निर्मित उनकी मूर्ति दो फुट ऊँची है। तीर्थंकर कमलासन पर पद्मासन में हैं और मकर-तोरण से संयुक्त हैं। ऐसा जान पड़ता है कि उनका आसन छोटा है और उनके चरण कुछ बाहर निकले हुए हैं।

कल्लु बसदि—कन्नड में 'कल्लु' का अर्थ पाषाण होता है। पाषाण-निर्मित होने के कारण यह मन्दिर कल्लु बसदि कहलाता है। सन् 1934 ई. में इसका जीर्णोद्धार हुआ था। बताया जाता है कि पहले इसके मूलनायक चन्द्रनाथ थे किन्तु जीर्णोद्धार के बाद यहाँ शीतलनाथ की प्रतिमा स्थापित कर दी गई। यह भी एक प्राचीन मन्दिर जान पड़ता है। मूर्ति मनोहर है, मकर-तोरण की भी संयोजना है। भामण्डल अर्धचन्द्राकार है। मन्दिर के सामने एक मानस्तम्भ भी है जिसपर सबसे ऊपर कलश है।

लेप्पद बसदि—यहाँ 'लेप्प' (मिट्टी) से निर्मित चन्द्रप्रभ और ज्वालामालिनी यक्षी की लगभग चार फुट ऊँची मूर्तियाँ हैं। इस कारण इसे 'लेप्पद बसदि' कहा जाता है। कहा जाता है कि विक्रांत शेट्टी और पदुमशेट्टी नामक श्रावकों ने इसका निर्माण कराया था। इसका उल्लेख 'स्थापना पद्यावली' में भी है। इस बसदि की ज्वालामालिनी की प्रसिद्धि इस क्षेत्र में अधिक है। इस कारण अपने मनोरथ की पूर्ति हेतु विधि-विधान या पूजा कराने के लिए आसपास की जनता सैकड़ों की संख्या में यहाँ प्रतिवर्ष आती है। मन्दिर के सामने लगभग 40 फुट ऊँचा एक मानस्तम्भ भी है।

देरम्मा शेट्टी बसदि—यह मन्दिर मल्लिनाथ बसदि भी कहलाता है। इसके मूलनायक तीर्थंकर मल्लिनाथ हैं। इसमें कमलासन पर अरहनाथ, मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ की

लगभग तीन फुट ऊँची प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इन्हें 'रत्नत्रय भगवान' भी कहा जाता है। बीच की प्रतिमा श्वेत पाषाण की है और शेष दो धातु-निर्मित। यहाँ चौबीसी भी है।

अनुश्रुति है कि देरम्मा शेट्टी एक निर्धन श्रावक था। किन्तु उसके मन में यह इच्छा बलवती हुई कि वह भी एक जिनमन्दिर का निर्माण कराए। दृढ़ निश्चयी उस जिनभक्त ने अपनी आय में से चौथाई भाग बचाकर धन-संग्रह किया और इस मन्दिर का निर्माण कराया।

चोल शेट्टी बसदि—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस मन्दिर का निर्माण चोल शेट्टी नामक जिनधर्मानुयायी ने कराया था। इसमें सुमतिनाथ, पद्मप्रभ और मल्लिनाथ की काले पाषाणों से निर्मित भव्य प्रतिमाएँ पद्मासन में हैं। सुमतिनाथ की प्रतिमा मकर-तोरण और प्रभावली से युक्त है किन्तु आसन छोटा जान पड़ता है। पद्मप्रभ की मूर्ति भी मकर-तोरण एवं यक्ष-यक्षी सहित है। सुन्दर नक्काशीदार भामण्डल धनुषाकार जान पड़ता है। मल्लिनाथ की प्रतिमा भी मकर-तोरण से सज्जित है। यक्ष-यक्षी का भी अंकन है। नक्काशी सुन्दर है। इस बसदि में पाषाण के एक शंख पर नेमिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में यक्ष-यक्षी, मकर-तोरण से सुसज्जित हैं। उनके आसपास चँवर भी अंकित हैं। मन्दिर के दाएँ-बाएँ भाग में दो चौबीसी भी हैं।

मादिशेट्टी बसदि या आदिनाथ बसदि—मादिशेट्टी नामक व्यक्ति ने इसका निर्माण कराया था, इसलिए इसे मादिशेट्टी बसदि कहते हैं। ऋषभदेव या आदिनाथ इसके मूलनायक हैं। इसलिए इसे आदिनाथ बसदि के नाम से भी जाना जाता है। ऋषभदेव की काले पाषाण से निर्मित लगभग पाँच फुट ऊँची मूर्ति कायोत्सर्ग मुद्रा में है। उनके आसपास अन्य 23 तीर्थंकर भी खड्गासन में उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी भी प्रदर्शित हैं। इसकी निर्माण सम्बन्धी जानकारी मूर्ति के पादपीठ में उत्कीर्ण लेख से मिलती है।

वेंकि या बेंकणतिकारी बसदि—बेंकणतिकारी नामक जिनधर्मी द्वारा निर्मित कराए जाने के कारण यह इस नाम से जानी जाती है। इसमें जो चौबीसी है उसके मूलनायक अनन्तनाथ हैं। उनकी कायोत्सर्ग मुद्रा में काले पाषाण की लगभग तीन फुट ऊँची प्रतिमा है जिसके प्रभावलय में अन्य तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी भी प्रदर्शित हैं। तीर्थंकर पार्श्वनाथ की एक अन्य मूर्ति सात फणों से तथा यक्ष-यक्षी से संयोजित है। प्रभावली एवं चँवर का अंकन भी है। यहाँ एक सरस्वती प्रतिमा भी है जिसके हाथ में वीणा और पुस्तक है।

केरे बसदि—कन्नड़ में केरे का अर्थ तालाब होता है। इसके सामने एक तालाब है, इस कारण यह 'तालाबवाला मन्दिर' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके मूलनायक मल्लिनाथ हैं। काले पाषाण से निर्मित उनकी लगभग तीन फुट ऊँची मूर्ति कायोत्सर्ग मुद्रा में यक्ष-यक्षी सहित तथा मकर-तोरण से सज्जित है। मूर्ति पर नाभि के पास तीन वलयों का अंकन प्रभावशाली है।

पड़ु बसदि—कन्नड़ में 'पड़ु' का अर्थ होता है पूर्व (दिशा)। यह मन्दिर मूडबिद्री की पूर्व दिशा में स्थित है इसलिए 'पड़ु बसदि' कहलाता है। एक ताम्रपत्र में उल्लेख है कि यह मन्दिर गुरु बसदि से भी प्राचीन है। यह तीन तीर्थंकरों—विमलनाथ, अनन्तनाथ और धर्मनाथ की मनोज्ञ, पाषाण-निर्मित कायोत्सर्ग, लगभग तीन फुट ऊँची मूर्तियों के लिए प्रसिद्ध है। इस मन्दिर में एक 'गुप्तगृह' भी है जिसमें किसी समय पत्थर की पेटी में अनेक विषयों के जैन ग्रन्थ

सुरक्षित रखे गए थे। किन्तु कुछ प्रमादवश यह विशाल एवं अज्ञात भंडार कीड़ों का उपहार बन गया। जो ग्रन्थ शेष बचे थे उन्हें आरा निवासी स्व. बाबू देवकुमार ने अपने व्यय से व्यवस्थित करवाया, उनकी सूची बनवाई और उन्हें यहाँ के जैनमठ में सुरक्षित रखवा दिया था। बताया जाता है कि इस क्षेत्र में ताड़पत्रों पर लिखे ग्रन्थों की संख्या लगभग तीन-चार हज़ार थी। जो सुरक्षित रह गए हैं उन्हें अब श्रीमती रमारानी जैन शोध संस्थान में विद्वानों के अनुसंधान आदि के लिए सँभालकर रख दिया गया है।

जैन पाठशाला बसदि—यहाँ के जैनमठ के सामने किसी समय एक जैन संस्कृत पाठशाला थी। यहाँ के मन्दिर में अमृतशिला से निर्मित लगभग दो फुट ऊँची मुनिसुव्रतनाथ की एक खड्गासन सुन्दर मूर्ति है। यक्ष-यक्षी भी हैं।

जैन-पुल

बताया जाता है कि मूडबिद्री में 18 तालाब हैं। अनुश्रुति है कि 'त्रिभुवनतिलकचूडामणि' मन्दिर के लिए 'अंकिसालेय केरे' (तालाब) से चाँदी के कलश में जल लाया जाता था। इस मन्दिर के पास जो पुल है वह जैन पुल कहलाता है।

चोटर राजमहल

जैन धर्मानुयायी चोटर वंश के राजा किसी समय होय्सल राजाओं के सामन्त थे। समय पाकर वे स्वतन्त्र हो गए और उन्होंने अपनी राजधानी पहले उल्लाल में और बाद में मूडबिद्री एवं पुत्तिगे में स्थापित की। इनका शासनकाल 1160 से 1860 ई. अर्थात् लगभग सात सौ वर्षों तक रहा। उसके बाद उनका राज्य ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत चला गया। उन्हें राजनैतिक पेंशन दी गई जोकि यहाँ रहनेवाले उनके वंशजों को आज तक मिलती है। चोटर राजाओं के महल का निर्माण 1643 ई. में हुआ था। यह आठ एकड़ भूमि में फैला हुआ है। उसके चारों ओर क़िलाबन्दी है तथा तीन ओर खाई है। महल अब खस्ता हालत में है किन्तु उसमें चित्रित जैन कला दर्शनीय है। कारीगरी इतनी सूक्ष्म एवं विस्मयकारी है कि प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता।

यहाँ के एक स्तम्भ पर पाँच अप्सराओं की आकृति से बनी एक घोड़े की आकृति चित्रित की गई है। इसे 'पंचनारीतुरग' कहते हैं। एक और चित्र में नौ अप्सराओं की आकृति से एक कुंजर (हाथी) की आकृति बनती है। यह 'नवनारीकुंजर' कहलाता है (चित्र क्र. 75)।

उपर्युक्त चित्र 12 वीं से 14वीं सदी तक के बीच बने बताए जाते हैं। इनसे आभूषण, पोशाक, केश-विन्यास आदि की अच्छी जानकारी मिलती है। गवाक्षों में भी सूक्ष्म चित्रकारी है जो देखते ही बनती है। यहाँ एक कक्ष ऐसा भी बताया जाता है जिसमें मृत राजाओं के शरीर को नमक में डालकर रखा जाता था। इस चोटरवंश के लोग आज भी जैनधर्म का पालन करते हैं।

काष्ठ का रथ—मूडबिद्री में काष्ठ का एक रथ भी है जिस पर नक्काशी का सुन्दर और सूक्ष्म काम हुआ है।

निषधियाँ या समाधियाँ

यहाँ समाधियों की अद्भुत रचना पाई जाती है (देखें चित्र क्र. 76)। ऐसी रचना भारत में शायद ही कहीं हो। ये समाधियाँ अठारह मठाधिपतियों तथा दो श्रावकों की बताई जाती हैं। किन्तु लेख केवल दो ही समाधियों पर हैं। समाधियाँ तीन से लेकर आठ तल तक की हैं। इनका एक तल दूसरे तल की ढलवाँ छत के द्वारा विभक्त होता है। इस कारण ये काठमांडू या तिब्बत के पैगोडा-जैसी लगती हैं। इनकी हर मंजिल की छत ढलावदार है। ये भारत में अपने ढंग की ही निर्मिति हैं।

वार्षिक उत्सव और मेले

यहाँ की तीन बसदियों के उत्सव और मेले प्रसिद्ध हैं। होस बसदि या त्रिभुवनतिलक-चूडामणि नामक चन्द्रनाथ मन्दिर में प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ल 14 को 'छोटा रथोत्सव' तथा पूर्णिमा के दिन 'बड़ा रथोत्सव' बड़े उल्लास के साथ मनाया जाता है जिसमें आसपास की हज़ारों की संख्या में जनता भाग लेती है। 'बडग बसदि' में हर साल माघ शुक्ल 13 को रथोत्सव आयोजित किया जाता है। 'हिरे बसदि' में हर वर्ष बैशाख शु. 15 को रथोत्सव होता है। यहाँ पद्मावती देवी की पूजा कराने, मनौतियाँ मनाने के लिए बड़ी संख्या में लोग आते हैं। चैत्र मास में 'लेप्पद बसदि' में यहाँ के चोटरवंशीय राजघराने के सदस्यों द्वारा भगवान का अभिषेक लकड़ी की विशाल सीढ़ियाँ बनाकर सम्पन्न किया जाता है।

मूडबिद्री की संस्थाएँ

यहाँ की सबसे प्रमुख संस्था श्रीमती रमारानी जैन शोध संस्थान है, जिससे जैन-जैनेतर विद्वान लाभ लेते हैं। सन् 1965 में यहाँ 'महावीर कला, विज्ञान और वाणिज्य महाविद्यालय' की स्थापना 'समाज मन्दिर सभा' के प्रयत्नों से हुई। यहाँ पर जैन हायर सेकेण्डरी स्कूल भी है जो अब जैन जूनियर कॉलेज के नाम से जाना जाता है। स्कूल अपनी रजत जयन्ती मना चुका है।

मूडबिद्री न केवल एक प्रमुख जैन केन्द्र या तीर्थ अथवा शास्त्रों का अपूर्व संग्रहस्थान है अपितु उसे कवि रत्नाकर की जन्मभूमि होने का भी गौरव प्राप्त है। उनकी 'भरतेश-वैभव', 'रत्नाकर-शतक' आदि कृतियाँ प्रसिद्ध हैं। उनकी स्मृति में यहाँ 'रत्नाकर नगर' नाम की एक कालोनी बसाई गई है।

वर्तमान स्थिति

लगभग दस-बारह हज़ार की आबादी-वाला यह छोटा नगर अब भी दूर-दूर के जैन तीर्थयात्रियों को आकर्षित करता है, यद्यपि यहाँ जैन श्रावक परिवारों की संख्या लगभग पचास ही रह गई है। वे अधिकांशतः कृषि पर निर्भर करते हैं। मुख्य उपज नारियल, काजू, सुपारी तथा चावल है। जमींदारी उन्मूल के कारण जैन श्रावकों तथा मठ को आर्थिक हानि हुई है।

मठ का पता इस प्रकार है—

श्री दिगम्बर जैनमठ,
पो. मूडबिद्री (Mudabidri) पिन—574227
ज़िला—मंगलोर (Mangrlore), कर्नाटक

विशेष सूचना

वरंग, कारकल, वेणूर में धर्मशालाओं की स्थिति अच्छी नहीं है। मंगलोर में भी धर्मशाला नहीं है। मंगलोर से 27 किलोमीटर दूर बंगर मंजेश्वरम् (केरल) के दो मन्दिर भी देखने योग्य हैं। इन पाँच स्थानों के लिए मूडबिद्री को केन्द्र बनाना चाहिए। मूडबिद्री से सुबह ही कोई बस से भी निकल जाएँ (कारकल होते हुए) तो सबसे पहले वरंग का जलमन्दिर आदि देखकर, कारकल की 42 फुट ऊँची बाहुबली की मूर्ति और चतुर्मुख वसदि आदि सभी मन्दिर देखकर मूडबिद्री वापस आ सकते हैं। इसी प्रकार वेणूर की विशाल गोम्मट मूर्ति और शान्तिनाथ वसदि आदि देखकर उसी दिन वापस आया जा सकता है। ठहरने की उत्तम सुविधा की दृष्टि से वेणूर की यात्रा धर्मस्थल से भी आसान है। मंगलोर का एक मन्दिर और मंगलोर शहर देखकर रेल या बस (बस अधिक सुविधाजनक) द्वारा केरल राज्य के बंगर मंजेश्वर की प्राचीन चतुर्मुख वसदि और एक अन्य जैन मन्दिर देखकर उसी दिन मंगलोर वापस आ सकते हैं। इतनी सुविधा मंगलोर और मूडबिद्री के बीच बसों की है।

मूडबिद्री में हिन्दी से काम चल जाता है।

वेणूर

अवस्थिति एवं मार्ग

मंगलोर (या दक्षिण कन्नड़) ज़िले के बेलतंगडी तालुक के अन्तर्गत वेणूर (Venuru) गाँव है। मूडबिद्री से यह सड़क-मार्ग द्वारा 20 किलोमीटर, धर्मस्थल से (गुरुवायनकेरे होते हुए) 32 कि. मी. तथा मंगलोर से 52 कि. मी. है। वेणूर से राजकीय मुख्यमार्ग पर स्थित गुरुवायन-केरे केवल 15 कि. मी. है।

रेलवे स्टेशन मंगलोर ही सबसे प्रमुख है।

मूडबिद्री से वेणूर जाते समय मार्ग बड़ा रमणीक है। बीच में कुछ गाँव पड़ते हैं। वहाँ के जैन बन्धुओं ने सड़क पर 'पार्श्व मन्दिर' और 'पुष्पदन्त मन्दिर' आदि के सूचनापट्ट लगा रखे हैं। अपने वाहन से यात्रा करने वाले इन्हें भी देख सकते हैं और अपने साधर्मी बन्धुओं का परिचय पाकर उनका उत्साह बढ़ा सकते हैं।

इस स्थान का प्राचीन नाम एनूर था जो कि यहाँ के शिलालेख में उत्कीर्ण है। अब यह

एक छोटा-सा गाँव है जिसकी वर्तमान आबादी पन्द्रह सौ के लगभग है। जैनियों के दस परिवार हैं। सभी नारियल सुपारी चावल और काजू की खेती करते हैं।

वेणूर भी तुलुदेश (तुलुनाडु) में है।

वेणूर की प्रसिद्धि यहाँ की प्राचीन बाहुबली मूर्ति (35 फुट) के कारण है। ऊँचाई की दृष्टि से श्रवणबेलगोल (57 फुट) और कारकल (42 फुट) की मूर्ति के बाद इस मूर्ति का तीसरा नम्बर था। किन्तु धर्मस्थल में गोमटेश (बाहुबली) की 39 फुट ऊँची मूर्ति स्थापित हो जाने के बाद कर्नाटक में यहाँ की मूर्ति का स्थान चौथा हो गया।

इतिहास

जैन धर्म का पालन करने वाले राजवंशों में यहाँ 1154 ई. से 1764 ई. तक शासन करने वाले अजिलगोत्रीय राजाओं की भी गणना होती है। इस वंश के राजा सोमवंशी थे। अजिल वंश की नींव तिम्मण अजिल प्रथम ने (1154-1180 ई.) रखी। वह सम्भवतः गंगवंश में उत्पन्न हुआ था और गंगवाडि का निवासी था। यहाँ की बाहुबली प्रतिमा के दायीं ओर के शिला-लेख में इस वंश के तिम्मराज ने अपने आपको चामुण्डराय का वंशज बताया है। कुछ लोगों के अनुसार ये वही चामुण्डराय हैं जिन्होंने श्रवणबेलगोल की प्रसिद्ध मूर्ति निर्मित कराई थी जबकि कुछ अन्य विद्वान् कदम्बवंश के चामुण्डराय से इनका सम्बन्ध जोड़ते हैं। जो भी हो, इस वंश के राजा प्रारम्भ से अन्त तक जैन धर्म के अनुयायी बने रहे। उनके उत्तराधिकारी आज भी अलदंगडी में रहते हैं। उनका अब ध्वस्त महल किसी समय सात मंजिला था। उसके द्वार पर पाषाण के दो हाथी निर्मित है।

उपर्युक्त वंश के ही एक राजा ने वेणूर की प्रसिद्ध शान्तीश्वर बसदि का निर्माण 1490 ई. के लगभग कराया था।

अजिल वंश में तिम्मराज अजिल चतुर्थ हुआ है जिसने इस प्रदेश पर 1550 से 1610 ई. तक राज्य किया। उसी ने वेणूर में भगवान बाहुबली की मूर्ति बनवाई थी। इस मूर्ति के कारण कारकल के राजा ने तिम्मराज के साथ युद्ध छेड़ दिया था जिसका विवरण मूर्ति के प्रसंग में दिया जाएगा। जब यहाँ की महारानी मधुरिकादेवी (1610-1647 ई.) ने गोमटेश का अभिषेक लगभग 1634 ई. में कराया तब भी कारकल के राजा ने वेणूर पर आक्रमण किया था। इसी वंश में पद्मलादेवी नामक एक धर्मप्राण रानी ने भी यहाँ शासन किया है। सन् 1764 ई. में हैदरअली ने इसे अपने राज्य में मिला लिया। किन्तु यह वंश चलता रहा। उसे अंग्रेजों से भी पेंशन मिलती थी। किसी समय वेणूर प्रदेश पुंजलिके कहलाता था।

क्षेत्र-दर्शन

यात्री जब वेणूर गाँव में बस से उतरता है उसे कुछ कदम चलने पर दो स्तम्भों पर एक फलक पर 'ॐ Sri Bhagavan Bahubali Kshetra' अंग्रेजी में दिखाई देगा। सामने ही एक भवन है जहाँ नागरी में 'श्री दिगम्बर जैन अतिशय तीर्थ क्षेत्र समिति (रजि.), वेणूर (दक्षिण कन्नड़)' का बोर्ड मिलेगा। इसी भवन में पार्श्वनाथ मन्दिर है। मन्दिर पूर्वाभिमुखी है। इसमें मूलनायक

पार्श्वनाथ की कांस्य प्रतिमा है। यहाँ का शिलालेख घिस गया है। इसलिए इसकी प्राचीनता सम्बन्धी जानकारी प्राप्त नहीं होती। जो भी हो, मूडबिद्री के भट्टारक जी ने इसका जीर्णोद्धार कराया है। दैनिक पूजा के लिए सरकार से भी शायद नाममात्र की सहायता मिलती है।

उपर्युक्त मन्दिर के प्रवेशद्वार के दाहिनी ओर लगभग सौ फुट की दूरी पर अहाता है जहाँ बाहुबली की 35 फुट ऊँची विशाल प्रतिमा है (देखें चित्र क्र. 77)। मूर्ति का ऊपरी पृष्ठ भाग दूर से दिखाई देता है।

बाहुबली मूर्ति के अहाते के बाहर, हमें एक विशाल स्तम्भ मिलता है। उस पर मूर्ति के सामने मुख किए हुए या दक्षिण दिशा की ओर मुँह किए ब्रह्म यक्ष की मूर्ति है। यक्ष के एक हाथ में नारियल और दूसरे में दण्ड है। मुकुट ऊँचा है। नीचे ब्रह्मदेव घोड़े पर सवार हैं। अन्य कोई उत्कीर्णन या शिलालेख नहीं है।

श्रवणबेलगोल या कारकल की विशाल बाहुबली मूर्तियाँ पहाड़ियों पर प्रतिष्ठापित हैं। किन्तु वेणूर की मूर्ति एक समतल टीले पर स्थित है जो कि गुरपुर नदी (बीस गज चौड़ी और पत्थरों के बीच कलकल कर बहती) के दक्षिण किनारे पर है। नदी के तल से यह टीला लगभग 50 फुट ऊँचा है।

सड़क से बाहुबली अहाता दस-बारह फुट ऊँचा है। उससे ऊपर का अहाता लगभग सात फुट ऊँचा है। इतनी ऊँचाई के कारण यह मूर्ति मीलों दूर से दिखाई देती है। यह अहाता मूर्ति को भव्यता प्रदान करता है।

बाहुबली प्रांगण का द्वार बारह-तेरह फुट ऊँचा है। उस पर नीचे पूर्णकुम्भ और सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर अंकित हैं। द्वार पर '2500वाँ श्री महावीर निर्वाणोत्सव' अब भी लिखा है। मूर्ति के दर्शन का समय नियत है जिसका यात्रियों को ध्यान रखना चाहिए। समय इस प्रकार है—सुबह 7 से 9 बजे तक और शाम 6 से 7 तक।

यात्री यहाँ के जैनबन्धुओं अथवा स्थानीय कार्यालय से अन्य किसी समय के लिए आवश्यकतानुसार अनुरोध कर सकते हैं।

जैसे ही हम प्राकार के भीतर प्रवेश करते हैं, वैसे ही अपने बायीं ओर 'बिन्नाणि' मन्दिर और दायीं ओर 'अक्कंगल' नामक दो छोटे मन्दिर देखते हैं। बिन्नाणि में शान्तिनाथ स्वामी की और दायीं ओर चन्द्रप्रभ स्वामी की मूर्ति है। अक्कंगल का अर्थ 'बहिनें' होता है। इनके निकट के शिलालेख में उल्लेख है कि इन मन्दिरों को राजा तिम्मराज अजिल की दो रानियों पाण्डयक्कदेवी और मल्लिदेवी ने 1604 ई. में बनवाया था।

बाहुबली मूर्ति के सामने प्रांगण में एक ध्वजस्तम्भ है जिस पर ताँबा चढ़ा है। इस स्तम्भ पर वार्षिक रथयात्रा के समय ध्वज फहराया जाता है। उससे आगे पाषाण-निर्मित एक मण्डप है जिस पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हैं। सीढ़ियों के जँगले पर दोनों ओर लगभग पाँच फुट ऊँचे दो सुन्दर हाथी बने हैं। सामने दो चबूतरे हैं। उनमें से एक दूसरे से कुछ नीचा है। ऊपर के चबूतरे पर नीचे एक बड़ा और एक छोटा कमल बना है। इन कमलद्वय के आसन पर प्रतिष्ठित है बाहुबली की 35 फुट ऊँची विशाल मूर्ति। मूर्ति के दोनों ओर सात खण्डों (पंक्तियों) के लगभग सात-आठ फुट ऊँचे दीपदान हैं जिनमें दीप द्वारा प्रकाशन की व्यवस्था

है। इसी प्रकार प्रतिमा के दोनों ओर पाषाण के खम्भे भी बनाए गए हैं जिन पर अभिषेक के समय मंच बनाया जाता है।

ऐसा जान पड़ता है कि मूर्ति को सहारा देने के लिए मूर्ति के पादतल से घुटने तक एक पाषाण-फलक खड़ा किया गया है। इसी फलक के सामने के भागों में, दोनों ओर एक-एक सर्प तीन फण ऊपर उठाए मूर्ति के घुटनों तक दिखाए गए हैं। उनके नीचे भी बाँबी तथा सर्प प्रदर्शित हैं। बाहुबली के शरीर पर लताएँ दोनों पैरों के बीच में से (एड़ी से) ऊपर उठकर घुटनों से होते हुए जाँघों पर चढ़ती दिखाई गई हैं। घुटनों से ऊपर लता के पत्तों का अंकन बहुत स्पष्ट है। लताएँ हाथों पर दो लपेटन देती हुई कंधों के जोड़ों तक गई हैं। बाहुबली के उदर पर तीन वलय अंकित किए गए हैं जो मूर्ति को स्वाभाविकता प्रदान करते हैं। मूर्ति के कान लम्बे हैं, वे भुजा को स्पर्श करते हैं। मूर्ति पर सहज मुस्कान का भाव झलकता है। यह काले पाषाण की है। अपने निर्माण के प्रारम्भिक वर्षों में वह बहुत सुन्दर रही होगी किन्तु अब उस पर हवा और पानी का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। स्मरण रहे, यहाँ वर्षा बहुत अधिक होती है। यही कारण है कि मूर्ति इस समय कहीं काली, कहीं मटमैली और कहीं सफेद- सी नजर आती है। मूर्ति के बायीं ओर तथा दायीं ओर शिलालेख हैं। दायीं ओर के शिलालेख में उल्लेख है कि चामुण्डराय के वंशज तिम्मराज ने एनूर में भुजबली (बाहुबली) नामक जिनेश्वर प्रतिमा शक संवत् 1525 (1604 ई.) में स्थापित की। यह तिम्मराज पाण्ड्यनरेश का छोटा भाई, पाण्ड्यक रानी का पुत्र तथा रायकुंवर का जामाता था। उसने इस मूर्ति की स्थापना बेलगुल (श्रवणबेलगोल) के भट्टारक (देशीगण) चारुकीर्ति के आदेश से एनूर (वेणूर) में की। बायीं ओर के शिलालेख में भी यह उल्लेख है कि इसकी स्थापना तिम्मराज ने की थी और वह सोमवंश का धुरीण तथा पुंजलिके का शासक था। यहाँ बाहुबली के लिए 'गुम्मटेश' का प्रयोग किया गया है।

यहाँ प्रतिवर्ष मार्च (फाल्गुन पूर्णिमा) में रथोत्सव होता है जो पाँच दिनों तक चलता है। उस समय बाहुबली की छोटी धातु-प्रतिमा का उपयोग अभिषेक के लिए किया जाता है। इस अवसर पर लकड़ी के सुन्दर रथ का प्रयोग किया जाता है।

मूर्ति वाले चबूतरे से चारों ओर हरी-भरी पहाड़ियाँ, पेड़-पत्तीहीन काली ठोस विशाल शिलाएँ, कभी-कभी दूर-दूर की इन शिलाओं से भी नीचे तैरते बादल और प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य की मन को प्रसन्न करने वाली झलक मिलती है। मूर्ति के सामने से प्रसिद्ध कुद्रेमुख पहाड़ी भी दिखाई देती है। (कन्नड़ में कुद्रे का अर्थ होता है घोड़ा। पहाड़ी के इस प्रकार के आकार के कारण यह नाम पड़ा होगा।)

बाहुबली-मूर्ति के कारण युद्ध—यह तो स्पष्ट ही है कि यह मूर्ति वहीं पर स्थित किसी चट्टान को ही तराश कर नहीं बनाई गई है। अनुश्रुति है कि इसका निर्माण वर्तमान स्थल से छह-सात किलोमीटर की दूरी पर कल्याणी नामक स्थान पर हुआ था।

अपनी कीर्ति अमर करने और अपनी बराबरी का या ऊँचा कोई दूसरा न हो इस प्रकार की ईर्ष्या मनुष्य से क्या नहीं करा लेती ? ऐसी ही ईर्ष्या का कारण बनी वेणूर की यह विशाल-काय भुजबली (बाहुबली) की मूर्ति। श्रवणबेलगोल की प्रसिद्ध बाहुबली मूर्ति के निर्माता चामुण्डराय के ही सम्भवतः वंशज वेणूर के शासक तिम्मराय ने भी बाहुबली की विशाल मूर्ति

का निर्माण-कार्य प्रारम्भ किया था। जब यह समाचार कारकल के तत्कालीन शासक राजा इम्मडि भैरवराय को मिला तो उसने विचार किया कि उसके पूर्वज राजा वीर पाण्ड्य ने कारकल में 42 फुट ऊँची बाहुबली मूर्ति प्रतिष्ठापित की है। अगर वेणूर में भी इससे ऊँची या भव्य बाहु-बली मूर्ति बन गई तो उसके पूर्वज और और कारकल की मूर्ति की प्रसिद्धि में कमी आएगी। इसलिए उसने तिम्मराज को संदेश भेजा कि वेणूर में बाहुबली मूर्ति स्थापित नहीं की जाए और मूर्ति को कारकल भेज दिया जाए। तिम्मराज को कारकल-नरेश की यह बात सहन नहीं हुई। उसने कहला भेजा कि कैसी भी विपत्ति क्यों न आए, बाहुबली की मूर्ति वेणूर में ही प्रतिष्ठित की जाएगी। यह समाचार पाकर भैरवराय अत्यन्त अप्रसन्न हुआ और उसने अजिल राज्य की सीमा पर अपनी सेना भेजकर वेणूर राज्य पर आक्रमण कर दिया। इस विपत्ति का समाचार पाकर वेणूर-नरेश ने बाहुबली की मूर्ति को यहाँ की फल्गुणी नदी के किनारे रेती में रातोंरात छिपा दिया ताकि हार जाने पर भी गोमटेश की मूर्ति कारकल के राजा के हाथ न लगे। उसके बाद तिम्मराज ने अपने सेनापति को कारकल-नरेश की सेना से युद्ध करने के लिए अपनी सीमा पर भेजा। दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ और कारकल-नरेश उसमें हार गया। तब कहीं जाकर 1604 ई. में वर्तमान मूर्ति वेणूर में स्थापित हो सकी।

तीस वर्ष बाद, मस्तकाभिषेक के समय फिर युद्ध—तिम्मराज के बाद उसकी भानजी मधुरिकादेवी ने 1610 से 1647 तक वेणूर में शासन किया। उसने लगभग 1634 ई. में भुज-बली के महामस्तकाभिषेक का आयोजन किया। उस समय भी तत्कालीन कारकलनरेश ने इस समारोह का विरोध किया और वेणूर पर आक्रमण कर दिया। रानी मधुरिका ने कुशल-नीति अपनाई और कारकल के राजा को कुछ गाँव भेंट में देकर वापस लौटा दिया। इस प्रकार यह मूर्ति दो बार ईर्ष्या और उसके परिणामस्वरूप युद्ध का कारण बनी।

आधुनिक वेणूर में कुल आठ मन्दिर हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—(1) भुजबली (बाहु-बली) मन्दिर, (2) अक्कंगल मन्दिर, (3) बिन्नाणि मन्दिर, (4) पार्श्वनाथ मन्दिर, (5) शान्तिनाथ मन्दिर, (6) वर्धमान मन्दिर, (7) तीर्थंकर मन्दिर तथा (8) ऋषभनाथ मन्दिर। मन्दिर क्र. 1 से 4 का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। शेष चार मन्दिरों का संक्षिप्त परिचय निम्नप्रकार है। ये सभी मन्दिर पास-पास हैं। बाहुबली-प्रांगण के पास ही स्थानीय मठ का कार्यालय भी है। ऊपर दिए गए क्र. 5 से 8 तक के मन्दिर गाँव के पास हैं।

कल्लुबसदि या शान्तिनाथ स्वामी मन्दिर—चूँकि यह बसदि पाषाण (कल्लु=पाषाण निर्मित) है इसलिए यह मन्दिर कल्लु बसदि भी कहलाता है। वैसे इसकी प्रसिद्धि शान्तिनाथ स्वामी मन्दिर के रूप में है। आकार में बड़ा होने से यह बड़ा मन्दिर भी कहलाता है। 1490 ई. के लगभग जैन, शासक तिम्मराज के पूर्वज ने इसका निर्माण कराया था। यह लाल पत्थर का बना है और तिमंज़ला है। इसमें नीचे की मंज़िल के मन्दिर के मूलनायक शान्तिनाथ हैं जिनकी काले पाषाण की लगभग पाँच फुट ऊँची भव्य मूर्ति है। शान्तिनाथ के विग्रह (मूर्ति) के साथ ही उनके यक्ष गरुड़ और यक्षी महामानसी भी उसी शिला में उत्कीर्ण किए गए हैं। मूर्ति की कमर से उपर जो प्रभावली है उसमें अष्ट प्रातिहार्यों (1. अशोक वृक्ष, 2. पुष्पवृष्टि, 3. दिव्यध्वनि, 4. चँवर, 5. सिंहासन, 6. प्रभामण्डल, 7. दुंदुभि और 8. छत्रत्रयी) का सुन्दर और आकर्षक

अंकन है। इस प्रकार की प्रातिहार्यों सहित मूर्तियाँ बहुत ही कम देखने को मिलती हैं। स्तम्भों पर भी उत्तम नक्काशी है।

उपर्युक्त मन्दिर की दूसरी मंज़िल पर 'वर्धमान स्वामी बसदि' है। उसमें लगभग तीन फुट ऊँची महावीर स्वामी की कांस्य-प्रतिमा विराजमान है। उसकी प्रभावली भी सुन्दर है। तीसरी मंज़िल में चन्द्रप्रभ की पाषाण-मूर्ति है।

इस प्रकार शान्तिनाथ मन्दिर और वर्धमान मन्दिर एक ही भवन में हैं। मन्दिर के प्रांगण में दो शिलालेख हैं (देखें चित्र क्र. 78)। इस मन्दिर के सामने एक ऊँचा मानस्तम्भ (देखें चित्र क्र. 79) भी है जो बहुत दूर से दिखाई देता है। उसमें चारों ओर कुल मिलाकर चौबीस लघु तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई हैं जिनके कारण इस मानस्तम्भ की शोभा और भी अधिक बढ़ गई है।

ऋषभदेव बसदि—शान्तिनाथ स्वामी मन्दिर की बायीं ओर यह एक छोटा मन्दिर है। इसके मूलनायक ऋषभदेव हैं। पाषाण-निर्मित उनकी लगभग पाँच फुट ऊँची पद्मासन मूर्ति है। मन्दिर का इतिहास ज्ञात नहीं है, किन्तु मूर्ति प्राचीन लगती है।

चौबीस तीर्थंकर बसदि—यह मन्दिर शान्तिनाथ स्वामी मन्दिर के दाहिनी ओर है। यहाँ एक शिलालेख है। उसके अनुसार, रानी मधुरिका ने इस मन्दिर का निर्माण 1621 ई. में कराया था। शिलालेख अब भी आसानी से पढ़ा जा सकता है। इसमें चौबीस तीर्थंकरों की लगभग तीन फुट ऊँची पाषाण-प्रतिमाएँ हैं। सिंह युक्त आसन पर मूर्तियाँ विराजमान होने के कारण यह मन्दिर 'हरिपीठ' भी कहलाता है। पूरा मन्दिर पाषाण-निर्मित है। उसके द्वारों की चौकी आदि पर बेल-बूटों की कलात्मक एवं सूक्ष्म कारीगरी की तुलना हलेबिड और बेलूर की कारीगरी से भी की जाती है। कम-से-कम दक्षिण कन्नड जिले में यह अंकन श्रेष्ठ माना जाता है।

इस मन्दिर में पद्मावती और सरस्वती की प्रतिमाएँ भी हैं। इस कारण इसे अम्मनवर (अम्मनवर=माँ) मन्दिर भी कहते हैं।

वेणूर के कुछ मन्दिरों के लिए सरकार से बहुत ही कम राशि पूजा-प्रक्षाल आदि के लिए मिलती है। इस राशि को तसदीक कहा जाता है।

वेणूर तीर्थक्षेत्र समिति के वर्तमान अध्यक्ष श्री वीरेन्द्र हेगडे, धर्मस्थल, और श्री कृष्ण-राज अजिल (राजवंश के) और मन्त्री डॉ. इन्द्र, वेणूर हैं। क्षेत्र का पता निम्न प्रकार है—

श्री दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र समिति (रजि.)
गाँव और पो. ऑ.—वेणूर (Venoor), पिनकोड-574242
ज़िला—मंगलोर (Mangalore), कर्नाटक
टेलिफ़ोन नम्बर 31, वेणूर

ऊपर यह कहा जा चुका है कि यात्री को ठहरने की सुविधा की दृष्टि से मूडबिद्री उपयुक्त है। या फिर ठहरने की उत्तम व्यवस्था ध्यान में हो तो धर्मस्थल में ठहरकर यहाँ के दर्शन करने चाहिए। धर्मस्थल यहाँ से 32 कि. मी. है। वेणूर से गुरुवायनकेरे 15 कि. मी. और वहाँ से धर्मस्थल 17 कि. मी. है। गुरुवायनकेरे से धर्मस्थल के लिए दिन भर बसें मिलती हैं।

मंगलोर

अवस्थिति एवं मार्ग

छोटे किन्तु धार्मिक अथवा कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थानों को देखते-देखते पर्यटक या यात्री का जी करता है कि कर्नाटक के बड़े शहर और वहाँ की चहल-पहल भी वह देख ले तो यात्रा एकांगी नहीं रहेगी। और यदि वहाँ पहाड़ियों या सागर की भी छटा हो तो और भी सुन्दर। इस इच्छा की पूर्ति होती है मंगलोर की यात्रा करके। और वह है भी तो मूडबिद्री से केवल 37 कि. मी. दूर, जहाँ पहुँचने के लिए मूडबिद्री से हर आधे घण्टे पर बस मिलती है। यहाँ से वेणूर 54 कि. मी. और धर्मस्थल 75 कि. मी. है।

जहाँ तक रेल का प्रश्न है, दिल्ली से मंगलोर एक्सप्रेस (पुराना नाम जयन्ती जनता) और केरल एक्सप्रेस (उसका एक-भाग) यहाँ पहुँचती हैं। गोरखपुर-कोचीन का भी एक भाग यहाँ आता है। मद्रास से वेस्ट कोस्ट एक्सप्रेस, मद्रास-मंगलोर-एक्सप्रेस मंगलोर आती हैं। त्रिवेन्द्रम के लिए मलाबार एक्सप्रेस (त्रिवेन्द्रम-मंगलोर), तथा त्रिवेन्द्रम-मंगलोर परशुराम एक्सप्रेस तथा अनेक पेसेंजर गाड़ियाँ एवं बंगलोर-मंगलोर पेसेंजर यहाँ आती हैं। इस प्रकार यह शहर दिल्ली, मद्रास, बम्बई (जनता एक्सप्रेस कालीकट तक), त्रिवेन्द्रम और कन्याकुमारी से सीधा जुड़ा हुआ है।

बम्बई से अनेक आरामदेह बसें भी यहाँ आती हैं। अन्य शहरों से भी (जैसे बंगलोर, मैसूर आदि से) यह बसों द्वारा सीधा जुड़ा हुआ है।

मंगलोर जहाजों के लिए एक बंदरगाह है। यहाँ हवाई अड्डा भी है। यहाँ बम्बई और बंगलोर से सीधी उड़ानें आती हैं।

इस नगर का नाम बदलता रहा है। कभी यह मंडगोर (Mandegora), मगनूर (Maganur), तो कभी मंगलादेवी के मन्दिर के कारण मंगलपुर भी कहलाता रहा है।

समुद्र के किनारे स्थित इस नगर में भी जैनधर्म का प्रभाव मध्ययुग से तो कम-से-कम रहा ही है। कर्नाटक सरकार द्वारा प्रकाशित दक्षिण कन्नड़ (South Kanara) जिला गजेटियर, 1973 में इस तथ्य का उल्लेख इस प्रकार है—

"Most of the dynasties that ruled over the region successively from about the fourteenth century A.D. right upto the beginning of the British period where Jaina and Jaina monuments were developed under royal patronage."

अर्थात् चौदहवीं शताब्दी से ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ तक अधिकतर जिन राजवंशों ने उत्तरोत्तर राज्य किया वे जैन थे और उन्होंने यहाँ के स्मारकों-बसदियों को संरक्षण दिया।

प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर

मंगलोर में एम. टी. रोड (मेन टेम्पल रोड) से कुछ आगे एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। यह पुराने बंदरगाह क्षेत्र में है। वहाँ पहुँचने का मार्ग इस प्रकार है। (रेलवे स्टेशन से बस-स्टैण्ड)—बस स्टैण्ड से घण्टाघर (क्लॉक टॉवर)—टाउन हॉल—सेंट्रल टॉकीज के पीछे बीबी

अलादी रोड (रास्ते में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ का मन्दिर)। इसी सड़क पर थोड़ी दूर आगे, दाहिने मुड़ने पर एम. टी. (मेन टेम्पल) रोड नामक गली है। वहाँ मस्जिद के सामनेवाली गली से दिगम्बर जैन मन्दिर दिखाई देता है। यदि कोई वैसे पूछेगा तो बहुत कम लोग यह मन्दिर बता पाएँगे। इसलिए इस रास्ते का अनुसरण करना चाहिए।

उपर्युक्त मन्दिर सामने से दो-मंज़िला मकान जैसा दिखाई देता है, यद्यपि मन्दिर के स्तम्भ दिखाई देते हैं। इसकी छत पर कवेलू (टाइल्स) चढ़े हैं और तीन छोटे-छोटे कलश हैं। मन्दिर का अहाता स्थानीय लाल पत्थर का है।

बसदि का प्रवेशद्वार लकड़ी का है किन्तु उस पर ताँबा जड़ा हुआ है। सामने बलिपीठ है। ऊपर शिखर वाली मंज़िल से लकड़ी का एक लम्बा-सा हाथ दोनों ओर लटकता दिखता है। इसे 'अभयहस्त' कहते हैं। बसदि के मूलनायक शान्तिनाथ हैं। उनकी प्राचीन प्रतिमा पद्मासन में लगभग दो फुट ऊँची है। उन्हीं के नाम पर यह मन्दिर 'मंगलूर शान्तिनाथ स्वामी जैन मन्दिर' कहलाता है। तीर्थंकरों की मकर-तोरणयुक्त अनेक मूर्तियाँ भी यहाँ हैं। आदिनाथ की भी तीन फुट ऊँची पद्मासन में प्रतिमा है। पद्मावती की मूर्ति भी यहाँ प्रतिष्ठापित है। मन्दिर में प्रदक्षिणा-पथ भी है। अग्रमण्डप की छत लकड़ी की है। प्रवेशद्वार की चौखट और दरवाज़े पर चाँदी चढ़ी है। सिरदल पर कीर्तिमुख का अंकन है।

इस नगर में श्रीमंतीबाई के नाम से एक संग्रहालय (Museum) भी है। उसमें अनेक जैन प्रतिमाएँ संग्रहीत हैं। इनमें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की धातुमूर्ति (चित्र क्र. ८०-८१), चौबीसी और स्फटिक प्रतिमाएँ आदि मनोहारी हैं।

मंगलोर में लगभग पचास दिगम्बर जैन परिवार निवास करते हैं। किन्तु कोई जैन धर्मशाला नहीं है, पहले थी। यात्री बस-स्टैण्ड के आसपास होटलों में या रेलवे के रिटायरिंग रूम में ठहर सकते हैं। स्टेशन पर दूध उपलब्ध है। शाकाहारी भोजन को 'सस्यहारि' लिखा गया है।

सूचना

मंगलोर से लगभग 15 कि. मी. की दूरी पर तलपाड़ी नामक स्थान से केरल की सीमा प्रारम्भ हो जाती है। मंगलोर से कासरगोड (शहर) जानेवाली सड़क पर स्थित बंगर मंजेश्वर नामक गाँव (मंगलोर से 27 कि. मी.) में एक प्राचीन मन्दिर बारहवीं सदी का है। दूसरा जैन मन्दिर या मठ भी प्राचीन है। इन दोनों में आज भी पूजन होती है। इन्हें अवश्य देखना चाहिए। वापस मंगलोर लौटकर सीधे धर्मस्थल (39 फुट उत्तुंग बाहुबली प्रतिमा) के दर्शनार्थ जाना चाहिए जो कि मंगलोर से 75 कि. मी. है।

बंगर मंजेश्वर
(बारहवीं सदी का चौमुखा मन्दिर)

केरल में आज भी जैनधर्म है यह सुनकर लोग आश्चर्य में पड़ जाते हैं। पर्यटक या यात्री चाहें तो इसकी पुष्टि मंगलोर से कुल 22 या 25 कि. मी. यात्रा करके स्वयं कर सकते हैं। वहाँ एक परिवार 12वीं सदी का चौमुखा मन्दिर सम्भालता है तो दूसरा एक परिवार एक अन्य जैन मन्दिर की देखभाल करता है।

अवस्थिति एवं मार्ग

बंगर मंजेश्वर केरल के कण्णूर (Cannanore) ज़िले के कासरगोड तालुक में स्थित है। कर्नाटक की सीमा पर स्थित होने के कारण यात्राक्रम में इस स्थान का उल्लेख यहीं पर कर देना उपयुक्त है।

सड़क-मार्ग द्वारा यह मंगलोर-कासरगोड मार्ग पर पड़ता है। तलपाड़ी नामक स्थान से, जो मंजेश्वर से पहले है, केरल की सीमा प्रारम्भ होती है। बस द्वारा यह लगभग 25 किलोमीटर है।

रेलमार्ग द्वारा बंगर मंजेश्वर मंगलोर के बहुत निकट है। मंगलोर-त्रिवेंद्रम लाइन पर तीसरा रेलवे स्टेशन 'मंजेश्वर' है। दूरी केवल 17 कि. मी.। रेलवे स्टेशन से बाहर करीब एक फर्लांग चलने पर इस गाँव का एक चौक मिलता है। चूँकि मंजेश्वर और बंगर मंजेश्वर दो स्थान हैं। इसलिए इस चौक से बंगर मंजेश्वर तक की 6 कि. मी. की यात्रा या तो आटोरिक्शा से या फिर तलपाड़ी से आनेवाली बस द्वारा करनी चाहिए।

दर्शनीय स्थल

बंगर मंजेश्वर के बारे में यह कहा जाता है कि जैनधर्म-पालक बंगर नामक एक राजा यहाँ राज्य करता था इसलिए यह स्थान 'बंगर मंजेश्वर' कहलाता है।

(मंजेश्वर के दक्षिणी और उत्तरी भाग पर दो छोटे-छोटे जैन राजा राज्य करते थे। इनमें से एक का नाम बंगर राजा और दूसरे का नाम विठल राजा था। टीपू सुलतान ने बंगर राजा को फाँसी पर लटका दिया था और दूसरे को टेल्लिचेरी में शरण लेने के लिए बाध्य कर दिया था। किसी समय यह एक समृद्ध नगर था।)

बंगर मंजेश्वर में यात्री को कट्टा (Katta) बाज़ार में उतरना चाहिए। वहीं पर अनन्तेश्वर बस गेरेज है। उसी के सामने 'चतुर्मुखा बसदि' या मठ के अर्चक (पुजारी) का निवास है। ये लोग मलयालम, कन्नड़ या तुलु समझते हैं। पुरुष अंग्रेज़ी भी समझ लेते हैं। स्थानीय नवयुवक हिन्दी भी जानते हैं। वे भी मदद कर देते हैं। चूँकि अर्चक-परिवार के सदस्य सुबह पूजन कर मंगलोर चले जाते हैं इसलिए सुबह ही यहाँ पहुँच जाना उचित रहेगा। अधिक अच्छा यह होगा कि दोनों मन्दिरों के रक्षकों को पहले से पत्र भेजकर सूचित कर दिया जाए। दोनों के पते विवरण के अन्त में दिए गए हैं।

बंगर मंजेश्वर के जैन मन्दिर मंजेश्वर नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित हैं। यह नदी अरब सागर से जा मिलती है। इस स्थान का एक भाग मैदानी है तो दूसरा पहाड़ी। वर्तमान चतुर्मुख बसदि या चौमुखा एक छोटे टीले या पहाड़ी पर स्थित है। उसके चारों ओर ऊँची दीवाल का घेरा है। इस घेरे के भी बाहर एक और घेरा है। उसमें से होकर अन्दर जाने के लिए जो रिक्त स्थान है उसमें से केवल एक ही व्यक्ति टेढ़ा होकर निकल सकता है। इस टीले के सामने नारियल के वृक्ष हैं और उनके बाद अरब सागर लहराता है मानो वह आदिनाथ का पाद-प्रक्षालन करना चाहता हो।

चौमुखा मन्दिर छोटा है, उसका शिखर भी साधारण है। उसका जीर्णोद्धार भी हुआ है। मन्दिर एक और ऊँचे चबूतरे पर बना है और एक-मंजिला है। इसमें चारों दिशाओं में एक-एक तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। ये तीर्थंकर हैं—आदिनाथ, शान्तिनाथ, चन्द्रनाथ और वर्धमान स्वामी। यहाँ पद्मावती की प्रतिमा भी है। इसके अहाते में क्षेत्रपाल और नागफलक भी हैं। मन्दिर यद्यपि प्राचीन है, तदपि इसमें महावीर और पार्श्वनाथ की कांस्य तथा पाषाण की अन्य सभी प्रतिमाओं की आज भी पूजन होती है। इस मन्दिर को तुलना, मूर्तियों के विन्यास की दृष्टि से, कारकल की चतुर्मुख बसदि से की जाती है। इस प्रकार यह तुलुनाडु परम्परा का मन्दिर माना जाता है।

कुछ विद्वान् इस मन्दिर को सोलहवीं शताब्दी का मानते हैं। इतिहास जो भी हो, इसका भूगोल ऐसा है कि इस टीले पर स्थित इस बसदि के पास समुद्र की शान्त और शीतल हवा से परम सुख का अनुभव होता है।

जैन बसदि या छोटा चौमुखा

इसी स्थान पर एक और जैन बसदि या मठ है। यहाँ के जैन परिवार (कुल दो) इसे छोटा चौमुखा भी कहते हैं। यह कितना प्राचीन है, यह किसी को नहीं मालूम। इसके रक्षक-अर्चक इसे दो सौ वर्ष प्राचीन बताते हैं। किन्तु यह और भी प्राचीन हो सकता है। वैसे यह चौमुखा भी नहीं है। शायद चौमुखे (बड़े मन्दिर) से अन्तर बताने के लिए इसे छोटा चौमुखा कह दिया गया है। वास्तव में यह छोटा मन्दिर है।

पहिचान के लिए यह आजकल मंजेश्वर बीड़ी वर्क्स कोऑपरेटिव सोसाइटी लिमिटेड (केरल दिनेश बीड़ी) के पक्के आधुनिक भवन के पास में स्थित है। आसपास मुस्लिम आबादी है। जैन बसदि कहना हो तो जैन के 'ऐ' पर जोर देकर बोलना चाहिए।

यह बसदि एक मंजिल बसदि है। उस पर कोई शिखर नहीं है। बाहर से मालूम ही नहीं होता कि यहाँ भी कोई मन्दिर होगा। इससे पहले मन्दिर को लगभग ओझल किए हुए (बीच की बरामदानुमा जगह छोड़कर) एक मकान लम्बाई में है, जिसमें इसका रक्षक या अर्चक परिवार रहता है।

उपर्युक्त मन्दिर में जाने के लिए अहाते जैसी स्थानीय लाल पत्थर की दीवाल में, जो खाली जगह है उसमें, से एक आदमी टेढ़ा होकर मुश्किल से अन्दर जा सकता है। मन्दिर के सामने बलिपीठ है। अहाते में एक क्षेत्रपाल है। एक साधारण मकान जैसे इस मन्दिर में सुन्दर

प्रतिमाएँ हैं। प्रवेशद्वार के सिरदल पर कोष्ठ में ही पद्मासन मुद्रा में एक तीर्थंकर प्रतिमा उत्कीर्ण है जो अधिक स्पष्ट रूप से लक्षित नहीं है। छोटे-से प्रवेशमण्डप के बाद एक छोटा खाली कोष्ठ है। उसके बाद पीतल या कांस्य की मनोहर प्रतिमाओं का बहुत सुन्दर संग्रह है। ऊपर की पंक्ति में पाँच कांस्य-प्रतिमाएँ हैं तो नीचे दाहिनी ओर चार तथा बाईं ओर चार कांस्य-मूर्तियाँ हैं। ये सभी कायोत्सर्ग मुद्रा में मकर-तोरण से अलंकृत हैं। सबसे नीचे की पंक्ति में भी ऐसी ही छह कांस्य-प्रतिमाएँ और हैं। इसी कोष्ठ में, केन्द्र में, कांस्य की एक चौबीसी है जिसके मूलनायक पार्श्वनाथ हैं और शेष तीर्थंकर पद्मासन में हैं। कायोत्सर्ग मुद्रा में ही छत्रत्रयी और मकर-तोरण से सज्जित दो कांस्य-प्रतिमाएँ हैं। उनसे भी बड़ी किन्तु यक्ष-यक्षी सहित पार्श्वनाथ प्रतिमा तीन छत्र, मकर-तोरण और कीर्तिमुख सहित है। सुपार्श्वनाथ की एक बहुत ही मनोहारी कांस्य मूर्ति भी यहाँ है जिसका अलंकरण अत्यन्त लुभावना है। उस पर पाँच फण और यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। इन प्रतिमाओं की वेदी सादे पत्थर की है। इसी कक्ष में लकड़ी की बिलकुल सादी वेदी में कांस्य की ही ब्रह्मदेव (घोड़े पर), पद्मावती (फण सहित), कूष्मांडिनी और सरस्वती की आकर्षक प्रतिमाएँ हैं। यहीं गणधरपाल और ताँबे का सिद्धयन्त्र भी हैं।

गर्भगृह छोटा है, उसकी वेदी भी साधारण पत्थर की है। उस पर एक चौबीसी विराजमान है जिसके मूलनायक आदिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं और शेष तीर्थंकर पद्मासन मुद्रा में। कांस्य की एक बहुत छोटी चौबीसी भी यहाँ है जिसके मूलनायक पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं और शेष तीर्थंकर पद्मासन में। पार्श्वनाथ की ही एक अन्य कांस्य प्रतिमा छत्रत्रयी और मकर-तोरण से संजोई गई है।

मन्दिर की छत नीची, ढलुआ और लकड़ी की है। उस पर या दीवालों पर कोई कारीगरी नहीं है। गर्भगृह और प्रतिमा-प्रकोष्ठ में अँधेरा है। प्रदक्षिणा-पथ भी नहीं है। उसके चारों ओर घूमकर देखने से स्पष्ट हो जाता है कि मन्दिर के जीर्णोद्धार की आवश्यकता है। एक ही साधनहीन कृषक परिवार इस सुदूर प्रदेश में मन्दिर की कब तक रक्षा कर सकेगा! यात्रियों को सहायता करनी चाहिए।

उपर्युक्त मन्दिरों से सम्बन्धित पते इस प्रकार हैं—

1. श्री दिगम्बर जैन चतुर्मुख बसदि
   C/o श्री वी. पद्मराजेन्द्र
   चेट्टियारपेट (Chettiarpet)
   पो. ऑ. बंगर मंजेश्वर (Bangar Manjeshwar) Pin 670323
   जिला—कासरगोड (Kasargod), Kerala
2. श्री जैन बसदि
   C/o श्री जयराम इन्द्र चेरियार
   Near Kerala Dinesh Beedi Bldg.
   पो. ऑ. बंगर मंजेश्वर (Bangar Manjeshwar)-670323
   ज़िला—कासरगोड (Kasargod), Kerala

धर्मस्थल

[धर्मों का अपूर्व संगम]

कर्नाटक के किसी भी कोने में यदि आप किसी भी धर्म के अनुयायी से यह पूछें कि क्या वह धर्मस्थल (Dharmasthal) के बारे में जानता है तो उत्तर मिलेगा, "क्यों नहीं, वह तो एक अपूर्व तीर्थस्थल है !" कर्नाटक के लगभग हर स्थान से बसों से जुड़ा जैन और जैनेतर जनता का यह तीर्थस्थान सभी धर्मों का अपूर्व संगम है। यहाँ लगभग पाँच हज़ार तीर्थयात्री प्रतिदिन आते हैं और स्नानागारयुक्त कमरों वाली आधुनिक धर्मशालाओं में निःशुल्क ठहरने के अतिरिक्त निःशुल्क भोजन भी पाते हैं। सर्वधर्म-सहिष्णुता का लगभग पिछले पाँच सौ वर्षों से प्रसिद्ध यह क्षेत्र न केवल धार्मिक क्षेत्र में, अपितु सांस्कृतिक, साहित्यिक और शैक्षिक क्षेत्र में, अपने अपूर्व सहयोग एवं दीन-दुखियों के प्रति सेवा-भाव तथा सहायता के कारण कर्नाटक से बाहर भी, कीर्ति अर्जित कर चुका है। सन् 1982 ई. में यहाँ भगवान बाहुबली की विशाल एवं सुन्दर मूर्ति की प्रतिष्ठा हो जाने से भी यह जैनों के लिए एक प्रमुख धर्मतीर्थ बन गया है। यही कारण है कि यहाँ के धर्माधिकारी वीरेन्द्र हेग्गड़े जी 'अभिनव चामुण्डराय' के नाम से प्रसिद्ध हो गए हैं।

अवस्थिति एवं मार्ग

धर्मस्थल मंगलोर (दक्षिण कन्नड़) जिले के बेलटंगडि तालुक में स्थित है। मंगलोर से यहाँ की दूरी 75 कि. मी. है। मंगलोर से बंटवल तक राष्ट्रीय राजमार्ग क्र. 48 है। वहाँ से राज्य सरकार का राजमार्ग क्र० 64 लेना होता है। राजमार्ग बंटवल से गुरुवायनकेरे, वहाँ से बेलटंगडि और उजिरे (Ujire) तक तय करने के बाद, धर्मस्थल के लिए सड़क मुड़ती है। पूरा मार्ग सुविधाजनक एवं व्यस्त है। यह मंगलोर-चिक्कमंगलूर मार्ग भी कहलाता है। मूडबिद्री से आने वालों को वेणूर (20 कि. मी.), वहाँ से गुरुवायनकेरे (15 कि. मी.), और वहाँ से धर्मस्थल (17 कि. मी.) आना चाहिए। गुरुवायनकेरे से नगर-सेवा की तरह हर समय बसें मिलती रहती हैं। श्रवणबेलगोल की ओर से आने वाले यात्री हासन (135 कि. मी.) से या बेलूर (मूडिगेरे होते हुए, चारमाडि घाट बीच में आता है) से यहाँ पहुँच सकते हैं। यहाँ से बंगलोर 349 कि. मी. है।

धर्मस्थल की कुल आबादी 6000 के लगभग है किन्तु यहाँ यात्रियों, बसों (सरकारी, गैर-सरकारी) और अन्य वाहनों का मेला लगा रहता है। कभी-कभी तो यात्रियों की संख्या दस हजार और उससे भी अधिक पहुँच जाती है। सोमवार को, मंजुनाथ की विशेष पूजा के समय, यहाँ आठ-दस हजार यात्री होते हैं। मेले के समय यह संख्या चालीस हजार तक पहुँचती है।

मंगलोर की ओर से (गुरुवायनकेरे होते हुए) यहाँ आने पर, धर्मस्थल से दो कि. मी. पहले, 'नेत्रावती' नदी पड़ती है जो कि मंगलोर में अरब सागर में मिलती है। श्रद्धालु इसके

घाट पर नहाकर वहाँ स्थित छोटी-छोटी दुकानों से पूजा की सामग्री खरीदकर धर्मस्थल की यात्रा करते हैं।

धर्मस्थल पहुँचने पर सबसे पहले लगभग तीस फीट ऊँचा महाद्वार आता है। इसका निर्माण 1966 में स्व० श्री रत्नवर्मा हेग्गडे ने कराया था। उसमें सबसे ऊपर दोनों ओर शिव की मूर्तियाँ बनी हैं। दोनों ओर दो गुमटियाँ हैं, उनमें भी शिव (मंजुनाथ) प्रतिष्ठित हैं।

महाद्वार से सभी सरकारी या पर्यटक बसें अन्दर तक आती हैं। वहाँ उनका जमघट देखा जा सकता है। एक विशाल सरकारी बस-स्टैण्ड है जिसमें पूछताछ केन्द्र, अमानती सामान-घर, समय-सारणी आदि सभी सुविधाएँ हैं। यहीं दूर तक अर्थात् मंजुनाथ मन्दिर तक लगभग सौ दुकानें या होटलें नजर आती हैं। एक प्रकार से पूरा बाजार ही है। धर्मस्थल क्षेत्र का एक पूछताछ कार्यालय (enquiry office) भी है जहाँ से यात्रियों के ठहरने और भोजन आदि की व्यवस्था की जाती है। जैन यात्री श्री वीरेन्द्र हेग्गडे जी के निवास-स्थान (वसन्त महल जो कि मंजुनाथ मन्दिर के सामने ही है) पर उनके निजी सचिव से ठहरने आदि के लिए अनुरोध कर सकते हैं। श्री हेग्गडेजी और उनका परिवार दिगम्बर जैन धर्म का अनुयायी है। साथ ही, विगत पाँच सौ वर्षों से वह सर्वधर्म-समन्वय और सहिष्णुता का स्मरणीय कार्य करता आ रहा है।

धर्मस्थल में धर्मशालाएँ आधुनिक ढँग की बनी हैं और विशाल होने के साथ-साथ स्नानागार आदि आधुनिक सुविधाओं से सज्जित कमरों से युक्त हैं। इनमें ठहरने और क्षेत्र की भोजनशाला में यात्रियों को भोजन कराने का कोई शुल्क नहीं लिया जाता। धर्मशालाओं के नाम हैं—नर्मदा, गोदावरी, गंगा, शरावती, नेत्रावती, वैशाली आदि।

जैनधर्म सम्बन्धी स्मारकों (बाहुबली प्रतिमा, मन्दिरों आदि) का वर्णन करने के बाद इस स्थान के अन्य मन्दिरों एवं कार्यकलाप पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जाएगा। इससे पहले इस क्षेत्र के निर्माण का कुछ इतिहास भी जान लेना आवश्यक है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

धर्मस्थल क्षेत्र का इतिहास लगभग पाँच सौ वर्ष पुराना है। पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मल्लारमाडि नामक गाँव में एक जैनधर्मी सामन्त परिवार 'नेल्याडि बीडु' (आज भी है) नामक अपने निवास-स्थान में रहता था। गृहस्वामी का नाम बिरमन्न पेर्गडे तथा गृहस्वामिनी का नाम अम्मुदेवी बल्लती था। उन्होंने अपने निवास-स्थान के पास चन्द्रनाथ स्वामी बसदि (आज भी है) का निर्माण कराया था। वे दोनों इतने दानशील थे कि यह स्थान 'कुडुमा' (Kuduma) कहलाने लगा। इस शब्द का अर्थ है—वह स्थान जहाँ दान की ही प्रधानता हो।

कहा जाता है कि एक दिन 'धर्मदेव' मानवों के रूप में अश्वों और हाथियों पर अपने लवाजमे के साथ नेल्याडि बीडु आये। उनका इस दम्पती ने खूब स्वागत-सत्कार किया और दान दिया। प्रसन्न होकर देवों ने कहा, "पेर्गडे (हेग्गडे)! हम तुम्हारी दानशीलता पर प्रसन्न हैं। तुम अपना यह निवास-स्थान हमें दे दो और हमारी पूजा करो, अपना निवास अन्यत्र बना लो तो हम तुम्हें असीमित धन और समृद्धि प्रदान करेंगे।" दोनों पति-पत्नी दीप-

धूप जलाकर उन्हें प्रसन्न करने लगे। अपना घर भी उन्होंने अन्यत्र बना लिया। एक दिन फिर वे देवता उनके स्वप्न में आये और कहने लगे: "हम कालराहु (Kalarahu), कलर्के (Kalarkai), कुमारस्वामी और कन्याकुमारी हैं। हमारे मन्दिर बनवाओ और उत्सवों का आयोजन करो। हमारा कार्य अण्णप्पा (देव) करेंगे। तुम दो कुलीन व्यक्तियों को नियुक्त करो जो पूजनादि करते-कराते रहें। अगर श्रद्धापूर्वक ये कार्य किए गए तो तुम्हें धन की कभी कमी नहीं होगी और तुम्हारी पीढ़ियों तक अर्थ और कीर्ति का कार्य अक्षुण्ण जारी रहेगा। हम तुम्हारी रक्षा करेंगे।" हेग्गड़े दम्पती ने वैसा ही किया और धर्मदेवों की भी आराधना तथा उत्सव का आयोजन होने लगा। जब उन्होंने ब्राह्मणों को उत्सवों के समय पूजा के लिए आमन्त्रित किया तो ब्राह्मणों ने यह कहकर इंकार कर दिया कि वे, देवों के साथ-साथ भगवान की पूजा हो, तभी आ सकते हैं। इस पर धर्मदेवों ने अण्णप्पा को कदरी नामक स्थान से लिंगम् (शिवलिंग) मँगवाया और उसे वहाँ स्थापित करवा दिया जहाँ आजकल श्रीमंजुनाथ स्वामी का मन्दिर है। कहा जाता है कि यह बोधिसत्व मंजुघोष जैनों और हिन्दुओं में शिव का प्रतिरूप है। (स्मरण रहे, भगवान ऋषभदेव के 1008 नामों में शिव भी एक नाम है। कुछ विद्वान् शिव और ऋषभदेव को एक ही मानते हैं। वैदिकधारा के 'शिवपुराण' में ऋषभदेव को शिव का एक अवतार माना गया है। इस पुराण में जैनधर्म पर एक पूरा अध्याय ही है।) जो भी हो, इस दानी गाँव (कुडुमा) में श्री चन्द्रनाथ स्वामी, श्री मंजुनाथ (शिव), चार देवों और अण्णप्पा देव इन सबकी पूजा होने लगी। यहीं से प्रारम्भ हुआ इस अनूठे धर्म-संगम का धर्मस्थल रूप। सन् 1432 ई. में जब बिरमन्न पेर्गडे की मृत्यु हो गई, तब उनके उत्तराधिकारी पद्मय्या हेग्गडे ने कल्लुरतय (Kallurthaya) नामक एक अन्य देवता की मूर्ति भी यहाँ के मन्दिर में स्थापित की। कहा जाता है कि यह देवता भक्तों के कल्याण में अण्णप्पा का दाहिना हाथ है।

सोलहवीं शताब्दी में सोदे (आधुनिक स्वादी) नामक स्थान के वादिराज मठ के श्री वादिराज यहाँ आये। हेग्गडे परिवार ने उनसे शिक्षा ग्रहण करने का जब आग्रह किया तो उन्होंने यह कहकर इंकार कर दिया कि जहाँ मंजनाथ की प्रतिमा देवों द्वारा स्थापित की गई हो, वे भिक्षा नहीं लेंगे। हेग्गडे ने इस पर उनसे प्रतिमा का संस्कार करने के लिए कहा। ऐसा ही किया गया। वादिराज स्वामी उत्सव और दान से प्रसन्न हुए और उन्होंने इस स्थान का नाम 'धर्मस्थल' रख दिया। अब कुडुमा धर्मस्थल हो गया। सन् 1903 में मल्लरमाडि गाँव को कुडुमा में मिलाकर धर्मस्थल नाम सरकारी काग़ज़ों में भी दर्ज कर दिया गया। तब से आज तक हेग्गडे परिवार इसे सार्थक धर्मस्थल बनाने और दानशीलता का क्षेत्र अधिक से अधिक विस्तार करने में तन-मन-धन से निरन्तर लगा रहता है।

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में कुछ गड़बड़ी हुई तो गवर्नर जनरल ने आदेश निकाला कि धर्मस्थल के मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया जाए। मैसूर के महाराजा ने भी यहाँ आकर और मैसूर में भी हेग्गडे-जन का स्वागत किया।

सन् 1830 ई. से 1955 ई. तक हेग्गडे वंशजों ने यहाँ के मन्दिरों में अनेक निर्माण-कार्य करवाए और अनेक सार्वजनिक कार्यों जैसे स्कूल, प्रदर्शनियाँ तथा सर्वधर्म-सम्मेलन की

कल्याणकारी परम्पराएँ प्रारम्भ कीं।

श्री रत्नवर्मा हेग्गडे (1955 से 1968 ई.) का समय धर्मस्थल के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण रहा। उन्होंने यात्रियों के लिए अनेक सुविधाएँ जुटाई। इनमें आधुनिक सुविधाओं से युक्त गंगा, कावेरी और नर्मदा नामक सुसज्जित धर्मशालाएँ, बारह हॉल और परिवारों के लिए छोटे भवनों का निर्माण शामिल है। साधु-संन्यासियों के लिए भी उन्होंने 'संन्यासी कट्टे' नामक भवन बनवाया। उजिरे नामक स्थान पर उन्होंने कला, विज्ञान और वाणिज्य मंजुनाथेश्वर कॉलेज तथा धर्मस्थल में भी हाई स्कूल का निर्माण करवाया।

स्व. रत्नवर्मा का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य 1967 ई. में यहाँ के लिए कारकल में बाहुबली की 39 फीट ऊँची प्रतिमा का निर्माण प्रारम्भ करवाना था। अपने जीवन-काल में वे यह कार्य पूर्ण नहीं कर सके। वेणूर और कारकल की बाहुबली प्रतिमाओं के महामस्तकाभिषेक में भी 504 कलशों से अभिषेक कर उन्होंने अपने श्रद्धा-सुमन बाहुबली को अर्पित किए थे। श्री रत्नवर्मा ने अनेक सर्वधर्म और साहित्य सम्मेलनों का भी आयोजन किया। शृंगेरी के जगद्गुरु ने उन्हें 'राजमर्यादा' और कोनियार मठ के स्वामी ने उन्हें 'धर्मवीर' पदवी से विभूषित किया था।

वर्तमान धर्माधिकारी

धर्मस्थल के वर्तमान धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेग्गडे का पदाभिषेक अपने पिता के निधन पर बीस वर्ष की आयु में 1968 ई. में हुआ। उस समय से ही उन्होंने अपने पिता के अधूरे कार्य को पूर्ण करने और इस क्षेत्र की उन्नति में अपने को एकाकार कर दिया है। बाहुबली की मूर्ति का कारकल में निर्माण उन्होंने जारी रखा। बंटवल नामक स्थान पर 'आदीश्वर स्वामी बसदि' का कार्य भी उन्होंने पूरा कराया। यूरोप, अमेरिका और पूर्वी एशिया (थाईदेश, सिंगापुर) आदि में जाकर धर्म-प्रभावना की है। अनेक स्थानों के पंचकल्याणक भी उन्होंने करवाए हैं। इसके साथ ही अनेक मन्दिरों, चर्चों, मस्जिदों को मुक्तहस्त दान दिया है। विवाह आदि पर अत्यधिक खर्च से गरीब लोगों को बचाने के लिए हेग्गडेजी ने सामूहिक विवाह कार्यक्रम प्रारम्भ किए हैं जिनके अन्तर्गत विभिन्न जातियों के युवक-युवतियों के पाँच सौ से अधिक विवाह एक साथ एक ही दिन में सम्पन्न होते हैं। अनेक स्कूलों, कॉलेजों तथा अस्पतालों को इनकी ओर से मुफ्त सहायता दी जाती है। धर्मस्थल के इस दानवीर परिवार की ओर से चार प्राथमिक स्कूल, दो हाईस्कूल, ग्यारह कॉलेज (इंजीनियरिंग, व्यवसाय-प्रबन्ध भी) तथा नौ अन्य संस्थान विभिन्न स्थानों में संचालित किए जा रहे हैं। यात्रियों के लिए नये गेस्ट हाउस बनवाए गए हैं।

श्री हेग्गडेजी ने अनेक उत्सव प्रारम्भ किए हैं जिनमें यहाँ का 'लक्षदीपोत्सव' प्रसिद्ध है। यह कार्तिक मास की एकादशी से अमावस्या तक चलता है। अन्तिम दिन चन्द्रनाथ-स्वामी की समवसरण-पूजा की जाती है। हेग्गडेजी अनेक विवादों का निपटारा भी करते हैं और उनका निर्णय सभी को मान्य होता है। पूजा-विधानों के अनेक नियम हैं। उन नियमों के अन्तर्गत या हेग्गडेजी की अनुमति से ही यहाँ विशेष पूजा-अनुष्ठान किए जा सकते हैं। मनौतियाँ मनाने वाले हेग्गडेजी के भार के बराबर चावल या अन्य सामग्री का दान भी करते हैं। इसके

लिए तुलाभार है। वे देवस्वरूप माने जाते हैं। धर्मस्थल जो भी कुछ है इस परिवार की अपनी परम्परागत सम्पत्ति या संस्था है जिसकी सुस्थापित परम्पराएँ बन गई हैं। यहाँ के सर्वधर्म सम्मेलन भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं ।

श्री वीरेन्द्र हेग्गडेजी के समय में ही यहाँ भगवान बाहुबली की 39 फीट ऊँची मूर्ति स्थापित हुई है।

जैन स्मारक

और अब धर्मस्थल के जैन स्मारकों की यात्रा। चलिए महाद्वार (गेटवे) के पास की छोटी पहाड़ी की ओर। इस द्वार के पास की दस-पन्द्रह सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद नवनिर्मित प्रवेश-मण्डप है जिस पर कटनीदार बुर्ज बने हुए हैं। इस मण्डप के सिरदल पर एक उपाध्याय का अंकन है। उनका हाथ उपदेश मुद्रा में उठा हुआ है। इसी मण्डप से सटा हुआ एक छोटा-सा हरा-भरा बगीचा है। उसमें एक शेर और एक गाय आमने-सामने खड़े होकर पानी पीते हुए दिखाए गए हैं। वास्तविक जलकुण्ड में उनका मुँह है। वहीं नागरी में एक बोर्ड है 'पादरक्षा पहनकर मत जाइए' ।

अब आगे 276 सीढ़ियाँ चढ़नी होती हैं। आने-जाने के लिए ये लोहे की छड़ों से विभाजित कर दी गई हैं। बीच-बीच में कन्नड़ में सूचनाएँ हैं। सीढ़ियों के पास से कार आदि ऊपर जाने के लिए एक सड़क भी है। जहाँ ये सीढ़ियाँ समाप्त होती हैं वहाँ सीमेंट कंक्रीट (आर. सी. सी.) का एक विशाल प्रवेश-मण्डप या कटनीदार गोपुर है। इसी मण्डप में स्वर्गीय श्री रत्नवर्मा हेग्गडे, जिन्होंने मूर्ति का निर्माण करवाया था, की खड़ी हुई प्रतिमा और मूर्ति सम्बन्धी कुछ विवरण है। वे सिर पर सफेद मैसूरी पगड़ी, लम्बा काला कोट, और धोती पहने हुए नंगे पाँव हैं। यहीं से दिखाई देती है भगवान बाहुबली की नवीन भव्य प्रतिमा। बाहुबली स्थल का अहाता ऊँची पहाड़ी पर बहुत विशाल है जहाँ आसपास का हरियाली भरा दृश्य, शीतल पवन और शान्त वातावरण हजारों दर्शकों को आनन्दित करता है।

बाहुबली की मूर्ति के सामने चौकी से लगभग 30 फीट ऊँचा मानस्तम्भ है। उसके चारों ओर यक्षिणियों का अंकन है। एक दिशा में देवी के चार हाथों में गदा, फल आदि हैं। एक हाथ वरद मुद्रा में है। देवी पर पाँच फणों की छाया है। मुकुट में तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। वाहन कुक्कुट है। एक अन्य दिशा में अष्टभुजादेवी उत्कीर्ण है। तीसरी दिशा में षड्भुजा देवी उत्कीर्ण है। चौथी दिशा की देवी की दो भुजाएँ हैं। एक से वह शिशु का हाथ पकड़े है तो दूसरे से शिशु को गोदी में संभाले हुए है। नीचे सिंह और मुकुट पर तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। ये सब तीर्थंकरों की यक्षिणियाँ या शासन-देवियाँ हैं। मानस्तम्भ पर मालाओं एवं पत्रावली का भी सुन्दर अंकन है। उस पर सबसे ऊपर ब्रह्मदेव हैं। उनके हाथ में गदा है। मुकुट ऊँचा है और वे गले में अनेक मालाएँ धारण किए हुए हैं।

39 फीट ऊँची बाहुबली मूर्ति की प्रतिष्ठा

यहाँ स्थापित बाहुबली की मूर्ति (चित्र क्र. 82) की प्रतिष्ठा फरवरी 1982 में हुई थी। प्रतिष्ठापक थे श्री वीरेन्द्र हेग्गड़े, वर्तमान धर्माधिकारी। इसकी प्रतिष्ठा के अवसर पर

हेग्गडेजी को 'अभिनव चामुण्डराय' की पदवी से विभूषित किया गया था। प्रसिद्ध शिल्पी श्री गोपालकृष्ण शिनॉय ने कारकल में इसका निर्माण किया था। प्रतिमा कारकल से विशेष रूप से निर्मित ट्रॉली पर लाई गई थी। इसमें लगभग तीन सप्ताह का समय लगा था। उसका वज़न 200 टन के लगभग है। उसे 250 अश्वशक्ति के तीन बुलडोज़र का उपयोग कर लाया गया था। ट्रॉली में 64 पहिए थे। रास्ते में सभी धर्मों, वर्गों के लोगों ने मूर्ति का भव्य स्वागत किया था, तोरणद्वार बनाए थे। लोगों ने जुलूस में शामिल भक्तों को शीतल पेय पदार्थ बाँटे, सड़कें चौड़ी करने में और अस्थायी पुल बनाने में निःशुल्क सहयोग प्रदान किया था। रेलवे विभाग ने भी पुलों के निर्माण में हाथ बँटाया था। बम्बई की हिन्दुस्तान कन्सट्रक्शन कम्पनी ने यह मूर्ति हजारों लोगों के सहयोग से 25 फरवरी 1975 को खड़ी कर दी थी।

ग्रेनाइट पत्थर से निर्मित यह नवीन विशालकाय मूर्ति 39 फीट ऊँची है। कन्धों पर उसकी चौड़ाई 14 फीट है। एक बड़ा चौकोर चबूतरा, उसके भी ऊपर एक चबूतरा है। उसी के लगभग 60 वर्ग फुट ऊपरी भाग पर यह प्रतिमा कमलासन पर कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थापित है। बाहुबली स्वामी के दोनों चरणों के आसपास एक-एक हाथी सूँड से भगवान का पाद-प्रक्षालन करते हुए दिखाए गए हैं। दाहिनी ओर के हाथी के पास एक गाय और एक शेर को साथ-साथ पानी पीते दिखाया गया है। बाईं तरफ के हाथी के पास एक गाय और एक शेरनी अंकित है। शेरनी का शिशु गाय का दूध पी रहा है तो गाय का बछड़ा शेरनी का। धर्म की प्रभावना से सह-अस्तित्व का यहाँ मनोहारी अंकन है। इस मूर्ति का स्वरूपांकन आचार्य जिनसेन (द्वितीय) द्वारा आदिपुराण में वर्णित बाहुबली-चरित्र (पर्व 36) के अनुसार किया गया जान पड़ता है। प्रस्तुत हैं एक-दो श्लोक—

विरोधिनोऽप्यमी मुक्तविरोध स्वैरमासिताः।
तस्योपाङ्घ्रीभसिंहाद्याः शशंसुर्वैभवं मुनेः ॥165॥

(उनके चरणों के समीप हाथी, सिंह आदि विरोधी जीव भी परस्पर का वैर-भाव छोड़कर इच्छानुसार बैठते थे और इस प्रकार वे मुनिराज के ऐश्वर्य को सूचित करते थे।)

जरज्जम्बूकमाघ्राय मस्तके व्याघ्रधेनुका।
स्वशावनिर्विशेषं तामपीप्यत् स्तन्यमात्मनः ॥ 166॥

(हाल की जन्मी हुई सिंही भैंस के बच्चे का मस्तक सूंघकर उसे अपने बच्चे के समान अपना दूध पिला रही थी।)

करिण्यो बिसिनीपत्रपुटैः पानीयमानयत्।
तद्योगपीठपर्यन्तभुवः सम्मार्जनेच्छया ॥169॥

(उन मुनिराज के ध्यान करने के आसन के समीप की भूमि को साफ करने की इच्छा से हथिनियाँ कमलिनी के पत्तों का दोना बनाकर उनमें भर-भरकर पानी ला रही थीं।)

हाथियों के ही पास दोनों ओर बाहुबली की एक-एक बहिन ब्राह्मी और सुन्दरी उत्कीर्ण हैं। वे बाहुबली के तन पर लिपटी बेलें हटाती हुई दिखाई गई हैं। बाहुबली के दोनों पैरों के बीच में से निकलती बेलें उनकी जाँघों पर लिपटती अंकित हैं जो वास्तविक लगती हैं। उनकी पत्तियों का बहुत सूक्ष्म एवं सुन्दर अंकन है। लताएँ घुटनों से ऊपर जाँघों पर केवल एक ही

बार लिपटी हैं और कुहनी पर होती हुई कन्धों के कुछ ऊपरी भाग तक दो बार बाहुबली की भुजाओं को वेष्टित करती हैं। बाहुबली के घुटनों के दोनों ओर तक झाड़ियाँ दिखाई गई हैं। उनके पत्ते तिहरे-चौहरे होकर नीचे की ओर झुके हैं। वहीं, बाँबियों में से सर्प निकलते दिखाए गए हैं। प्रतिमा के मस्तक पर छल्लेदार केशों का अंकन है। नाभि के पास तीन वलय (रेखाएँ) भी हलके-से उत्कीर्ण हैं। बाहुबली की आँखें ध्यानमग्न हैं, उनकी दृष्टि नासाग्र है। उनकी गम्भीर मुस्कान भी वैराग्यपूर्ण लगती है। शान्त ध्यानस्थ प्रतिमा मनोहर है। बाहुबली के केश (सामने से) ऊपरी सिरे तक प्रदर्शित हैं। हाथों की ऊँगलियों की तीन हड्डियों का उभार स्पष्ट रूप से दिखाया गया है। प्रतिमा को यदि पीछे की ओर से देखा जाए तो वहाँ भी जाँघों तक वृक्षों-झाड़ियों का अंकन दिखाई देता है। नीचे दो सर्प बाहर निकलते अंकित हैं और केश कान के निचले सिरे तक प्रदर्शित हैं।

प्रतिमा जिस बड़ी वेदी पर खड़ी है उस पर शृंखलाओं, पत्रावली और कमल के फूलों की पंक्तियाँ मनोहारी ढंग से उत्कीर्ण हैं।

मूर्ति का रंग सलेटी है किन्तु कुछ सफेद या मटमैली-सी धारियाँ भी दिखाई देती हैं।

बाहुबली प्रतिमा के सामने ही, पीतल की बाहुबली की एक छोटी प्रतिमा भी दोनो पैरों के बीच में रखी हुई है। दोनों ओर हंस चित्रित पाँच-छह फुट ऊँचे पीतल के दीपदान हैं। मूर्ति के सामने अखंड दीप जलता रहता है।

बाहुबली की प्रतिमा के दर्शन के लिए प्रतिदिन हजारों दर्शकों का तांता लगा रहता है। यात्रियों के विश्राम के लिए ढलुआ छत का आठ स्तम्भों पर आधारित एक मण्डप इसी अहाते में मानस्तम्भ के पास बनाया गया है। मानस्तम्भ के बाद, प्रतिमा के सामने ही, एक ध्वज-स्तम्भ भी है।

'बाहुबली विहार' नामक यह विशाल प्रांगण स्वच्छ, शान्त और पानी-बिजली की सुन्दर व्यवस्था से परिपूर्ण है। एक हैण्डपम्प भी वहाँ लगा रखा है। फ्लडलाइट की भी अच्छी व्यवस्था है। बिजली की रोशनी में बाहुबली की अनूठी छटा विशेष आकर्षक हो जाती है। इस स्थान के आसपास की दृश्यावलि मनोहर है ही; पहाड़ियाँ और घाटियाँ, हरे-भरे वृक्ष, मोड़ लेती सड़कें, मूर्ति के सामने खड़े होकर दाहिनी ओर दिखाई देनेवाली ऊँची पर्वतमाला यात्री में स्फूर्ति एवं प्रकृति-प्रेम जगाती हैं। हर यात्री इस छटा को निहारता, उस सुरम्य स्थान में अपने व्यस्त क्षणों को भुला देने का प्रयत्न करता दिखाई देता है। तपस्यारत बाहुबली भी क्लान्त-श्रान्त यात्री को सहज सुख का अनुभव कराते हैं।

अण्णप्पा स्वामी—महाद्वार के बाईं ओर अण्णप्पा स्वामी के मन्दिर के लिए सीढ़ियाँ हैं। अण्णप्पा बर्ष में एक बार हेगडेजी को आश्वस्त करते हैं कि दान करते जाओ, यात्रियों को सुख दो, तुम्हें द्रव्य की कभी कमी नहीं होगी। इस मन्दिर में स्त्रियाँ और बच्चे प्रवेश नहीं कर सकते।

मंजुनाथ मन्दिर—कुछ और आगे जाने पर मंजुनाथ मन्दिर है। यह शिव-मन्दिर है। इसके आगे अपार जनसमूह होता है। लाइन लगती है किन्तु दर्शन-सेवा आदि का बड़ा व्यवस्थित क्रम चलता है। मन्दिर बहुत विशाल है। उसमें गणेश और शिव की मूर्तियाँ सोने की हैं। दरवाजों की चौखटों और कलापूर्ण ढंग से उत्कीर्ण स्तम्भों पर चाँदी मढ़ी गई है। देवी

कन्याकुमारी की मूर्ति भी सोने की है। यह मन्दिर एक न्यायालय की भाँति है। यहाँ कोई भी झूठी कसम नहीं खा सकता। यदि वह ऐसा करता है तो उसे हानि उठानी पड़ती है, यहाँ तक कि मृत्यु भी हो जाती है, ऐसी मान्यता है। मन्दिर में लोग मनौतियाँ मनाते हैं और मनोकामना पूरी होने पर नाना प्रकार का चढ़ावा चढ़ाते हैं। कुछ लोग हेग्गडेजी के भार के बराबर पदार्थ भी भेंट करते हैं। मन्दिर दर्शनीय है। उसमें केवल पेंट या लुंगी धोती पहनकर ही पुरुष प्रवेश कर सकते हैं।

मंजुनाथ मन्दिर या धर्मस्थल की विशेषता यह है कि मन्दिर शैव है, पुजारी वैष्णव हैं और व्यवस्थापक जैन परिवार।

मंजुनाथ मन्दिर के सामने एक संग्रहालय भी है।

वसन्त महल—उपर्युक्त मन्दिर के निकट ही श्री वीरेंद्र हेग्गडेजी का निवास-स्थान है। यह विशाल भवन वसन्त महल कहलाता है। यहाँ उनके निजी सचिव से सम्पर्क किया जा सकता है तथा यहाँ पर स्थित चैत्यालय के दर्शन की अनुमति प्राप्त की जा सकती है। हेग्गडेजी अपने घर में भी अनेक जैन यात्रियों को प्रेमपूर्वक भोजन कराते हैं। उनके महल में प्रवेश करते ही एक सुसज्जित सम्मेलन या सभाभवन है।

श्री हेग्गडेजी के पार्श्वनाथ चैत्यालय में दरवाजे पर चाँदी जड़ी है, सिरदल पर सुन्दर ढंग से उत्कीर्ण पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा है। सोने की पार्श्वनाथ मूर्ति, सिद्ध भगवान की स्फटिक मूर्ति, महावीर स्वामी की पंचधातु की प्रतिमा और भगवान महावीर के समवसरण की सुन्दर रचना है। यहीं वर्धमान स्वामी को इन्द्र और इन्द्राणी हाथी पर अभिषेक के लिए ले जाते प्रदर्शित हैं। वेदी के ऊपर बड़ा-सा स्वस्तिक है। सरस्वती एव यक्षिणियों की मूर्तियाँ भी नीचे स्थापित हैं। छोटा-सा यह चैत्यालय सुन्दर और आकर्षक है।

वसन्त महल के नीचे वाले चौक में श्री आदिनाथ स्वामी मन्दिर है। मूलनायक आदिनाथ की पंचधातु की लगभग डेढ़ फुट ऊँची कायोत्सर्ग मुद्रा में छत्रत्रयी से युक्त, मकर-तोरण से सुसज्जित प्रतिमा है (देखें चित्र क्र. 83)। यहाँ एक अत्यन्त आकर्षक चौबीसी भी तीन ओर निर्मित है। यह स्फटिक की है और रोशनी करने पर प्रतिमाएँ हरी, लाल, पीली दिखाई देती हैं। प्रकाश प्रतिमाओं के आर-पार हो जाता है। श्रुतस्कन्ध के अतिरिक्त यहाँ कुछ कांस्य प्रतिमाएँ भी हैं। गर्भगृह से आगे के कक्ष में सुन्दर शृंगार से सज्जित पद्मावती, चाँदी की पॉलिश और मकर-तोरण युक्त जिनवाणी माता भी हैं। मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर पद्मासन तीर्थंकर और ऊपर के गवाक्ष में भी पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है।

जैन पर्यटकों को श्री हेग्गडेजी के कार्यालय से सम्पर्क करना चाहिए। उनके सचिव आदि से भी पर्याप्त सहायता मिलती है। पता इस प्रकार है—

धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेग्गडेजी
पो. धर्मस्थल (Dharmasthala)
पिनकोड—574216, कर्नाटक

टेलिफोन नं. 21, हेग्गडेजी का फोन नं. 22 धर्मस्थल है।

चाँदी का मकर-तोरण से युक्त एक सुन्दर रथ भी यहाँ है। उस पर गणेश आदि का अंकन

है। नीचे हाथी प्रदर्शित हैं और उसे खींचने के लिए घोड़े बने हुए हैं।

अन्नपूर्णा—श्री हेग्गडेजी के निवास-स्थान के पास उनका (क्षेत्र का) बहुत बड़ा कार्यालय, भण्डारगृह और 'अन्नपूर्णा' नामक विशाल भोजनालय है। यह भोजनशाला हज़ारों व्यक्तियों को भोजन बनाने और खिलाने की एक आश्चर्यकारी संस्था है। यहाँ भाप से 25 किलो चावल दस मिनट में बन जाता है। चावल का अतिरिक्त पानी बोल्ट ढीले करके निकाल दिया जाता है। चावल बनाने के लिए तीन फुट × तीन फुट व्यास के आठ स्टेनलेस स्टील के ड्रम हैं। शाक-सब्जी और सांभर के लिए पाँच फुट × पाँच फुट व्यास के यन्त्र हैं जिनमें ये सब चीजें भाप से बनती हैं। हाथ-ठेलों में भरकर चावल परोसा जाता है। और बड़ी-बड़ी टोकरियों में यन्त्र से निकालकर इकट्ठा किया जाता है।

क्या कोई विश्वास कर सकता है कि श्री हेग्गडेजी की इस भोजनशाला में प्रतिदिन लगभग दस हज़ार व्यक्ति निःशुल्क भोजन करते हैं। इनमें स्कूलों के छात्र भी होते हैं। आसपास के गरीब लोग जून, जुलाई, अगस्त और 15 सितम्बर तक (यानी बरसात में) प्रायः यहाँ आकर प्रतिदिन भोजन करते हैं। उनके पास इन दिनों काम नहीं होता। उनके इस प्रकार भोजन करने पर कोई आपत्ति नहीं करता। सोमवार के दिन भोजन करनेवालों की संख्या पन्द्रह हज़ार और मेले के समय चालीस हज़ार तक होती है। प्रसंगवश यह भी उल्लेखनीय है कि श्री हेग्गडेजी की ओर से प्रतिवर्ष निर्धन महिलाओं को साड़ियाँ बाँटी जाती हैं। सन् 1985 ई. में 43 हजार साड़ियाँ वितरित की गई थीं। क्षेत्र ने एक तहसील को भी अपना लिया है और गाँव के गरीबों की हर प्रकार से मदद की जाती है। क्षेत्र की ओर से सामूहिक विवाह का जो आयोजन किया जाता है उसमें वर-वधू को एक धोती, एक शॉल, एक साड़ी-ब्लाउज, चाँदी की चेन, सोने का मंगलसूत्र, दिए जाते हैं और वर पक्ष के दस तथा वधू पक्ष के दस आदमियों को भोजन कराया जाता है।

अन्नपूर्णा के पीछे एक प्राचीन गणेश-मन्दिर भी है।

यहाँ के संग्रहालय और उसके पास के उद्यान के निकट की दुकानें पार करके नेत्रावती नामक आधुनिक धर्मशाला, उसके बाद चार मंज़िल ऊँची वैशाली नाम आधुनिक धर्मशाला और उससे आगे शरावती नामक चार मंजिला होटल है। और उसी के पास है 'नेल्याडि बीडु' नामक पुरातन हेग्गडे-निवास।

चन्द्रनाथ स्वामी मन्दिर—उपर्युक्त निवास से लगे हुए एक टीले पर है 'श्री चन्द्रनाथ मन्दिर'। वहाँ जाने के लिए 30 सीढ़ियाँ चढ़नी होती हैं। मन्दिर का प्रांगण बड़ा है और उसके आसपास लाल बलुए पत्थर की दीवाल है। यह प्राचीन मन्दिर है। इसकी छत ढलुआ और कवेलू (टाइल्स) की हैं। गर्भगृह के ऊपर छोटा-सा कलश है। मन्दिर की मुंडेर से दो अभयहस्त लटकते दिखाई देते हैं। सबसे ऊपर कीर्तिमुख है। मुख्यमण्डप छः स्तम्भों पर आधारित है। मन्दिर के प्रवेशद्वार पर ॐ लिखा हुआ है। उसकी चौखट पर पीतल जड़ा है। मन्दिर में एक प्रकार से पाँच प्रकोष्ठ हैं। गर्भगृह और उसके सामने के चारों प्रकोष्ठों में प्रतिमाएँ हैं। बीस-बाइस फुट चौड़े इस प्राचीन छोटे-से मन्दिर की चौबीसी के मूलनायक धर्मनाथ हैं। गर्भगृह सहित पाँचों प्रकोष्ठों में सुन्दर प्रतिमाएँ हैं। प्रथम कोष्ठ में ही चौबीसी है। गर्भगृह में मूलनायक चन्द्रप्रभ की

मनोज्ञ प्रतिमा है। उसका भामण्डल किरणों के रूप में है। गर्भगृह के अन्दर जाना मना है। बसदि में प्रवेश के दाईं ओर बाहर के प्रदक्षिणापथ में 'श्री माता पद्मावतीजी' लिखा है। उनका मन्दिर मुखमण्डप सहित है और अलग है।

चन्द्रनाथ स्वामी मन्दिर के सामने साधु-संन्यासियों के लिए सुनिर्मित एक भवन है।

धर्मस्थल की महत्ता

इसके बारे में स्वामी परमहंस शेषाचार्य ने 'श्री धर्मस्थल क्षेत्र परिचय' (अँग्रेज़ी) नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि ईश्वर में विश्वास करने वाले और अन्य धर्मों का भी आदर करने वाले सभी धर्मों के लोग यहाँ आते हैं। वे लिखते हैं—

"Dharmasthala is a holy Kshetra that attracts Jains, Hindus, Christians and Muslims too who come there for amelioration of their ailments in some form or other. It goes to the credit of the institution unlike others that it serves devotees without any distinction of class or creed. It is also unique in settling civil disputes between the people. The Heggade of Dharmasthala settles such disputes more than any court established for dispensation of civil justice. A devotee visiting Dharmasthala must be a believer in supernatural powers. He must respect the Gods and Goddesses of Jains and Hindus, the Dharma Devas, and also the Heggade of Dharmasthala whose family established and built the institution of Dharmasthala with all its reputation."

(अर्थात् धर्मस्थल एक ऐसा पवित्र क्षेत्र है जो जैन, हिन्दू, ईसाई यहाँ तक कि मुसलमानों का भी श्रद्धास्थल बन गया है। यहाँ सभी अपनी दैहिक एवं मानसिक व्याधियों का उपचार प्राप्त करने आते हैं। इस क्षेत्र की विशेषता यह है कि यहाँ जाति या धर्म का कोई भेदभाव नहीं है। एक विलक्षणता यह भी है कि यहाँ पारस्परिक कलह तथा दीवानी एवं फौजदारी झगड़ों का न्याय-सम्मत निबटारा होता है। यहाँ के धर्माधिकारी इस प्रकार से न्याय और समाधान करते हैं कि वैसा कोई अन्य क्या करेगा! यहाँ आने वाला यात्री सहज ही एक अदृश्य शक्ति की सत्ता में विश्वास करने लगता है। वह यहाँ के जैन और हिन्दू देवी-देवताओं को मानता है, साथ ही, धर्मस्थल के हैगड़े-परिवार को—जिसने कि इस क्षेत्र की स्थापना, इसकी समृद्धि और इसकी कीर्ति के विस्तार में प्रभूत योगदान दिया है।)

जैनधर्म एकांगी धर्म नहीं है, वह अनेकांतवादी है। हठधर्मिता से कोसों दूर, धर्म के कारण नृशंसताओं के कलंक से रहित यह धर्म सदा ही समदर्शी, सहिष्णु और सर्वोदयी रहा है। उसके आचार्यों की रचनाओं में एवं भक्तिपाठ में भी यही भावना नित्यप्रति लक्षित होती है। कुछ उदाहरण हैं—

1. जिनसेनाचार्य द्वितीय ने ऋषभदेव को अपने सहस्रनामस्तोत्र में 'शिव' कहा है। उक्ति है—"युगादिपुरुषो ब्रह्मा पंचब्रह्ममयः शिवः।" एक अन्य ग्रन्थ में शिव का लक्षण इस प्रकार बताया है: "शिवं परं कल्याणं निर्वाणं ज्ञानमक्षयम्, प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिवः परिकीर्तितः।" अर्थात् परम कल्याणरूपी सुख (निर्वाण) और अक्षय ज्ञान (केवलज्ञान) प्राप्त कर जिसने मुक्तिपद पा लिया है, वह शिव है।

2. मानतुंगाचार्य 'भक्तामरस्तोत्र' में कहते हैं—

"बुद्धिस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धिबोधा-
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय-शंकरत्वात्।
धातासि धीर शिवमार्ग-विधेर्विधानात्
व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि।"

(हे भगवन् आप ही बुद्ध हो क्योंकि आपकी बुद्धि गणधर आदि विद्वानों द्वारा पूज्य है। आप ही शंकर हैं क्योंकि आप अपनी प्रवृति तथा उपदेश से तीनों लोकों में सुख की (शांति की) सृष्टि करते हैं। आप विधाता हैं क्योंकि आपने मुक्तिमार्ग का विधान किया है। आप सबसे उत्तम होने के कारण पुरुषोत्तम हैं।)

3. 'मेरी भावना' में प्रत्येक भव्य कहता है—

"बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो॥"

4. 'समणसुत्त' में एक आचार्य की यह भावना देखिए—

"सयं सयं पसंसंता, गरहतां परं वयं।
जो उ तत्थ विउस्संति संसारं ते विउस्सिया॥"

(जो पुरुष केवल अपने मत की प्रशंसा करते हैं तथा दूसरों के वचनों की निंदा करते हैं और इस तरह अपना पाण्डित्य प्रदर्शन करते हैं वे संसार में मजबूती से जकड़े हुए हैं—दृढ़ रूप से आबद्ध हैं।)

तो धर्मस्थल जैनधर्म के अनेकान्तवादी दृष्टिकोण, सर्वधर्मसमवन्य, सहनशीलता, सर्वोदय और समदर्शिता की युगानुयुग में खरी उतरी उदात्त भावनाओं का आधुनिक जीवन्त प्रतिनिधि क्षेत्र है।

यहाँ से बेलूर की ओर प्रस्थान करना चाहिए।

मंगलोर जिले के अन्य जैन स्थल

बप्पनाड (Bappanad)

यहाँ कोट कोरि (Kota Kori) नामक बसदि है जिसके सामने एक मानस्तम्भ भी है। मन्दिर का संरक्षण कार्य हुआ है।

कारकुर (Karkur)

यहाँ कठाले नामक स्थान पर ढलुआ छत का एक बड़ा जैन मन्दिर है।

गुरुवायनकेरे (Guruvayankere)

बेणूर के निकट और धर्मस्थल के रास्ते में इस स्थान पर तीन जैन मन्दिर हैं—
1. शान्तीश्वर जैन बसदि, 2. चन्द्रनाथ बसदि और 3. अनन्तनाथ बसदि।

शान्तीश्वर जैन मन्दिर मूडबिद्री के मन्दिरों जैसा ही ढलुआ छत का मन्दिर है (चित्र क्र. 84)। उसके सामने एक मानस्तम्भ है। इसका अलंकरण मनोहारी है। यहाँ यक्ष-यक्षी सहित एवं मकर-तोरण से अलंकृत शान्तिनाथ की भव्य प्रतिमा है।

उपर्युक्त स्थान की चन्द्रनाथ स्वामी बसदि एक सुन्दर मन्दिर है। उसके मूलनायक खड्गासन चन्द्रनाथ, यक्ष-यक्षी सहित हैं तथा मकर-तोरण से अलंकृत हैं। इस मन्दिर में धातु की एक ही पेनल में, एक ही चौकी पर, एक ही पंक्ति में सुन्दर चौबीसी है।

अनन्तनाथ बसदि में मूलनायक अनन्तनाथ की धातुनिर्मित प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है (चित्र क्र. 85) तथा यक्ष-यक्षी सहित एवं मकर-तोरण से सज्जित है। मन्दिर के सामने चार स्तम्भों (बीच के स्तम्भों को नहीं गिनते हुए) पर आधारित ब्रह्मदेव मण्डप (चित्र क्र. 86) भी है।

बंटवल (Bantwal), समसे (Samse), पडुबिद्री (Padubidri) और सुलकेरी (Sulkeri) नामक स्थानों में भी जैन मन्दिर हैं।

बरकूर (Barkur)

उडिपी तालुक के इस स्थान पर नौवीं सदी की एक ध्वस्त जैन बसदि है। उसकी छत, मण्डप आदि सब भग्नावस्था में हैं। उसके सोपान-जंगले पर नदी-देवी का सुन्दर अंकन है। नर्तक-दल, कीचक आदि अलंकरण बिखरे पड़े हैं।

बोमरबेट्ट (Bommerbett)

उपर्युक्त तालुक में ही स्थित जैन बसदि बिलकुल खण्डहर हो गई है। उसके नवरंग में अलंकृत स्तम्भ अभी भी देखे जा सकते हैं। यह बसदि भी सम्भवतः नौवीं सदी की है।

केल्ल पुट्टिगे (Kella Puttige)

यह स्थान कारकल तालुक में है। यहाँ की अनन्तनाथ बसदि भी प्राचीन है। द्वार पर कन्नड़ में नाम लिखा है। द्वार के दोनों ओर एक-एक देवी चित्रित है। उनसे ऊपर पद्मासन में तीर्थंकर का अंकन है। छत ढलुआ है, शिखर नहीं है। यहाँ 14वीं सदी की एक भव्य पार्श्वनाथ प्रतिमा केवल पाँच इंच ऊँची है। वह अर्ध-पद्मासन में है और उस पर सात फणों की छाया है। सर्पकुण्डली पीछे की ओर स्पष्ट है। इस मन्दिर में कुछ विशिष्ट मूल्यवान प्रतिमाएँ भी हैं।

नल्लूर (Nallur)

कारकल तालुक के इस स्थान पर पार्श्वनाथ बसदि और अनन्तनाथ बसदि नामक दो जिनमन्दिर हैं।

पार्श्वनाथ बसदि में मूलनायक पार्श्व की मूर्ति खड्गासन में है। वह जल उगलते मकरों

तथा सात फणों से मण्डित है। सर्पकुण्डली पादमूल तक प्रदर्शित है। साथ ही, यक्ष-यक्षिणी का भी अंकन है। ऊपर की मंज़िल में भी पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में धातुनिर्मित मोहक प्रतिमा यक्ष-यक्षिणी सहित है। प्रभावली अत्यन्त सुन्दर है। कूष्माण्डिनी देवी की प्रतिमा प्रभावली से अलंकृत है। देवी के हाथों में ध्वजा, दण्ड आदि का स्पष्ट अंकन है।

अनन्तनाथ बसदि में पद्मासन और कायोत्सर्ग मुद्रा में अनेक जिन-प्रतिमाएँ हैं। मूलनायक अनन्तनाथ की मनोज्ञ मूर्ति है। उसका भामण्डल सूर्य-किरणों की-सी छवि लिये हुए है। यक्ष-यक्षी भी प्रदर्शित हैं। केवल चँवरों का अंकन है, चँवरधारियों का नहीं।

नल्लूर की पार्श्वनाथ बसदि में ग्यारहवीं सदी से लेकर पन्द्रहवीं सदी तक की अनेक तीर्थंकर एवं यक्ष-यक्षिणी मूर्तियाँ हैं। यहाँ ग्यारहवीं सदी की लगभग 18 इंच की एक 'कांस्य चौबीसी' है जो कि अंकन की दृष्टि से अद्भुत है। उसके आसन पर एक गाय और एक शेरनी अंकित हैं। वे एक-दूसरे के बच्चों को दूध पिला रही हैं। चौबीसी में दाएँ-बाएँ पार्श्व और सुपार्श्व हैं। पद्मासन मूलनायक के मस्तक से ऊपर दोनों ओर तीन-तीन तीर्थंकर हैं। उससे ऊपर एक पंक्ति में सात और उससे ऊपर की पंक्ति में पाँच तथा सबसे ऊपर की पंक्ति में तीन तीर्थंकरों की संयोजना होने के कारण चौबीसी सुन्दर बन पड़ी है। इसी सदी की ज्वालामालिनी को एक बैल पर सवार बताया गया है। देवी का किरीट ऊँचा है। दसवीं सदी की नेमिनाथ की यक्षिणी मूर्ति में अम्बिका का एक पुत्र गोद में है, दूसरा पास खड़ा है किन्तु देवी के साथ सामान्यतः अंकित आम्रगुच्छ नहीं है। इसी देवी की एक अन्य प्रतिमा में देवी के चार हाथ सामान्य वस्तुओं के साथ बताए गए हैं। उसके पैर के नीचे उसका वाहन सिंह है। तेरहवीं सदी की नौ इंची ज्वाला-मालिनी की पादुका ध्यान देने योग्य है। चौदहवीं सदी की सात इंची, पद्मावती ललितासन में है और आसन पर कुक्कुट सर्प चिह्न से युक्त है। इसी सदी के, महावीर स्वामी के यक्ष सर्वाह्न ऊँचे आसन पर खड़े हैं। उनके मस्तक पर धर्मचक्र है। मूर्ति सात इंच की ही है। तेरहवीं सदी के ब्रह्मयक्ष घोड़े पर सवार प्रदर्शित हैं।

उपर्युक्त बसदि में पार्श्वनाथ की बारहवीं, तेरहवीं और पन्द्रहवीं सदी की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। बारहवीं सदी की प्रतिमा सात फणों से युक्त है। उस पर जल उगलते मकरों का अंकन मनोहारी है। तेरहवीं सदी की नौ इंची पार्श्व-प्रतिमा पर नौ फणों की छाया है। सर्पकुण्डली पीछे प्रदर्शित है। पन्द्रहवीं शताब्दी की इसी आकार की पार्श्वनाथ की प्रतिमा में एक विशेषता यह है कि उस पर छाया कर रहे सात फणों के नीचे एक पूर्ण विकसित कमल का अंकन है। चौदहवीं सदी की दो चौबीसियाँ भी यहाँ हैं।

नल्लूर में पन्द्रहवीं सदी का एक 'ब्रह्म जिनालय' भी है।

नेल्लिकरु (Nellikaru)

कारकल तालुक के अन्तर्गत इस स्थान में पार्श्वनाथ बसदि नामक एक जिनालय है। इसमें ग्यारहवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक की सुन्दर प्रतिमाएँ हैं (देखें चित्र क्र. 87)। मूलनायक पार्श्वनाथ की चार फुट ऊँची कायोत्सर्ग प्रतिमा सात फणों और छत्रत्रयी से युक्त तथा मकर-तोरण एवं मस्तक के दोनों ओर चँवर से सुसज्जित है। धरणेंद्र और पद्मावती घुटनों तक बैठे

दिखाए गए हैं। संगमरमर की डेढ़ फुट ऊँची तेरहवीं सदी की मूर्ति अर्ध पद्मासन में है। चौदहवीं शती की महावीर स्वामी की कांस्य प्रतिमा का अलंकरण मनोहर है। स्टूल जैसे आसन पर विराजमान यह मूर्ति एक बाहरी और एक भीतरी चाप तथा मकर-तोरण एवं कीर्तिमुख से विभूषित है। चाप के दोनों सिरों पर एक-एक पद्मासन तीर्थंकर भी उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी आसन तक खड़े प्रदर्शित हैं।

यहाँ पन्द्रहवीं शताब्दी की लगभग डेढ़ फुट ऊँची एक चतुर्दशिका या 14 तीर्थंकर प्रतिमा है। उसके मूलनायक चौदहवें तीर्थंकर अनन्तनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में छत्रत्रयी, मस्तक के दोनों ओर चँवर तथा कीर्तिमुख से विभूषित हैं। मकर-तोरण संयोजित चाप का अलंकरण अत्यन्त आकर्षक है। प्रश्न उठता है कि चतुर्दशिका किस प्रयोजन से बनाई गई होगी। समाधान दो हैं। या तो उसमें अनन्तनाथ सहित चौदह तीर्थंकर प्रदर्शित हैं या फिर यहाँ भरत क्षेत्र के पाँच, ऐरावत क्षेत्र के पाँच और जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में विद्यमान चार तीर्थंकर यहाँ संकेतित हैं। प्रयोजन जो भी हो, मूर्ति अद्भुत है। इस प्रकार की प्रतिमाएँ बहुत ही कम देखने को मिलती हैं। मूर्ति की भीतरी चाप में छह-छह पद्मासन तीर्थंकर हैं और एक तीर्थंकर मूर्ति छत्रत्रयी के ऊपर पद्मासन मुद्रा में है। एक और चतुर्दशिका भी यहाँ है। बारहवीं सदी की दो चौबीसी (कांस्य) भी इस बसदि में हैं जो कि कुछ घिस गई हैं।

श्रवणगुण्ड (Shravangunda)

श्रवण का अर्थ है श्रमण (दिगम्बर मुनि) और गुण्ड यानी गोल पत्थर अर्थात् वह स्थान जहाँ गोल पत्थर का (पानी में तैरने का) चमत्कार प्रसिद्ध है। यह स्थान धर्मस्थल से 4 कि. मी. दूर स्थित बेलतंगडि तालुक में बंगवाडि से तीन कि. मी. की दूरी पर सघन जंगल में स्थित है। बंगवाडि का भी थोड़ा-सा इतिहास जान लिया जाए।

तुलुनाडु में बारह जैन राजघराने थे। उनमें बंग-राजाओं का स्थान प्रथम था। उनके राज्य का विस्तार मंगलोर तक था। किन्तु उनका मूल स्थान और मुख्य नगर बंगवाडि था। बंगवाडि का अर्थ है 'बंगों का गाँव'। अब इसे बंगाडि कहते है। यहाँ बंग राजाओं का महल अब भी ध्वस्त अवस्था में है। उनके वंशज भी यहाँ रहते हैं। यहाँ जैन श्रावकों के भी आठ-दस घर हैं। ये राजा अन्त तक अंग्रेज़ों से जूझते रहे, यद्यपि अन्य राजाओं ने अंग्रेज़ों से सन्धि कर ली थी।

आधुनिक बंगाडि सह्याद्रि की सौन्दर्यपूर्ण तलहटी में बसा हुआ है। यहाँ तीन जैनमन्दिर है। उनमें से बड़े मन्दिर के मूलनायक तीर्थंकर शान्तिनाथ हैं। यहाँ जनवरी माह में प्रतिवर्ष रथोत्सव होता है जिसमें आसपास के जैन-जैनेतर काफी संख्या में भाग लेते हैं। इसी रथोत्सव के समय एक दिन श्रवणगुण्ड में भी 'गुण्डु दर्शन' नामक उत्सव भी होता है। उस दिन एक गोल पत्थर पानी में तैरता है। वैसे आश्चर्यकारी यह घटना अविश्वसनीय लगती है किन्तु इसकी सत्यता से सम्बन्धित जो विवरण एवं अनुश्रुति यहाँ प्रचलित है, वह इस प्रकार है—

प्राचीनकाल की बात है। यहाँ अनेक श्रमण (जैन मुनि) तपस्या करते थे। उनकी तपस्या से प्रभावित होकर शासन-देवताओं ने उनसे पूछा कि उनके लिए वे क्या करें। वीतरागी मुनियों द्वारा कुछ भी नहीं माँगे जाने पर, जैनधर्म के चमत्कारों में श्रद्धा बढ़ाने की दृष्टि से

ब्रह्मयक्ष द्वारा इस गोल पत्थर के तैरने का चमत्कार निर्मित किया गया।

बंगवाडि से श्रवणगुण्ड तक का पथ कंटकाकीर्ण है। पेड़-पौधों की भरमार होने के कारण अकेले व्यक्ति का वहाँ जाना निरापद नहीं है। वहाँ ठहरने या रहने की व्यवस्था भी नहीं है। आयताकार एक प्रांगण के मध्य में ब्रह्मदेव का एक चौकोर देवालय ही है। प्राकार से बाहर एक तालाब है। यहीं एक द्वार से, जिसके दाएँ-बाएँ ऊँचे बिल हैं, ब्रह्मदेव के मन्दिर में पहुँचते हैं। इस मन्दिर के पास एक कुआ है जो हमेशा सूखा रहता है। गुण्डुदर्शन के दिन तालाब से पानी लाकर इसमें भरा जाता है। उसी के पास पत्थर के सामने स्थित 'गोपुरासन' में ब्रह्मदेव के विशेष पुजारी (जिन्हें कन्नड में 'पात्रि' कहा जाता है) के बैठने का पत्थर का आसन है। पुजारी पहले ब्रह्मदेव की पूजा करता है और उसके बाद उनकी आरती करता है। इस आरती के समय पुजारी के शरीर में ब्रह्मदेव का प्रवेश होता है। उस समय पुजारी आरती दूसरे को देकर पत्थर के आसन पर आसीन होता है। संस्था से सम्बन्धित प्रमुख व्यक्तियों से इसे यह अभयवचन होता है कि वह धर्म की महिमा करेगा। फिर, एक अन्य पुजारी चाँदी के बर्तन में रखे पत्थर को एक बड़ी थाली में रखकर 'पात्रि' के पास लाता है। पात्रि उस पत्थर को स्पर्श करता है और बाद में वह पत्थर पानी से भरे कुए में डाल दिया जाता है। वह गोल पत्थर पानी में डुबकी लगाकर ऊपर आता है और इस प्रकार पानी में तैरने लगता है जैसे छाछ में मक्खन। लगभग दो मिनट तैरने के बाद वह पुनः पानी में चला जाता है। एक-एक कर भक्त उसका श्रद्धापूर्वक दर्शन करते हैं। प्रायः दो मिनट पहले ही गोल पत्थर को बड़ी थाली से निकाल लेते हैं।

इस विस्मयकारी पत्थर को किसी ने चुरा लिया था। तब से 1913 ई. तक यह दर्शन बंद रहा। सन् 1914 ई. में धर्मस्थल के श्री चन्द्रय्य हेग्गडे बंगवाडि के रथोत्सव में आए। तब हेग्गडेजी ने पात्रि से कहा, "गोल पत्थर का अपहरण होने के बाद उसका दर्शन नहीं हुआ। इससे नाना प्रकार की बातें उठ जाती हैं। इसलिए जैनधर्म एवं ब्रह्मदेव की महिमा का प्रदर्शन होना चाहिए। हमें ब्रह्मदेव से इस प्रकार का अभयवचन मिलना चाहिए।" इस पर पात्रि ने उत्तर दिया, "मंजुनाथ! (हेग्गडेजी का सम्बोधन) तुम जैसा चाहते हो वैसा ही प्रदर्शन होगा। हमारी महिमा अब भी है। डरो मत, अभी पत्थर लाकर अपनी महिमा दिखाते हैं।" यह कहकर पात्रि ने हेग्गडेजी का हाथ पकड़ा और वे दोनों जंगल में काँटों की राह प्रवेश कर गए। वे नेत्रावती नदी के किनारे पहुँचे। उसके दोनों ओर सघन ऊँचे-ऊँचे वृक्ष थे और नदी भी गहरी थी। कुछ व्यक्ति भी उनके पीछे-पीछे गए थे। वहाँ पहुँचकर पात्रि (ब्रह्मदेव) ने हेग्गडेजी से पूछा, "क्या पत्थर आवश्यक है? हमारी महिमा का प्रकाशन आवश्यक है न?" यह कहकर पात्रि ने उस अथाह पानी में डुबकी लगाई। किन्तु मगर-मच्छवाले उस जल में जब वह पाँच मिनट तक बाहर नहीं आए तो सभी चिन्तित हुए। किन्तु भय और आशंका के बीच पात्रि पाँच मिनट से कुछ देर बाद बाहर आए और उन्होंने हेग्गडेजी से पूछा, "क्या इस पत्थर से काम चल जाएगा?" जब हेग्गडेजी ने 'हाँ' कहा, तब उस पत्थर को थाली में रखकर ब्रह्मदेव की पूजा की गई। उसके बाद जब पत्थर को पानी-भरे कुएँ में डाला गया तो वह पानी में तैरने लगा। इसे सैकड़ों लोगों ने अपनी आँखों से देखा था। गुण्डुदर्शन का यह सिलसिला अनेक वर्षों तक चलता रहा। सुप्रसिद्ध कन्नड साहित्यकार श्री शिवराम कारंत भी इसे देखकर आश्चर्यचकित हुए थे। आगे

चलकर कुछ भेंट लेकर यह गुण्डुदर्शन काफी समय तक चलता रहा। कन्नड के प्रसिद्ध प्राचीन ग्रन्थ 'जैनाचार' में भी इस चमत्कार का उल्लेख है। तुलुवदेश-यात्रा सम्बन्धी उसकी 26 वीं सन्धि में जो उल्लेख है, वह इस प्रकार है : "बंगवाडि के चैत्यालय में मंगलरत्नत्रय मन्दिर में शान्ति-सुख-प्रदाता श्री शान्तिनाथ तीर्थंकर की मूर्ति विराजमान है। उसकी शोभा अवर्णनीय है। इसी मन्दिर में पद्मप्रभ, सुपार्श्व और चन्द्रप्रभ भगवान की भी श्रेष्ठ व मनोज्ञ मूर्तियाँ हैं। बंगवाडि के पास ही अरण्य में श्रवणगुण्ड नामक स्थान है, जहाँ यक्ष ब्रह्मदेव की मूर्ति है। उसी के पास कुएँ में गोल पत्थर तैरता नजर आता है। इसे सब लोगों ने आँखों से प्रत्यक्ष देखा है। समस्त जगत् में यह एक अद्भुत घटना है।"

कहा जाता है कि काल दोष के कारण या फिर ब्रह्मदेव की अप्रसन्नता के कारण कुछ वर्षों से यह पत्थर नहीं तैरता; हालांकि तैरने वाला पत्थर अब भी वहाँ पर चाँदी के कटोरे में सुरक्षित है।

बेलूर

अवस्थिति एवं मार्ग

बेलूर (Bellur) धर्मस्थल से लगभग 135 कि. मी. दूर है। रास्ता इस प्रकार है— धर्मस्थल—उजिरे (निकट से मोड़ के मंगलोर-चिक्कमंगलूर मुख्यमार्ग)— चारमाडि घाट—मूडिगेरे—गोनिबिडु—बेलूर। इस मार्ग से इस तरफ की प्रमुख उपज कॉफी का बहुत यातायात होता है। इस कारण इस मार्ग को 'कॉफी मार्ग' भी कहा जाता है। वैसे यह मंगलोर-चिक्कमंगलूर मार्ग कहलाता है। मूडिगेरे से एक मार्ग चिक्कमंगलूर चला जाता है और दूसरा बेलूर। रास्ते में चारमाडि नामक घाट-मार्ग पड़ता है। बस बहुत ऊँची चढ़ती है। कहीं-कहीं खड़ी चढ़ाई है। रास्ते में 99 एच. पी. बेंड (खतरनाक, सम्भलकर चलने योग्य) मोड़ आते हैं। किन्तु हरियाली और पहाड़ी दृश्य अत्यन्त सुहावने लगते हैं। इस मार्ग से बड़ी बसें जा सकती हैं। जिस प्रकार आगुम्बे गाँव के कारण आगुम्बे घाटी कहलाती है, उसी प्रकार चारमाडि गाँव के कारण यह घाट-मार्ग 'चारमाडि घाट' कहलाता है।

बेलूर से हासन 40 कि. मी. और वहाँ से बंगलोर 185 कि. मी. दूर है। बेलूर से श्रवण-बेलगोल (हासन होते हुए) लगभग 90 कि. मी. दूर है। यहाँ से हलेबिड 17 कि. मी. दूर है और वहाँ से हासन 35 कि. मी.।

निकटतम रेलवे स्टेशन हासन है जो कि दक्षिण रेलवे मीटर गेज का एक जंक्शन है। बम्बई से बंगलोर मीटर गेज लाइन पर अरसीकेरे (Arsikere) से रेलगाड़ी हासन (Hassan) होते हुए मैसूर तक जाती है। वैसे अब बंगलोर से मंगलोर तक भी मीटरगेज की सीधी गाड़ी चल गई हैं किन्तु अभी बहुत कम गाड़ियाँ इस लाइन पर हैं और वह भी पेसेंजर गाड़ी ही हैं।

ऐतिहासिक महत्त्व

बेलूर क्षेत्र यागची नदी के किनारे हासन ज़िले में स्थित है। इस स्थान के प्राचीन नाम वेलापुरी, बेलूर और बेलापुर मिलते हैं। जैनेतर लोग इसे 'दक्षिण वाराणसी' भी कहते हैं।

बारहवीं सदी में यह स्थान एक प्रसिद्ध राजधानी था। इतिहास और अनुश्रुति तथा शिलालेखों आदि में बहुचर्चित होय्सलनरेश बिट्टिग (अपर नाम विष्णुवर्धन) यहाँ शासन करता था। उसका शासन यहाँ के कर्नाटक के राजनीतिक तथा धार्मिक इतिहास में बड़ा महत्त्व रखता है। उसने 1135 ई. में यहाँ से राजधानी हटाकर दोरसमुद्र (आधुनिक हलेबिड) में स्थापित की थी।

होय्सल राजवंश की स्थापना में जैनाचार्य का हाथ रहा है। इसकी तथा विष्णुवर्धन की धर्म सम्बन्धी चर्चा हलेबिड के प्रसंग में की जाएगी।

बेलूर कोई प्रसिद्ध जैन केन्द्र नहीं है और न ही यहाँ उल्लेखनीय जैन मन्दिर हैं। दर्शनीय जैनमन्दिर हलेबिड में हैं। यह स्थान धर्मस्थल से हलेबिड के मार्ग में पड़ता है। यहाँ के 'चन्नकेशव मन्दिर' (विष्णु को समर्पित) का अलंकरण (सुन्दर नक्काशी) और मूर्तिकला इतनी आकर्षक और उन्नत है कि यह मन्दिर अवश्य देखना चाहिए। 'चन्न' का अर्थ है 'सुन्दर'। यद्यपि यह विशेषण केशव के साथ लगा है किन्तु इसे मन्दिर के साथ भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

'चन्नकेशव मन्दिर' का सम्बन्ध जैनधर्म या उसके प्रभाव से भी है जिसका उल्लेख मन्दिर की विशिष्ट कला का संक्षिप्त परिचय देने के बाद किया जाएगा।

उपर्युक्त मन्दिर यहाँ के बस स्टैंड से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर है। बस स्टैण्ड के पास ही टूरिस्ट बंगला भी है। जैन यात्रियों को परामर्श दिया जाता है कि वे हलेबिड (17 कि. मी.) के टूरिस्ट बंगलों में ठहरें। वहाँ के अत्यन्त आकर्षक 'होय्सलेश्वर मन्दिर' (इसके सुन्दर उद्यानयुक्त अहाते में लोग पिकनिक करते हैं) और तीन जैनमन्दिर देखने में आठ-नौ घण्टे का समय चाहिए। जैन मन्दिर सुबह ही अच्छी तरह देखे जा सकते हैं।

'चन्नकेशव मन्दिर' ऊँची दीवाल वाले विशाल अहाते (380 × 425 फुट) में स्थित है। उसके दो ऊँचे गोपुर (प्रवेशद्वार) हैं। मन्दिर की लम्बाई पूर्वी द्वार से गर्भगृह के पीछे तक 115 फुट है। वह ऊँची चौकी पर बना है और उसके आसपास का चबूतरा दस-पन्द्रह फुट चौड़ा है।

आमतौर से मन्दिर चौकोर या गोल बनते हैं किन्तु चन्नकेशव मन्दिर एक तारे (star) की आकृति का है। इस कारण उसकी दीवालों में जो कोण बने हैं, उनसे इसमें शिल्पियों ने अपनी छैनी से ऐसी कृतियाँ निर्मित की हैं जो सदा याद रहती हैं।

मन्दिर का निर्माण समीप ही मिलने वाले नरम सेलखड़ी पत्थर (कुछ हरा-सा) से किया गया है जिसके कारण बारीक नक्काशी सम्भव हो सकी है। कुछ लोग इसे ग्रेनाइट बताते हैं जो कि गलत है।

मन्दिर की विशेषता उसे देखकर ही जानी जा सकती है। यहाँ उसका कुछ परिचय दिया जाता है। इस प्रसिद्ध मन्दिर का शिल्पी जकणाचारी था।

बताया जाता है कि चन्नकेशव मन्दिर किसी समय 'वीर-नारायण मन्दिर' कहलाता

था। होय्सलनरेश विष्णुवर्धन ने उसे 1117 ई. में तलकाड के रणक्षेत्र में चोल सामन्त पर अपनी विजय के उपलक्ष्य में बनवाया था (उसका राज्याभिषेक 1114 ई. में हुआ था)। वैसे इसी मन्दिर के अहाते में वीरनारायण नामक एक मन्दिर और भी है।

उपर्युक्त मन्दिर को एक प्रकार से मूर्तियों का संग्रहालय कहा जाता है। यह बात मन्दिर के अन्दर और बाहर की मूर्तियों को देखने से एकदम स्पष्ट हो जाती है। मन्दिर के मुख्य देवता विष्णु (केशव) हैं। उनकी बारह फुट ऊँची प्रतिमा भव्य है। उसकी प्रभावली में विष्णु के दस अवतार प्रदर्शित हैं। अन्य देवी-देवताओं की भी बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के नवरंग (हॉल) में कुल 46 स्तम्भ हैं जिनपर भी अनेक देव-मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। एक स्तम्भ 'नरसिंह स्तम्भ' कहलाता है। कहा जाता है कि यह स्तम्भ इच्छानुसार घुमाया जा सकता है। स्तम्भों की नक्काशी सुन्दर है और अलग-अलग स्तम्भों पर विभिन्न प्रकार की है। ऐसा लगता है कि नक्काशी में ये स्तम्भ एक-दूसरे से होड़ कर रहे हों। एक स्तम्भ पर अष्ट दिक्पाल भी प्रदर्शित हैं। यहाँ पीतल का भी एक शेषनाग है। गर्भगृह में कुछ मूर्तियों के पास अँधेरा-सा है। मन्दिर सर्चलाइट में भी दिखाया जाता है। इसकी छत पर भी कमल एवं अप्सराओं आदि की आकर्षक नक्काशी है। मन्दिर में हवा और प्रकाश के लिए पत्थरों की सुन्दर जालियाँ हैं जिनकी संख्या 28 है। ये भी सामान्यतः तारों की आकृति में हैं। उन पर फूल-पत्ती तथा पौराणिक देवों आदि की कथाएँ चित्रित हैं। ये बीच-बीच में संयोजित की गई हैं।

इस मन्दिर में पौराणिक देवी-देवताओं या विविध पौराणिक दृश्यों की भरमार है। रामायण, महाभारत, भागवतपुराण, यक्ष, भीम द्वारा गणपति की पूजा, कृष्ण के चरणों में अर्जुन, विष्णु को दान देते हुए बलि, प्रह्लाद की कथा आदि अनेक पौराणिक प्रसंगों का सघन अंकन इस मन्दिर की एक प्रमुख विशेषता है। शायद इसी कारण यह वैदिक देवी-देवताओं का एक संग्रहालय ही बन गया है।

मन्दिर के बाहर गजथर (लगभग 650 हाथी जिनकी निर्माण-कला अलग-अलग प्रकार की है), हंसथर (हंसों की पूरी पंक्ति), मकर की पूरी पंक्ति; सैनिकों, अश्वों आदि की पंक्तियाँ (मन्दिर के चारों ओर) जिनमें उनका अंकन भिन्न-भिन्न प्रकार का है, इस मन्दिर को भव्यता प्रदान करती हैं। उनके बीच-बीच में फूल-पत्तियों की बार्डर भी हैं। नर्तकों, वादकों और संगीत-मण्डलियों का उत्कीर्णन इसमें और भी सुन्दरता ला देता है।

नारी के विभिन्न आकर्षक रूप, जिनमें से कुछ का आध्यात्मिक आख्यानों में या प्रतीक रूप में महत्त्व बताया जाता है, यहाँ बड़े ही सुन्दर ढंग से चित्रित हैं। ये मदनिकाएँ, अप्सराएँ या सुन्दरियाँ अपनी सुन्दर भावव्यंजना के कारण दर्शकों को आश्चर्य में डाल देती हैं।

बताया जाता है कि इस मन्दिर के हाथी-दरवाजे के पास जो अंकन है वह होय्सलनरेश विष्णुवर्धन और उसकी पट्टरानी शान्तला का है।

मन्दिर देखकर ऐसा लगता है कि कलाकार ने एक-एक इंच पर अपनी छैनी चलाई है। इसका डिजाइन बनानेवाला शिल्पी सचमुच बड़ी ही प्रतिभा का धनी रहा होगा। मन्दिर ध्यान से, और यदि सम्भव हो तो गाइड की सहायता से, देखना चाहिए। मन्दिर देखने के लिए लोगों का तांता लगा रहता है।

मन्दिर के परिसर में छह मन्दिर और हैं जिनमें प्रमुख हैं—कप्पे चन्निगराय, वीरनारायण, अण्डल और अलवास। सीढ़ियोंदार एक छोटी बावड़ी और अनेक शिलालेख भी यहाँ हैं।

जैन चिह्न

गोपुर से दाहिनी ओर एक लम्बा बरामदा है। उसमें लगभग बीचोंबीच एक वीरगल (वीरस्मारक) है। यह लगभग चार फुट ऊँचा पाषाण है। उसमें सबसे ऊपर छत्र से युक्त पद्मासन तीर्थंकर, चँवरधारी और सूर्य तथा चन्द्रमा उत्कीर्ण हैं। उनके नीचे कन्नड़ में जो लेख है वह बहुत कुछ घिस गया है। यह पाषाण दीवाल में जड़ा है।

कर्नाटक सरकार द्वारा प्रकाशित हासन ज़िले के गज़ेटियर में यहाँ के एक शिलालेख का उल्लेख है। उसमें कहा गया है : "शैव जिसे 'शिव' कहते हैं, वेदान्ती 'ब्रह्म' कहते हैं, बौद्ध 'बुद्ध' कहते हैं, मीमांसक 'कर्म' कहते हैं और जैन जिसे 'अर्हन्' कहते हैं, ये सब एक ही ईश्वर केशव के नाम हैं।" यदि यह विष्णुवर्धन का लिखवाया लेख है तो यह, यह भी सिद्ध करता है कि जैन राजा विष्णुवर्धन समदर्शी था, सभी धर्मों का आदर करता था और उसके नाम से जैनों पर उसके जो अत्याचार बताए जाते हैं वे सत्य नहीं हैं।

बेलूर के बाद हलेबिड (17 कि. मी.) के लिए प्रस्थान करना चाहिए।

हलेबिड

मार्ग

हलेबिड (Halebidu) सड़क-मार्ग द्वारा बेलूर से 17 कि. मी. दूर है। वहाँ से सरकारी बसों के अतिरिक्त मेटाडोर भी मिलती हैं। हासन से यह स्थान 40 कि. मी. की दूरी पर है और श्रवणबेलगोल से लगभग 92 कि. मी. तथा बंगलोर से 216 कि. मी.। मैसूर से यह स्थान 160 कि. मी. की दूरी पर स्थित है।

निकटतम रेलवे स्टेशन हासन है जहाँ मैसूर और बंगलोर से मीटर गेज की गाड़ियाँ आती हैं। बम्बई से आने वाले यात्री अरसीकेरे स्टेशन पर उतरकर हासन होते हुए यहाँ आ सकते हैं।

एक सावधानी—कर्नाटक सरकार का पर्यटन विभाग मैसूर तथा बंगलोर से पर्यटक बसें चलाता है। प्राइवेट बसें भी चलती हैं जो एक ही दिन में श्रवणबेलगोल, बेलूर और हलेबिड की यात्रा करा देती हैं। इन बसों से यात्रा करनेवाले श्रवणबेलगोल में केवल बाहुबली की मूर्ति देख पाते हैं और हलेबिड के जैनमन्दिर तो बिलकुल ही नहीं देख पाते। इसलिए यदि थोड़ा समय और लगाया जाए तो ठीक रहे। यात्रा का अवसर बार-बार तो आता नहीं।

एक प्राचीन राजधानी

हलेबिड का कन्नड भाषा में अर्थ है पुरानी राजधानी (हले = पुराना, बिडु = राजधानी)। इस स्थान का प्राचीन नाम दोरसमुद्र, द्वारसमुद्र या द्वारावतीपुर है। जब यह राजधानी नष्ट हो गई तो इस स्थान का नाम ही हलेबिड या हलेबिडु पड़ गया।

नष्ट होने से पूर्व यहाँ होय्सल-नरेशों की राजधानी थी। इन्हीं के समय में सुन्दर मन्दिर-मूर्ति निर्माणकला अपने शिखर पर पहुँची और होय्सल शैली कहलाने लगी। इसी नाम से यह कला आज तक प्रसिद्ध है।

होय्सल राजवंश की स्थापना में जैनाचार्य सुदत्त वर्धमान ने सक्रिय सहायता की थी या उसकी स्थापना के वे ही मूल प्रेरक थे।

हलेबिड गाँव से मुश्किल से आधा किलोमीटर की दूरी पर बस्तिहल्ली नामक एक दूसरा गाँव है। वहाँ तीन प्राचीन जैन मन्दिर हैं जो कि दर्शनीय हैं। हलेबिड आने वाले हर यात्री को इन्हें देखना चाहिए। इनका वर्णन आगे किया जाएगा। वहाँ की पार्श्वनाथ बसदि की बाहरी दीवाल में एक शिलालेख 1133 ई. का है। यह लेख संस्कृत और कन्नड़ में है। उसमें होय्सल राजवंश की स्थापना की संक्षिप्त कहानी दी गई है।

होय्सल राजवंश

शिलालेख के अनुसार, इस वंश का संस्थापक सळ यादव कुल में उत्पन्न हुआ था। 'सम्यक्त्वरत्नाकर' सळ सोसेवूरु, (शशकपुर) में एक छोटे सामन्त के रूप में राज्य करता था। सोसेवूरु की पहिचान मूडिगेरे तालुक के वर्तमान अंगडि नामक स्थान (बेलूर से लगभग 24 कि. मी० दूर)से की गई है। इस बात के अनेक प्रमाण शिलालेखों के रूप में मिले हैं कि अंगडि दसवीं शताब्दी के मध्य ही एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र था। श्रवणबेलगोल, मूडिगेरे, कलियूरु आदि अनेक स्थानों के शिलालेख इस स्थान और यहाँ पर राजवंश की स्थापना संबंधी घटनाओं की जानकारी देते हैं। उस समय यहाँ मकर जिनालय और पद्मावती देवी का विशाल मन्दिर था। इसके साथ ही आचार्य सुदत्त वर्धमान का विद्यापीठ था। सळ और उसके वंशज अपने आपको 'मलेपरोल गण्ड' (पहाड़ी सामन्तों में मुख्य) मानते थे। एक बार आचार्य उपदेश दे रहे थे कि एक सिंह वन में से आ गया और आचार्य के ऊपर झपटा। यह देख आचार्य ने अपनी मयूरपिच्छि सळ की ओर बढ़ाते हुए कहा, "पोय् सळ" (सळ, मारो)। सळ ने उसी पिच्छि से सिंह को मार भगाया। कहा जाता है कि जैन धर्म को सबल राज्याश्रय प्राप्त कराने और सळ में एक वीर या होनहार राजा के गुण देख आचार्य सुदत्त ने मंत्रों द्वारा देवी पद्मावती को वश में किया था और उसे ही एक सिंह के रूप में प्रकट किया था। शिला .ख का यह कथन कि आचार्य व्रत और मंत्रों की साधना पद्मावती के लिए कर रहे थे, उस समय को यक्षी की साधना की जाने की भी सूचना देता है। जो भी हो, आचार्य सळ की वीरता से प्रसन्न हुए और इन्होंने उसे एक नए राजवंश की स्थापना के लिए आशीर्वाद दिया। तभी से यह वंश पोय्सल या होय्सल कहलाने लगा और उसका राज्यचिह्न भी सिंह निर्धारित हुआ। यह जानकारी 1006 ई. के कलियूरु के होय्सल शिलालेख से प्राप्त होती है। आज अंगडि एक गाँव मात्र है किन्तु होय्सल-नरेशों की

कुलदेवी वासंतिका का मन्दिर अब भी है। यक्षी पद्मावती की कृपा से उस समय वसंत ऋतु हो गई थी और सळ ने 'वासन्तिका' देवी के नाम से ही उसका पूजन किया था।

महाराज सळ ने अपनी वीरता और योग्यता से चोल और कोंगाल्व राजाओं के कुछ प्रदेश छीनकर अपने राजवंश की नींव डाली। उसके पुत्र विनयादित्य प्रथम (1022-47 ई.) और पौत्र नृपकाम (1047-1060 ई.) ने भी अपनी शक्ति और राज्य का विस्तार किया। आचार्य सुदत्त उनका मार्गदर्शन करते रहे।

विनयादित्य द्वितीय इस वंश का चौथा शासक था। उसने 1060-1101 ई. तक राज्य किया। वह बड़ा उदार, पराक्रमी, दानी और धर्मात्मा राजा था। श्रवणबेलगोल के एक शिलालेख से स्पष्ट है कि अपने गुरु जैनाचार्य शान्तिदेव के उपदेश से उसने अनेक जिन-मन्दिरों, सरोवरों, ग्रामों, नगरों आदि का निर्माण कराया था। अंगडि में ही आचार्य शान्तिदेव ने 1062 ई. में समाधिमरण किया था। इस राजा ने मत्तावर नगर में एक नहर भी बनवाई। उसके पूर्ण होने पर जब वह 1069 ई. में उसका निरीक्षण करने गया तो वह पहाड़ी पर जिनेन्द्र भगवान के दर्शन के लिए भी गया। वहाँ के सेट्टियों से नगर में जिनालय के अभाव का कारण पूछा तो उन्होंने आर्थिक कठिनाई बताई। तब राजा ने स्वयं धन देकर, उन लोगों से भी दान दिलाकर वहाँ एक जिनमन्दिर का निर्माण करा दिया और उस स्थान का नाम 'ऋषिहल्लि' रख दिया। अपने जीवन के अन्तिम भाग में वह कुछ विरक्त-सा हो गया था और राज्य का काम युवराज त्रिभुवनमल्ल ऐरेयग देखता था। उसने भी जैनाचार्यों का सम्मान किया था और अनेक अनेक जैन बसदियों का उद्धार किया था। उससे एचलदेवी द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और शिव की तरह बल्लाल, विष्णु और उदयादित्य नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। एरेयंग की शीघ्र ही मृत्यु हो गई और उसके ज्येष्ठ पुत्र बल्लाल प्रथम ने 1101-1106 ई. तक राज्य किया। उसके धर्मगुरु चारुकीर्ति पण्डितदेव थे। एक बार बल्लाल एक सैन्य शिविर में किसी असाध्य रोग से पीड़ित हो गया तो चारुकीर्ति ने अपने औषधि-प्रयोग से उसे स्वस्थ कर दिया। उसने चंगाल्व नरेश को पराजित किया था। बल्लाल ने अपनी राजधानी अंगडि (शशकपुर) से हटाकर बेलूर में स्थापित की थी।

विष्णुवर्धन

विष्णुवर्धन (1106-1141 ई.) बल्लाल का छोटा भाई था। उसका वास्तविक नाम बिट्टिग या बिट्टिदेव था। यही राजा इतिहास में, विशेषकर मन्दिर-मूर्ति निर्माण-कला के इतिहास में, धार्मिक और राजनीतिक इतिहास में सबसे अधिक यशस्वी, बहुचर्चित और विवादास्पद व्यक्तित्व का शासक हुआ है। वह जैनधर्म का अनुयायी था। उसने अपने राज्य का खूब विस्तार किया और वही एक प्रकार से होय्सल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था। उसने तलकाड, कोंग, नंगलि, गंगवाडि, नोलम्बवाडि, मासवाडि, हुलिगेरे, हलसिगे, बनवासि हानुंगल पर अधिकार किया। अंग, कुंतल, मध्यदेश और कांची, विनीत तथा मदुरा भी उसके अधीन थे। सन् 1135 ई. में उसने राजधानी बेलूर से हटाकर द्वारसमुद्र (आज के हलेबिड) में स्थापित की। यह 1311 ई. या 1326 ई. तक होय्सल राजधानी बनी रही। (सन् 1310 ई. में अलाउद्दीन

खिलजी ने राजधानी को लूटा और नष्ट किया। तत्कालीन नरेश ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। उसके बाद मुहम्मद तुगलक ने 1326 ई. में आक्रमण कर इस राज्य का अन्त ही कर दिया।)

होय्सलनरेश बिट्टिग या बिट्टिदेव या विष्णुवर्धन का जीवन विवादास्पद है। एक मान्यता यह है कि (1) वह जैन था किन्तु रामानुज के प्रभाव से वैष्णव हो गया था। (2) दूसरा मत यह है कि वह जीवन भर जैन धर्म का ही अनुयायी बना रहा।

वैष्णव धर्म में दीक्षित होने के सम्बन्ध में बिट्टिदेव की स्थिति का परीक्षण डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने अपनी पुस्तक 'प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाएँ' (ज्ञानपीठ प्रकाशन) में तर्कसंगत ढंग से इसप्रकार किया है—"उत्तरकालीन वैष्णव किंवदन्तियों के आधार से आधुनिक इतिहास-पुस्तकों में यह लिखा पाया जाता है कि वैष्णवाचार्य रामानुज ने इस राजा के समक्ष जैनों को शास्त्रार्थ में पराजित करके राजा को वैष्णव बना लिया था, परिणामस्वरूप राजा ने अपना नाम विष्णुवर्धन रख लिया, जैनों पर अत्याचार किये, उनके गुरुओं को घानी में पिलवा दिया, श्रवणबेलगोल के बाहुबली की मूर्ति को तथा अनेक जैन मूर्तियों और मन्दिरों को तुड़वा दिया, उनके स्थान में वैष्णव मन्दिर बनवाये और वैष्णव धर्म के प्रचार को अपना प्रधान लक्ष्य बनवाया था। किन्तु यह सब कथन सर्वथा मिथ्या, अयथार्थ एवं भ्रमपूर्ण है। रामानुजाचार्य चोल राज्य के अन्तर्गत श्रीरंगम के निवासी विशिष्टाद्वैती दार्शनिक थे। उन्होंने श्रीवैष्णव मत के नाम से मध्यकालीन वैष्णव धर्म का आविर्भाव किया, उस मत के पुरस्कर्ता एवं समर्थ प्रचारक वह थे, इतना तो सत्य है। परन्तु वह स्वयं ही धार्मिक अत्याचार के शिकार थे। चोलनरेश अधिराजेन्द्र कट्टर शैव था। उसके पूर्वजों के समय में तो रामानुज जैसे-तैसे रहे किन्तु वह स्वयं इन पर अत्यन्त कुपित था और उसी के अत्याचारों से पीड़ित होकर रामानुज अपनी जन्मभूमि से किसी तरह प्राण बचाकर भागे थे। राज्य का उत्तराधिकारी कुलोत्तुंग चोल जैनधर्म का पोषक था। अतएव उसके समय में भी वह वापस स्वदेश न जा सके और घूमते-घूमते अन्ततः कर्णाटक में उन्होंने इस नवोदित एवं शक्तिशाली नरेश बिट्टिदेव (विष्णुवर्धन) की शरण ली। यह घटना 1116 ई. के लगभग की है। उस समय तक रामानुज पर्याप्त वृद्ध हो चुके थे। विष्णुवर्धन विद्वानों का आदर करनेवाला, उदार, सहिष्णु और समदर्शी नरेश था। उसने इन आचार्य को शरण दी, अभय और प्रश्रय भी दिया। सम्भव है कि उसकी राजसभा में कतिपय जैन विद्वानों के साथ रामानुज के शास्त्रार्थ भी हुए हों, इनकी विद्वत्ता से भी राजा प्रभावित हुआ हो, और इन्हें अपने राज्य में स्वमत का प्रचार करने की छूट भी उसने दे दी हो। एक-दो विष्णु मन्दिर भी राजधानी द्वारसमुद्र में उस काल में बने और उनके निर्माण में राजा ने भी द्रव्य आदि की सहायता दी हो, यह भी सम्भव है। यह सब होते हुए भी होय्सलनरेश ने न तो जैनधर्म का परित्याग ही किया, न उस पर से अपना संरक्षण और प्रश्रय ही उठाया और न वैष्णव धर्म को ही पूर्णतया अंगीकार किया—उसे राजधर्म घोषित करने का तो प्रश्न ही नहीं था। राजा का मूल कन्नडिग नाम बिट्टिग, बिट्टिदेव या बिट्टिवर्धन था जिसका संस्कृत रूप 'विष्णुवर्धन' था। यह नाम उसका प्रारम्भ से ही था, रामानुज के सम्पर्क या तथाकथित प्रभाव में आने के बहुत पहले से था, अन्यथा स्वयं जैन शिलालेखों में उसका उल्लेख इस नाम से न होता।"

अब हम यह देखें कि शिलालेखों और अन्य तथ्यों के प्रकाश में सच्चाई क्या है—

(1) डॉ. ज्योतिप्रसाद का यह कथन युक्तिसंगत जान पड़ता है कि यदि बिट्टिग या विष्णुवर्धन जैनधर्म द्वेषी हो गया होता तो जैन शिलालेख उसके नये नाम 'विष्णुवर्धन' का उल्लेख कदापि नहीं करते।

(2) श्रवणबेलगोल की बाहुबली मूर्ति आज भी ज्यों की त्यों खड़ी है। वह नष्ट नहीं हुई। उसका एक हज़ारवाँ प्रतिष्ठापना महोत्सव भी 1981 ई. में सम्पन्न हो चुका है।

(3) तिप्पूर (कुलगेटी प्रदेश) नामक गाँव के उत्तरपूर्व में पहाड़ी पर संस्कृत तथा कन्नड में 1117 ई. का जो शिलालेख है, उसमें जिन-शासन की प्रशंसा के बाद होय्सल राजाओं के वंश की प्रशंसा की गई है। बाद में यह उल्लेख है कि विष्णुवर्धन के सेनापति गंग ने तिप्पूर को चोल शासक से लड़कर छीन लिया और विष्णुवर्धन को सौंप दिया। राजा ने वर माँगने को कहा तो गंग ने तिप्पूर माँग लिया और मूलसंघ के मेघचन्द्र सिद्धान्तदेव को दान में दे दिया। इस शिलालेख में महामण्डलेश्वर द्वारावती-पुरवराधीश्वर विष्णवर्धन को 'सम्यक्त्व-चूडामणि' कहा गया है। (सन्दर्भ—जैनधर्म के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र)।

(4) चामराजनगर में पार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर के एक पाषाण पर 1117 ई. का ही एक शिलालेख है। इसमें भी विष्णुवर्धन को 'सम्यक्त्व-चूड़ामणि' कहा गया है। लेख के अनुसार इस राजा के दण्डनाथाधिपति पुणिस ने अरकोट्टार में अपने द्वारा बनवाई गई बसदियों के लिए भूमि-दान किया था।

(5) सन् 1121 ई. में विष्णुवर्धन ने हादिरवागिलु जैन बसदि के लिए दान दिया था।

(6) विष्णुवर्धन ने शल्यनगर (चामराजपट्टन तालुक) में एक जैनविहार बनवाया था। इसका उल्लेख शल्य से प्राप्त 1125 ई. के एक शिलालेख में है।

(7) होसहोल्लु (कृष्णराजपेट तालुक) में पार्श्वनाथ बसदि के दक्षिण की ओर के एक पाषाण पर 1125 ई. का एक शिलालेख है उसमें भी वीरगंग होय्सलदेव को 'सम्यक्त्व-चूडामणि' कहा गया है।

(8) डॉ. ज्योतिप्रसाद के अनुसार, विष्णुवर्धन ने 1121 ई. में बेलूर स्थित मल्लिनाथ जिनालय के लिए दान दिया था।

(9) विष्णुवर्धन की नई राजधानी द्वारावती (द्वारसमुद्र, आजकल के हलेबिड) में ही विजय-पार्श्वनाथ मन्दिर (हलेबिड से आधा कि. मी. दूर स्थित बस्तिहल्ली गाँव) की बाहर की दीवाल में एक पाषाण पर 1133 ई. का एक शिलालेख है जिसमें होय्सल नरेशों की वंशावली दी गई है और विष्णुवर्धन की विजयों की शृंखला का उल्लेख है। वहीं उसकी अनेक उपाधियों में एक उपाधि 'चतुस्समयसमुद्धरण' अर्थात् चतुर्विध संघ (मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) का उद्धार करनेवाला और 'शशकपुर-वासंतिकादेवी-लब्ध-वर-प्रसाद' है। और कहा गया है कि उसके 'जिनशासन-रक्षामणि' दण्डनायक गंगराज ने अनेक जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया था। उस गंग सेनापति और दण्डेश बोप्प ने दोरसमुद्र (बस्तिहल्ली) में 'विजय पार्श्वदेव' नामक जिनमन्दिर बनवाया था जो अब भी विद्यमान है। शिलालेख का कथन है कि द्रोहघरट्ट (पापनाशक) इस जिनालय की स्थापना के बाद, पुजारी प्रतिष्ठा के अवसर का पवित्र

गन्धोदक लेकर राजा विष्णुवर्धन के पास बंकापुर पहुँचा। यह राजा अपनी सेना सहित वहाँ पड़ाव डाले हुए था और उसने मसण नामक कदम्ब राजा पर विजय पाई थी। ठीक उसी समय उसे यह समाचार भी मिला कि उसकी एक रानी लक्ष्मीदेवी ने पुत्र को जन्म दिया है। पार्श्वनाथ मूर्ति की स्थापना, पुत्रप्राप्ति और युद्ध में विजय ये सब एक साथ होने से राजा आनन्दित हुआ। वह गन्धोदक लेने के लिए अपने सिंहासन से उठ खड़ा हुआ और उसे अपने मस्तक से लगाते हुए उसने कहा, "भगवान पार्श्वनाथ के ही कारण मैंने युद्ध में विजय प्राप्त की है और मुझे पुत्र की प्राप्ति हुई।" इसलिए उसने द्वारावती के पार्श्वनाथ जिनालय का नाम 'विजय-पार्श्वनाथ' और अपने पुत्र का नाम 'विजय नरसिंहदेव' रखा। साथ ही, उपर्युक्त जिनालय के लिए जावगल नामक एक गाँव और अन्य विविध प्रकार के दान दिए।

(10) सन् 1137 ई. के सौम्यनाथ जिनालय (बेलूर) की छत के पत्थर पर एक लेख है जिसका ऊपरी भाग नष्ट हो गया है। उसमें उल्लेख है कि विष्णुवर्धन के दण्डनायक बिट्टियण्ण ने द्वारसमुद्र में 'विष्णुवर्धन जिनालय' का निर्माण कराया था और स्वयं राजा से मरसेनाड में बीजेवोल्लदर नामक गाँव दान में प्राप्त किया था। इसमें भी विष्णुवर्धन को 'वासन्तिकादेवि-लब्धवरप्रसाद' कहा गया है। शेष बचे भाग में विष्णुवर्धन की विजयों का उल्लेख अधिक है।

(11) सन् 1138 ई. के सिन्दगेरे के शिलालेख में भी उसे 'सम्यक्त्वचूड़ामणि' बताया गया है।

(12) श्रवणबेलगोल के शिलालेखों में भी उसकी उपाधि'सम्यक्त्वचूड़ामणि' है। यह लेख विष्णुवर्धन की पट्टरानी शान्तला द्वारा निर्मित 'सवतिगन्धवारण बसदि' के दूसरे मण्डप के तीसरे स्तम्भ पर और जिननाथपुरम् में अरेगल बसदि के पूर्व की ओर है।

सन् 1141 ई. में विष्णुवर्धन का देहावसान हो गया।

(13) मूडबिद्री में प्राचीन जैन ग्रन्थ 'षट्खंडागम' की प्रसिद्ध 'धवला', 'जयधवला' और महाधवला' नामक टीकाएँ ताडपत्रों पर लिखी और कहीं-कहीं रंगीन चित्रों से सुसज्जित आज भी मौजूद हैं। उनमें विष्णुवर्धन और उसकी पट्टमहिषी शान्तला का 12वीं सदी का (उनके अपने समय का ही) चित्र आज भी देखा जा सकता है। यदि वह जैनधर्म का द्वेषी या विनाशकर्ता हो गया था तो उसका चित्र पवित्र एवं प्राचीन ग्रन्थ की पाण्डुलिपि में क्यों बनाया गया होता ? स्पष्ट है वह जैन ही था और जैन ही बना रहा।

चित्र में राजा और रानी दोनों को भक्ति-मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है (चित्र का ऊपर का कोना फट गया है)। इस ताडपत्रीय पाण्डुलिपि के चित्रों के बारे में सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता शिवराममूर्ति ने 'साऊथ : पेनोरमा ऑफ जैन आर्ट' में लिखा है कि ये चित्र विष्णुवर्धन के समय के ही हैं और उसकी पट्टरानी शान्तला की प्रेरणा से बनाए गए होंगे। उनका मत है : क्योंकि वही एक ऐसी कला-संयोजिका रानी थी जो सुन्दर से सुन्दर चित्र अपने समय के मूर्धन्य कलाकारों से निर्माण करवाती थी। महान विदुषी और कला-संवर्धिनी के रूप में उसकी ख्याति से वे सभी परिचित थे।

(14) बेलूर के चन्नकेशव मन्दिर के प्रसंग में पुरातत्त्ववेत्ता फर्ग्युसन का यह मत उद्धृत

किया जा चुका है कि बेलूर के उपर्युक्त मन्दिर का विमान शायद बाद की रचना है। इसी मन्दिर के स्तम्भों का विन्यास जैन मन्दिरों के स्तम्भों के विन्यास से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। जो भी हो, यह अनुसंधान का विषय है। यदि यहाँ का शिलालेख भी विष्णुवर्धन का है तो वह एक समदर्शी राजा अवश्य सिद्ध होता है, न कि जैन धर्म का कट्टर वैष्णवशत्रु। बेलूर के प्रसंग में यह उल्लेख किया जा चुका है कि इस शिलालेख में भी जैनों के अर्हन् का स्मरण किया गया है।

(15) विष्णुवर्धन की पटरानी शान्तला परम जिनभक्ता थी। उसने श्रवणबेलगोल में सवतिगंधवारण बसदि नामक एक सुन्दर जैन मन्दिर बनवाया था जो आज भी मौजूद है।

(16) होयसलनरेश विष्णुवर्धन की बड़ी पुत्री हरियब्बरसि या हरियलदेवी ने हन्तियूर (हन्तूरु) में एक जैन मन्दिर बनवाया था ऐसा हन्तूरु के एक ध्वस्त जिनालय के 1130 ई. के शिलालेख से ज्ञात होता है।

(17) महाराज विष्णुवर्धन के आठ दण्डनायक या सेनापति गंगराज, बोप्प, पुणिसमय्य, ऐचिराज, बलदेव, मरियाने, भरत और बिट्टियण्ग परम जिनभक्त थे। बोप्प निर्मित 'विजय-पार्श्व जिनालय' आज भी हलेबिड में मौजूद है।

(18) यह जैन अनुश्रुति भी है कि विष्णुवर्धन ने जैनों पर जो अत्याचार किए उनके कारण द्वारावती (हलेबिड) की धरती फट गई। राजा विष्णुवर्धन ने श्रवणबेलगोल के चारु-कीर्तिजी को बुलाया। उन्होंने मन्त्रसाधना की, तब कहीं शान्ति स्थापित हुई। लगता है कि यह भी कोई प्रचारित कहानी है। मूडबिद्री की पाण्डुलिपि के चित्र और अनेक शिलालेख 'सम्यक्त्व-चूडामणि' बिट्टिग या बिट्टिदेव या विष्णुवर्धन को एक जैनधर्म प्रतिपालक या कम-से-कम सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु या समदर्शी सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। यदि वह जैनधर्म द्वेषी और अत्याचारी हो गया होता तो हलेबिड में आज विजय-पार्श्वनाथ का जो मन्दिर है वह सबसे पहले खण्डहर हो गया होता। यह प्रश्न भी उठता है कि यदि वह कट्टर वैष्णव हो गया तो बेलूर में अत्यन्त सुन्दर चन्नकेशव (विष्णु) मन्दिर को छोड़कर अपनी राजधानी, 17 कि. मी. दूर, हलेबिड में क्यों ले जाता। वास्तव में, प्रमाणों के आधार पर इस विषय पर विचार होना चाहिए।

पटरानी शान्तला

विष्णुवर्धन की पटरानी का नाम शान्तला था। उसके पिता मारसिंगय्य कट्टर शैव थे और माता माचिकब्बे परम जिनभक्ता थी। (यह मात्र अनुश्रुति ही है कि इस महारानी का पति विष्णुवर्धन कट्टर वैष्णव था।) वह अनिंद्य सुन्दरी थी और नृत्य तथा गायन में भी अद्वितीय थी। उसकी इसी छबि को प्रदर्शित करनेवाले अनेक शिल्प हलेबिड और बेलूर में मिलते हैं।

महारानी शान्तला की विषम धार्मिक परिस्थिति और उससे निपटने की उसकी क्षमता अपूर्व थी। उसकी कहानी आज भी मन को छूती है। उसके जीवन को आधार बनाकर कन्नड़ के प्रसिद्ध लेखक श्री नागराज राव ने कन्नड में 'पट्टमहादेवी शान्तलदेवी' नामक ऐतिहासिक उपन्यास दो बड़े भागों में लिखा है। भारतीय ज्ञानपीठ ने उसके लेखक को 'मूर्तिदेवी पुरस्कार' से सम्मानित किया है और कन्नड उपन्यास का हिन्दी अनुवाद भी ज्ञानपीठ ने चार भागों में

80. मंगलोर—श्रीमन्तीबाई स्मारक संग्रहालय : तीर्थंकर पार्श्वनाथ की धातु-मूर्ति ।
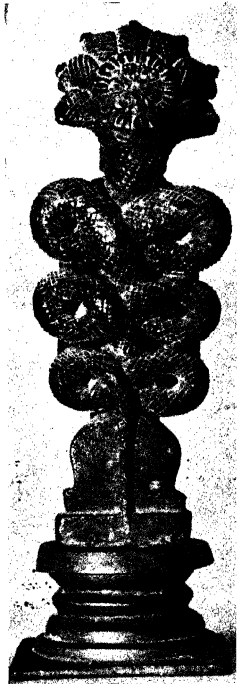
81. मंगलोर—श्रीमन्तीबाई स्मारक संग्रहालय : पार्श्वनाथ की धातुमूर्ति का पृष्ठभाग ।
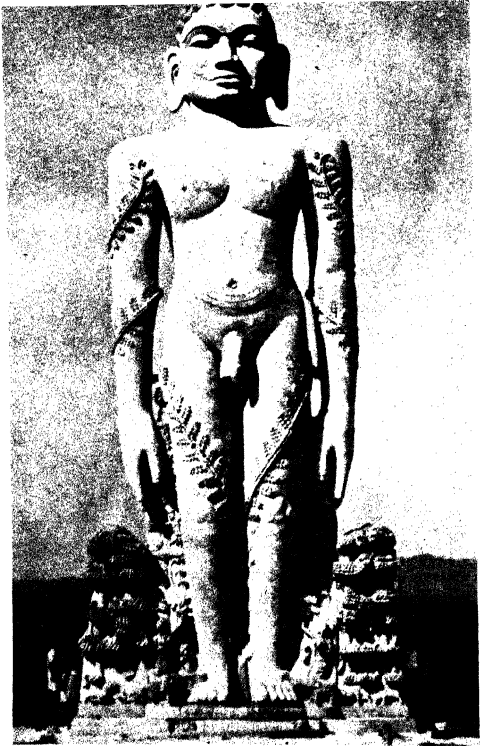
82. धर्मस्थल—भगवान बाहुबली की नवस्थापित 39 फीट उत्तुंग मूर्ति ।

83. धर्मस्थल—धर्माधिकारी के निवास-स्थान के मन्दिर में मूलनायक तीर्थंकर आदिनाथ तथा अन्य मूर्तियाँ ।
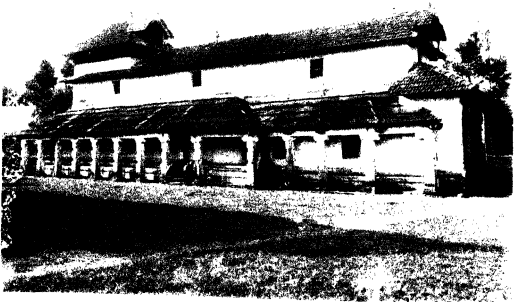
84. गुरुवायनकेरे—शान्तेश्वर बसदि का दक्षिण-पूर्व से बाह्य दृश्य।
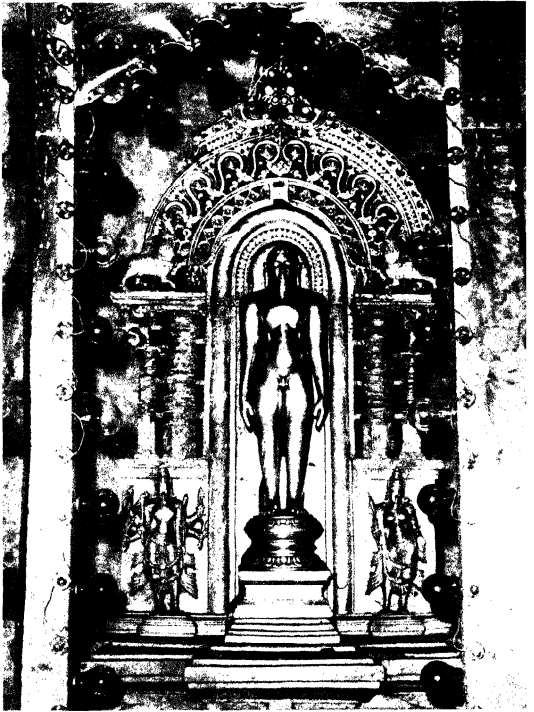
८५ गुरुवायनकेरे—अनन्तनाथ बसदि : तीर्थंकर अनन्तनाथ की धातुमूर्ति ।

86. गुरुवायनकेरे—शान्तेश्वर बसदि के सामने पंचकंबम् अर्थात् पांच स्तम्भों वाला मण्डप।
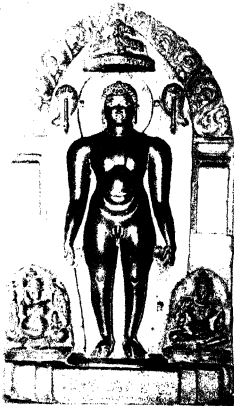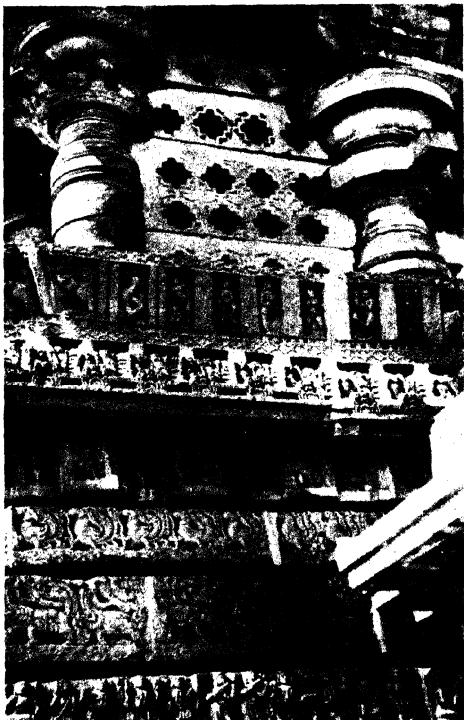
87. नेल्लिकर—पार्श्वनाथ बसदि : कायोत्सर्ग आसन में एक तीर्थंकर मूर्ति; चौदहवी शती।

88. हलेबिड—शान्तलेश्वर बसदि : नवरंग का एक दृश्य।
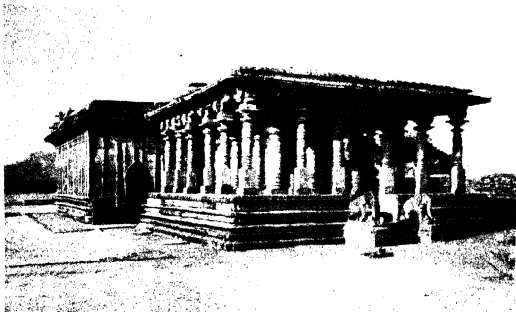
89. हलेबिड—होयसलेश्वर बसदि के सामने का दृश्य ।
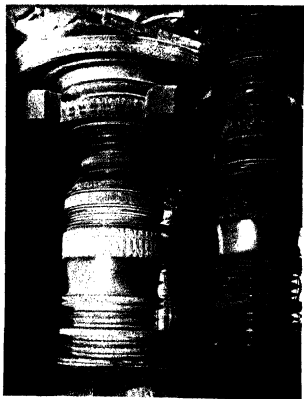
90. हलेबिड—होयसलेश्वर बसदि के कलापूर्ण स्तम्भ ।

प्रकाशित किया है। उपन्यास का मुख्य स्वर यह है कि वह एक कुशल प्रशासिका थी और परम जैन होते हुए भी पक्षपात रहित या धर्मनिरपेक्ष थी। जो भी हो, पटरानी शान्तला की यशोगाथा आज भी गूँजती है। उसी की प्रेरणा से एक गाँव शान्तिग्राम बसाया गया था। यह गाँव बंगलोर मार्ग पर हासन से 12 कि. मी. की दूरी पर है। वहाँ आज भी शान्तिनाथ बसदि है।

पटरानी शान्तला के धर्मगुरु प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव थे। रानी ने श्रवणबेलगोल में एक सुन्दर जिनमन्दिर का निर्माण कराकर अपने पति की अनुमति से एक गाँव और विभिन्न दान दिए थे। यह मन्दिर 'सवतिगन्धवारण बसदि' कहलाता है। वास्तव में यह एक विशेषण है जो उसके द्वारा निर्मित बसदि के पूर्व की ओर एक लम्बे शिलालेख में उत्कीर्ण है जिसमें शान्तला द्वारा यह बसदि बनवाने और उसके लिए एक तालाब का निर्माण कराने तथा एक गाँव अपने गुरु प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव को दान करने का विवरण है। इस लेख में उसे 'उद्‌वृत्तसवति-गन्धवारण' अर्थात् 'उच्छृंखल सौतों (सवति) को वश में करने के लिए मत्त हाथी के समान' कहा गया है। तात्पर्य यह कि वह अपनी सौतों को नियन्त्रण में रखती थी। उसके इस विशेषण के कारण इस मन्दिर का नाम भी 'सवतिगन्धवारण बसदि' पड़ गया। महारानी ने 1121 ई. में इसी जिनालय में भगवान शान्तिनाथ की पाँच फुट ऊँची प्रतिमा भी स्थापित करायी थी। शिलालेख में उसके कुछ अन्य विशेषण इस प्रकार हैं—द्वितीय लक्ष्मी के समान, अभिनव रुक्मिणी, पतिहित में सत्यभामा, विवेक बृहस्पति, प्रत्युत्पन्नमति (तुरन्त निर्णय करनेवाली), मुनियों का का आदर करनेवाली, सीता के समान पतिव्रता, सम्यक्त्वचूड़ामणि, चतुर्विध संघ की उन्नति करनेवाली, अपने कुल के अभ्युदय के लिए दीपक के समान, गीतवाद्यनृत्य की सूत्रधार, जिन-मत की प्रचारक और आहार-अभय-औषध-शास्त्र इन चार प्रकार के दानों में आनन्द लेने वाली।

उपर्युक्त बसदि के दूसरे मण्डप के तीसरे स्तम्भ पर एक विस्तृत शिलालेख और भी है जिसमें पट्टमहिषी शान्तला और श्रवणबेलगोल में उसकी माता माचिकब्बे द्वारा सल्लेखना ग्रहण करने का विवरण है। इस लेख में शान्तला के कुछ और गुण गिनाए गए हैं; जैसे—व्रतगुणशील-चारित्र से युक्त अन्तःकरणवाली, लोक में विख्यात, पुण्य का उपार्जन करने में कारण, जिन-धर्मकथा में आनन्द अनुभव करनेवाली, भव्यजनवत्सला, जिनगन्धोदक से पवित्र अंगों वाली आदि। इस धर्मवत्सला महारानी ने सन् 1131 ई. में शिवगंग नामक स्थान पर अपने गुरु की उपस्थिति में समाधिमरण किया। इस प्रकार पटरानी शान्तला अपना नाम अमर कर गई।

कर्नाटक सरकार द्वारा प्रकाशित राज्य के गज़ेटियर (खण्ड दो, 1983) में देवी शान्तला को कर्नाटक संस्कृति के महान आदर्शों की प्रतीक और उसके जीवन को उस राज्य के सांस्कृतिक इतिहास में धार्मिक मेल-मिलाप का मूलस्वर कहा गया है। उद्धरण इस प्रकार है: "Shantala, the queen of Vishnuvardhana was the symbol of all that was great in Karnataka culture. Her mother was Jaina, her father a Shaiva, and her husband a Vaishnava. This religious harmony has been the keynote of Karnataka culture throughout its history."

पुत्री-वियोग को सहने में असमर्थ उसकी माता माचिकब्बे ने भी श्रवणबेलगोल में एक मास का व्रत लेकर सल्लेखना ग्रहण की। इस तथ्य का भी उल्लेख उपर्युक्त शिलालेख में किया गया है।

इतिहास प्रसिद्ध नृपदम्पती विष्णुवर्धन और शान्तला के निधन के बाद, विजय नरसिंह-देव (1149 से 1173 ई.) इस राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। वह विष्णुवर्धन की लक्ष्मी नामक रानी का पुत्र था। वह अभिषेक के समय केवल आठ वर्ष का था। किन्तु उसके पिता के जैन सेनापति और मन्त्री उसके संरक्षक रहे। उसके सामन्तों, सेनापतियों एवं अन्य अधिकारियों के जैनधर्म सम्बन्धी आठ-दस लेख प्राप्त हुए हैं। श्रवणबेलगोल की भण्डारि वसदि में पश्चिम की ओर एक शिलालेख है जिसमें कहा गया है कि नरसिंह के मन्त्री हुल्ल ने अनेक मन्दिरों का निर्माण-जीर्णोद्धार कराने के अतिरिक्त श्रवणबेलगोल में भी 'चतुर्विंशति तीर्थंकर जिनालय' बनवाया था। एक बार नरसिंह वहाँ आया और उसने इस जिनमन्दिर का नाम 'भव्यचूडामणि' रखा तथा मन्दिर के पूजन, जीर्णोद्धार आदि के लिए 'सवणेरु' नामक गाँव दान में दिया।

नारसिंह के बाद, बल्लाल द्वितीय (1173-1220 ई.) होय्सल राज्य का शासक हुआ। डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन के अनुसार "वह अपने पितामह विष्णुवर्धन की भाँति ही प्रतापी, बड़ा वीर, महापराक्रमी, भारी विजेता और स्याद्वादमत (जैनधर्म) का पोषक एवं पक्षपाती था।" उसने अपने पिता के मन्त्री हुल्ल के निवेदन पर श्रवणबेलगोल की उपर्युक्त बसदि के लिए 1175 ई. में दो गाँव दान किये थे। इसी प्रकार वहाँ की पार्श्वनाथ बसदि के लिए भी दान दिया। 1192 ई. में द्वारावती के धनी व्यक्तियों एवं नागरिकों ने 'अभिनव शान्तिदेव' या नगर-जिनालय नामक मन्दिर बनवाया। राजा स्वयं उसमें गया और उसने कई ग्राम दान में दिए। उसके समय में कन्नड़ भाषा में विपुल जैन साहित्य भी रचा गया जिसमें प्रमुख हैं—'यशोधरचरित्र' 'अंजना-चरित', हरिवंशाभ्युदय', 'जीवसम्बोधन' आदि। उसके नगराध्यक्ष नागदेव, सेनापति भरत और बाहुबली, दण्डाधिप बूचिराज, दण्डनायक महादेव आदि अनेक जिनभक्त पदाधिकारी थे, जिन्होंने अनेक प्रकार के दान दिए थे।

वीरबल्लाल के बाद उसके पुत्र नरसिंह द्वितीय ने पाँच वर्ष राज्य किया। उसके बाद सोमेश्वर (1225-1245 ई.) ने शासन संभाला। मल्लकेरे ग्राम में, ईश्वर मन्दिर के सामने के शिलालेख से ज्ञात होता है कि इस राजा की भी एक उपाधि 'सम्यक्त्वचूडामणि' थी। उसके सेनापति 'शान्त' ने शान्तिनाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने यह भी लिखा है कि "उसकी अनुमति से उसके मन्त्री रामदेव नायक द्वारा एक व्यवस्थापत्र तैयार किया गया था, जिसके अनुसार श्रवणबेलगोल के भीतर राजकरों आदि पर सम्पूर्ण अधिकार वहाँ के जैनाचार्य को था। वहाँ व्यापारी भी प्रायः सब जैन ही थे। उनकी भी उक्त शासन में पूर्ण सहमति थी।"

नरसिंह तृतीय (1254-1291 ई.) होय्सल साम्राज्य के एक भाग का राजा हुआ। दूसरे भाग पर रामनाथ (1254-1297 ई.) का शासन रहा। दो रानियों के दो पुत्रों के कारण राज्य-विभाजन हुआ।

सन् 1254 में नरसिंह तृतीय ने राजधानी के 'विजयपार्श्वनाथ' मन्दिर के दर्शन कर पहले से चले आए दान पर स्वीकृति दी और स्वयं भी एक ग्राम दान में दिया। सन् 1265 में उसने राजधानी के शान्तिनाथ जिनालय के लिए अपने गुरु माघनन्दि को 15 गाँव दान में दिए। उसके दण्डनायक सोमय्य ने 1271 ई. में एक प्राचीन बसदि का जीर्णोद्धार कराया था। माधव नामक

एक अन्य दण्डनायक ने कोप्पण में एक नवीन जिन-प्रतिमा स्थापित कराई थी। इस राजा के प्रश्रय में कुमदेन्दु ने 1275 ई. में कन्नड़ में जैन रामायण की रचना की थी।

रामनाथ होय्सल (1254-1297 ई.) ने कन्ननूर (विक्रमपुर) को अपनी राजधानी बनाया। उसने 1276 ई. में कोगलि में 'चेन्न पार्श्व-रामनाथ बसदि' का निर्माण कराया था। कोल्हापुर के 'सामन्त जिनालय' को भी उसने दान दिया था।

अन्तिम होय्सलनरेश बल्लाल तृतीय (1291-1333 ई.) ने, डॉ. सालेनोर के अनुसार, जैनधर्म को संरक्षण प्रदान किया था। इस नरेश का पूरा जीवन अपने राज्य की रक्षा में बीता। "इस वीर बल्लाल के शासनकाल में भी जैनधर्म ही कर्नाटक देश का सर्वोपरि एवं प्रधान धर्म था, और यह राजा भी उसका पोषक और संरक्षक यथासम्भव रहा।" (डॉ. ज्योतिप्रसाद) उसके समय में 1310 ई. में अलाउद्दीन खिलजी ने द्वारसमुद्र पर आक्रमण किया और उसे लूटा। राजा ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली, किन्तु बाद में मुकर गया। उसके बाद 1326 ई. में मुहम्मद तुगलक ने भीषण आक्रमण कर इस होय्सल राज्य का अन्त ही कर दिया। सन् 1333 ई. में इस नरेश की मृत्यु हो गई। वह अपने राज्य की रक्षा का भार कुछ ऐसे व्यक्तियों को सौंप गया जिनके हाथों विजयनगर साम्राज्य की नींव पड़ी।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि बिट्टिदेव या विष्णुवर्धन सहित उसके बाद के सभी होय्सलनरेश जैनधर्म के पोषक थे। प्रायः सभी का उपाधि 'सम्यक्त्वचूडामणि' थी।

मन्दिरों की ओर

होय्सलेश्वर मन्दिर—हलेबिड गाँव में जिस तिराहे पर सरकारी बसें या मेटाडोर रुकती हैं (कोई शेड नहीं है) वहाँ से एक सड़क कुछ ऊपर उठती जाती है और करीब एक-दो फर्लांग चलने पर जहाँ फिर एक तिराहा बनाती है वहीं सामने है होय्सल कला का एक उत्कृष्ट नमूना 'होय्सलेश्वर मन्दिर' (शिव को समर्पित)। इसी मन्दिर के अहाते में है खुले आकाश-तले एक संग्रहालय जिसमें उत्तुंग और कलात्मक जैन मूर्तियाँ भी हैं। मन्दिर के विशाल अहाते में पुरातत्त्व विभाग का सुन्दर उद्यान है। (होय्सलेश्वर मन्दिर के ठीक सामने है कर्नाटक सरकार का टूरिस्ट बंगला जहाँ कम दरों पर ठहरने की अच्छी सुविधा है। जैन पर्यटकों को यहीं ठहरना चाहिए, क्योंकि यहाँ का उपर्युक्त मन्दिर और जैन मन्दिरों एवं सग्रहालय देखने के लिए कम-से-कम सात-आठ घण्टों का समय आवश्यक है। जैन मन्दिरों के दर्शन के लिए सुबह पहुँचना चाहिए और अर्चक (पुजारी) की सहायता से देखना चाहिए। उसे अपने घर से भी ताला खोलने के लिए बुलाना सम्भव हो सकता है।)

'होय्सलेश्वर मन्दिर' के सामने तिराहे पर अंग्रेजी में लिखा है "Visit Famous Ancient Jain Temple" और उसी के नीचे नागरी में भी लिखा है "सन्दर्षन प्रेक्षक्षीय जैन मन्दिर" (जो वहाँ लिखा है वैसा ही प्रस्तुत लेखक ने लिख दिया है)। टूरिस्ट बसें प्रायः इन मन्दिरों को नहीं दिखाती हैं। यहाँ के टूरिस्ट बंगले में भी लोग कम ही ठहरते हैं। जो भी हो, टूरिस्ट बंगले के सामने की सड़क पर डेढ़ फर्लांग की दूरी पर, एक गाँव बस्तिहल्ली है। वहाँ सार्वजनिक निर्माण विभाग ने लिख रखा है "Jain Temple—Kedareshwar Temple" इसी स्थान के बाईं ओर जैन

मन्दिरों का विशाल अहाता है। केदारेश्वर मन्दिर शिव मन्दिर है।

अनुश्रुति है कि होय्सल राजधानी में कुल 120 जैन मन्दिर थे किन्तु अब यहाँ केवल तीन मन्दिर बचे हैं जो कि एक ही प्रांगण में हैं। ये मन्दिर भारतीय पुरातत्त्व विभाग के अधीन संरक्षित स्मारक हैं। इनमें अब भी पूजन होती है। अब यहाँ केवल दो जैन परिवार हैं। मन्दिर देखने का समय सुबह आठ बजे से शाम के छह बजे तक है।

मन्दिरों के प्रांगण की प्रवेश-सीढ़ियों के पास ही ढाई फुट के लगभग एक शिलालेख कन्नड़ में है। उसमें सबसे ऊपर छत्रत्रयी से युक्त पद्मासन तीर्थंकर, दो चँवरधारी, सूर्य-चन्द्र हैं। एक ओर हाथी अंकित है तो दूसरी ओर बछड़े को दूध पिलाती गाय। स्पष्ट है कि यह स्मारक है।

सीढ़ियों के दोनों ओर लगभग दो फुट ऊँचे हाथी बने हैं। उनके गले में मोतियों की माला हैं और पीठ पर भी मोतियों की झूल है। उनकी सूंड में कमल है तो पैरों के बीच में बड़ा कमल।

प्रांगण में प्रवेशद्वार के बाद मन्दिर की ओर मुँह किए दो हाथी सुन्दर ढंग से उत्कीर्ण हैं।

पार्श्वनाथ मन्दिर के मुखमण्डप की प्रवेश-सीढ़ियों के जँगलों के रूप में दो हाथी गहनों और मालाओं से मनोहर रूप में अंकित किए गए हैं। ऐसा लगता है कि वे अभी दौड़ने ही वाले हों, उनके पैरों का अंकन इसी प्रकार किया गया है।

(1) विजय पार्श्वनाथ बसदि—यह यहाँ का सबसे बड़ा जैन मन्दिर है। उसके सामने बलिपीठ भी है। बाहर क्षेत्रपाल भी हैं। इसके मुखमण्डप में 32 स्तम्भ हैं जिनके सूक्ष्म वलय मनोहर हैं। उन पर मौक्तिक मालाओं और पत्रावलि का सुन्दर अंकन किया गया है। मुखमण्डप की छत में पुष्परचना और उसके बाद धरणेन्द्र यक्ष का उत्कीर्णन है। मुखमण्डप के बाद या मन्दिर के बाहर चार शिलालेख हैं। इनमें से एक बारह फुट ऊँचा है। उसमें सबसे ऊपर भगवान महावीर विराजमान हैं। उनके आसन पर सिंह का चिह्न है। छत्रत्रयी और चँवरधारी भी प्रदर्शित हैं। एक ओर गाय प्रदर्शित है। सूर्य-चन्द्र और कीर्तिमुख तथा कन्नड़ में लेख है। इसमें मन्दिर के निर्माण का इतिहास है। होय्सल वंश की वंशावली देकर यह उल्लेख है कि राजा विष्णुवर्धन के सेनापति बोप्प ने 1133 ई. में इसका निर्माण कराया था और जब इसकी प्रतिष्ठा का गंधोदक लेकर पुजारी बंकापुर विष्णुवर्धन के पास पहुँचा तो उसने उसे मस्तक से लगाया और युद्ध में उसी समय हुई अपनी विजय का कारण पार्श्वनाथ को मान इस मन्दिर का नाम 'विजय-पार्श्वनाथ' रखा। उसे उसी समय पुत्र-प्राप्ति का भी समाचार मिला था। उसने अपने पुत्र का नाम भी विजय नरसिंह रखा और यह सब पार्श्वनाथ की प्रतिष्ठापना का फल समझा। उसने मन्दिर के लिए जावगल नामक गाँव दान में भी दिया। अन्य शिलालेखों (प्रांगण के भी) का सार मन्दिरों के वर्णन के बाद दिया जाएगा।

'विजय-पार्श्वनाथ' मन्दिर के प्रवेशद्वार के सिरदल पर पद्मासन में महावीर स्वामी विराजमान हैं। उनके आसपास चँवरधारी भी हैं। द्वार के आसपास के स्तम्भ सुन्दर ढंग से उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह से पहले भी एक विशाल द्वार है। उसके सिरदल पर भी पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है। मूलनायक पार्श्वनाथ हैं। उनकी सफेद ग्रेनाइट पत्थर की चौदह फुट ऊँची कायोत्सर्ग मुद्रा में मूर्ति पर सात फणों की छाया है। छत्र एक ही है और मकर-तोरण की संयोजना है। वे उलटे कमलासन पर प्रतिष्ठित हैं। उनके घुटनों के पास धरणेन्द्र और पद्मावती का अंकन है।

सर्पकुण्डली पैरों तक प्रदर्शित है। मूर्ति का एक हाथ कुछ खण्डित लगता है (यह 1133 ई. की मूर्ति है)। गर्भगृह में कुछ नागफलक हैं। पार्श्वनाथ की ही सात फणों, मकर-तोरण, यक्ष-यक्षी और चँवर के चिह्नों से सज्जित एक मूर्ति और है। गर्भगृह की छत पर कमल का अंकन है।

गर्भगृह से बाहर के प्रकोष्ठ में या नवरंग में दाहिनी ओर ब्रह्म यक्ष की मूर्ति है जिसका मुकुट ऊँचा है। यक्ष के दो हाथों में नारियल और गदा है। बाईं ओर कूष्माण्डिनी देवी द्राक्ष-लता से संयुक्त है। देवी के हाथों में सामान्य पदार्थ हैं। एक हाथ खण्डित है।

'विजय पार्श्वनाथ' बसदि में छत की कारीगरी भी देखने योग्य है। छत में चार स्तर हैं। पहले स्तर में आठ दिक्पाल उत्कीर्ण किए गए हैं। दूसरे और तीसरे में चौबीस तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं। दूसरे स्तर में केवल आठ तीर्थंकर हैं और तीसरे में सोलह, इस प्रकार कुल मिलाकर चौबीस तीर्थंकर हो जाते हैं। सभी तीर्थंकरों के आसपास यक्ष-यक्षी और भक्तजन उत्कीर्ण हैं। सबसे ऊपर पाँच फणों से युक्त धरणेन्द्र का उत्कीर्णन है। एक ओर चार हरिण और मुनि का केश-लोंच दिखाया गया है तो दूसरी ओर एक स्त्री नृत्य कर रही है, उसके आसपास वादकवृन्द है। इसी प्रकार युद्ध के लिए समुद्धत हाथी-घोड़े और समुद्र में देवता प्रदर्शित हैं।

उपर्युक्त मन्दिर में आठ देव-कुलिकाएँ या देवकोष्ठ हैं—मूर्ति के दोनों ओर तीन-तीन तथा प्रवेशद्वार के आसपास दो। इन पर द्रविड शैली के शिखर अनेक स्तरों वाले हैं किन्तु सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर भी उत्कीर्ण हैं।

कसौटी पाषाण के अद्भुत स्तम्भ—प्रवेश करने पर जो हॉल आता है वह नवरंग है। उसमें उत्तम पॉलिश वाले कसौटी पाषाण के चौदह स्तम्भ हैं। स्तम्भों की सामान्य विशेषताएँ हैं: (1) पतली-पतली मौक्तिक मालाएँ—सूक्ष्म कारीगरी का नमूना, (2) करीब डेढ़ इंच की पट्टी में पुष्पावलि—बारीकी देखने लायक, (3) लगभग तीन इंच के गोल घेरों में आकृतियाँ और (4) स्तम्भों के वलय इतने पतले और गोल मानों चूड़ियाँ पिरो दी हों। वैसे स्तम्भ पाँच भागों में संयोजित हैं। उनके नीचे के भागों में नर्तक, वादक और देवियाँ उत्कीर्ण हैं। बारह स्तम्भों पर उत्तम तथा पूरा पॉलिश है। उनमें हमारा प्रतिबिम्ब दिखता है। कुछेक स्तम्भों का परिचय इस प्रकार है—(1) प्रवेशद्वार के पास दाहिनी ओर खड़े होकर यदि हाथ ऊपर किए जाएँ तो सामने वाले स्तम्भ में हाथ दिखाई देते हैं। (2) उसके पास के स्तम्भ में पूरा शरीर दिखाई देता है, हाथ अलग दिखते हैं। (3) बाईं ओर चौथी पंक्ति के दूसरे स्तम्भ में हाथ दोनों तरफ दिखाई देते हैं। अर्थात् ऊपर और नीचे दोनों ओर हाथ दिखाई देते हैं। (4) स्तम्भों के नीचे के चौकोर भाग को बजाने से संगीत की ध्वनि निकलती है। यहाँ तक कि पेन्सिल छुआ देने से भी मधुर ध्वनि आती है। (5) स्तम्भों के गोल या छल्लेवाले भाग को दो अंगुलियों से बजाने पर भी संगीतमय ध्वनि निकलती है। कुल 12 स्तम्भों से संगीत की ध्वनि उत्पन्न होती है।

उपर्युक्त मन्दिर में फूल इकट्ठा करती एक शालभंजिका या सुन्दरी भी उत्कीर्ण है। उसके वस्त्रों का सूक्ष्म अंकन देखने लायक है।

'विजय पार्श्वनाथ बसदि' का शिखर नहीं है। गर्भगृह के बाहरी भाग पर द्रविड़ शैली का उत्कीर्णन है।

प्रबलित पाषाण (reinforced) का प्रयोग भी इसकी एक विशेषता है। ऐसा लगता है कि

मन्दिर के निर्माण में मसाले का प्रयोग नहीं किया गया है। इसके पाषाण 26 स्थानों पर अन्दर-बाहर लोहे की पत्तियों से जोड़े गये हैं। यह तथ्य मन्दिर के बाईं ओर की दीवाल में लगभग दो फुट के अन्तर पर देखा जा सकता है। वहाँ पाषाणों के बीच में लोहे की पत्ती दिखाई देती है।

(2) प्राचीन आदिनाथ मन्दिर—यह पार्श्व बसदि के पास एक छोटा मन्दिर है। दक्षिणी विमान शैली में बना है। प्रवेशद्वार के दोनों ओर हाथी उत्कीर्ण हैं। एक विमान में महावीर स्वामी पद्मासन में विराजमान हैं। उससे ऊपर मन्दिर सम्बन्धी शिलालेख है जो बाद में लगाया जान पड़ता है। मन्दिर के प्रवेशद्वार के सिरदल पर पद्मासन में महावीर चँवरधारी से संयुक्त हैं। ऊपर शिखरयुक्त विमान जान पड़ता है। द्वार की चौखट पर पत्रावली का भी सुन्दर अंकन है। नीचे स्तम्भयुक्त चाप से अलंकृत द्वारपाल प्रदर्शित हैं। मन्दिर के मूलनायक तीर्थंकर ऋषभदेव हैं। उनकी पाषाण-निर्मित प्रतिमा लगभग दो फुट की, छत्रत्रयी और मकर-तोरण से युक्त है। उनके एक ओर गोमुख यक्ष और यक्षी चक्रेश्वरी हैं। आसन पर सिंह का चिह्न है। उसके दोनों कोनों पर अलंकृत हाथी हैं। वास्तव में, गर्भगृह में महावीर स्वामी की पद्मासन मूर्ति थी जो खण्डित हो गई। वह अब भी शान्तिनाथ मन्दिर में रखी है। इसलिए आदिनाथ की मूर्ति महावीर स्वामी के आसन पर विराजमान कर दी गई है।

सभामण्डप में दाहिनी ओर कमलासन पर गणधर के चरण हैं। बाईं ओर के आसन पर चन्द्रनाथस्वामी की मूर्ति थी, लेकिन वह खण्डित हो गई, इस कारण सरस्वती प्रतिष्ठापित कर दी गई। मन्दिर के चार स्तम्भों पर सुन्दर नक्काशी है। सभामण्डप की छत में बीच में कमल का फूल उत्कीर्ण है। दो स्तरों में जो कोण बनाए गए हैं उनमें पद्मासन में तीर्थंकर अंकित हैं। मन्दिर का शिखर नहीं है। इसका निर्माणकाल 1130 ई. है।

(3) अद्वितीय कसौटी पाषाण के स्तम्भों वाला शान्तिनाथ मन्दिर—इस मन्दिर के सामने लगभग तीस फुट ऊँचा एक मानस्तम्भ है। उसके शीर्ष पर एक सुसज्जित अश्व पूर्व की ओर उछाल भरता अंकित है। स्तम्भ में नीचे यक्ष और एक अश्व भी उत्कीर्ण हैं। बसदि के प्रवेश-द्वार लगभग चार मीटर ऊँचे हैं। मुखमण्डप में स्तम्भों की संयोजना है। ऊँचे द्वार के सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर छत्र और चँवरधारी से युक्त हैं।

गर्भगृह में मूलनायक शान्तिनाथ की 16 फुट ऊँची काले पाषाण की कायोत्सर्ग मुद्रा में भव्य प्रतिमा है।

मूर्ति पर छत्र है और मस्तक के पास चँवर का अंकन है। श्वेत मकर-तोरण की भी संयोजना है। उनके आस-पास यक्ष किम्पुरुष और यक्षी महामानसी की चार फुट ऊँची मूर्तियाँ हैं। विशाल प्रतिमा के अभिषेक के लिए पहले से ही सीढ़ियाँ निर्मित हैं। मूर्ति के सामने पाषाण की ही लगभग दो फुट ऊँची मकर-तोरणयुक्त एक और प्रतिमा भी स्थापित है। यहाँ पर महावीर की खण्डित पद्मासन मूर्ति भी सुरक्षित रखी गई है।

शान्तिनाथ मन्दिर में भी, उसके नवरंग (देखें चित्र क्र. 88) में कसौटी पाषाण के बारह स्तम्भ हैं। उनमें से प्रत्येक में प्रतिबिम्ब की व्यवस्था है। एक-दो अद्भुत उदाहरण हैं—(1) शरीर साँप जैसा—इस नवरंग में दाहिनी ओर की अन्तिम पंक्ति के दूसरे स्तम्भ के सामने यदि हाथ ऊँचे किए जाएँ तो स्तम्भ में दो शरीर और साँप जैसी आकृति दिखाई देती है। (2) केंकड़े जैसी

आकृति—इसी प्रकार पहली पंक्ति के दूसरे स्तम्भ के पास खड़े होकर हाथ ऊँचे करने से दो हाथ दिखाई देते हैं और पानी में केंकड़े जैसी आकृति बनती है। (3) नवरंग में बीच में खड़े होने पर प्रथम पंक्ति के अंतिम स्तम्भ के सामने खड़े होकर देखने से कपड़े का रंग दिखता है। प्रतिबिम्ब (reflection) की ऐसी अनूठी व्यवस्था तो बेलूर और हलेबिड के कलापूर्ण मन्दिरों में भी संभवतः नहीं है। यह दुर्लभ शिल्प इन मन्दिरों की बहुत बड़ी विशेषता है।

मन्दिरों के प्रांगण में एक पुरानी बावड़ी है जोकि लगभग 70 फुट गहरी है।

यहाँ के मन्दिरों के कुछ प्रमुख शिलालेखों का सार

परम धार्मिक सहिष्णुता का शिलालेख—पार्श्वनाथ बसदि के प्रांगण में संस्कृत और कन्नड़ में 1638 ई. का एक शिलालेख है। इसके मंगलाचरण में जिनेन्द्र भगवान के स्तवन के बाद शम्भु को नमस्कार किया गया है। इसमें यह उल्लेख है कि जिस समय वेंकटाद्रि नामक आर्य बेलूर की रक्षा कर रहा था, उस समय हुच्चप्पदेव नामक व्यक्ति ने हलेबिड के 'विजय पार्श्वनाथ बसदि' के स्तम्भों पर लिंगमुद्रा लगा दी। विजयप्प ने उसको तोड़ दिया। इस पर हलेबिड के महा-मत्तुओं ने मिलकर यह आदेश जारी किया कि चन्द्र-सूर्य के स्थायी रहने तक जैन लोग अपनी सभी धार्मिक विधि कर सकेंगे। इस प्रकार शैवों और जैनों की सहिष्णुता का उद्घोषक है यह शिलालेख।

शान्तिनाथ की प्रतिमा बाहर निकालें—विजय पार्श्वनाथ मन्दिर के बाहर की दीवाल के एक स्तम्भ पर लगभग 1300 ई. का एक कन्नड़ लेख है। उसमें यह सूचना है कि ईशान दिशा से प्रारम्भ करके, (ईशान से) पन्द्रह बिलस्त के अन्तर पर शान्तिनाथ देव, जिनकी ऊँचाई छह बिलस्त है, जमीन के अन्दर गड़े हुए हैं। कोई पुण्य पुरुष उनको बाहर निकालकर उनकी प्रतिष्ठा कराके पुण्य का उपार्जन करे।

आदिनाथ मन्दिर का शिलालेख यह सूचित करया है कि 1274 ई. में बालचन्द्र पण्डितदेव (सारचतुष्टय आदि ग्रन्थों के टीकाकार) ने सल्लेखना धारण कर ली थी और यहाँ के भव्यों ने उनकी तथा पंचपरमेश्वर की मूर्ति प्रतिष्ठापित की थी।

शान्तीश्वर मन्दिर के शिलालेख में बालचन्द्र के श्रुतगुरु अभयचन्द्र की सल्लेखना का उल्लेख है।

सन् 1117 ई. में विजय-पार्श्व मन्दिर की प्रतिष्ठा और विष्णुवर्धन द्वारा बंकापुर में गन्धोदक ग्रहण सम्बन्धी एक शिलालेख पार्श्वनाथ बसदि के बाहर है।

उपर्युक्त बसदि में ही 1255 ई. का शिलालेख है जिसमें होय्सलनरेश वीर नरसिंह ने यहाँ के शिलालेख में अपनी वंशावली पढ़ी और यहाँ की चहारदीवारी सुधरवा दी तथा अन्य दान भी विजयपार्श्वदेव को अर्पित किए।

यहीं के 1196 ई. के एक शिलालेख में उल्लेख है कि व्यापारी कवडमय्य और देविशेट्टी ने कोरडुकेरे नामक गाँव खरीदकर शान्तिनाथ बसदि को दान स्वरूप भेंट किया।

पार्श्वनाथ बसदि की बाहर की दीवाल पर 1133 ई. के शिलालेख में होय्सल राजाओं की वंशावली और दान का उल्लेख है।

होय्सलेश्वर मन्दिर : कला का अद्वितीय उदाहरण

हलेबिड के इस मन्दिर (चित्र क्र. 89) को देखने के लिए प्रतिदिन सैकड़ों की संख्या में लोग आते हैं, दर्शन करते हैं, पिकनिक भी करते हैं और झुण्ड के झुण्ड चले जाते हैं। किसी समय यह मन्दिर राजधानी की प्राचीर के अन्दर था। अब वह गाँव से अलग है। अन्य चिह्नों के रूप में मिट्टी के कुछ टीले हैं और लगभग एक किलोमीटर लम्बा तालाब बचा है।

होय्सलेश्वर मन्दिर का निर्माण राजा विष्णुवर्धन की मृत्यु के पश्चात् लगभग 1150 ई. में प्रारम्भ हुआ था, ऐसा अनुमान है। किन्तु यह पूरा नहीं हो सका। इसका ऊपर का भाग बना ही नहीं। सन् 1310 ई. और 1326 ई. में क्रमशः अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक के आक्रमण के कारण इसका निर्माण बन्द हो गया।

इस मन्दिर में इतनी सूक्ष्म और उत्तम कारीगरी है कि ऐसा जान पड़ता है कि सेलखड़ी (पत्थर) पर नक्काशी करनेवालों ने इसमें प्रयुक्त पत्थर को शायद गीली मिट्टी समझा होगा और उसे अपनी छैनी से ऐसा रूप देते चले गए मानो वे गीली मिट्टी को साँचे में ढाल रहे हों। आइए, इसकी कुछ विशेषताएँ जानें—

उपर्युक्त मन्दिर एक मन्दिर नहीं है, वह द्विकूट या दो मन्दिरों का समूह है। वास्तव में दो मन्दिर एक मार्ग द्वारा आपस में जुड़े हुए हैं। दोनों ही शिवमन्दिर हैं। उन दोनों की आकृति तारे (Star) जैसी है। प्रत्येक मन्दिर की लम्बाई 112 फुट और चौड़ाई 100 फुट बताई जाती हैं। उनकी ऊँचाई लगभग 25 फुट है। दोनों ही के सामने खुले स्तम्भों का नन्दी मण्डप (नन्दी की प्रतिमावाला) है। उनमें से एक बड़ा है और एक छोटा। ये अनुपातहीन जान पड़ते हैं और बाद में बनाए गए हैं। इन मन्दिरों में मक्खनिया रंग (Cream colour) के पत्थर का उपयोग हुआ है। यह पत्थर पास की ही खदानों से प्राप्त किया गया है। उसकी विशेषता यह बताई जाती है कि खदान से निकाले जाने पर वह नरम होता है, बाहर निकलने के कुछ समय बाद सख्त हो जाने के बाद ही उस पर छैनी चलाई जाती है। किन्तु यहाँ की दीवाल आदि में लगभग हर इंच पर बहुत ही सुन्दर नक्काशी है। उस पर पॉलिश भी चमकदार आती है। इसके स्तम्भ एक-दूसरे पर प्रतिबिम्बित होते जान पड़ते हैं। स्तम्भों पर बहुत सूक्ष्म नक्काशी है (देखें चित्र क्र. 90)।

मन्दिर के प्रवेश की सीढ़ियों के पास, दोनों ओर एक-एक सुन्दर लघु मन्दिर है। प्रवेश-द्वार का सिरदल भी लम्बा और ऊँचा है। उसका उत्कीर्णन पौराणिक आख्यान सम्बन्धी घटनाओं से किया गया है जो कि उसे भव्यता प्रदान करता है। दोनों ओर दो द्वारपाल त्रिभंग मुद्रा में हैं और रत्नों से भूषित हैं।

मन्दिर की कुर्सी लगभग साढ़े पाँच फुट ऊँची है। उस पर गजस्तर, अश्वस्तर (हाथी-घोड़ों की कतारें) आदि उत्कीर्ण हैं। करीब 710 फुट की लम्बाई में 2000 के लगभग हाथी उनपर आसीन व्यक्तियों सहित उत्कीर्ण हैं। उनके ऊपर शार्दूल या सिंहों की कतारें हैं। फिर सुन्दर-सी बॉर्डर है। उसके बाद घुड़सवारों का अंकन है। फिर एक बॉर्डर है। फिर लंका-विजय के दृश्य लगभग 700 फुट में प्रदर्शित हैं। नर्तक-दल और हंसों की पंक्तियाँ भी इसी भाँति

उत्कीर्ण हैं। इन्हें देखकर ही दर्शक मंत्रमुग्ध रह जाता है।

गर्भगृह में भी सुन्दर नक्काशी है। केन्द्र में ताण्डवेश्वर (शिव) हैं। उनके साथ नाचते-गाते भक्तजन भी उत्कीर्ण हैं।

मन्दिर तारकाकृति है। इस कारण दीवाल कई कोण बनाती है। इसलिए कलाकार को अपनी कला प्रदर्शित करने का बहुत सुन्दर अवसर मिला है। मन्दिर की दीवाल वैदिक या हिन्दू देवी-देवताओं, उनके प्रतीकों आदि का एक विशाल संग्रहालय बन गई है। वे सभी सुन्दर वेश-भूषा में और बहुत स्पष्ट अंकित किए गए हैं। दीवाल में जालीदार खिड़कियाँ प्रकाश, हवा आदि के लिए बनाई गई हैं किन्तु इन खिड़कियों का स्थान लिया है विभिन्न देवी-देवताओं, अप्सराओं और नर्तकियों या सुन्दरियों ने। लगभग 400 फुट में पौराणिक देवी-देवता उत्कीर्ण किए गए हैं। शिव के घुटनों पर बैठी पार्वती चौदह बार अंकित की गई है। विष्णु के अवतार भी अनेक बार प्रदर्शित हैं। यही स्थिति ब्रह्मा की है। शायद ही कोई प्रमुख देवता ऐसा बचा हो जिसका अंकन यहाँ नहीं किया गया है। यही कारण है कि पर्सी ब्राउन जैसे पुरातत्त्वविद् ने इस मन्दिर को मनुष्य द्वारा निर्मित सुन्दर स्मारकों में एक बताया है (One of the most remarkable monuments ever produced by the hand of man)। कहा जाता है कि यहाँ होयसल शिल्प-कला अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गई और वास्तुजगत् में उसने 'होयसल कला' नाम से अपनी एक अलग ही पहचान बना ली।

उपर्युक्त मन्दिर का प्रमुख शिल्पी 'दारोज' बताया जाता है। मन्दिर मोहक एवं दर्शनीय है। किन्तु यह समाधान नहीं मिल पाता कि तथाकथित वैष्णव होयसलनरेश शैव भी हो गए थे अथवा नहीं। वैसे यहाँ कृष्ण को विशाल कलिंग सर्प के मस्तक पर नृत्य करते हुए भी चित्रित किया गया है। जो भी हो, देश-विदेश के अनेक कला-मर्मज्ञ एवं साधारण पर्यटक प्रति-दिन इस मन्दिर को देखने के लिए आते हैं।

संग्रहालय

होय्सलेश्वर मन्दिर के प्रांगण में भारतीय पुरातत्त्व विभाग का एक खुला संग्रहालय भी है। उसमें अन्य धर्मों की मूर्तियों के अतिरिक्त अनेक जैन मूर्तियाँ भी हैं। ढेरों शिल्प-कृतियाँ जमीन पर पड़ी हैं। इनमें तीर्थंकर मूर्तियाँ भी हैं। उनमें पद्मासन तीर्थंकर और सिरदल पर एक पद्मासन मूर्ति भी है। लगभग 16 फुट ऊँची एक तीर्थंकर प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में यहाँ एक छोटे से गोल उद्यान में खड़ी है। उसके हाथ कुहनी से टूटे हुए हैं। वह छत्रत्रयी, चँवर और मकर-तोरण से संयोजित है। मस्तक के दोनों ओर यक्ष-यक्षी हैं। आसन सिंह से विभूषित है। मूर्ति के दोनों ओर सुन्दर नक्काशीदार एक-एक स्तम्भ है। एक वीरगल या वीर-स्मारक यहाँ रखा है। उसके तीन खण्ड हैं। सबसे ऊपर के खण्ड में सूर्य-चन्द्र और पद्मासन तीर्थंकर (उनके आसन पर सिंह उत्कीर्ण हैं) और भक्त महिला एवं पुरुष हैं। बीच के खण्ड में, पालकी में हाथ जोड़े एक पुरुष है और उसके दोनों ओर देवियाँ हैं (वीर को स्वर्ग लिये जाने का दृश्य)। सबसे नीचे के खण्ड में तीर चलाता पुरुष उत्कीर्ण है। उसका एक अन्य योद्धा से युद्ध हो रहा है। लगभग ढाई फुट ऊँची पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में एक छत्र से विभूषित मूर्ति है जिसके

ऊपर छाया करनेवाले फण टूटे हुए हैं। मूर्ति मकर-तोरण और यक्ष-यक्षी से विभूषित है। इसी प्रकार तीर्थंकर आसन और अन्य खण्डित तीर्थंकर मूर्तियाँ इस खुले संग्रहालय में हैं।

होय्सलेश्वर मन्दिर के पास एक तालाब है जो सम्भवतः एक किलोमीटर लम्बा होगा। उसी में या उसके पास ही वह भूमि बताई जाती है जो कि तथाकथित वैष्णव (धर्म में दीक्षित) विष्णुवर्धन के अत्याचारों से फट गई थी और जिसे विष्णुवर्धन के पश्चात्ताप करने और काफी अनुनय-विनय करने के बाद श्रवणबेलगोल के भट्टारक चारुकीर्ति ने कलिकुण्ड साधना करके पाट दिया था। यदि हलेबिड में राजधानी नहीं रही तो क्या हुआ, स्थानीय होय्सलेश्वर मन्दिर और जैन मन्दिरों के कारण यह होय्सल कलाधानी तो अब भी है। यहाँ की कला मन पर अमिट छाप छोड़ती है। उसे देखना नहीं भूलना चाहिए, शान्तिपूर्वक अवलोकन करना चाहिए।

हलेबिड से हासन, वहाँ से चन्नरायपट्टन होते हुए श्रवणबेलगोल के लिए प्रस्थान करना चाहिए।

श्रवणबेलगोल

"दुनिया में ऐसे भी कुछ नगर हैं जो प्रायः अनादिकाल से विद्यमान हैं। रोम तथा वाराणसी को तो अनादिकालीन नगर माना ही जाता है, श्रवणबेलगोल का भी नाम इसी सूची में आने योग्य है। कर्नाटक के अन्य किसी भी स्थान का इतिहास इतना दीर्घकालीन और अविछिन्न नहीं है। दन्तकथाओं, इतिहास और साहित्य में जितनी चर्चा इसकी है, उतनी और किसी की नहीं।"

—न. स. रामचन्द्रैया, मैसूर

अवस्थिति एवं मार्ग

कर्नाटक के तीर्थस्थानों में श्रवणबेलगोल को तीर्थराज की संज्ञा दी जा सकती है। यहाँ पहुँचने के लिए केवल सड़क-मार्ग है। यह तीर्थ बंगलोर से 142 कि. मी., मैसूर से 80 कि. मी., हासन से 48 कि. मी. और अरसीकेरे (रेलवे स्टेशन) से 70 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। इन स्थानों से आने वाले यात्रियों को यदि श्रवणबेलगोल की सीधी बस नहीं मिले तो उन्हें मैसूर-बंगलोर राजमार्ग पर स्थित चन्नरायपट्टन नामक स्थान तक आ जाना चाहिए। यह एक बड़ा बस-स्टेंड है और प्रायः सभी ओर से बसें यहाँ आती हैं। इस स्थान से श्रवणबेलगोल केवल 13 कि. मी. है और बसों की अच्छी सुविधा है।

निकटतम रेलवे स्टेशन हासन जं. है। मैसूर से हासन तक भी सीधी रेल-सेवा है।

श्रवणबेलगोल : नामों की सार्थकता

श्रवणबेलगोल अर्थात् श्रमण या जैन मुनियों (श्रवणों) का बेळगोळ (अर्थात् श्वेत सरोवर) वास्तव में कन्नड़ नाम है। परम्परा से यह तीर्थ अब इसी सरोवर, जिसका नाम कल्याणी सरोवर है, के कारण श्रवणबेलगोल कहलाता आ रहा है। वैसे विभिन्न युगों और विभिन्न दृष्टिकोणों के कारण इस क्षेत्र के और भी अनेक नाम रहे हैं। इनका बहुत कुछ ज्ञान हमें यहाँ पाये गये लगभग 577 शिलालेखों एवं अन्य साधनों से प्राप्त होता है। जितने शिलालेख यहाँ पाये जाते हैं, भारत में उतने शायद ही और किसी स्थान पर हों। ये शिलालेख ईसा की छठी शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक के हैं। शिलालेखों की इस पृष्ठभूमि से इस स्थान के नामों को समझने में सहायता मिलेगी।

श्रवणबेलगोल का सबसे प्राचीन नाम 'कटवप्र' है। यह नाम ईसा की छठी शताब्दी के शिलालेख में है जिसके अनुसार श्रुतकेवली भद्रबाहु और आचार्य प्रभाचन्द्र (चन्द्रगुप्त मौर्य का मुनि-अवस्था का नाम) ने इस कटवप्र (पहाड़ी) पर समाधिमरण किया था। कटवप्र संस्कृत नाम है। 'कट' का अर्थ है समाधिमण्डप और 'वप्र' से आशय है पर्वत की चोटी या शिखर। क्योंकि यहाँ की चन्द्रगिरि या छोटी पहाड़ी पर श्रुतकेवली भद्रबाहु से लेकर अब तक सैकड़ों की संख्या में मुनियों एवं श्रावक-श्राविकाओं ने सल्लेखना-विधि द्वारा अपना शरीर त्यागा है और इसी से सम्बन्धित सैकड़ों लेख एवं बहुत से चरण-चिह्न भी यहाँ हैं अतः इसका 'कटवप्र' नाम सार्थक है।

संस्कृत का यह 'कटवप्र' नाम यहाँ के कई अन्य शिलालेखों में 'कळवप्पु', 'कल्पवप्प', 'कलवप्पि', 'कल्पवप्पबेट्ट' और 'कटवप्रगिरि' उत्कीर्ण किया गया है।

अनेक मुनियों आदि द्वारा यहाँ तपश्चरण एवं समाधिमरण के कारण ही कुछ शिलालेखों में चन्द्रगिरि को 'ऋषिगिरि' तथा 'तीर्थगिरि' के नाम से भी उल्लिखित किया गया है। चूँकि सम्राट् चन्द्रगुप्त ने यहाँ अपने अन्तिम दिन बिताए थे, इसलिए यह पर्वत 'चन्द्रगिरि' भी कहलाया। आज तो इस पर्वत का यह नाम ही सबसे अधिक प्रचलित है।

वैसे यह पूरा क्षेत्र 'बेळगोळ' के नाम से ही अधिकतर प्रसिद्ध रहा है लेकिन शिलालेखों में इस नाम के उच्चारण में बहुत भिन्नता रही है। इस स्थान का एक अन्य नाम 'देवर बेळगोळ' (देवों का बेलगोल अर्थात् जिनेन्द्र भगवान का बेलगोल) भी है।

शिलालेखों की भाषा-रचना करने वाले पण्डित या कवि हुए ही हैं। इसलिए उन्होंने बेलगोल (श्वेत सरोवर) के पर्यायवाची शब्दों का भी नाम के रूप में प्रयोग किया है। जैसे 'श्वेत सरोवर', 'धवल सरस', 'धवल सरोवर', 'शुक्ल तीर्थ' या 'धवलतीर्थ' आदि।

जब तीर्थ की परम्परा चली तो उत्तर भारत के यात्रियों के लिए श्रवणबेलगोल का एक नाम 'जैनबद्री' भी प्रचलित हो गया। श्रवणबेलगोल की एक और विशेषता प्राचीन युग में शिक्षा और अध्ययन के केन्द्र के रूप में भी थी। उत्तर भारत में आज भी वाराणसी (या काशी) को शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र माना जाता है। इसी प्रकार दक्षिण में स्थित विद्या के केन्द्र इस श्रवणबेलगोल को 'दक्षिण काशी' भी शिलालेखों में कहा गया है।

अतिशय क्षेत्र

श्रवणबेलगोल एक अतिशय क्षेत्र भी है। इस पवित्र भूमि में समय-समय पर अनेक चमत्कार या अतिशय हुए हैं—

(1) चन्द्रगिरि पर पार्श्वनाथ बसदि के उत्तरमुख एक स्तम्भ पर शक संवत् 1050 का एक शिलालेख है। उसमें महावीर स्वामी और गौतम गणधर का स्मरण कर, आचार्य भद्रबाहु की महिमा बताकर यह कहा गया है कि उनके शिष्य चन्द्रगुप्त की वन-देवता भी सेवा किया करते थे (चन्द्रगुप्तश्शुश्रूयष्यते स्म सुचिरं वन-देवताभिः)।

जनश्रुति है कि तब निर्जन चन्द्रगिरि-विन्ध्यगिरि पहाड़ियों के आसपास का क्षेत्र आबाद नहीं था या बहुत कम आबादी वाला रहा होगा। किन्तु बारह हज़ार मुनियों के संघ को नवधाभक्ति पूर्वक आहार देने के लिए यहाँ देवताओं ने एक नगर का ही निर्माण कर डाला था। इसका पता उस समय लगा जबकि समस्त मुनिसंघ सुदूर दक्षिण के लिए प्रस्थान कर गया और केवल आचार्य भद्रबाहु तथा प्रभाचन्द्र (चन्द्रगुप्त) मुनि ही वहाँ रह गए। सदा की भाँति मुनि प्रभाचन्द्र एक दिन जब आहार के लिए गये तो अपना कमण्डलु नगर में ही भूल आए। जब वे लौटकर उसी स्थान पर गये तो उन्हें वहाँ कोई आबादी दिखाई नहीं दी। अपना कमण्डलु उन्हें अवश्य एक सूखे पेड़ की टहनी पर टँगा दिखा। आचार्य ने उन्हें बताया कि आहार की व्यवस्था सम्भवतः देवों ने की थी। चूँकि मुनि के लिए राजपिण्ड (राजा के यहाँ का भोजन), देवपिण्ड (देवताओं द्वारा प्रदत्त भोजन) लेना निषेध है, इसलिए मुनि प्रभाचन्द्र ने उस दिन प्रायश्चित्त

किया। उपर्युक्त शिलालेख इसी घटना की ओर संकेत कर रहा है कि वन-देवता भी प्रभाचन्द्र मुनि (चन्द्रगुप्त मौर्य) की सेवा किया करते थे।

(2) श्रवणबेलगोल से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर होसहल्ली ग्राम में 'केरेकोडि जक्कलम्मा' नामक एक मन्दिर है। उस प्राचीन मन्दिर में तीर्थंकर प्रतिमा के दाहिनी ओर कूष्माण्डिनी देवी (तीर्थंकर नेमिनाथ की यक्षिणी) की अतिशयपूर्ण प्रतिमा है। यह जनश्रुति है कि इसी कूष्माण्डिनी देवी ने चामुण्डराय और उनकी माता को स्वप्न दिया था कि 'पोदनपुर के बाहुबली के दर्शन तो दुर्लभ हैं, तुम यहीं बाहुबली की मूर्ति का निर्माण कराओ।' उपर्युक्त देवी की मूर्ति गोमटेश बाहुबली की मूर्ति से भी प्राचीन बताई जाती है। (एक मत यह भी है कि वह स्वप्न पद्मावती देवी ने दिया था।)

(3) यह तो सुप्रसिद्ध तथ्य है कि जब बाहुबली की विशाल मूर्ति का चामुण्डराय ने अभिषेक करना चाहा तो सैकड़ों कलश ढार देने के बाद भी मूर्ति का अभिषेक नहीं हो सका, उसका नीचे का भाग सूखा ही रह गया। सब लोग स्तब्ध थे। चामुण्डराय को आचार्य नेमिचन्द्र ने यह सुझाव दिया कि एक बुढ़िया अभिषेक करना चाहती है, उसे अभिषेक करने दो। अतएव बुढ़िया को अभिषेक मंच पर लाया गया। उस वृद्धा (अज्जी) के हाथ में 'गुळ्ळ' (एक फल) था जिसके दो भागों को खोखला करके उसने उसमें थोड़ा-सा दूध भर रखा था। सभी के मुख पर आश्चर्यमिश्रित हँसी थी कि यह क्या अभिषेक कर सकेगी। किन्तु आश्चर्य, उसने जो दूध की बूँदें मूर्ति पर डालीं वे देखते-देखते विशाल धार में बदल गईं और पूरी मूर्ति का अभिषेक हो गया तथा पवित्र अभिषेक-दूध पहाड़ी पर बह निकला और उस दुग्ध-धारा से ही 'कल्याणी सरोवर' का पानी दुग्ध-जैसा धवल हो गया। इधर जब वृद्धा को ढूँढा गया तो उसका कहीं भी पता नहीं था। आचार्य नेमिचन्द्र ने चामुण्डराय को बताया कि 'इतनी बड़ी मूर्ति के निर्माण पर तुम्हारे मन में जो गर्व हो गया था, उसे ही खण्डित करने के लिए कूष्माण्डिनी देवी ने वृद्धा का रूप धारण किया था।' इस वृद्धा की मूर्ति आज भी 'गुल्लिका अज्जी' के नाम से बाहुबली प्राकार के निकट है। उसके हाथ में दो भागों वाला पात्र उस (फल) का प्रतीक है। कहा जाता है कि चामुण्डराय ने ही यह मूर्ति बनवाई थी।

(4) श्रवणबेलगोल में आज भी कूष्माण्डिनी देवी की मान्यता है। यदि किसी समय वर्षा नहीं होती है और सूखे की सम्भावना दिखाई पड़ती है तो सारे गाँव के लोग और मठ के भट्टारकजी कूष्माण्डिनी देवी के मन्दिर में जाकर विशेष पूजन करते हैं जो कि 'हेडिगे जात्रे' कहलाती है। सभी लोग वहीं भोजन करते हैं, देवी की प्रार्थना के बाद जब वापस आते हैं तो भीगते हुए वापस आते हैं।

(5) बाहुबली की मूर्ति के निर्माण-काल की बात है। चामुण्डराय ने शिल्पी को यह वचन दिया था कि मूर्ति को सूक्ष्म आकार प्रदान करने में वह जितना पाषाण तक्षण करेगा उसके बराबर सोना उसे पारिश्रमिक के रूप में दिया जाएगा। उस सोने की पहली खेप ले जाकर शिल्पी ने जब अपनी माता के सामने रखी तो उसके हाथ सोने से ही चिपक गए। चिन्तित माता दौड़कर आचार्य के पास पहुँची। उन्होंने समाधान दिया कि लोभ की यह करामात है। माता ने लौटकर पुत्र को झिड़का—"एक पुत्र (चामुण्डराय) तो अपनी माता के लिए स्वर्ण से पिण्ड छुड़ा

रहा है और कीर्ति की ओर उन्मुख हो रहा है और एक तू है जो लोभ में फँसा जा रहा है।" शिल्पी को माता की बात समझ में आ गई, उसके हाथ सोने से छूट गए और वह भक्तिपूर्वक प्रतिमा के निर्माण में तल्लीन रहने लगा।

(6) गोम्मटेश्वर-द्वार की बाईं ओर एक पाषाण पर शक संवत् 1102 का एक लम्बा शिलालेख है जिसमें कन्नड़ के प्रसिद्ध कवि बोप्पण ने गोम्मट-जिन की मूर्ति की स्थापना का सुन्दर वर्णन किया है। उसमें कवि ने एक दैवी घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक दिन आकाश से गोम्मट-जिन पर 'नमेरु' पुष्पों की वर्षा हुई जिसे सभी ने देखा। इसी प्रकार "भगवान की भुजाओं के अधोभाग से नित्य सुगन्ध और केशर के समान लाल ज्योति की आभा निकलती रहती है।"

कवि बोप्पण ने यह भी लिखा है कि कोई भी पक्षी मूर्ति के ऊपर से नहीं उड़ता। यह तो आज भी हर कोई देख सकता है कि कोई भी पक्षी मूर्ति पर नहीं बैठता। यदि अतिशय नहीं होता तो एक हजार वर्षों में कितने पक्षियों ने इसे मैला कर दिया होता। उस पर घोंसले या मधुमक्खी के छत्ते बनते-बिगड़ते रहते। किन्तु मानव से हीन बुद्धिवाले पक्षियों ने भी मूर्ति की पवित्रता को आज तक बनाए रखा है।

पौराणिक एवं ऐतिहासिक आख्यान

इस पवित्र स्थली से सम्बन्धित तीन प्रमुख आख्यान हैं—1. ऋषभदेव एवं भरत-बाहुबली आख्यान, 2. भद्रबाहु-चन्द्रगुप्त आख्यान और 3. चामुण्डराय एवं उनके द्वारा बाहुबली मूर्ति-प्रतिष्ठापना सम्बन्धी आख्यान।

ऋषभदेव

आदि तीर्थंकर ऋषभदेव और भरत-बाहुबली की कथा का सम्बन्ध पौराणिक युग से है। आचार्य जिनसेन के 'आदिपुराण' में यह कथा विस्तार से वर्णित है। 'आदिपुराण' में ऋषभदेव की स्तुति में कहा गया है—

> योऽभूत्पञ्चदशो विभुः कुलभृतां तीर्थेशिनां चाग्रिमो,
> दृष्टो येन मनुष्यजीवनविधिर्मुक्तेश्च मार्गो महान्।
> बोधो रोधविमुक्तवृत्तिरखिलो यस्योदपाद्यन्तिमः,
> स श्रीमान् जनकोऽखिलावनिपतेराद्यः स दद्याच्छ्रियम् ॥47-401॥

अर्थात् जो कुलकरों में पन्द्रहवें कुलकर थे, तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर थे, जिन्होंने मानवों की जीविका का तथा मुक्ति का महान् मार्ग देखा था (बताया था), जिन्हें आवरणरहित अन्तिम ज्ञान (केवलज्ञान) प्राप्त हुआ और जो सम्पूर्ण पृथ्वी के अधिपति (चक्रवर्ती भरत) के पिता थे,

वे तुम सबको लक्ष्मी प्रदान करें।

जहाँ तक ऋषभदेव से कर्नाटक का सम्बन्ध है, पुराणों में उल्लेख है कि एक राजा के रूप में ऋषभदेव ने जब पृथ्वी का शासन करना स्वीकार किया तो उन्होंने सबसे पहले अपने सम्पूर्ण राज्य को ग्राम, पुर और प्रदेशों में विभाजित किया। उस समय उन्होंने अंग, बंग, पुण्ड्र, काशी, कलिंग, मगध आदि के साथ-साथ कोंकण, कर्नाटक, केरल आदि प्रदेशों की सीमाओं का निर्माण भी किया था।

यह भी माना जाता है कि ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को लिपि-विद्या में पारंगत किया था। ब्राह्मी ने तब जिन 18 अक्षरों का आविष्कार किया उनमें से कुछ अक्षर कन्नड़ के भी हैं।

ऐसा भी उल्लेख है कि वैराग्य के बाद ऋषभदेव ने घोर तपस्या की थी। वे एक वर्ष तक निराहार रहे, उनकी जटाएँ बढ़ गईं और वे शीत-ताप आदि सब कुछ सहन कर लोगों को आत्म-कल्याण का उपदेश देते हुए नगर-नगर, गाँव-गाँव घूमे, पर्वतों पर तपस्या की और जन-कल्याण में निरन्तर लगे रहे। तब उनके उपदेशों का दक्षिण-भारत के प्रदेशों पर भी विशेष प्रभाव पड़ा था।

जैन और वैदिक दोनों ही परम्पराओं में तीर्थंकर ऋषभदेव की मान्यता रही है। साथ ही, इस बात का भी समर्थन होता है कि ऋषभदेव के उपदेशों का कोंकण, वेंकटाद्रि (प्रदेश), कुटक प्रदेश (दक्षिण के एक प्राचीन प्रदेश का नाम) तथा दक्षिण कर्नाटक प्रदेश में पर्याप्त प्रभाव पड़ा था और वहाँ के जैन (अर्हत्) राजा उनकी जनकल्याणकारी मान्यताओं का प्रचार करने में अपनी सफलता मानते थे।

इन्हीं युगादि पुरुष, कृषि-युग के प्रारम्भकर्ता, प्रथम भूपति, प्रथम योगी और प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के अनेक ज्ञातनाम पुत्र थे भरत और बाहुबली।

भरत-बाहुबली का हिंसारहित युद्ध

ऋषभदेव द्वारा अयोध्या का राज्य दिए जाने के बाद सम्राट भरत नीतिपूर्वक प्रजापालन करने लगे। कुछ काल के बाद उन्हें एक साथ तीन सुखद समाचार मिले। सबसे प्रथम तो उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके पूज्य पिता को 'केवलज्ञान' प्राप्त हुआ है। इसे 'धर्म' का फल मान उन्होंने कैलाश पर्वत पर जाकर ऋषभदेव की पूजा की। दूसरा महत्त्वपूर्ण समाचार यह था कि उन्हें 'पुत्ररत्न' की प्राप्ति हुई है। इसे 'काम' का फल मान उन्होंने और नगरवासियों ने खूब उत्सव मनाया। तीसरा शुभ समाचार यह था कि उनकी आयुधशाला में 'चक्ररत्न' की उत्पत्ति हुई है। इसे 'अर्थ' का फल मान भरत ने उसकी भी पूजा की और उत्सव मनाया। उस समय उनके मन्त्रियों तथा सेनापतियों ने परामर्श दिया कि यह चक्र उनके चक्रवर्तित्व को सूचित करता है और उन्हें दिग्विजय के लिए प्रस्थान करना चाहिए।

महाराज भरत की स्वीकृति मिलते ही, तुमुलनाद करने वाले नगाड़ों की घोषणा के साथ भरत की सेना ने दिग्विजय के लिए कूच कर दिया। भरत का चक्ररत्न सेना के आगे-आगे चल रहा था। सैन्यबल और राजा भरत ने सबसे पहले पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान कर गंगा नदी-

क्षेत्र को सहज ही विजित कर लिया। वहाँ के राजाओं ने उपहार आदि भेंटकर उन्हें प्रणाम कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। अनेक नदियों को पार कर उन्होंने गंगा की वेदी पर से समुद्र को देखा। विशाल उपसमुद्र में भी उनका रथ प्रवेश कर गया। वहाँ के देवों (राजाओं) को वश में करने के लिए उन्होंने चुनी हुई सेना अपने साथ ली। जब उनका बाण मगधदेव की सभा में पहुँचा तो उसने उस पर 'भरत' का नाम देखकर पहले तो युद्ध की ठानी किन्तु बाद में उनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

पूर्व दिशा में विजय के बाद, भरत ने समुद्र के किनारे-किनारे दक्षिण दिशा की ओर कूच किया। उनके एक ओर लवणसमुद्र था तो दूसरी ओर उपसमुद्र। उन दोनों के बीच में उनकी सेना तीसरे समुद्र की भाँति मालूम पड़ती थी। अनेक छोटे-छोटे राजाओं ने उन्हें प्रणाम कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। उन्हें इन राजाओं ने हाथी, धन आदि भेंट में दिए थे। उनके घोड़ों ने पम्पा सरोवर (आधुनिक हम्पी) को पार किया था। अनेक द्वीपों के राजाओं ने उनकी अधीनता स्वीकार की थी। भरत ने केरल, चेर और पुन्नाग देशों के राजाओं को भी अपने अधीन किया था। 'आदिपुराण' के रचयिता जिनसेनाचार्य के शब्दों में, भरत की दक्षिण-विजय, गोदावरी और किष्किन्धा (आजकल हम्पी) क्षेत्र को पारकर प्रयाण और विजय का वर्णन इस प्रकार है—

"प्रकट रूप से धारण किये हुए आडम्बरों से जिनका वेष विकट तथा शूरवीरता को उत्पन्न करनेवाला है, जिन्हें हल्दी, ताम्बूल और अंजन बहुत प्रिय हैं, तथा प्रायःकर यश ही जिनका धन है ऐसे 'कर्णाटक देश' के राजाओं को; जो कठिन प्रहार करने में सिद्धहस्त हैं, जो बड़े कृपण हैं और जो केवल शरीर की अपेक्षा ही पाषाण के समान कठोर नहीं हैं किन्तु हृदय की अपेक्षा भी पाषाण के समान कठोर हैं ऐसे 'आन्ध्र देश' के राजाओं को;···जिन्हें प्रायः झूठ बोलना प्रिय नहीं है और जिनकी चेष्टाएँ कुटिल हैं, ऐसे 'चोल देश' के राजाओं को, मधुर गोष्ठी करने में प्रवीण तथा सरलतापूर्वक वार्तालाप करने वाले 'केरल देश' के राजाओं को; जिनके भुजदण्ड अत्यन्त बलिष्ठ हैं, जिन्होंने शत्रुओं के समूह नष्ट कर दिये हैं, जिन्हें हाथी बहुत प्रिय हैं और जो युद्ध में प्रायः धनुष तथा भाला आदि शस्त्रों का अधिकता से प्रयोग करते हैं ऐसे 'पाण्ड्य देश' के राजाओं को और जिन्होंने प्रतिकूल खड़े होकर अपना पराक्रम दिखलाया है ऐसे अन्य देश के राजाओं को सेनापति ने अपनी विजयी सेना के द्वारा आक्रमण कर अपने अधीन किया था।" दक्षिण की विजय के बाद भरत की सेना ने दक्षिण समुद्र की ओर प्रयाण किया था। वहाँ के वरतनु द्वीप को भी भरत ने विजित किया।

दक्षिण दिशा के बाद भरत ने पश्चिम दिशा के देशों को भी जीतकर अपने अधीन किया। उत्तर दिशा की विजय-यात्रा करते हुए चक्रवर्ती भरत विजयार्ध पर्वत तक जा पहुँचे। इस प्रकार समस्त पृथ्वी एवं म्लेच्छ खण्डों को जीतकर वे अयोध्या लौटे। मार्ग में उन्होंने कैलाश-पर्वत पर ऋषभदेव की भी वन्दना की।

अयोध्या में भरत का चक्र अवरुद्ध

दिग्विजय के बाद जब भरत अयोध्या वापस आये तो उनके चक्र ने अयोध्या में प्रवेश

ही नहीं किया, वह नगर के बाहर ही रुक गया। चक्रवर्ती, सेनापति, मन्त्री, पुरोहित और नगरवासी सभी आश्चर्यमिश्रित चिन्ता में पड़ गए। भरत के पूछने पर निमित्तज्ञानी ने बताया कि जब तक पूरी तरह दिग्विजय नहीं हो जाती, तब तक चक्र राजधानी में प्रवेश कर विश्राम नहीं लेगा। चक्रवर्ती को जब यह ज्ञात हुआ कि अभी उनके सभी निन्यानवे भाइयों और बाहुबली ने उन्हें नमस्कार नहीं किया है, वे चिन्तित हो उठे। इस पर भरत को परामर्श दिया गया कि वे शान्तिपूर्ण समाधान के रूप में अपने भाइयों के पास पत्र एवं भेंट सहित दूत भेजें जो उन्हें समझाये कि चक्रवर्ती की अधीनता स्वीकार करने में ही उनका हित है। महाराज भरत ने वैसा ही किया।

भरत के दूत जब उनके निन्यानवें भाइयों के पास पहुँचे तो सभी का यह एकमत उत्तर था—"यह राज्यरूपी ऐश्वर्य हमारे पिता का दिया हुआ है। हम उनकी ही आज्ञा का पालन कर सकते हैं। बड़े भाई भरत पूज्य अवश्य हैं किन्तु हम अपने पिता ऋषभदेव के आदेशानुसार ही चलेंगे।" अन्त में भरत के स्वाभिमानी भाइयों ने कैलाश पर ऋषभदेव के पास जाकर उनसे दीक्षा ले ली।

पोदनपुर में भरत का दूत

बाहुबली के बारे में भरत को विशेष चिन्ता थी। उन्हें साम, दाम, दण्ड, भेद से भी वश में करना कठिन लगा, अतः उन्होंने कोमल वचनों द्वारा प्रयत्न करने का निश्चय किया और निःसृष्टार्थ दूत (जिसे स्वामी का कार्य सिद्ध करने के सभी अधिकार दिए जाते हैं) भेजा।

दूत जब पोदनपुर पहुँचा तो राजसभा में ऊँचे-पूरे, सुदृढ़ शरीर वाले कान्तिमान बाहुबली को देख पहले तो वह घबड़ाया किन्तु प्रणाम कर कुछ आश्वस्त हुआ। बाहुबली के पूछने पर दूत ने बड़ी विनम्रतापूर्वक कहा, "हम तो केवल स्वामी का सन्देश लाये हैं। हमारा यही अनुरोध है कि चक्रवर्ती ने जो आज्ञा दी है उसे आप स्वीकार कर लें। महाराज भरत राजाओं में प्रथम हैं, आपके बड़े भाई हैं, देवता और सभी नृपगण भी उन्हें नमस्कार करते हैं, म्लेच्छों ने भी उनकी अधीनता स्वीकार कर ली है। समुद्र-तटवर्ती प्रदेशों और पृथ्वी पर उन्होंने विजय पाई है। किन्तु उनके भाई ही यदि उन्हें स्वामी मान प्रणाम न करें, यह शोभा नहीं देता। आज्ञा नहीं मानने-वालों के लिए उनके पास चक्ररत्न भी है!"

यह सुन बाहुबली कुछ मुस्कराए और बोले, "दूत, तू सचमुच अपने स्वामी का हितसाधक है। दूत है इसलिए तेरे वचनों के लिए भी क्षमा किया।" इसके बाद उनका स्वर धीरे-धीरे प्रखर होने लगा। उन्होंने आवेश में आते हुए कहना प्रारम्भ किया, "दूत, क्या तू नहीं जानता कि प्रतापी पुरुष के प्रति साम, दाम, दण्ड, भेद का प्रयोग व्यर्थ है। अरे, अंकुश हाथी पर ही चल सकता है, सिंह पर नहीं। ठीक है कि भरत मुझसे बड़े हैं। यह भी ठीक है कि ज्येष्ठ भ्राता नमस्कार करने योग्य हैं किन्तु यदि वह तलवार सिर पर लटकाएँ तो कैसा नमस्कार? पिता ऋषभदेव ने उन्हें भी राजा बनाया और मुझे भी। अब वह महाराजाधिराज हो गये तो क्या हुआ?" "भरत के मन में लोभ समा गया है, वह पिता ऋषभदेव की दी हुई पृथ्वी मुझसे छीनना चाहते हैं अतः लोभ का प्रतिकार करना होगा। जाओ, कह देना अपने स्वामी से, 'मुझे पराजित

किए बिना वह सम्पूर्ण पृथ्वी का उपभोग नहीं कर सकते। मैं अपने अधिकार की रक्षा के लिए युद्ध का निमन्त्रण देता हूँ'।" और वह भुजबली (बाहुबली) मदोन्मत्त हाथियों एवं अन्य सेना के साथ पहले ही रणभूमि में जा पहुँचे।

अहिंसक युद्ध और बाहुबली को वैराग्य

दूत के वापस लौटने पर अयोध्या में भी नगाड़े बज उठे। पैदल, घोड़े, हाथी, रथ, विद्याधर और देव इस तरह छह प्रकार की सेना, अन्य राजाओं की सेना तथा चक्ररत्न के साथ, वहाँ पहुँच गई। दोनों ओर से व्यूह की रचना हुई।

भरत और बाहुबली भी आमने-सामने आ खड़े हुए। उस समय दोनों ऐसे लगते थे मानो दो सिंह आमने-सामने खड़े हों।

युद्धस्थल का वातावरण बड़ा भयावना था। दोनों ओर के वृद्ध मन्त्रियों के चेहरों पर अनेक प्रकार के भाव आ-जा रहे थे। उन्होंने अपने स्वामियों से आज्ञा लेकर आपस में विचार-विमर्श किया। अपने-अपने स्वामियों के पराक्रम की प्रशंसा कर चुकने के बाद सबकी राय अन्त में इसप्रकार बनी—"यह युद्ध न तो प्रजा के कल्याण के लिए है और न ही सेवकों की भलाई के लिए। शान्ति भी इस युद्ध का ध्येय नहीं है। केवल दो भाइयों के मान-स्वाभिमान का प्रश्न है। दोनों के बल की परीक्षा अन्य प्रकार से भी हो सकती है। क्यों न ये दोनों ही दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध द्वारा अपनी श्रेष्ठता का निर्णय कर लें! सेनाओं के युद्ध में भारी नर-संहार क्यों हो?" मन्त्रियों ने शान्तिपूर्वक दोनों भाइयों को समझाया कि उक्त तीन प्रकार के युद्ध आपस में कर हार-जीत का फैसला कर लें। बड़ी कठिनाई से भरत और बाहुबली मन्त्रियों के इस प्रस्ताव पर सहमत हुए। सहमति प्राप्त होते ही मन्त्रियों ने धर्मयुद्ध की घोषणा कर दी। निर्णायक नियुक्त कर दिए गए।

आरम्भ के दोनों दृष्टियुद्ध और जलयुद्ध में बाहुबली की विजय हुई। अन्त में मल्लयुद्ध की घोषणा हुई। बाहुबली की अतुलित बलशाली भुजाओं ने भरत को ऊपर उठाकर, चारों दिशाओं में घुमाकर, धरती पर पछाड़ना चाहा कि तभी उन्हें एकाएक इस धरा की निरर्थकता का बोध हो आया। उन्होंने भरत को धीरे से उतारा और सम्मान सहित धरती पर खड़ा कर दिया।

बाहुबली से तीनों युद्धों में पराजित भरत लज्जा से गड़ गये, किन्तु दूसरे ही क्षण कुचले हुए फणवाले क्रुद्ध भुंजग की तरह वे प्रतिहिंसा से उबल पड़े। क्रोध के आवेश में विवेक तिरोहित हो गया। उन्होंने बाहुबली पर अमोघ चक्र चला दिया। उस समय उन्हें यह भी याद नहीं रहा कि स्वतः संचालित यह चक्र बन्धु-बान्धवों का घात नहीं करता। वह यह भूल ही गए कि उनका यह अनुज मोक्षगामी शलाकापुरुष है, ऐसे उत्तम शरीर का असमय अवसान कर दे, काल में ऐसी सामर्थ्य कहाँ। परिणाम यह हुआ कि चक्र बाहुबली की परिक्रमा कर वापस आ गया।

चक्र के लौटते ही भरत की स्वाभाविक चेतना लौट आई। क्रोध के स्थान पर अब पश्चात्ताप की भावना से उनका मन अभिभूत हो उठा। अपने इस कुकृत्य के लिए वे क्षमा-याचना हेतु दो पग बढ़कर बाहुबली के समक्ष नतमस्तक खड़े हो गए।

इधर बाहुबली का कोमल हृदय भरत के मनस्ताप से द्रवित हो उठा। शान्त मन से

उन्होंने भरत को सम्बोधन दिया—"तुम्हारा कुछ दोष नहीं, भैया। कषाय का उद्रेक ऐसा ही दुर्निवार होता है। परिग्रह की लिप्सा अनर्थों की जड़ है। पर-स्वामित्व की लालसा ही हमारी परतन्त्रता है। हमें परतन्त्रता का यह दुखद बन्धन तोड़ना ही होगा। हमने राज्य त्याग कर दीक्षा लेने का निर्णय ले लिया है। हमारे कारण तुम्हें इतना संक्लेश हुआ, इस अपराध के लिए हमें क्षमा कर देना। तुम्हारे चक्र को आयुधशाला तक जाने में अब कोई बाधा नहीं होगी। अयोध्या का सिंहासन अपने स्वामी की प्रतीक्षा कर रहा है।" (गोमटेश गाथा)

अन्त में सभी बन्धु-बान्धवों को सम्बोधित कर शान्त-गम्भीर योगीश बाहुबली ने नीची दृष्टि किए मन्द गति से वन की ओर पग बढ़ा दिए।

मुनि-दीक्षा लेकर बाहुबली कठोर तपश्चरण में लीन हो गए। एक वर्ष का प्रतिमा-योग धारण कर वे ध्यान मुद्रा में खड़े गए। उनके चरणों में साँपों ने बाँबियाँ बना लीं। उनकी देह पर लताएँ चढ़ आईं, पर वे इन सबसे विचलित नहीं हुए। लेकिन जब कभी उनके अन्तस् में एक हल्की-सी टीस—'मैं भरत के संक्लेश का कारण बना'—उठती थी जो उनके केवलज्ञान के उत्पन्न होने में बाधक हो रही थी।

अन्त में जब भरत अपनी दोनों बहनों ब्राह्मी और सुन्दरी के साथ वन में बाहुबली के दर्शन करने के लिए पहुँचे और सविनय वन्दना कर सम्बोधित किया कि तभी बाहुबली की वह टीस एकाएक तिरोहित हो गई और उन्हें केवलज्ञान हो गया।

बाहुबली ने पृथ्वी पर विहार कर संसार को अपने वचन-रूपी अमृत से धन्य किया और अन्त में कैलाश पर्वत से ही, ऋषभदेव से भी पहले, निर्वाण-लाभ किया।

बाहुबली की स्मृति-परम्परा

अत्यन्त प्राचीन काल से बाहुबली की स्मृति परम्परा में इसलिए सुरक्षित नहीं बनी रही कि उन्होंने अपने शारीरिक बल के आधार पर एक बलवान् चक्रवर्ती पर विजय प्राप्त की, बल्कि इसलिए कि उन्होंने राजलक्ष्मी से शिवलक्ष्मी (मोक्ष की प्राप्ति) को अधिक उचित माना था। अपने स्वाभिमान और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए उन्होंने सब कुछ घास के तिनके की तरह तुच्छ समझकर त्याग दिया। उस भुजबली ने अपनी वीरता प्रदर्शित करके यह भी सिद्ध कर दिया कि 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' अर्थात् केवल वीर, सामर्थ्यवान क्षमा कर सकता है। शायद इसी कारण, विशेषकर कर्नाटक में राजाओं, सेनापतियों ने उनकी बड़ी-बड़ी प्रतिमाएँ स्थापित कराईं।

आचार्य भद्रबाहु और सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य

श्रवणबेलगोल का ऐतिहासिक परिचय आचार्य भद्रबाहु और सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के चन्द्रगिरि पर आगमन, तपस्या और समाधि से प्रारम्भ होता है।

भगवान महावीर के प्रमुख श्रोता/श्रेणिक बिम्बिसार राजगृह में राज्य करते थे। उनके पुत्र अजातशत्रु ने राज्य का विस्तार किया। उसके पुत्र उदायि ने कुसुमपुर (आधुनिक पटना) को राजधानी बनाया। उनके शिशुनाक वंश का अन्त करनेवाले नन्दवंश के राजाओं का शासन

महावीर निर्वाण के 60 वर्ष बाद प्रारम्भ हुआ। ये राजे जैन थे। उड़ीसा के खण्डगिरि-उदयगिरि में आज भी मौजूद सम्राट् खारवेल के ई. पू. 150 के शिलालेख में स्पष्ट है कि 'कलिंगजिन' (ऋषभदेव की कलिंग में अत्यन्त मान्य) मूर्ति को नन्दराजा (नन्दिवर्धन) उठा ले गया था जिसे खारवेल वापस लाया था। इन नन्दराजाओं ने 155 वर्ष तक राज्य किया। अन्तिम नन्दराजा धननन्द अत्यन्त लोभी हो गया था और प्रजा उससे असन्तुष्ट थी। उसे हटाकर ईसा से 322 वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त प्रथम मौर्य राजा के रूप में मगध साम्राज्य की गद्दी पर बैठा।

चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा अपने राजवंश की स्थापना की कहानी अत्यन्त रोमांचक है। उसके प्रमुख पात्र हैं—1. चन्द्रगुप्त मौर्य, 2. चाणक्य, 3. आचार्य गोवर्धन तथा 4. आचार्य भद्रबाहु। इनके जीवन-विवरण पर दृष्टि डालने से चन्द्रगिरि (श्रवणबेलगोल) का महत्त्व समझा जा सकता है।

श्रवणबेलगोल की पहाड़ी (चन्द्रगिरि) आज भी जिसकी स्मृति बनाए हुए है वह चन्द्रगुप्त मोरियवंशी क्षत्रियों की राजधानी पिप्पलि-वन (नेपाल की तराई) में जन्मा था। उसका वंश 'मोरिय' कहलाता था जो कि क्षत्रिय था। इस नगर के वासी मोर के पंखों का व्यवसाय करते थे। वे 'मयूर पोषक' कहलाते थे और अपने घरों पर भी रंग-बिरंगे मोर चित्रित करते थे। महावीर के एक गणधर भी मौर्यपुत्र कहलाते थे। स्पष्ट है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य क्षत्रिय था, जैनधर्मानुयायी था और सम्भवतः इसी कारण जैनेतर साहित्य में उसके जीवन का अन्तिम भाग (मुनि होने की घटना) लिखा ही नहीं गया और उस साहित्य में एक हज़ार वर्ष तक उसकी चर्चा उपेक्षित रही।

चाणक्य-चन्द्रगुप्त संयोग

यह सर्वविदित है कि चन्द्रगुप्त मौर्य को मगध-साम्राज्य का सम्राट् बनाने में चाणक्य की प्रमुख भूमिका थी।

चाणक्य के जन्म की अनुश्रुति भी रोमांचक है। विद्वानों का मत है कि चाणक्य का जन्म ईसा से 375 वर्ष पूर्व हुआ था। उनके अनेक नाम बताए जाते हैं, जिनमें चाणक्य, कौटिल्य या विष्णुगुप्त और 'द्रामिल' प्रसिद्ध हैं। उनके जीवन की कथा अनेक जैन और जैनेतर ग्रन्थों में पाई जाती है। जैन ग्रन्थों में उनके जीवन के अन्तिम भाग का भी वृत्तान्त मिलता है।

जैन परम्परा यह सूचित करती है कि चाणक्य का गोत्र कुटल था। इस कारण उनका नाम कौटल्य या कौटिल्य पड़ा।

सन् 931 ई. में रचित 'बृहत्कथाकोष' में उन्हें पाटलिपुत्र में उत्पन्न एवं पिता कपिल एवं माता देविला ब्राह्मणी का पुत्र बताया गया है। कुछ लोग उन्हें तक्षशिला का निवासी बताते हैं।

'आवश्यकनिर्युक्ति चूर्णि' नामक एक ग्रन्थ में कहा गया है कि बिहार के गोल्ल जनपद के चणय गाँव में उनका जन्म हुआ था और उनके ब्राह्मण माता-पिता का नाम चणेश्वरी तथा चणक था। इसी कारण वे चाणक्य कहलाए। उनके माता-पिता जैन धर्म के भक्त बताए गए हैं (ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं)। जब चाणक्य का जन्म हुआ तब उनके मुँह में दाँत थे। प्रसन्न

करने पर उन्हें किसी जैन साधु ने बताया कि ये दाँत यह सूचित करते हैं कि उनका पुत्र राजा बनेगा। माता-पिता धार्मिक थे। वे नहीं चाहते थे कि षड्यन्त्रों से भरा राजा का जीवन उनका पुत्र भोगे। इसलिए माता ने चाणक्य के दाँत घिसवा दिए। पुनः साधु ने उन्हें बताया कि राज-योग की जड़ (दाँतों की) तो मौजूद है। राजा न सही, उनका पुत्र किसी को राजा बनाकर राज-शक्ति का उपयोग करेगा।

बालक चाणक्य धीरे-धीरे अनेक विद्याओं में पारंगत हो गया। समय आने पर यशोमती नामक कन्या से उसका विवाह हो गया। एक बार उसकी पत्नी अपने भाई के विवाह में मायके गई। वहाँ उसकी बहिनों एवं अन्य लोगों ने उसे गहनों, अच्छे वस्त्रों से हीन देखकर उसकी हँसी उड़ाई। पत्नी ने सब बातें चाणक्य को बतायीं। लोगों को शिक्षा देकर अपनी जीविका चलाने वाले चाणक्य भी दुखी हुए। पत्नी ने सलाह दी कि वे पाटलिपुत्र जाएँ, वहाँ का राजा बहुत दान देता है। वहाँ पहुँचकर चाणक्य ने अनेक पण्डितों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर धननन्द ने उसे अपनी दानशाला का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। चाणक्य कुरूप और अभिमानी थे। बैठने के स्थान को लेकर राजा की दासी ने उनका अपमान कर दिया और युवराज भी उनसे नाराज हो गया। बस इस पर उन्होंने यह प्रतिज्ञा की—

"सकोशभृत्यं ससुहृत्पुत्रं सबलवाहनम्।
नन्दमुन्मूलयिष्यामि महावायुरिव द्रुमम्॥"

(जिस प्रकार आँधी बड़े-बड़े वृक्षों को जड़ से उखाड़ फेंकती है उसी प्रकार मैं भी नन्दवंश को उसके कोश, भृत्य, मित्र, पुत्र, सैन्य तथा वाहन सहित उखाड़ फेंकूँगा।) यह प्रतिज्ञा कर उन्होंने पाटलिपुत्र छोड़ दिया।

चाणक्य की प्रतिज्ञा की एक कथा और भी प्रचलित है। किसी समय मगध पर सीमा-वर्ती किसी राजा ने आक्रमण किया। नन्द राजा ने कावी नामक मन्त्री को आदेश दिया कि वह आक्रमणकारी राजा को धन देकर वापिस लौटा दे। कावी ने ऐसा ही किया। बाद में राजा ने कोश खाली देखकर कावी को अन्धकूप में डाल दिया और उसे केवल सत्तू तथा पानी देने लगा। तीन वर्ष बाद फिर आक्रमण हुआ तो नन्द राजा ने फिर कावी को इसी कार्य में लगाया। लेकिन कावी मन-ही-मन बदला लेने की बात सोचता रहता था। एक दिन उसने चाणक्य को नुकीली घास को जड़ से इसलिए उखाड़कर फेंकते देखा कि उसने उसके पैर में घाव कर दिया था। कावी ने उसे अपने कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्ति समझा। वह राजभवन ले गया और अवसर पाकर एक दिन उसने दानशाला में चाणक्य का योजनाबद्ध तरीके से अपमान करा दिया। परिणाम स्वरूप चाणक्य ने नन्दवंश को उखाड़ फेंकने की प्रतिज्ञा कर डाली। उसी समय चन्द्रगुप्त से उसकी भेंट हो जाती है। वे दोनों घोड़ों पर दूर चले जाते हैं। सीमावर्ती राजा उन्हें ढूँढ़ लेते हैं और उनकी धन-संचय आदि में मदद कर नन्दवंश का अन्त करवाते हैं।

पहली कथा के अनुसार, चाणक्य घूमते-घामते, चन्द्रगुप्त के गाँव पिप्पलीवन पहुँचते हैं। वहाँ वे गाँव के मुखिया के यहाँ ठहरते हैं। उसकी गर्भवती पुत्री को यह इच्छा होती है कि वह चन्द्रमा का पान करे। चाणक्य ने यह कठिन इच्छा पूरी करने के लिए एक थाली में पानी भरवाया और एक आदमी को छप्पर पर इस हिदायत के साथ चढ़ा दिया कि वह फूस की

छप्पर में अपने हाथ से आड़ कर चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को थाली में कम करता जाए। गर्भवती समझी उसने चन्द्रपान कर लिया है। जब उसके पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसका नाम चन्द्रगुप्त रखा गया। चाणक्य ने चन्द्रपान की शर्त यह रखी थी कि अगर पुत्र होगा तो वह उनके सुपुर्द कर दिया जायेगा।

उपर्युक्त घटना को आठ-दस वर्ष बीत गये। इस अवधि में चाणक्य धन-संग्रह करते रहे ताकि नन्दवंश को नष्ट किया जा सके। एक दिन वे पिप्पलीवन में आ निकले। वहाँ उन्होंने बच्चों को 'राजकीलम्' नामक खेल खेलते देखा। एक बालक राजा बना हुआ था और न्याय कर रहा था। चाणक्य ने बालक राजा से दान माँगा। राजा ने कहा, "सामने जितनी गाय चर रही हैं, उन्हें ले जाओ।" चाणक्य ने बालक राजा से कहा, "किन्तु ये तो आपकी नहीं हैं। मुझे दण्ड मिलेगा।" राजा ने तुरन्त उत्तर दिया, "यह दान राजा चन्द्रगुप्त ने किया है। इस पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता।" खोजबीन करने पर चाणक्य को पता चला कि यह तो क्षत्रिय मुखिया की उसी पुत्री का पुत्र है जिसका दोहद उन्होंने पूरा किया था। उन्होंने निश्चय किया कि वे इसे नन्दवंश के नाश का साधन बनाएँगे। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को हर प्रकार की शिक्षा दी। कुछ ग्रंथों के अनुसार, चाणक्य ही स्वयं विद्याभ्यास के लिए पाटलिपुत्र आये थे, क्योंकि नन्द राजाओं के समय में वह नगर 'सरस्वती और लक्ष्मी का निवास' था। जो भी हो, चाणक्य ने चन्द्रगुप्त की शिक्षा का विशेष प्रयत्न उसमें राजा के लक्षण देखकर किया था, ऐसा जान पड़ता है।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने अनेक महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त कीं। उन्होंने लगभग 25 वर्ष (322 ई. पू. से 297 ई. पू. तक) राज्य किया और उसके बाद राजसिंहासन अपने पुत्र बिन्दुसार को छोड़ा तो श्रवणबेलगोल से सदा के लिए उनका नाता जुड़ गया।

जैन परम्परा: चन्द्रगुप्त की मुनि-दीक्षा और श्रवणबेलगोल में समाधिमरण

संस्कृत और कन्नड़ जैन ग्रन्थों, श्रवणबेलगोल तथा श्रीरंगपट्टन के शिलालेखों में स्पष्ट कथन है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य दिगम्बर जैन मुनि हो गये थे और श्रवणबेलगोल में तप करते हुए उन्होंने स्वेच्छा से अपना शरीर त्यागा था अर्थात् समाधिमरण किया था। उनके वैराग्य के सम्बन्ध में जैन अनुश्रुति संक्षेप में इस प्रकार है—

आचार्य भद्रबाहु एक दिन उज्जयिनी में आहार के लिए निकले। जब एक दिन सूने घर के सामने वे पहुँचे तो एक बालक ने उनसे कहा, "जाओ, जाओ।" इस पर आचार्य ने उससे पूछा, "कितने दिनों के लिए?" बालक ने उत्तर दिया, "बारह बरस।" भद्रबाहु निमित्तज्ञानी थे। उन्होंने जाना कि बारह बरस का अकाल पड़ने वाला है और यहाँ मुनि-धर्म का निर्वाह कठिन हो जाएगा। इसलिए उन्होंने अपने संघ को एकत्र किया और कहा, "इस क्षेत्र में वर्षा नहीं होने के कारण बारह वर्ष का बहुत कठिन अकाल पड़ेगा। इसलिए आप सब साधुगण लवणसमुद्र के पास के प्रदेशों में (लवणाब्धि-समीपताम्) चले जाएँ।" हरिषेणकथाकोष (931 ई.) में यह लिखा है कि भद्रबाहु वहीं रह गये थे। किन्तु वे भी संघ के साथ श्रवणबेलगोल आये थे यह अब ऐतिहासिक तथ्य है। चन्द्रगुप्त ने जब भद्रबाहु के ये वचन सुने तो उन्होंने भी मुनि-दीक्षा ले ली।

आचार्य हरिषेण ने लिखा है—

भद्रबाहुवचः श्रुत्वा चन्द्रगुप्तो [नरेश्वरः।
अस्यैव योगिनः पार्श्वे दधौ जैनेश्वरं तपः॥
चन्द्रगुप्तमुनिः शीघ्रं प्रथमो दशपूर्विणाम्।
सर्वसंघाधिपो जातो विसषाचार्यसंज्ञकः॥
अनेन सह संघोऽपि समस्तो गुरुवाक्यतः।
दक्षिणापथदेशस्थपुन्नाटविषयं ययौ॥

(भद्रबाहु के वचन सुनकर चन्द्रगुप्त नरेश्वर ने इन्हीं योगी से जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। दशपूर्वों के प्रथम ज्ञाता चन्द्रगुप्त मुनि शीघ्र ही पूरे संघ के नायक हो गये और और उनका नाम विशाखाचार्य हो गया (मतान्तर से प्रभाचन्द्र)। गुरु के वचनों को सुनकर समस्त संघ इन संघ-पति के साथ दक्षिणापथ देश के पुन्नाट जनपद में पहुँचा।) इसी कथा में यह भी कहा गया है कि कुछ मुनियों ने सिन्ध की ओर विहार किया और वे शिथिलाचारी हो गये।

यह भी अनुश्रुति है कि चन्द्रगुप्त ने सोलह स्वप्न देखे थे (जैसे—बारह फण वाला सर्प जिसका अर्थ बारह वर्ष का अकाल था, काले हाथियों का युद्ध जिसका आशय था कि मेघ वांछित वर्षा नहीं करेंगे, आदि।) पूछे जाने पर आचार्य भद्रबाहु ने उन स्वप्नों का फल अशुभ बताया और अकाल की सम्भावना व्यक्त की।

निष्कर्ष यह कि आचार्य भद्रबाहु द्वारा बारह वर्ष के अकाल की संभावना व्यक्त करने पर चन्द्रगुप्त ने राजपाट छोड़ दिया और वे मुनि हो गये।

कुछ इतिहासकार जैन अनुश्रुति को सत्य मानकर इस बात से सहमत हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने जीवन के अन्तिम समय में जैन मुनि-दीक्षा ले ली थी। इन इतिहासकारों में विन्सेंट स्मिथ और प्रो. राधाकुमुद मुकर्जी प्रमुख हैं।

श्री एम. एस. रामस्वामी आयंगार ने भी अपनी पुस्तक 'स्टडीज इन साउथ इण्डियन जैनिज्म' में यह मत व्यक्त किया है कि श्रवणबेलगोल में चन्द्रगुप्त ने भद्रबाहु के बाद बारह वर्ष तप करते हुए शरीर त्यागा इसे एक ऐतिहासिक तथ्य माना जा सकता है। इसी प्रकार इस जैन अनश्रुति में, कि बारह वर्ष का अकाल पड़ा था, अविश्वास करने का कोई कारण ही नहीं है।

और भी ऐसे अनेक प्रमाण हैं जिनके आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि चन्द्रगुप्त ने भविष्यवाणी सुनते ही जिन-दीक्षा नहीं ली अपितु अकाल से प्रजा की रक्षा के सभी उपाय कर, उसे सुभिक्ष देशों में पहुँचाकर, अपनी आयु अल्प जानकर सम्भवतः श्रवणबेलगोल में हो दीक्षा ली। आचार्य भद्रबाहु ने उसे अपने पास रख लिया और शेष मुनियों के निर्वाह की चिन्ता से चन्द्रगुप्त को मुक्त करने के लिए, पूरे मुनि-संघ को और भी दक्षिण के प्रदेश में भेज दिया। इस प्रकार इस 'नरेश्वर' ने राजधर्म और आत्मधर्म दोनों की रक्षा की। जैन अनुश्रुति का यही अर्थ होना चाहिए कि चन्द्रगुप्त अन्त में जाकर मुनि हो गये। उन्होंने अपने रुग्ण गुरु भद्रबाहु की एक वर्ष तक सेवा की। उनके निर्वाण के बाद और बारह वर्ष तक वे मुनि रूप में श्रवणबेलगोल की उस छोटी पहाड़ी पर आत्म-साधना करते रहे जो उन्हीं के नाम पर चन्द्रगिरि कहलाती है। कहा जाता है कि उनके पुत्र बिन्दुसार ने चन्द्रगिरि पर कुछ मन्दिरों का निर्माण कराया था।

इसी प्रकार सम्राट् अशोक ने भी अपने पितामह की तपोभूमि चन्द्रगिरि की यात्रा की थी।

जैन परम्परा और श्रवणबेलगोल के शिलालेख यह उल्लेख करते हैं कि आचार्य भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मौर्य दोनों ही ने चन्द्रगिरि पर तपस्या की थी।

श्रवणबेलगोल के लगभग 600 ई. के शिलालेख में भद्रबाहु और प्रभाचन्द्र का उल्लेख है। करीब 650 ई. के एक शिलालेख में 'भद्रबाहु-चन्द्रगुप्त-मुनीन्द्रयुग्म' कहा गया है। शक संवत् 1085 के एक अन्य लेख में 'भद्रबाहु के चन्द्रप्रकाशोज्ज्वल शिष्य चन्द्रगुप्त' कथन किया गया है। ई. सन् 1163 या शक संवत् 1050 के शिलालेख में भद्रबाहु-चन्द्रगुप्त का उल्लेख कर कहा गया है कि वनदेवता भी चन्द्रगुप्त की सेवा किया करते थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि मुनि रूप में भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त ने एक ही समय में श्रवणबेलगोल में तपस्या की थी।

आचार्य गोवर्धन एवं आचार्य भद्रबाहु

श्रवणबेलगोल की चन्दगुप्त बसदि में पत्थर की जाली से युक्त 90 पाषाण-फलकों पर आचार्य गोवर्धन, आचार्य भद्रबाहु के विहार और चन्द्रगुप्त के मुनि होने की कथा उत्कीर्ण की गई है। इसलिए इन दोनों आचार्यों (जो चन्द्रगुप्त के समकालीन थे) के जीवन का संक्षिप्त वृत्तान्त भी जान लेना चाहिए।

अन्तिम जैन तीर्थंकर महावीर का निर्वाण आज से (1988 ई. में) 2515 वर्ष पूर्व या ईस्वी सन् से 527 पहले हुआ था। इन चौबीसवें तीर्थंकर ने कोई ग्रन्थरचना नहीं की किन्तु उनके अत्यन्त प्रतिभाशाली शिष्यों या गणधरों ने महावीर के उपदेशों को सुनकर जिन ग्रन्थों की रचना की वे श्रुत (सुने हुए) कहलाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ज्ञान के धारी तीन केवली महावीर के पश्चात् हुए हैं। ये हैं—गौतम, सुधर्मा और जम्बूस्वामी। इनका काल 62 वर्ष है। भगवान महावीर के उपदेशों को बारह अंगों में विभाजित किया गया था। केवल इन्हीं का ज्ञान रखने वाले आचार्य 'श्रुतकेवली' कहलाए। ये पाँच हुए हैं और इनका कुल समय 100 वर्ष है। विष्णुकुमार, नन्दिमित्र और अपराजित के बाद, चौथे श्रुतकेवली गोवर्धनाचार्य हुए हैं। अन्तिम तथा पाँचवें श्रुतकेवली भद्रबाहु थे।

गोवर्धनाचार्य के सम्बन्ध में यह उल्लेख पाया जाता है कि एक बार वे बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की निर्वाणभूमि ऊर्जयन्तगिरि (आजकल का गिरनार पर्वत) की वन्दना के उद्देश्य से विहार करते हुए अपने मुनि-संघ के साथ पुण्ड्रवर्धन देश के कोटिनगर में पधारे। वहाँ उन्होंने एक उद्यान में एक बालक को एक के ऊपर एक गोटियाँ रखते देखा। उसकी इस प्रतिभा को देखकर उन्होंने यह धारणा बनाई कि यह बालक किसी दिन 'तपोनिधि' एवं श्रुतकेवली होगा। इस बालक का नाम भद्रबाहु था। वह कोटिपुर, जिसका पुराना नाम देवकोट्ट था, के राजा पद्मरथ के द्विज सोमशर्मा और सोमश्री का पुत्र था। गोवर्धनाचार्य उस बालक के पिता के पास गए और उनसे वह बालक अपने संरक्षण में माँग लिया। पिता ने आचार्य को उसे अपने साथ ले जाने की अनुमति दे दी। गोवर्धनाचार्य ने उसे 'नानाशास्त्रार्थकोविद' बना दिया। उनका वह शिष्य पुनः अपने पिता के पास आया और दीक्षा ले लेने की उनसे अनुमति प्राप्त की। गोवर्धनाचार्य के साथ रहकर भद्रबाहु 'महावैराग्यसम्पन्न' और ज्ञान में तीव्रबुद्धि हो गए और

थोड़े ही समय में उन्होंने श्रुत का सम्पूर्ण ज्ञान प्रात कर लिया। यह कार्य सम्पन्न होने के बाद गोवर्धनाचार्य दिवंगत हो गए। अब तक भद्रबाहु एक महान् योगी के रूप में पूज्य हो चुके थे। वे धर्म का उपदेश देकर सभी का आत्मकल्याण करने लगे। कालान्तर में विहार करते हुए वे अवन्ती प्रदेश की उज्जयिनी नगरी में सिप्रा नदी के तट पर उपवन में पधारे। वहीं इन महामुनि के दर्शन नरेश्वर चन्द्रगुप्त ने किए। इससे आगे की कथा 'चन्द्रगुप्त प्रकरण' में लिखी जा चुकी है।

भद्रबाहु के चरित्र का वर्णन संस्कृत के 'बृहत्कथाकोष', 'भद्रबाहुचरित्र', और कन्नड के 'मुनिवंशाभ्युदय', 'वड्डाराधने' और 'राजावलिकथे' में वर्णित है।

सम्राट् चन्द्रगुप्त के बाद उनके पुत्र बिन्दुसार और उनके पुत्र अशोक (महान्) हुए। अशोक के पुत्र कुणाल के अन्धे कर दिए जाने पर, कुणाल के पुत्र सम्प्रति ने लगभग 50 वर्ष तक शासन किया। इस अवधि में उसने बहुत से स्तम्भों पर लेख खुदवाए एवं राज्य के विभिन्न भागों में जिन-मन्दिर बनवाए, विशेषकर राजस्थान और सौराष्ट्र में। उज्जैन में उसका पुत्र शालिशुक राजा हुआ। उसने और उसकी संतति ने ईसा पूर्व 164 तक राज्य किया। उसके बाद वहाँ मौर्य वंश का अन्त हो गया। इसी प्रकार मगध में अन्तिम मौर्य राजा ब्रहद्रथ की उसके ब्राह्मण मन्त्री पुष्पमित्र शुंग ने हत्या कर दी और वहाँ भी मौर्य साम्राज्य का अन्त हो गया।

मौर्य साम्राज्य के बाद, कर्नाटक प्रदेश प्रतिष्ठानपुर (पैठन) के सातवाहन राजाओं के अधिकार में ईसा की पहली शताब्दी में आ गया। तीसरी शताब्दी में यह क्षेत्र बनवासि के कदम्बों के शासन में आया। किन्तु 350 ई. के आस-पास जैनाचार्य सिंहनन्दि की सहायता से गंगवंश का शासन भी कर्नाटक में प्रारम्भ हुआ। इस वंश ने 1040 ई. तक प्रभावी ढंग से राज्य किया। इसी वंश के शासक राचमल्ल के मन्त्री एवं सेनापति चामुण्डराय ने 981 ई. में बाहुबली की विशाल प्रतिमा श्रवणबेलगोल में प्रतिष्ठित कराई। गंगवंश के बाद श्रवणबेलगोल का सम्बन्ध अन्य राजवंशों जैसे राष्ट्रकूट, होय्सल, विजयनगर, मैसूर के ओडेयर शासकों तथा कर्नाटक की वर्तमान प्रजातन्त्रीय शासन व्यवस्था से भी रहा है। इसका उल्लेख यथास्थल इस पुस्तक में किया गया है।

गंगराज राचमल्ल के मन्त्री एवं सेनापति चामुण्डराय

गोमटेश्वर की विशाल प्रतिमा प्रतिष्ठापित करानेवाले महापुरुष चामुण्डराय थे। ये गंग-वंशी राजा राचमल्ल के मन्त्री एवं सेनापति थे। गंगवंश के राजाओं ने मैसूर (महिषमण्डल) और उसके आस-पास के प्रदेशों पर लगभग एक हज़ार वर्ष तक राज्य किया और जैनधर्म के प्रचार-प्रसार के साथ ही अनेक जिनमन्दिरों आदि का निर्माण कराया था। इनका शासन कर्नाटक में जैनधर्म का स्वर्णयुग माना जाता है। इस प्रख्यात वंश की स्थापना एवं अन्य धार्मिक कार्यों का उल्लेख अनेक शिलालेखों एवं ताम्रपत्रों में पाया जाता है। शिमोगा ज़िले के कल्लूगुड्ड के सिद्धेश्वर मन्दिर के 1121 ई. के एक लम्बे शिलालेख में जैनाचार्य सिंहनन्दि द्वारा इस वंश की स्थापना एवं उसके उत्तराधिकारियों का उल्लेख पाया जाता है। उसके अनुसार यह वंश मूलरूप

से उत्तर भारतीय था। इनके पूर्वज राजा विष्णुगुप्त ने भगवान नेमिनाथ के निर्वाण पर ऐन्द्र-ध्वज पूजा की थी। कालान्तर में तीर्थंकर पार्श्वनाथ को केवलज्ञान होने पर इस वंश के प्रियबन्धु राजा ने उनकी पूजा की थी।

गंगवंश बढ़ता गया। उसी वंश में पद्मनाभ राजा के शासन-काल में उज्जयिनी के राजा महिपाल ने अचानक उस पर आक्रमण किया। इस अवसर पर राजा पद्मनाभ ने अपने दो पुत्रों माधव और दड़िग को दक्षिण की ओर भेज दिया। चलते-चलते वे दोनों पेरूर नामक तालाब और सुरम्य पहाड़ी के पास पहुँचे। वहाँ उन्हें एक चैत्यालय दिखाई दिया। उन्होंने जिन-वन्दना की और वहीं उन्हें आचार्य सिंहनन्दि के दर्शन हुए। दोनों भाइयों ने आचार्य की विनय की और अपने आने का वृत्तान्त उन्हें सुनाया। आचार्य ने उन्हें होनहार जानकर विद्याओं में प्रवीण किया और पद्मावती से उनके लिए वर प्राप्त किया। एक दिन मुनिराज सिंहनन्दि ने देखा कि माधव ने अपनी पूरी शक्ति से एक पाषाण-स्तम्भ पर अपनी तलवार से प्रहार किया तो वह स्तम्भ कड़कड़ करते हुए नीचे गिर पड़ा। मुनिराज ने इस शक्ति को देखकर उनको कर्णिकार के परागों से तैयार किया एक मुकुट पहनाया, उन पर अनाज की वृष्टि की और ध्वज के लिए अपनी (मोरपंख की) पीछी का निशान दिया और इस प्रकार उन्हें राजा बना दिया। साथ ही उन्होंने यह चेतावनी भी दी, "अपनी प्रतिज्ञात बात को यदि वे नहीं करेंगे; अगर वे जिनशासन को स्वीकार नहीं करेंगे; अगर वे दूसरों की स्त्रियों को ग्रहण करेंगे; अगर वे मांस और मधु का सेवन करेंगे; अगर वे नीचों से सम्बन्ध जोड़ेंगे; अगर वे आवश्यकता वालों को अपना धन नहीं देंगे; अगर युद्धभूमि से भाग जाएँगे—तो उनका वंश नष्ट हो जाएगा।" और उस समय से ही "उच्च नन्दगिरि उनका किला हो गया, कुवलाल (आधुनिक कोलार) उनका नगर बन गया, 96000 उनका देश हो गया, निर्दोष जिन उनके देव हो गये, विजय उनकी युद्धभूमि की साथिन बन गई और जिनमत उनका धर्म हो गया।"

इस लेख में आचार्य सिंहनन्दि को 'गंगराज्य-समुद्धरण' कहा गया है। सातवीं शताब्दी के शिलालेखों से भी इस बात की पुष्टि होती है। यह घटना कुछ विद्वानों के अनुसार 178 ई. और कुछ के अनुसार 350 ई. की बताई जाती है। इस वंश ने प्रभावी ढंग से ग्यारहवीं सदी तक तथा किसी-न-किसी रूप में 16वीं सदी तक राज्य किया। इतिहास में शायद ही कोई राजवंश हो जिसने इतनी लम्बी अवधि तक शासन किया।

इसी वंश का बड़ा प्रतापी एवं धर्मात्मा राजा गंगराज मारसिंह (961-674) ई. में हुआ है। शिलालेखों में उसकी विजयों से सम्बन्धित अनेक उपाधियाँ जैसे नोलम्बकुलान्तक, गंग-कन्दर्प आदि दी गई हैं। साथ ही उसे 'जिनेन्द्रनित्याभिषेक रत्न-कलश' जैसी धार्मिक उपाधियाँ दी गई हैं। कर्नाटक के पुलिगेरे (आधुनिक लक्ष्मेश्वर) में उसने एक जिनमन्दिर बनवाया था जो 'गंगकन्दर्प जिनालय' कहलाता था। अपने जीवन के अन्तिम समय में उसने बंकापुर में आचार्य अजितसेन से सल्लेखनाव्रत ग्रहण कर अपना शरीर त्यागा था।

राजा मारसिंह के बाद, उसका पुत्र राचमल्ल सत्यवाक्य चतुर्थ (974-984 ई.) गंग-राज्य का स्वामी हुआ। उसने अपने राज्य के प्रथम वर्ष में ही श्रवणबेलगोल के अनन्तवीर्य गुरु को पेग्गूर ग्राम तथा अन्य भूमि दान में दी थी। धर्मप्राण गंगवंश के जैनधर्मानुयायी इसी राजा

के मन्त्री एवं सेनापति थे चामुण्डराय।

चामुण्डराय तीन राजाओं—मारसिंह, राचमल्ल और उसके उत्तराधिकारी रक्कसगंग के मन्त्री रहे। सेनापति के रूप में उन्होंने क्षय को प्राप्त हो रहे गंगराज्य की, 18 युद्धों में विजय प्राप्त कर, अपूर्व सेवा की। सैनिक विजयों के कारण उन्हें 'वीरमार्तण्ड', 'रणरंगसिंह', 'वैरिकुलकालदण्ड', 'समरकेसरी', 'सुमटचूडामणि' आदि अनेक उपाधियाँ प्राप्त थीं। यह जानकारी हमें श्रवणबेलगोल की विंध्यगिरि पर त्यागद ब्रह्मदेव स्तम्भ पर खुदे लेख से मिलती है। इस स्तम्भ के तीन तरफ चामुण्डराय सम्बन्धी और भी जानकारी थी किन्तु हेग्गडे कण्ण नामक एक सज्जन ने अपना लेख लिखवाने के लिए यह जानकारी घिसवा दी। गोमटेश्वर मूर्ति सम्बन्धी जानकारी भी उसमें रही होगी। खैर, वह अब हमें धार्मिक ग्रन्थों से मिल जाती है।

समरधुरन्धर चामुण्डराय आचार्य अजितसेन और आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य थे, उनके उपदेश सुनते थे और धर्म-चर्चा करते थे। कहा जाता है कि एक बार आचार्य नेमिचन्द्र प्राचीन ग्रन्थ 'षट्खण्डागम' का अध्ययन कर रहे थे कि चामुण्डराय उधर आ निकले तो आचार्य ने ग्रन्थ बन्द करके रख दिया और उनसे कहा कि उसका विषय कठिन है। चामुण्डराय ने उन्हें उसे पढ़ाने का आग्रह किया तो आचार्य ने सरल भाषा में 'गोम्मटसार' नामक एक ग्रन्थ ही रच दिया। जिसका नाम भी उन्हीं के नाम पर रखा (चामुण्डराय का एक नाम 'गोम्मट' भी था और इसीलिए उनके द्वारा प्रतिष्ठित बाहुबली की मूर्ति 'गोमटेश्वर' भी कहलायी)। चामुण्डराय ने धर्मग्रन्थों का भी गहन अध्ययन किया था। इस प्रकार वे शस्त्र और शास्त्र दोनों में पारंगत हो गए। उनके रचित ग्रन्थ है—1. गोम्मटसार की वीरमार्तण्डी नामक कन्नड टीका जो अभी अनुपलब्ध है, 2. चारित्रसार और 3. चामुण्डराय पुराण या त्रिषष्टिलक्षण-महापुराण (978 ई.) जिसमें 24 तीर्थंकरों सहित 63 शलाकापुरुषों का चरित्र उन्होंने कन्नड में लिखा है। कन्नड भाषा के साहित्य के इतिहास में भी उनका उच्च स्थान है। साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित तथा रं. श्री मुगलि द्वारा लिखित 'कन्नड साहित्य का इतिहास' (हिन्दी संस्करण) में लिखा है—"दसवीं शताब्दी के अन्य कवियों में चावुण्डराय गद्यकार के रूप में प्रसिद्ध थे। पम्प की तरह वे कवि भी थे और रणबाँकुरे भी।···उनके 'चावुण्डराय-पुराण' का महत्त्व मुख्यत: गद्य शैली के लिए है।···पाँच-छह शताब्दियों से कन्नड़ में विकसित होते हुए कथागद्य और शास्त्र-गद्य के सम्मिश्रण में 'चामुण्डराय पुराण' विशिष्ट है।"

वास्तु-शिल्प के क्षेत्र में भी चामुण्डराय का योगदान अद्वितीय है। उन्होंने संसार प्रसिद्ध गोमटेश्वर मूर्ति बनवाई जो एक हज़ार वर्ष बीत जाने पर भी उनकी कीर्ति का स्मरण कराती रहती है। इस मूर्ति के अतिरिक्त, चामुण्डराय ने अनेक जिनमन्दिरों, मूर्तियों आदि का निर्माण, जीर्णोद्धार और प्रतिष्ठा करायी थी। श्रवणबेलगोल की चन्द्रगिरि पर स्व-निर्मापित चामुण्डराय बसदि में इन्द्रनीलमणि की मनोज्ञ नेमिनाथ (गोम्मटजिन) की प्रतिमा प्रतिष्ठित करायी थी। यह मन्दिर उक्त स्थान के जिनालयों में सर्वाधिक सुन्दर समझा जाता है। विन्ध्यगिरि पर उन्होंने त्यागद ब्रह्मदेव नाम का सुन्दर मानस्तम्भ भी बनवाया था।"

(डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन)

गोमटेश्वर से पहले की बाहुबली मूर्तियाँ

जब तक और भी प्राचीन बाहुबली मूर्तियाँ प्राप्त नहीं होतीं, तब तक यह कहा जा सकता है कि कदम्बराज रविवर्मा द्वारा पाँचवीं शताब्दी में निर्मित 'मन्मथनाथ' (कामदेव या बाहुबली) के मन्दिर का निर्माण सम्भवतः पहला बाहुबली मन्दिर सिद्ध होता है। इससे सम्बन्धित शिलालेख उत्तर कर्नाटक ज़िले के बनवासि के निकट गुदनापुर ग्राम में प्राप्त हुआ है।

कर्नाटक के अन्य स्थानों की ज्ञात प्राचीन बाहुबली मूर्तियाँ इस प्रकार हैं—

ऐहोल की एक गुफा में बाहुबली की मूर्ति—यह सातवीं सदी की मानी जाती है। बाहुबली की जटाएँ कन्धों तक प्रदर्शित हैं और उनकी बहनें लताओं को हटाते हुए दिखाई गई हैं। प्रतिमा लगभग सात फीट ऊँची है।

बादामी का जैन गुफा-मन्दिर—इस गुफा-मन्दिर में बाहुबली की अत्यन्त सुन्दर आठ फीट ऊँची प्रतिमा है जो छठी या सातवीं सदी में चट्टान को काटकर बनाई गई होगी (वैसे विद्वान् इस गुफा को आठवीं सदी में निर्मित मानते हैं)।

हुमचा में 978 ई. में राजा विक्रम सान्तर ने एक विशाल 'बाहुबली बसदि' बनवाई थी जिसकी अब केवल चौकी ही शेष रह गई है और बाहुबली की जीर्ण पाँच फीट ऊँची प्रतिमा अब कुन्द-कुन्द विद्यापीठ भवन में रखी हुई है। इस मूर्ति पर भी जटाएँ प्रदर्शित हैं किन्तु लताएँ केवल पैरों तक ही उत्कीर्ण हैं।

गोमटेश्वर-मूर्ति-निर्माण की कहानी

चामुण्डराय की जिनभक्त माता काललदेवी ने पुराण का श्रवण करते समय भरत और बाहुबली की कथा के प्रसंग में यह सुना कि चक्रवर्ती भरत ने अपने परम तपस्वी लघु भ्राता की पोदनपुर में 525 धनुष ऊँची एक मूर्ति बनवाई थी किन्तु काल के प्रभाव से अब उसके आस-पास कुक्कुट सर्पों का वास हो गया है और परम शान्तिदायक इस मूर्ति के दर्शन अब दुर्लभ हो गए हैं। यह सुन काललदेवी ने प्रतिज्ञा की कि वे तब तक दूध ग्रहण नहीं करेंगी जब तक कि वे इस मूर्ति का दर्शन न कर लें। मातृभक्त चामुण्डराय को अपनी पत्नी अजितादेवी से जब यह बात मालूम हुई तो वे अपनी माता की इच्छा की पूर्ति के लिए उद्यत हुए। सेनापति और मन्त्री तो वे थे ही, कुछ सैनिकों को साथ लेकर रथारूढ़ हो वे पोदनपुर की खोज में निकल पड़े। चलते-चलते वे श्रवणबेलगोल आए। वहाँ उन्होंने चन्द्रगिरि पर भद्रबाहु स्वामी के चरणों की वन्दना की और वहीं पर पार्श्वनाथ के दर्शन किए। उनके साथ उस युग के महान् आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती भी थे।

चामुण्डराय के दल ने रात्रि-विश्राम के लिए श्रवणबेलगोल में पड़ाव डाला। रात्रि में चामुण्डराय को स्वप्न में बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की यक्षिणी कूष्माण्डिनी देवी, जो कि श्रवणबेलगोल में आज भी विशेष मान्यता प्राप्त शासन-देवी है, ने कहा, "पोदनपुर बहुत दूर है। वहाँ की बाहुबली मूर्ति कुक्कुट सर्पों से घिर गई है, उसके दर्शन दुर्लभ हो गए हैं। वहाँ की तुम्हारी यात्रा कठिन है। अतः प्रातःकाल स्नानादि शुद्धिपूर्वक सामने की बड़ी पहाड़ी पर सोने का एक तीर चलाओ। जहाँ तुम्हारा तीर गिरेगा वहीं बाहुबली प्रकट होकर तुम्हें दर्शन देंगे।"

इसी प्रकार का स्वप्न उनकी माता और आचार्य नेमिचन्द्र को भी आया। देवी के आदेशानुसार और आचार्य के परामर्श के अनुसार, चामुण्डराय ने वैसा ही करने का निश्चय किया। जब उन्होंने सोने का तीर छोड़ा तो आश्चर्य ! बाहुबली के मस्तक की स्थूल रूपरेखा प्रकट हो गयी।

इस अनुश्रुति के रूपक के रहस्य को सम्भवतः नहीं समझते हुए कुछ लोगों ने यह धारणा बना ली कि विन्ध्यगिरि पर गोमटेश्वर बाहुबली की मूर्ति तो पहले से ही मौजूद थी, चामुण्डराय ने तो उसे केवल 'प्रकट' किया है। इस विश्वास को और भी हवा दी कुछ लेखकों के इस कथन ने कि यह मूर्ति तो राम के युग की है। राम ही लंका से वापस लौटते समय इसे विन्ध्यगिरि पर छोड़ गए थे। किन्तु इस पौराणिक-सी अनुश्रुति का अर्थ यही है कि चामुण्डराय और आचार्य नेमिचन्द्र बाहुबली की विशाल मूर्ति का निर्माण कराने हेतु 'शिला-शोधन' के लिए निकले थे। इस प्रकार की मूर्ति का निर्माण करने के लिए सबसे पहले ऐसी ठोस, चिकनी और कठोर चट्टान देखी जाती है जो कि छिद्रों से रहित हो। फिर, मंत्रादि से उसकी पूजा निर्विघ्न मूर्ति-निर्माण के लिए की जाती है और उसका 'तक्षण' मंत्रों से पवित्र छैनी या औजार से किया जाता है और मूर्ति को बनवाने वाला ही पहली छैनी चलाता है। इस प्रसंग में मंत्रशुद्ध सोने का तीर चामुण्डराय ने चलाया था। मूर्ति-निर्माण सम्बन्धी अनेक जैनग्रंथों में प्रतिष्ठाशास्त्र प्रमुख है। उसमें भी इस प्रकार का विधान है। कारकल की 41 फीट 5 इंच ऊँची बाहुबली मूर्ति के निर्माण के सम्बन्ध में भी हम देख चुके हैं कि मूर्ति-निर्माता राजा उपयुक्त शिला की खोज में निकला था और नेल्लिकर नामक स्थान पर शिला की उपयुक्त पूजा आदि की थी (देखिए 'कारकल')।

मूर्ति पर हुए व्यय और कलाकार की लगन सम्बन्धी दो रोचक अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं—

शर-संधान के बाद चामुण्डराय ने प्रधान शिल्पी को नियुक्त किया और उससे पूछा, "बोलो, तुम मूर्ति-निर्माण का क्या पारिश्रमिक लोगे ?" शिल्पी ने मन-ही-मन विचार किया कि इतनी बड़ी प्रतिमा के निर्माण में जो व्यय होगा उसे चामुण्डराय क्या दे पाएँगे। चतुर सेनापति मंत्री उसके भाव को ताड़ गए। उनके कुरेदने पर शिल्पी बोला, "इसमें बहुत समय लगेगा।" चामुण्डराय ने कहा, "ठीक है, तुम सकुचा रहे हो। अपने मन का संशय दूर करो। मैं तुम्हें, जितना पाषाण तुम छीलोगे (तक्षण करोगे) उसकी तौल बराबर सोना पारिश्रमिक में देता जाऊँगा।" शिल्पी आश्वस्त हुआ और दोनों में यह तय हुआ कि मूर्ति का स्थूल आकार वह छाँट लेगा और उसके बाद उसकी छैनी जितना पाषाण तराशेगी उतना उसे सोना मिलेगा। शिल्पी को बाहुबली-भरत की कथा समझाई गई और प्रधान-शिल्पी तथा अन्य सहायकों द्वारा मूर्ति-निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो गया। किन्तु तभी एक घटना घट गई। जब प्रधान शिल्पी अपने पारिश्रमिक का ढेर सारा सोना लेकर अपनी माता के सामने पहुँचा और उसके चरणों में उसने वह स्वर्ण-राशि रखी तो उसके हाथ सोने से चिपक गए। माता चिन्तित होकर आचार्य नेमिचन्द्र के पास दौड़ी-दौड़ी गई और उनसे समाधान या संकट से मुक्ति का उपाय पूछा। आचार्य ने उसे बताया कि लोभ के कारण तुम्हारे पुत्र की यह दशा हुई है। वापस आकर शिल्पी की माता ने अपने पुत्र से कहा, 'बेटा, एक पुत्र चामुण्डराय है जो अपनी माता की खातिर सोने से अपनी जान छुड़ा रहा है और एक तू है कि अपने को और अपनी माता को सोने के जाल में फँसा रहा है।

धार्मिक कार्य में लोभ का यही फल होता है।" शिल्पी को बोध हो गया और उसके हाथ अपने आप ही सोने से अलग हो गए। उसके बाद से उस शिल्पी ने पूरी तन्मयता के साथ बाहुबली की मूर्ति के निर्माण में अपने आपको लगा दिया।

शास्त्रीय विधान भी है कि जब कोई शिल्पी भगवान की पवित्र मूर्ति बनाता है तो उसे पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए। प्रधान शिल्पी ने भी सांसारिक कार्यों से स्वयं को मुक्त कर ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था, ऐसा जान पड़ता है। वह अपने घर भी नहीं जाता था। पहाड़ी पर ही उसका निवास हो गया था। उसकी पत्नी जब उसके लिए भोजन लाती तो वह उससे बिना बोले भोजन कर लेता और मूर्ति के निर्माण-कार्य में दत्तचित्त बना रहता। यह हालत जब पत्नी की बर्दाश्त के बाहर हो गई तो उसने चामुण्डराय की पत्नी से इसकी शिकायत की। अजितादेवी ने शिल्पी की पत्नी पर अविश्वास करते हुए कहा कि "आज मैं तुम्हारे पति के लिए भोजन लेकर जाऊँगी और देखती हूँ कि वह किस प्रकार का व्यवहार करता है।" वह शिल्पी का भोजन लेकर गई तो शिल्पी ने वैसा ही रूखा व्यवहार किया जैसा कि वह अपनी पत्नी के साथ करता था। अजितादेवी और चामुण्डराय ने शिल्पी की इस तन्मयता की सराहना की।

जब मूर्ति-निर्माण का कार्य समाप्त हुआ तो शिल्पी घर लौटा। जब पत्नी ने उसे भोजन परोसा तो वह बोला, "यह कैसा भोजन है? इसमें मसाले, नमक कुछ भी नहीं है।" इस पर पत्नी ने कहा, "तुम तो जब-तब पहाड़ी पर इसी प्रकार का भोजन करते रहे हो। अब स्वाद कैसे आ गया?" सही परिस्थिति समझ में आने पर पति-पत्नी दोनों हंस पड़े। तो शिल्पी की अनन्य तन्मयता और चामुण्डराय की अटूट दानवीरता से महामुनि बाहुबली की मूर्ति एक अनुपम कलाकृति बनकर तैयार हो गई।

अब चामुण्डराय ने उसकी प्रतिष्ठा का बीड़ा उठाया। उन्हें याद था उनकी माता दूध तब ग्रहण करेंगी जबकि वे बाहुबली के दर्शन कर लेंगी। अतः उन्होंने निश्चय किया कि बाहुबली का प्रथम अभिषेक दूध से किया जाए। प्रतिष्ठा की बात सुनकर हज़ारों जन वहाँ एकत्र हो गए। सैकड़ों मन दूध इकट्ठा किया गया मूर्ति के अभिषेक के लिए। मूर्ति का प्रतिष्ठा-कार्य सम्पन्न कराया आचार्य श्री अजितसेन के शिष्य आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने। विशाल मंच बनाया गया—हाथों-हाथ बाहुबली के मस्तक तक दूध से भरे कलश अभिषेक के लिए पहुँचाने हेतु। पहला कलश चामुण्डराय ने उठाया और अभिषेक किया बाहुबली का। कलश पर कलश दूध के डाले गए किन्तु मूर्ति के पूरे शरीर का अभिषेक नहीं हो पाया। चामुण्डराय तथा अन्य जन चिन्तित हो उठे। कौन-सा विघ्न उपस्थित हो गया? कौन है वह भाग्यशाली पुरुष या महिला जिसके हाथों बाहुबली का अभिषेक होगा? सबको अवसर दिया गया किन्तु अभिषेक नहीं हो पाया। इतने में एक कोने में खड़ी विनीत बुढ़िया आचार्य नेमिचन्द्र को दिखी। उन्होंने आदेश दिया कि उस वृद्धा को भी अभिषेक का अवसर दिया जाए। उसके हाथों में गुल्लिकाय (एक प्रकार के फल का खोखला हिस्सा) था। उसी में उसने कुछ दूध भर रखा था। लोग हँसे कि इस बुढ़िया से क्या अभिषेक होगा। सहारा देकर उसे सबसे ऊपर मंच पर ले जाया गया। उसने दूध की जो धार छोड़ी तो पूरी मूर्ति दूध में नहा गई और दूध की धाराएँ विन्ध्यगिरि पर बह

निकलीं। सभी आश्चर्य से मौन थे। वृद्धा नीचे उतरी और देखते ही देखते भीड़ में न जाने कह अदृश्य हो गई। चामुण्डराय ने फिर अपने गुरु से इस आश्चर्य का कारण पूछा। उन्होंने बताय कि मूर्ति के निर्माण से चामुण्डराय को कुछ गर्व हो गया था। उसी को दूर करने के लि कूष्माण्डिनी देवी ने बुढ़िया का रूप धारण कर यह आश्चर्य प्रकट किया है। चामुण्डराय एक दम विनम्र जीवन जीने लगे। कहते हैं उन्होंने ही गुल्लिकायज्जी की मूर्ति बनवाई थी।

गोमटेश्वर की इस अद्वितीय मूर्ति की प्रतिष्ठा किस दिन हुई थी, इसका ठीक-ठीव प्रमाण नहीं मिलता। कन्नड़ कवि दोडय्य ने 1550 ई. में 'भुजबलि(बाहुबली)चरित' काव्य मे लिखा है कि इसकी प्रतिष्ठा चैत्र शुक्ल पंचमी कल्कि संवत् 600 में हुई थी। सम्भवतः उनके समय में कोई प्रमाण उपलब्ध रहा हो। जो भी हो, विद्वानों ने दसवीं सदी और ग्यारहवीं सदी के अनेक वर्ष सुझाए हैं। किन्तु अब श्री एम. गोविन्द पै और स्व. श्री नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार का यह मत प्रायः सभी विद्वानों को स्वीकार है कि इस मूर्ति की प्रतिष्ठा 13 मार्च 981 ई. को हुई थी।

धर्मपरायण चामुण्डराय को अनेक धार्मिक उपाधियों से विभूषित किया गया था। सद सत्य बोलने के कारण उन्हें 'सत्य युधिष्ठिर' कहा जाता था। धार्मिक गुणों के कारण वे 'सम्यक्त्वरत्नाकर' और साधर्मी बन्धुओं के लिए 'अण्णा' (पिता) थे। ये उपाधियाँ इस समर शूर के धर्मपूर्ण जीवन को सूचित करती हैं।

बाहुबली की विशाल प्रतिमा के अतिरिक्त चामुण्डराय ने अनेक मन्दिर-मूर्तियों एवं स्तम्भों का निर्माण कराया जैसे—(1) चन्द्रगिरि पर नेमिनाथ मन्दिर या चामुण्डराय बसदि (2) विन्ध्यगिरि पर त्यागद ब्रह्मदेव स्तम्भ (3)अखंड बागिलु (विन्ध्यगिरि) और (4) ब्रह्मदेव स्तंभ तथा (5) गुल्लिकायज्जी की मूर्ति। इन सबका परिचय श्रवणबेलगोल 'वंदना-क्रम' में यथास्थान दिया जाएगा।

शस्त्र, शास्त्र और शिल्प में उत्तरोत्तर वृद्धिगत, शिखरचुम्बी कीर्ति को प्राप्त चामुण्डराय जिनका नाम आज भी और पिछले युगों के लाखों जन को स्मरण रहा और है, का 990 ई में देहावसान हो गया।

चामुण्डराय का सम्पूर्ण परिवार ही अत्यन्त धार्मिक था। उनकी माता काललदेवी और पत्नी अजितादेवी तो गोमटेश्वर-निर्माण गाथा के साथ जुड़ी हुई हैं ही, उनकी छोटी बहन पुल्लब्बे ने भी विजयमंगलम् (कोयम्बटूर जिला) की चन्द्रनाथ बसदि में सल्लेखना विधि द्वारा शरीर त्यागा था। उनके पुत्र जिनदेव ने भी श्रवणबेलगोल की चामुण्डराय बसदि की ऊपरी मंजिल बनवाकर उसमें तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा स्थापित करायी थी।

विशालकाय गोमटेश्वर-मूर्तियों की परम्परा

चामुण्डराय ने गोमटेश्वर की उत्तुंग प्रतिमा क्या निर्माण कराई, विशालकाय मूर्तियां बनवाने की एक नयी परम्परा ही प्रारम्भ कर दी। कर्नाटक की इस प्रकार की बहुत ऊँची प्रतिमाओं का यहाँ उल्लेख किया जाता है (विवरण सम्बन्धित स्थान के अन्तर्गत देखिए)।

कारकल में गोमटेश्वर की लगभग 42 फीट ऊँची (41 फीट 5 इंच) प्रतिमा 1432 ई में 13 फरवरी को पहाड़ी पर दूर से लाकर प्रतिष्ठित की गई।

वेणूर की गोमटेश्वर की 35 फीट ऊँची प्रतिमा पहली मार्च 1604 ई. के दिन पहाड़ी पर प्रतिष्ठित की गई। इसके निर्माण के प्रेरक थे श्रवणबेलगोल के भट्टारक श्री चारुकीर्ति।

गोम्मटगिरि (श्रवणगुड्ड) (मैसूर से लगभग 25 कि. मी.) की छोटी-सी पहाड़ी पर 18 फीट ऊँची गोमटेश्वर की प्रतिमा उसकी निर्माण-शैली के आधार पर चौदहवीं शताब्दी की की मानी जाती है।

धर्मस्थल में बाहुबली की 39 फीट ऊँची मूर्ति 1982 ई. में प्रतिष्ठित की गई है। यह भी एक पहाड़ी पर है और बहुत सुन्दर है।

होसकोरे हल्ली—कन्नवाड़ी (कृष्णराज सागर) के उस पार गंगकालीन एक गोम्मट मूर्ति है जो 18 फीट ऊँची है। मैसूर राज्य के अन्वेषण विभाग ने हाल ही में इसका अन्वेषण किया है। (डॉ. प्रेमचन्द्र जैन)

कर्नाटक की सीमा के पास कुम्भोजगिरि या बाहुबलीगिरि पर (कोल्हापुर से 20 कि. मी.) बाहुबली की 28 फीट ऊँची मूर्ति है जो कि कुम्भोज बाहुबली के नाम से विख्यात है। इसकी प्रतिष्ठा 1963 ई. में हुई थी।

एलाचार्य मुनि विद्यानन्दजी की प्रेरणा से उत्तर भारत के अनेक स्थानों में गोमटेश्वर प्रतिमाएँ स्थापित हुई हैं जिनमें फीरोजाबाद, बम्बई और इन्दौर (गोम्मटगिरि) प्रमुख हैं।

श्रवणबेलगोल का जैनमठ और भट्टारक-परम्परा

यहाँ का जैन मठ सम्भवतः पिछले एक हजार वर्षों से ही एक गुरुकुल, एक अनुपम शास्त्र-भण्डार, जैन संस्कृति और स्थानीय स्मारकों का जागरूक प्रहरी और धर्म-प्रचार एवं प्रभावना की सशक्त संस्था तथा अनेक उतार-चढ़ाव के युगों के बावजूद भी सदा आशावान एवं प्रेरक रहा है। प्रत्येक भट्टारक का चुनाव बड़ी खोजबीन एवं दूरदर्शिता के साथ किया जाता है। चुने जाने पर मठाधिपति या भट्टारक स्वामी की शोभा-यात्रा निकाली जाती है और पट्टाभिषेक किया जाता है जो कि हर बारह वर्ष बाद पुनः दोहराया जाता है। अभिषेक के बाद भट्टारक 'स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्ति पण्डिताचार्य' कहलाते हैं। यही नाम यहाँ के प्रत्येक भट्टारक का होता है। मूडबिद्री का मठ भी श्रवणबेलगोल मठ की एक शाखा है। वहाँ के भट्टारक भी यही नाम धारण करते हैं। भट्टारक केसरिया वस्त्र पहनते हैं और मयूरपिच्छी तथा कमण्डलु साथ रखते हैं।

श्रवणबेलगोल मठ का आधिकारिक इतिहास उपलब्ध नहीं है किन्तु कुछ शिलालेखों में यहाँ के चारुकीर्तियों के उल्लेख से इस संस्था की प्राचीनता सिद्ध होती है।

अनुश्रुति है कि गोमटेश्वर की मूर्ति की प्रतिष्ठापना के बाद चामुण्डराय ने यहाँ गाँव बसाया था और आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती को इस क्षेत्र की रक्षा एवं प्रभावना का कार्य सौंपा था। यह बात दसवीं सदी की है।

बारहवीं सदी में दक्षिण भारत में जैन धर्म पर संकट आया था। अन्य धर्मावलम्बियों ने इस सदी और उसके बाद में जैनों पर अत्याचार किए, सामन्तों से करवाए एवं आतंक फैलाया।

फलस्वरूप कुछ आचार्यों ने मुनिवेश त्याग कर जैन धर्म की रक्षा के लिए पिच्छी-कमण्डलुधारी भट्टारक वेश धारण किया तथा चमत्कार आदि के लिए शासन-देवताओं को आगे किया ताकि शेष बचे जैन भी अन्य धर्मों की-सी तड़क-भड़क पा सकें।

यह भी अनुश्रुति है कि दोरसमुद्र के राजा विष्णुवर्धन के जैनों पर अत्याचार के कारण दोरसमुद्र की धरती फट गई तो वहाँ का शासन भयभीत हुआ और उसने श्रवणबेलगोल के भट्टारकजी को आग्रहपूर्वक बुलाया। उन्होंने तन्त्र-मन्त्र की साधना कर शान्ति स्थापित की।

चन्द्रगिरि पर 'सवतिगन्धवारण बसदि' के शिलालेख (1131 ई.) में उल्लेख है कि विष्णुवर्धन की पट्टमहिषी परम जिनभक्ता शान्तला द्वारा सल्लेखना ग्रहण कर स्वदेह त्याग करने की खबर पाकर, उसकी माता माचिकब्बे ने श्रवणबेलगोल में उसी विधि से शरीर त्यागा। इससे सम्बन्धित लेख चारुकीर्ति के लेखक-शिष्य बोकिमय्य ने लिखा था।

पट्टमहिषी शान्तला ने षट्खंडागम की ताड़पत्रीय प्रति लिखवाकर यहाँ के मठ (सिद्धान्त बसदि, सिद्धान्त ग्रन्थों के कारण) में भेंट की थी। (उस पर विष्णुवर्धन और शान्तला का चित्र भी है) जो बाद में सुरक्षा की दृष्टि से मूडबिद्री में रख दी गई थी और वहीं से प्राप्त हुई है।

विन्ध्यगिरि पर सिद्धर बसदि के शक संवत् 1355 (लगभग 1433 ई.) के एक शिलालेख में उल्लेख है कि चारुकीर्ति ने होय्सलनरेश बल्लाल प्रथम (1100-1106 ई.) की प्रेत-बाधा दूर कर 'बल्लाल जीवरक्षक' की उपाधि प्राप्त की थी।

चौदहवीं शताब्दी में ही श्रवणबेलगोल की 'मंगायि बसदि' का निर्माण चारुकीर्ति पण्डिताचार्य के शिष्य, बेलगोल के मंगायि ने कराया था। यहाँ की भगवान शान्तिनाथ की मूर्ति भी पण्डिताचार्य की शिष्या भीमादेवी ने प्रतिष्ठित कराई थी।

श्री चिदानन्द कवि के 'मुनिवंशाभ्युदय' में वर्णन है कि मैसूरनरेश चामराज ओडेयर श्रवणबेलगोल आए, उन्होंने विभिन्न शिलालेख पढ़वाये, दानों की जानकारी प्राप्त की और यह जानकर कि यहाँ के चारुकीर्ति चन्नरायपट्टन के सामन्त के अत्याचारों के कारण भल्लातकी पुर (आधुनिक गेरुसोप्पे) में रहने लगे हैं तो उन्होंने उन्हें आदर सहित वापस बुलवाया और दान आदि से सम्मानित किया।

सन् 1634 ई. के ताम्रपत्रीय लेख में यह लिखा है कि कुछ महाजनों ने मठ की संपत्ति गिरवी रख ली थी। उपर्युक्त नरेश चामराज ओडेयर को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने महाजनों को बुलवाकर कहा कि वे स्वयं यह कर्ज चुका देंगे। तब महाजनों ने समस्त संपत्ति दान करा दी। राजा ने यह दान कराया और यह राजाज्ञा निकाल दी कि "जो मठ की संपत्ति को गिरवी रखेगा और जो उस पर कर्ज देगा वे दोनों समाज से बहिष्कृत किए जाएँगे। जिस राजा के समय में ऐसा हो उसे न्याय करना चाहिए और जो कोई इस आज्ञा का उल्लंघन करेगा वह बनारस में एक सहस्र कपिल गायों और ब्राह्मणों की हत्या का भागी होगा।"

व्यापारियों आदि द्वारा मठ को दिए गये दानों से सम्बन्धित अनेक लेख हैं। मंत्रियों, सेनापतियों आदि ने भी यहाँ दान दिए हैं।

सन् 1856 में चारुकीर्ति के शिष्य सन्मतिसागर वर्णी ने भण्डारी बसदि के लिए तीर्थंकर

अनन्तनाथ की लौह-मूर्ति बनवाई थी।

उन्नीसवीं सदी के अन्त में अभिषेकों की परम्परा में भी यहाँ के भट्टारकों का उल्लेख किया जा चुका है। इस प्रकार यह संस्था प्राचीन सिद्ध होती है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद श्रवणबेलगोल के मठ (तथा अन्य स्थानों के मठों) की आर्थिक स्थिति में गिरावट आ गई। सन् 1925 ई. में भट्टारक चेल्लुवर स्वामी के समय में, मठ में एक सौ गाय और ग्यारह गाँवों का स्वामित्व था। ये गाँव 1947 तक मठ के अधीन रहे किन्तु 1951 ई. में 'इनाम एबॉलिशन एक्ट' के कारण मठ के पास केवल चार गाँव ही रह गए और वे भी 1962 ई. में 'लैण्ड रिफॉर्म एक्ट' लागू होने पर मठ के हाथों से निकल गए। इस प्रकार मठ की स्थिति शोचनीय हो गई। तत्कालीन भट्टाकलंक स्वामीजी कन्नड़ और संस्कृत नहीं जानते थे। अतः उत्तर भारत से संपर्क टूट-सा गया। भारतवर्षीय तीर्थक्षेत्र कमेटी से भी कुछ सम्बन्ध तनावपूर्ण रहे। स्व. साहू शान्तिप्रसाद जी ने तीर्थक्षेत्र कमेटी का अध्यक्ष पद ग्रहण करते ही श्रवणबेलगोल क्षेत्र की स्थिति संभाली और मुज़रई मैनेजिंग कमेटी बनाकर तीर्थ क्षेत्र की समुचित व्यवस्था करा दी। मठ की स्वाधीनता भी सुरक्षित रखी गई। वर्तमान भट्टारक श्री चारुकीर्ति जी के समय में तो श्रवणबेलगोल पूरे भारत का एक 'अपना' तीर्थ हो गया है और उसे सभी प्रदेशों का मुक्त सहयोग प्राप्त हुआ है

वर्तमान भट्टारक, कर्मयोगी स्वस्ति श्री चारुकीर्ति स्वामीजी—हुमचा के भट्टारक श्री देवेन्द्रकीर्ति जी अभिशंसा पर, वहाँ के गुरुकुल में अध्ययनरत छात्र श्री रत्नवर्मा को श्रवणबेलगोल के भट्टारक पद के लिए भट्टाकलंक स्वामी ने चुना था। गुरुकुल में अध्ययन के समय तरुण रत्नवर्मा ने कन्नड, संस्कृत हिन्दी भाषाओं तथा धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया था। स्वामी भट्टाकलंक जी ने उनकी हस्तरेखाएँ आदि का विचार कर उन्हें भट्टारक-दीक्षा लेने के लिए कहा किन्तु श्री रत्नवर्मा सहमत नहीं हुए। हुमचा के भट्टारक जी के इस आदेश पर कि या तो वे श्रवणबेलगोल जाएँ या गुरुकुल छोड दें, उन्होंने गुरुकुल छोड़कर किसी प्रकार मेट्रिक की पढ़ाई पूरी की। स्वामी भट्टाकलंक जी ने उन्हें कॉलेज की पढ़ाई के लिए श्रवणबेलगोल बुलाया। अपने बाल-सखा श्री विश्वसेन (जो अब भट्टारक जी के निजी सचिव हैं) से पर्याप्त विचार कर वे श्रवणबेलगोल आ गए। इतने में स्वामी जी गम्भीर रूप से रुग्ण हो गए। अन्त में विवश होकर श्री रत्नवर्मा को क्षुल्लक दीक्षा लेनी पड़ी और महावीर जयन्ती, 19 अप्रैल 1970 ई. के दिन उन्हें श्रवणबेलगोल के भट्टारक पद पर अभिषिक्त कर दिया गया। उस समय उनकी आयु केवल उन्नीस वर्ष की थी।

वर्तमान भट्टारक जी कारकल के पास वरंग क्षेत्र (गाँव) के निवासी हैं। सौम्य प्रकृति, गम्भीर स्वभाव के भट्टारक जी ने श्रवणबेलगोल की उन्नति के लिए विविध सहयोग प्राप्त कर क्षेत्र की कीर्ति बढ़ाई है। उनकी कुछ उपलब्धियाँ हैं—गोम्मटेश्वर विद्यापीठ की स्थापना, दिगम्बर जैन साधु सेवा समिति की अध्यक्षता, चन्द्रगुप्त ग्रन्थशाला, श्री विहार विशेषांक-माला, नवीन चन्द्रप्रभ जिनालय की स्थापना, साहू श्रेयांसप्रसाद अतिथि निवास, मुनि विद्यानन्द निलय, कर्नाटक पर्यटन विभाग की केण्टीन, भक्ति गेस्ट हाउस, गंगवाल गेस्ट हाउस, पी. एस. जैन गेस्ट हाउस, लाला सिद्धोमल जैन गेस्ट हाउस, मंजुनाथ कल्याण मण्डप, मध्यप्रदेश भवन,

सरसेठ हुकमचन्द त्यागी निवास, भट्टारक निवास एवं सरस्वती कक्ष, कुन्दकुन्द तपोवन, माल-गोदाम, शिखरद्वार एवं पानी की टंकी, पाँच हज़ार गैलन की विभागीय टंकी, सुमतिबाई महिलाश्रम, चामुण्डराय भवन, पुरानी धर्मशाला में अतिरिक्त कमरे, श्री महावीर कुन्दकुन्द भवन, धर्मचक्र वाटिका और कीर्तिस्तम्भ, चामुण्डराय उद्यान, आयुर्वेदिक अस्पताल, झाँझरी-भवन, राज्य परिवहन बस स्टैण्ड, कल्याणी सरोवर का जीर्णोद्धार एवं प्राचीन मन्दिरों की मरम्मत। अन्य योजनाएँ हैं—साहू शान्तिप्रसाद कला मन्दिर, गुरुकुल भवन, मिश्रीलाल जैन गेस्ट हाउस, अमृतलाल भण्डारी गेस्ट हाउस और कर्नाटक भवन। स्पष्ट है, बिना व्यक्तिगत प्रयास और व्यापक सम्पर्क के ये निर्माण-कार्य सम्भव नहीं हो सकते थे।

श्रवणबेलगोल के शिलालेख

श्रवणबेलगोल को यदि शिलालेखों का खुला संग्रहालय कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। लगभग पाँच हज़ार की आबादी वाले इस गाँव की दोनों पहाड़ियों, गाँव में और आस-पास के कुछ गाँवों के शिलालेखों की संख्या 573 तक पहुँच गई है। तेईस सौ वर्ष पुराने इतिहास वाले इस स्थान के कितने ही लेख नष्ट हो गए होंगे, इधर-उधर जड़ दिए गए होंगे या अभी प्रकट नहीं हो सके होंगे।

कालक्रम और विषय-वस्तु की दृष्टि से इनका विवरण और इनसे जो इतिहास बनता है वह एक पुस्तक का रूप धारण कर सकता है। अतः हम इनकी खोज का इतिहास और कुछ मोटी-मोटी बातों पर ही विचार कर सकेंगे।

अँग्रेज़ विद्वान् बी. लेविस राईस मैसूर राज्य के पुरातत्त्व-शोध कार्यालय के निदेशक थे। उन्होंने मैसूर राज्य के हज़ारों शिलालेखों की खोज की और उन्हें 'एपिग्राफिका कर्नाटिका' (कर्नाटक के शिलालेख) के रूप में प्रकाशित कराया। खोज करते-करते जब वे श्रवणबेलगोल आए तो यहाँ के बेशुमार लेखों को देखकर आश्चर्य में पड़ गए। उनकी रुचि इतनी बढ़ी कि उन्होंने 1881 ई. में 'इन्सक्रिप्शिन्स एट श्रवणबेलगोल' नामक एक पुस्तक में 144 शिलालेख अलग से प्रकाशित किए।

श्री राईस के बाद रायबहादुर आर. नरसिंहाचार उपर्युक्त विभाग के निदेशक नियुक्त हुए। उन्होंने श्रवणबेलगोल सम्बन्धी शिलालेखों में इतनी रुचि ली कि यहाँ से ढूँढ़े गए शिलालेखों की संख्या 500 तक पहुँच गई। उन्होंने इन शासनों (शिलालेखों) को 'एपिग्राफिका कर्नाटिका वॉल्यूम-2, इन्सक्रिप्शन्स एट श्रवणबेलगोल' के रूप में 1923 ई. में प्रकाशित किया।

जैन साहित्य के वैज्ञानिक ढंग से अन्वेषी स्व. नाथूराम प्रेमी की दृष्टि इस संग्रह पर गई और उन्होंने जैन शास्त्रों, पुरातत्त्व आदि के चोटी के विद्वान एवं उसके अनवरत सहयोगी स्व. डॉ. हीरालाल जी जैन से इन लेखों का संग्रह एक विस्तृत भूमिका के साथ 'माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत 'जैन शिलालेख संग्रह भाग-1' देवनागरी लिपि में, शिलालेखों की विषय-वस्तु के संक्षिप्त परिचय के साथ सम्पादित कराकर प्रकाशित किया। यह बात 1928 ई. की है। बाद में जैन शिलालेखों के चार भाग और प्रकाशित हुए हैं।

श्रवणबेलगोल के शिलालेखों के संग्रह और अध्ययन का कार्य मैसूर विश्वविद्यालय के 'इन्स्टीट्यूट ऑफ कन्नड़ स्टडीज़' ने और भी आगे बढ़ाया तथा उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप श्रवणबेलगोल के शिलालेखों की संख्या 573 तक पहुँच गई। इनका नवीन संस्करण 1971 ई. में प्रकाशित हुआ है। यह संग्रह कन्नड़ लिपि या रोमन लिपि में ही है।

सामान्य उपयोगिता—इन शिलालेखों से भारतीय, विशेषकर कर्नाटक के इतिहास और जैनधर्म के इतिहास की अनेक गुत्थियाँ जानने-समझने में बड़ी सहायता मिली है।

श्रवणबेलगोल के ये शिलालेख ईसा की छठी शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक के हैं। चन्द्रगिरि की पार्श्वनाथ बसदि के दक्षिण की ओर 600 ई. (शक संवत् 522) का जो शिलालेख है, उसी से हमें यह ज्ञात होता कि आचार्य भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मौर्य (दीक्षा नाम प्रभाचन्द्र) संघ सहित अनेक जनपदों को पार कर उत्तरापथ से दक्षिणापथ आए थे और यहीं कटवप्र पर उन्होंने समाधिमरण किया था।

संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक शिलालेख बारहवीं शताब्दी के हैं (कुल 128), और उसके बाद दसवीं शताब्दी के 76 शिलालेख संख्या-क्रम में हैं।

चन्द्रगिरि पर 271 लेख हैं तो 172 विंध्यगिरि पर। कुल 530 लेखों में से शेष 80 श्रवणबेलगोल नगर में और आस-पास के गाँवों में 50 शिलालेख हैं।

यहाँ के शिलालेखों में निम्नलिखित लिपियों का प्रयोग हुआ है—कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगु, देवगिरि (मराठी के लिए भी) और महाजिनी। इस विविधता से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि श्रवणबेलगोल उत्तर और दक्षिण भारत में समान रूप से एवं प्राचीनकाल से ही एक लोकप्रिय तीर्थस्थान रहा है। आज की भाँति, अतीत में भी यहाँ की यात्रा सभी प्रदेशों के लोग करते रहे हैं। पंजाब प्रदेश की टोकरी भाषा में भी यहाँ लेख पाया गया है।

शिलालेख लिखे जाने के अनेक विषय रहे हैं। मात्र सल्लेखना सम्बन्धी एक सौ लेख चन्द्रगिरि पर हैं। लेखों से सूचना मिलती है कि मुनियों, आर्यिकाओं, श्रावक-श्राविकाओं ने कितने दिनों का उपवास, व्रत या तप करके शरीर त्यागा था। इन त्यागियों में कुछ तो राजवंश से सम्बन्धित जन भी हैं। सबसे प्राचीन लेख भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा सल्लेखना का उल्लेख करता है।

एक शिलालेख में उल्लेख है कि कलन्तूर के मुनि ने कटवप्र पर्वत पर एक सौ आठ वर्ष तक तप करके समाधिमरण किया।

सल्लेखना सम्बन्धी लेख सबसे अधिक सातवीं-आठवीं सदी के हैं। उनसे यह तथ्य सामने आता है कि कटवप्र या चन्द्रगिरि सल्लेखना के लिए एक पवित्र पर्वत के रूप में उन दिनों बहुत प्रसिद्ध हो चुका था और दूर-दूर से आकर यहाँ स्वेच्छा से शरीर त्यागना पवित्र या पुण्य-लाभ का कार्य माना जाता था।

शिलालेखों में से लगभग 160 लेख यात्रियों के हैं। इनमें से 107 दक्षिण भारतीय यात्रियों के और शेष उत्तर भारतीयों के।

मन्दिर-मूर्ति-निर्माण और दान से सम्बन्धित शिलालेखों की संख्या सबसे अधिक है। विभिन्न प्रकार के दान जैसे अभिषेक, आहार और मन्दिरों की सुरक्षा, उनका व्यय-

विवरण सम्बन्धी, ग्राम और भूमि आदि के दान से सम्बन्धित लेख लगभग सौ हैं।

इन शिलालेखों का केवल धार्मिक महत्त्व ही नहीं था, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक महत्त्व भी रहा है।

श्रवणबेलगोल के शिलालेख सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के युग में (लगभग 2300 वर्ष पूर्व) तो कर्नाटक में जैनधर्म का अस्तित्व सिद्ध करते ही है, साथ ही, कर्नाटक के अनेक प्रदेशों के राजवंशीय एवं अन्य लोगों द्वारा भी यहाँ जैन मन्दिर आदि का निर्माण कराया जाना तथा उनके द्वारा जीर्णोद्धार आदि कराना कर्नाटक में व्यापक रूप से जैन-धर्म का लोकप्रिय होना भी सिद्ध करता है।

भगवान महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (विशेषकर कर्नाटक के आचार्यों) के ज्ञान के लिए भी ये लेख बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। विध्यगिरि पर सिद्धरबसदि में उत्तर की ओर शक सं. 1320 का एक लम्बा शिलालेख है जिसमें चौबीस तीर्थंकरों को नमस्कार करने के बाद गणधरों से प्रारम्भ कर जो आचार्य परम्परा दी है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसमें अनेक आचार्यों यथा आचार्य गोपनन्दी तथा चारुकीर्ति की शास्त्रार्थ-प्रतिभा का उल्लेख कर कहा गया है कि उनकी प्रतिभा के सामने अनेक अन्यधर्मी टिक नहीं पाए।

शिलालेखों के आधार पर मूलसंघ के नन्दिगण और देशीगण का जो वंशवृक्ष बनता है, डॉ. हीरालाल जैन की पुस्तक 'जैन शिलालेख संग्रह भाग-1' में देखा जा सकता है।

शिलालेखों में महिलाएँ—जिनभक्ता अनेक महिलाओं ने यहाँ निर्माण कार्य कराए या सल्लेखना विधि से शरीर त्यागा। यहाँ के कतिपय शिलालेखों से महिलाओं के नामों की भी अच्छी जानकारी होती है; यथा—अक्कब्बे, जक्कणब्बे, नागियक्क, माचिकब्बे, शान्तिकब्बे, एचलदेवी, शान्तला, श्रियादेवी, पद्मलदेवी आदि।

शिल्पियों के नाम—कुछ लेखों के नीचे शिल्पियों के नाम भी हैं, जैसे दासोज (चन्द्रगुप्त-बसदि), अरिष्टनेमि (चन्द्रगिरि), दागोदाजि आदि। किन्तु खेद का विषय है कि गोमटेश्वर की विशाल मूर्ति का निर्माण करने वाले प्रधान शिल्पी ने अपना नाम ही नहीं दिया।

वन्दना-क्रम

यह मानकर कि यात्री या पर्यटक श्रवणबेलगोल बस-स्टैण्ड या उसके पास स्थित 'मुनि विद्यानन्द निलय' से अपनी वन्दना प्रारम्भ करे, यहाँ उसी के अनुसार क्षेत्रदर्शन का क्रम दिया जा रहा है।

धर्मचक्र वाटिका—भगवान महावीर के 2500वें निर्वाणोत्सव के समय एक धर्मचक्र देश के विभिन्न भागों में घुमाया गया था। उसी के श्रवणबेलगोल आगमन के उपलक्ष्य में 1977 ई. में यह वाटिका चन्द्रगिरि की तलहटी में बनाई गई थी। इसकी रचना शैल-वाटिका (रॉक गार्डन) जैसी हो यह प्रयत्न किया गया है। इसी में धर्मचक्र और महावीर कीर्तिस्तम्भ निर्मित हैं। इसके निर्माता के नाम पर यह 'ज्ञानीराम हरकचन्द सरावगी धर्मचक्र वाटिका' कहलाती है।

चामुण्डराय उद्यान—उपर्युक्त वाटिका के सामने और स्थानीय बस-स्टैण्ड से सटे हुए इस उद्यान का निर्माण सहस्राब्दी महामस्तकाभिषेक के समय 1981 ई. में हुआ है। यह भी एक रमणीक स्थल है।

कल्याणी सरोवर—विंध्यगिरि और चन्द्रगिरि के बीच बने इस विशाल सरोवर(चित्र-क्र. 91) का निर्माण कब किसने किया यह ज्ञात नहीं है। सबसे अधिक सम्भावना यही है कि यह एक प्राकृतिक तालाब है जिसे गहरा किया गया है। यह वही सरोवर है जिसे शिलालेखों में 'बेलगोल' 'श्वेत सरोवर' या 'धवल सरोवर' कहा गया है और जिसके कारण ही स्थानीय ग्राम 'श्रवणबेलगोल' कहलाता है। इतना अवश्य है कि इसे सजाने-सँवारने के प्रयत्न किए गए हैं। कल्याणी सरोवर के चारों ओर सीढ़ियाँ हैं और पत्थर का परकोटा है। इस पर चारों दिशाओं में चार शिखर या दक्षिण भारतीय शैली के दो बड़े और दो छोटे गोपुर (शिखरयुक्त प्रवेशद्वार) हैं। गोमटेश की ओर का गोपुर तीन मंजिल ऊँचा है और सुन्दर है। यह तालाब लगभग 400 फुट चौड़ा और 400 फुट लम्बा तथा 21 फुट गहरा है। इसके उत्तर में एक सभा-मण्डप है जिसके एक स्तम्भ पर शिलालेख के अनुसार, मैसूर नरेश श्री चिक्कदेव-राजेन्द्र (1672-1704 ई.) ने इसका जीर्णोद्धार सभामण्डप, शिखर, परकोटा आदि बनाकर कराना प्रारम्भ कराया था किन्तु उनकी मृत्यु हो जाने के कारण उनके पौत्र कृष्णराज ओडेयर (1713-1731 ई.) ने वह निर्माण-कार्य पूर्ण कराया।

सन् 1981 ई. में, सहस्राब्दी महामस्तकाभिषेक के अवसर पर, इस सरोवर का पुनः जीर्णोद्धार लगभग एक लाख रुपये लगाकर कराया गया है। पिछले चालीस वर्षों से इसका सारा पानी निकालकर कूड़ा-करकट साफ नहीं किया गया था। यह कार्य इस अवसर पर सम्पन्न हुआ। इसमें रंगीन रोशनी युक्त फव्वारे लगाए गए। यहाँ का फव्वारा 70 फुट की ऊँचाई तक पानी फेंककर मनोहारी दृश्य उपस्थित करता है। इसे देखकर कारकल के भट्टारक जी ने इसे 'जलवृक्ष' नाम दिया जो उचित ही है।

श्रवणबेलगोल में प्रतिवर्ष भगवान महावीर की जयन्ती एवं पंचकल्याणक पूजा के सिलसिले में चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को भारी उत्सव होता है। उस दिन भगवान को नाव में वेदी बनाकर विराजमान करते हैं और कल्याणी सरोवर की तीन परिक्रमाएँ की जाती हैं। सरोवर और उसके गोपुरों पर दीपक जलाकर दीपोत्सव किया जाता है जिसे देखने के लिए बाहर से भी लोग आते हैं।

उपर्युक्त सरोवर के तीनों ओर श्रवणबेलगोल गाँव बसा हुआ है। सरोवर से सीधे चलकर दाहिनी ओर का सरोवर का किनारा पार करके विंध्यगिरि की तलहटी है। वहीं से सीढ़ियाँ गोमटेश्वर की मूर्ति के लिए जाती हैं।

विन्ध्यगिरि

स्थानीय जनता इस बड़ी पहाड़ी (चित्र क्र. 12) को 'दोड्डबेट्ट' भी कहती है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई 3347 फीट है। इसकी तलहटी में जो नीचे मैदान है उससे यह 470 फीट ऊँची है।

सपाट, ठोस, चिकने सफेद ग्रेनाइट की यह पहाड़ी सामने से ऐसी लगती है जैसे कोई बहुत बड़ा प्याला उलटा करके रख दिया गया हो। गोमटेश्वर मन्दिर के बाहरी परकोटे तक पहुँचने के लिए चट्टान को ही काट-काटकर 500 सरल सीढ़ियाँ बम्बई के स्व. माणिकचन्द झवेरी (संस्थापक भारतवर्षीय दिगंबर जैन तीर्थरक्षक कमेटी) के प्रयत्नों से 1883-84 में बनाई गई थीं। अब इनके दोनों ओर लोहे के नलों की रेलिंग लगा दी गई है जिससे चढ़ाई आसान हो जाती है।

विन्ध्यगिरि की पाँच सौ सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद, एक खुला मण्डप है जो यात्रियों के लिए विश्राम-स्थल का काम देता है। वहाँ धीरे-धीरे बहने वाली ठण्डी हवा बड़ा सुख देती है और प्राकृतिक दृश्य का आनन्द आता है सो अलग से। रास्ते भर ट्यूब लाइट भी लगी हैं।

इसी पहाड़ी पर बाहुबली मन्दिर के एक बाजू से पहाड़ से नीचे उतरने के लिए भी सीढ़ियाँ हैं किन्तु आजकल उनका प्रयोग नहीं होता।

विश्रामगृह से आगे, किन्तु पहाड़ी की चढ़ाई से पहले, 'चामुण्डराय भवन' है। उसमें श्रवणबेलगोल दिगंबर जैन मुज़रई इन्स्टीट्यूशन्स मेनेजिंग कमेटी का कार्यालय है।

ब्रह्मदेव मन्दिर—विन्ध्यगिरि की लगभग पचास सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद, एक दो-मंज़िला भवन मिलता है। इसके नीचे की मंज़िल में ब्रह्मदेव या जारुगुप्पे विराजमान हैं। ये एक पाषाण के रूप में हैं और उन पर सिंदूर पुता है। ऊपर की मंज़िल में एक चौबीसी है। उसके मूलनायक पार्श्वनाथ की लगभग ढाई फीट ऊँची बादामी रंग की भव्य प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है। उस पर नौ फणों की छाया है। फणावली के ऊपर पद्मासन में पार्श्वनाथ हैं जिन पर पाँच फणों की छाया है। अन्य तीर्थंकर दोनों ओर पाँच-पाँच की पंक्ति में हैं और एक पंक्ति में दो मूर्तियाँ हैं। नीचे दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में एक-एक तीर्थंकर हैं। विद्याधरों और चँवरधारियों का भी अंकन है। इसी मंज़िल के दूसरे कक्ष में पीतल की चौबीसी, पंचपरमेष्ठी प्रतिमा तथा नन्दीश्वर एवं मेरु प्रदर्शित हैं।

तोरण-द्वार—दो सौ सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद एक पाषाण-निर्मित तोरण-द्वार आता है। उस पर मकरतोरण युक्त पक्षी का अंकन है। उसी के दूसरी ओर ऊँचा मुकुट धारण करने वाली गज-लक्ष्मी है। हाथी की सूँड में कमल का फूल उत्कीर्ण है।

कुन्दकुन्द तपोवन—इस तोरणद्वार के बाईं ओर एक प्राकृतिक गुफा है। उसका नवीनीकरण किया गया है। उसके सामने एक पक्का कमरा बना दिया गया है। पेड़-पौधे आदि लगाए गए हैं। साधुओं के लिए चट्टान के नीचे गुफा है। यह नवीनीकरण मुनि श्री विद्यानन्दजी की प्रेरणा से किया गया है।

चौबीस तीर्थंकर बसदि या होस बसदि—होस का अर्थ होता है नया। यह एक छोटा-सा मन्दिर है, लगभग 12 फीट चौड़ा और 25 फीट लम्बा। इसकी सीढ़ियों के पास नागरी में एक शिलालेख है। उससे ज्ञात होता है कि छोटी सादी ईंट और गारे से निर्मित इस मन्दिर को 1648 ई. में चारुकीर्तिजी के लिए धर्मचन्द्र द्वारा बनवाया था। इस मन्दिर में ढाई फीट ऊँचे एक पाषाण पर चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। बीच की और आसपास की मूर्तियाँ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं, शेष तीर्थंकर प्रभावली के आकार में पद्मासन में हैं। गर्भगृह से आगे

का कोष्ठ खाली है।

ओदेगल बसदि—कन्नड़ में ओदेगल का अर्थ है टेक (Support)। यह मन्दिर एक ऊँची चौकी पर बना है। उस तक पहुँचने के लिए 28 सीढ़ियाँ चढ़कर जाना पड़ता है। इतनी ऊँचाई पर बने मन्दिर की चौकी को सहारा देने के लिए लगभग पन्द्रह फीट लम्बी शिलाएँ चारों ओर लगाई गई हैं। इसी कारण यह 'टेकेवाला' या 'ओदेगल बसदि' कहलाता है। इसे 'त्रिकूट' या तीन गर्भगृहों वाला मन्दिर भी कहते हैं। बीच के गर्भगृह में मूलनायक आदिनाथ की पद्मासन में काले पाषाण की विशाल प्रतिमा (साढ़े चार फीट) पाँच सिंहों के पादासनयुक्त कमलासन पर विराजमान है। मकर-तोरण, छत्रत्रय और कन्धों से ऊपर चँवरधारी की भी संयोजना है। दूसरे कोष्ठ में बाँई ओर शान्तिनाथ की मूर्ति पद्मासन में शोभित है। दाहिनी ओर के गर्भगृह में नेमिनाथ की भव्य प्रतिमा मकर-तोरण से सुसज्जित है। ये प्रतिमाएँ शिला में उकेरी गई हैं।

मन्दिर का सभामण्डप बड़ा है। उसमें लगभग तीन फीट व्यास के चार मोटे पाषाण-स्तम्भ हैं। मुखमंडप में भी इसी प्रकार बारह स्तम्भ हैं। मन्दिर के चारों ओर लगभग दस फीट चौड़ा प्रदक्षिणा-पथ है। ऊँचाई की दृष्टि से विन्ध्यगिरि पर यह मन्दिर सबसे ऊँचा है।

बसदि का निर्माण किसने किया यह पता नहीं लगता। वह प्राचीन ही है। उसके पश्चिम की ओर 27 लेख हैं जो कि यात्रियों के नाम हैं। यह मन्दिर 72 फीट लम्बा और 72 फीट चौड़ा है।

त्यागद ब्रह्मदेव स्तम्भ—यह 'चागद कम्ब' भी कहलाता है (देखें चित्र क्र. 93)। चार स्तम्भों का यह खुला मण्डप 8 फीट चौड़ा और 8 फीट लम्बा है। इसके बीच में कुछ गोल वलयों (घेरों में) फूल-पत्तियाँ आकर्षक ढंग से उकेरी गई हैं। सबसे नीचे का भाग गले में माला पहने वृषभ पर आधारित है। कहा जाता है कि ग्यारह फीट ऊँचा यह स्तम्भ किसी समय अधर में लटका हुआ था और इसके नीचे से रूमाल निकाला जा सकता था। अब भी यात्री ऐसा करते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि अब इसका एक कोण झुककर नीचे लग गया है। इस प्रकार यह अपने सौन्दर्य और आश्चर्य दोनों के लिए प्रसिद्ध है। इसके निचले भाग में चामुण्डराय और उनके गुरु आचार्य नेमिचन्द्र का चित्र बना हुआ है। दोनों किसी विषय पर चर्चा करते हुए प्रदर्शित हैं। चामुण्डराय के राजसी वैभव की सूचक तीन सेविकाएँ उन पर चँवर ढुला रही हैं। चामुण्डराय ने आभूषण पहन रखे हैं और उनके मस्तक पर केशों का जूड़ा है जो उस समय के लोग रखते थे।

उपर्युक्त स्तम्भ का ऐतिहासिक महत्त्व है। अनुश्रुति है कि चामुण्डराय यहीं बैठकर शिल्पियों को पारिश्रमिक और दान दिया करते थे। इसके एक ओर जो शिलालेख है उसमें चामुण्डराय के प्रताप का वर्णन है और युद्धों में उनकी विजयों से सम्बन्धित उपाधियाँ हैं। अनुमान किया जाता है कि स्तम्भ के तीनों ओर उनके जीवन का वर्णन, विशेषकर गोमटेश्वर मूर्ति की निर्माण सम्बन्धी जानकारी और शिल्पी आदि का नाम रहा होगा। बताया जाता है कि स्वयं चामुण्डराय ने इसे 983 ई. में बनवाया था; किन्तु स्तम्भ के तीन ओर का लेख हेग्गडे कण्ण ने सन् 1200 में घिसवा डाला और अपना यह लेख खुदवा दिया कि उन्होंने इस स्तम्भ पर ब्रह्मयक्ष की मूर्ति प्रतिष्ठापित की है। इस प्रकार गोमटेश्वर सम्बन्धी जानकारी लुप्त

हो गई।

कुछ विद्वानों का यह भी कथन है कि सब कुछ त्याग कर चामुण्डराय ने यहाँ पर सल्लेखना विधि से (व्रत, उपवास, त्याग करते हुए) अपना शरीर त्यागा होगा और यह स्तम्भ तथा मण्डप उन्हीं की स्मृति में बनवाया गया होगा और इसके लेख में उनके जीवन, गोमटेश्वर एवं अन्य कार्यों का विवरण रहा होगा। जो भी हो, अब तो हमें उनकी विजयों सम्बन्धी उपाधियों का ही ज्ञान इस लेख से मिल पाता है।

लगभग पाँच सौ वर्ष बाद ईंट और गारे से इसकी ऊपरी मंज़िल बनाई गई, ऐसा अनुमान किया जाता है।

चेन्नण बसदि—त्यागद स्तम्भ से पश्चिम की ओर कुछ दूरी पर 'चेन्नण बसदि' है। जिन्नेयन हल्लिग्राम के 1674 ई. के एक शिलालेख का कथन है: "पुट्टसामी सेट्टियर के पुत्र चेन्नण ने समुद्रादीश्वर (चन्द्रनाथ स्वामी) के नित्य पूजोत्सव, कुण्ड और उपवन की रक्षा हेतु जिन्नेयन हल्लीग्राम दान में दिया।" इस लेख से दो बातों का अनुमान है—या तो पहले से बनी बसदि के लिए दान दिया गया या नई बसदि को निर्मित कराकर दान दिया गया। वैसे यह मन्दिर प्राचीन लगता है। इसके सामने एक 33 फीट ऊँचा मानस्तम्भ है। उसके चारों ओर छत्रयुक्त तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। मौक्तिक मालाओं, हंसपंक्तियों, अश्वारोहियों और गजारोहियों का भी उत्कीर्णन है। सबसे नीचे चारों ओर यक्ष अंकित हैं।

इस बसदि का प्रवेश-मण्डप 24 स्तम्भों पर आधारित है और तीन ओर से खुला है। उसके सिरदल और द्वार की चौखट पर सुन्दर उत्कीर्णन है। दोनों ओर द्वारपाल हैं। गर्भगृह में पद्मासन चन्द्रप्रभ की ढाई फीट ऊँची मनोज्ञ प्रतिमा है। तीर्थंकर पर तीन छत्र, दोनों ओर यक्ष-यक्षी, मस्तक के दोनों ओर चँवर के चिह्न हैं। मकर-तोरण से भी प्रतिमा अलंकृत है। आसन साधारण है किन्तु उस पर लांछन (चिह्न) स्पष्ट नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह मन्दिर आदि-तीर्थंकर ऋषभदेव को समर्पित था। मन्दिर पर एक छोटा-सा शिखर भी है।

बसदि से पहले कुछ बड़ा-सा एक कुण्ड है। इसी प्रकार मानस्तम्भ के पास ही में एक और कुण्ड है। इस मन्दिर के बायीं ओर चन्दन का एक छोटा-सा वृक्ष है। कुल मिलाकर यह रमणीक स्थान है।

चेन्नण बसदि के बाद त्यागद ब्रह्मदेव स्तम्भ वापस लौटना चाहिए और स्तम्भ के आगे की सीढ़ियों से ऊपर की यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए।

सिद्धर गुण्डु (सिद्धशिला)—कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद, बायीं ओर एक ऊँची चट्टान है जिसे सिद्धशिला कहते हैं। कथानक है कि भरत चक्रवर्ती के 99 भाइयों ने उनकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी और ऋषभदेव के उपदेश से राज-पाट छोड़कर मुनि हो गए थे। इस शिला के ऊपरी भाग में यही दृश्य अंकित है। छत्रत्रयी के नीचे पद्मासन में ऋषभदेव विराजमान हैं और उनके आसपास एवं नीचे अनेक पंक्तियों में उनके वे 99 पुत्र गिने जा सकते हैं जो कि मुनि हो गए थे। इन पद्मासन मुनि-आकृतियों के साथ ही कुछ कायोत्सर्ग मुनि भी उत्कीर्ण हैं।

चरण—विंध्यगिरि की छोटी चट्टानों पर अनेक स्थानों पर चरण हैं। त्यागद ब्रह्मदेव स्तम्भ से बड़े द्वार के रास्ते में दाहिनी ओर की एक चट्टान पर भी चरण बने हुए हैं।

एक गोलाकार घेरे में लेख सहित चरण 460वीं और 470वीं सीढ़ियों के बीच के स्थान में उत्कीर्ण हैं।

भरत मन्दिर और बाहुबली मन्दिर—सिद्धशिला के बायीं ओर एक छोटा-सा बाहुबली मन्दिर है। उसमें शिलालेख भी है। बाहुबली की यह मूर्ति लगभग पाँच फुट ऊँची है। माधवी लता के एक वेष्टन (लपेट) ने उनकी जंघा को घेरा है जबकि उनकी बाहों पर दो वेष्टन हैं। मूर्ति पर न कोई सर्प प्रदर्शित है और न ही कोई बाँबी। हाँ, मूर्ति के आस-पास विद्याधर देवियाँ लताओं को हटाते हुए अंकित की गई हैं। मकर-तोरण भी है।

दाहिनी ओर इसी प्रकार की भरतेश्वर (मुनिरूप में चक्रवर्ती भरत) की इसी आकार की मूर्तिवाला छोटा-सा मन्दिर है। मूर्तियों के आलेख के अनुसार, सिद्धान्तदेव के शिष्य दण्डनायक भरतमय्य ने यहाँ के प्रवेशद्वार की शोभा बढ़ाने के लिए 1160 ई. में इन मूर्तियों का निर्माण कराया था।

ये दोनों मन्दिर भी चट्टान को ही काटकर बनाए गए हैं।

अखण्डबागिलु (अखण्ड-द्वार)—सीढ़ी संख्या 560 पर ही एक प्रवेशद्वार है। इस द्वार को अखण्ड कहने का कारण यह है कि यह एक ही चट्टान को काटकर बनाया गया है। यह भी अनुश्रुति है कि इसे स्वयं चामुण्डराय ने बनवाया था।

अखण्डद्वार का सबसे आकर्षक भाग है उसका सिरदल। उस पर उत्तम कारीगरी की गई है। उसमें बीच में लक्ष्मी जी विराजमान हैं और उनके दोनों ओर दो हाथी सूँड में कलश लिये हुए उनका अभिषेक कर रहे हैं। गजलक्ष्मी का यह चित्र खण्डगिरि-उदयगिरि (उड़ीसा) के इसी प्रकार के चित्र की याद दिलाता है। अंकन की शोभा बढ़ाने के लिए हाथियों के दोनों ओर दो मकर जल उगलते दिखाए गए हैं और जल के ये छल्ले ऊपर तक गए हैं। इस प्रकार यह उत्कीर्णन बहुत आकर्षक हो गया है। द्वार पर भी शिलालेख है। त्यागद ब्रह्मदेव स्तम्भ से यहाँ तक की सीढ़ियों को भी दण्डनायक भरतमय्य ने बनवाया था।

कंचन गुब्बि बागिलु—अखण्डद्वार के बाद कुछ और सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद, एक और द्वार आता है जो कि 'कंचन गुब्बि बागिलु' कहलाता है। इसके सिरदल पर भी गजलक्ष्मी का आकर्षक उत्कीर्णन है। द्वार की चौखट पर शृंखलाओं का अंकन सुन्दर है। नीचे की ओर द्वारपाल हैं। इस द्वार से जो मण्डप बनता है उसके भीतरी दो स्तम्भों पर मनोहारी उत्कीर्णन है। दाहिने स्तम्भ पर चारों ओर तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। बीच में और नीचे नृत्यांगनाएँ या अप्सराएँ प्रदर्शित हैं। इनमें से एक के हाथ में धनुष है और एक स्त्री की चोटी पकड़े हुए दूसरी स्त्री उसका पैर पकड़ रही है। इसी स्तम्भ के पास एक शिला में 6-7 इंच की एक देवी है। स्त्रियाँ उसे पद्मावती की मूर्ति मानती हैं और सिंदूर लगा जाती हैं। अश्वारोही ब्रह्मयक्ष भी प्रदर्शित है। एक अन्य स्तम्भ पर ऊपर तीन ओर तीर्थंकर हैं। बीच में एक ओर गाय-बछड़ा, एक ओर ब्रह्मदेव और दो नर्तकियाँ या अप्सराएँ हैं। नीचे की ओर एक तरफ शरीफा जैसा फल लिये एक बन्दर है तो दूसरी ओर मृदंगवादक। इसी तरह तीसरी तथा चौथी ओर नर्तकियाँ या अप्सराएँ उत्कीर्ण हैं।

परकोटे का महाद्वार—अखण्डद्वार से 21 सीढ़ियाँ और चढ़ने के बाद गोमटेश्वर मूर्ति

के परकोटे का महाद्वार आता है। यह बाहुबली-मन्दिर का प्रवेशद्वार माना जाता है। उसकी ऊँचाई लगभग 15 फुट है। उसके सिरदल पर चँवरधारियों सहित पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है। नीचे दो द्वारपाल अंकित हैं। द्वार के दोनों ओर खुले मण्डप हैं। सीढ़ी संख्या 618 के पास एक मनोरंजक चित्र है। उसमें एक आदमी को शेरनी से लड़ता दिखाया गया है। नीचे उसका बच्चा है। यह अंकन द्वार से पहले की दीवाल में है। मत्स्य भी अंकित है। दाहिनी ओर गदा समेत एक यक्ष प्रदर्शित है। द्वार का गोपुर भी आकर्षक है। उसमें सबसे ऊपर पद्मासन में तीर्थंकर छत्रत्रयी और चँवरधारियों सहित हैं। बीच की तीर्थंकर मूर्ति के दोनों ओर एक स्त्री और एक पुरुष हाथ जोड़े हुए प्रदर्शित हैं। बायीं ओर के छोटे द्वार के सिरदल पर भी पद्मासन तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। द्वार के बायीं ओर की पीछे की दीवाल पर ऊपर पद्मासन में तीर्थंकर, नीचे पद्मासन में तीन तीर्थंकर, कायोत्सर्ग मुद्रा में एक और तीर्थंकर तथा सिंह-आसन पर ब्रह्मयक्ष विराजमान हैं।

बाहरी परकोटा—गोमटेश्वर मूर्ति के चारों ओर एक लम्बा-चौड़ा बाहरी परकोटा है। यह भी मत है कि 195 फुट लम्बे और 125 फुट चौड़े इस परकोटे को सत्रहवीं-अठारहवीं सदी में बनाया गया। इसकी दीवारें लगभग बीस फुट ऊँची हैं। उसमें स्थान-स्थान पर कुछ ऊँचाई पर उभरे पत्थर लगे हैं। उन पर कहीं उत्कीर्णन है तो कहीं अधूरा रह गया। कला की दृष्टि से यहाँ प्रकृति या पशु-पक्षियों का भी सुन्दर चित्रण है। एक स्थान पर राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान अंकित हैं, तो पद्मासन और कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर-मूर्तियों की संख्या 21 है। पन्द्रहवीं मूर्ति बाहुबली की है। उस पर लताओं का स्पष्ट अंकन है। सूर्य, चन्द्रमा, हाथी, मोर आदि पशुओं के सुन्दर चित्र हैं। गाय-बछड़ा, मीनयुगल (दो मछलियाँ), एक ही आकृति में तीन मछलियाँ, नीचे कूद रहे दो बन्दर और नारियल का पानी पीता एक आदमी आदि ये सब ऐसे दृश्य हैं जो अपनी आनन्दानुभूति से यात्री की सारी थकान दूर कर गोमटेश्वर की महामूर्ति के दर्शन के लिए उसे स्फूर्ति प्रदान करने हेतु बहुत उपर्युक्त स्थान पर उत्कीर्ण किए गए हैं।

शासन-मण्डप या ओडेयर-मण्डप—चार स्तम्भों के इस मण्डप में राजाओं द्वारा दिए गए दान आदि से सम्बन्धित शिलालेख हैं। यहीं के शिलालेख में उल्लेख है कि मन्दिर की गिरवी रखी गई ज़मीन आदि सम्पत्ति को 1634 ई. में मैसूरनरेश चामराज ओडेयर ने किस प्रकार महाजनों के चंगुल से छुड़ाया था (देखिए जैनमठ प्रकरण)।

सिद्धर बसदि—अर्थात् सिद्ध भगवान का मन्दिर। इसमें सिद्ध भगवान की तीन फुट ऊँची मूर्ति है। मन्दिर छोटा ही है किन्तु शिलालेखों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। मूर्ति के दोनों ओर लगभग छः फुट ऊँचे कलापूर्ण स्तम्भ हैं। दाहिनी ओर के स्तम्भ पर शिष्यों को उपदेश देते हुए आचार्य का एक चित्र है। बायीं ओर के स्तम्भ पर कवि गंगराज का 1433 ई. में रचित एक काव्यात्मक लेख है जिसमें श्रुतमुनि के स्वर्गवास का वर्णन है। इसी प्रकार दाहिनी ओर के स्तम्भ पर कवि अर्हद्दास का एक लेख 1378 ई. का है जिसमें पण्डितार्य की प्रशस्ति उनके स्वर्ग-गमन पर लिखी गई थी।

अब परकोटे से हम चलते हैं गोमटेश्वर बाहुबली मन्दिर की ओर।

गुल्लिकायज्जी—सिद्धर बसदि से आगे बढ़ने पर हमें गुल्लिकायज्जी की पाँच फुट ऊँची मूर्ति मिलती है (चित्र क्र. 94)। वह तत्कालीन कर्नाटक की महिला वेषभूषा में है और आभूषणों

से अलंकृत है। उसके हाथों में दो हिस्सों वाला वह गुल्लिकाय (एक फल) है जिसमें भरकर वह दूध लाई थी और उस अल्प दूध से ही पूरी मूर्ति का अभिषेक हो गया था और उसकी जो धार बह निकली थी उससे कल्याणी सरोवर भी धवल हो गया था।

अनुश्रुति है कि उसकी यह मूर्ति स्वयं चामुण्डराय ने बनवाई थी। उसकी पॉलिश अब भी चमकदार है। इस मण्डप में गुल्लिकायज्जी के पीछे एक शिलालेख है। मण्डप खुला है और उसमें पाँच स्तम्भ हैं।

उपर्युक्त मण्डप की ऊपरी मंज़िल में लगभग 6 फुट की ब्रह्मदेव की मूर्ति स्थापित है। इन्हें क्षेत्रपाल कहा जाता है। आचार्य नेमिचन्द्र के ग्रन्थ 'गोम्मटसार' में उल्लेख है कि यक्ष के मुकुट में एक ऐसा रत्न है जो गोमटेश्वर मूर्ति के चरणों को नित्य प्रकाशित करता रहता है। इतना अवश्य है कि इस यक्ष की मूर्ति का निर्माण इस प्रकार किया गया है कि ब्रह्मदेव की दृष्टि सदा ही गोमटेश्वर के चरणों पर रहती है।

मुखमण्डप—गुल्लिकायज्जी के सामने एक खुला मुखमण्डप हैं। उसमें 16 स्तम्भ है। उसी में तीन बलिपीठ या दीपक के लिए स्थान बने हुए हैं। इस मण्डप में भी मौक्तिक मालाओं, हँसों और छत में कमल आदि का उत्कीर्णन है। इसी से लगा हुआ एक और मण्डप है। उसमें बारह स्तम्भों पर हँसों और पत्रावली का आकर्षक उत्कीर्णन है। उसी में बायीं ओर है बारहवीं सदी के कन्नड़ कवि बोप्पण द्वारा रचित वह प्रसिद्ध शिलालेख जिसमें गोमटेश्वर मूर्ति-निर्माण की संक्षिप्त जानकारी और मूर्ति की विशेषताओं का काव्यात्मक भाषा में उल्लेख है। दूसरी ओर के शासन में हुल्लराज द्वारा तीन गाँव दान में दिए जाने का उल्लेख है। इसी मण्डप से होकर बाहुबली मन्दिर में जाने का महाद्वार है। उसके दोनों ओर छह फुट ऊँचे द्वारपाल बने हुए हैं। द्वार के सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है।

सुत्तालय—गोमटेश्वर की मूर्ति के दर्शन के लिए जैसे ही हम द्वार से अन्दर प्रवेश करते हैं, हमें एक और मण्डप मिलता है। उसकी छत की कारीगरी भी दर्शनीय है। यह छत नौ भागों में विभाजित है। आठ खण्डों में आठ दिक्पालों की मूर्तियाँ हैं और बीच के खण्ड में बारीक फूल-पत्तियों के घेरे में, इन्द्र की आकर्षक मूर्ति है। इन्द्र के हाथ में एक कलश है मानो वह गोमटेश्वर का अभिषेक करना चाहता है। यह हम देख चुके हैं कि सम्भवतः इन्द्र की इस आकर्षक मूर्ति के कारण ही विन्ध्यगिरि को कहीं-कहीं इन्द्रगिरि भी कहा गया है। इस मण्डप के तथा अन्यत्र के स्तम्भों पर नर्तकियों या अप्सराओं का सुन्दर अंकन है। मण्डप का निर्माण मन्त्री बलदेव ने 12वीं सदी में कराया था।

बाहुबली की मूर्ति हमारे सामने है। इससे पहले हम उनके चारों ओर के परकोटा और उसके तीन ओर प्रदक्षिणा-पथ (सुत्तालय) में प्रतिष्ठित तीर्थंकर मूर्तियों आदि की चर्चा कर लें।

गोमटेश्वर के दोनों ओर खुदे लेख से ज्ञात होता है कि इस महामूर्ति के परकोटे का निर्माण लगभग 1118 ई. में गंगराज (होय्सलनरेश विष्णुवर्धन के सेनापति) ने कराया था (श्री गंगराजे सुत्ताले करवियले)।

सेनापति भरतमय्य ने उपर्युक्त मण्डप का कठघरा (हप्पलिगे) 1160 ई. में निर्माण कराया था। उनकी पुत्री द्वारा लिखाए गए लेख के अनुसार उन्होंने गंगवाडि में 80 नवीन

बसदियाँ (मन्दिर) बनवाई थीं और 200 बसदियों का जीर्णोद्धार कराया था।

यहाँ बरामदों में जो तीर्थंकर-मूर्तियाँ हैं उनके सम्बन्ध में शिलालेखों से यह जानकारी मिलती है कि नयकीर्ति सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य बसवसेट्टि ने कठघरे की दीवाल का निर्माण कराया था और 24 तीर्थंकरों की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करायी थीं। इन्हीं सेट्टि के पुत्रों ने प्रतिमाओं के सामने की जालीदार खिड़कियाँ बनवाई थीं। इसी प्रकार 1510 ई. के एक शिलालेख से यह जानकारी मिलती है कि चंगाल्वनरेश महादेव के प्रधान सचिव केशवनाथ के पुत्र चन्न बोम्मरस और नञ्जरायपट्टन के श्रावकों ने गोमटेश्वर-मण्डप के ऊपरी भाग (वल्लिवाड) का जीर्णोद्धार कराया था।

सुत्तालय में कुल 43 मूर्तियाँ और गणधर के चरण हैं। ये तीर्थंकर-मूर्तियाँ तीर्थंकरों के क्रम से नहीं हैं। सभी मूर्तियाँ छत्रयुक्त एवं मकर-तोरण से सुसज्जित हैं और उन सबके साथ यक्ष-यक्षी का अंकन है। उनका आसन पाँच सिंहों पर आधारित है। इनकी ऊँचाई तीन फुट छह इंच से लेकर साढ़े चार फुट तक है। मकर-तोरण से युक्त बाहुबली की मूर्ति पाँच फुट की है। उस पर छत्र है और लताएँ हटाती देवियों का भी अंकन है। चन्द्रप्रभ की मूर्ति अमृतशिला की है। चन्द्रप्रभ की एक मूर्ति पर मारवाड़ी में लेख है कि उसे सेनवीरमतजी एवं अन्य सज्जनों ने संवत् 1635 में प्रतिष्ठित कराया था। सुत्तालय में एक शिलालेख भी है।

मूर्तियों की शृंखला में सबसे प्रथम स्थान श्रवणबेलगोल की शासनदेवी कूष्माण्डिनी देवी का है। इस देवी की यहाँ दो मूर्तियाँ (एक प्रारम्भ में और दूसरी तीर्थंकर मूर्तियों के अन्त में) हैं। एक मूर्ति सिद्ध भगवान की है। यह भी आश्चर्य ही है कि तीर्थंकर-मूर्तियों में सबसे पहले चन्द्रप्रभ की है और सबसे अन्त की मूर्ति भी चन्द्रनाथ की है जो कि सुत्तालय से बाहर है। शासन-देवी कूष्माण्डिनी के अतिरिक्त अन्य मूर्तियाँ इस प्रकार हैं—(1) चन्द्रप्रभ, (2) पार्श्वनाथ, (3) शान्तिनाथ, (4) आदिनाथ, (5) पद्मप्रभ, (6) अजितनाथ, (7) वासुपूज्य, (8) कुंथुनाथ, (9) विमलनाथ, (10) अनन्तनाथ, (11) संभवनाथ, (12) सुपार्श्वनाथ, (13) पार्श्वनाथ (14) मल्लिनाथ, (15) शीतलनाथ, (16) अभिनन्दननाथ, (17) चन्द्रनाथ, (18) श्रेयांसनाथ, (19) मुनिसुव्रतनाथ, (20) सुमतिनाथ, (21) पुष्पदन्त, (22) सिद्ध परमेष्ठी, (23) नमिनाथ, (24) नेमिनाथ, (25) महावीर, (26) शान्तिनाथ, (27) अरहनाथ, (28) मल्लिनाथ, (29) मुनिसुव्रतनाथ, (30) पार्श्वनाथ, (31) महावीर, (32) विमलनाथ, (33) पार्श्वनाथ, (34) धर्मनाथ, (35) महावीर, (36) मल्लिनाथ, (37) शान्तिनाथ, (38) संभवनाथ, (39) कूष्माण्डिनी देवी (40) गणधर-चरण, (41) बाहुबली और (42) बाहर की चन्द्रनाथ मूर्ति।

गोमटेश्वर मूर्ति के सामने जो मण्डप है उसकी मुँडेर पर भी दाएँ और बाएँ चूने से निर्मित कूष्माण्डिनी देवी, पद्मावती, देवेन्द्र, सरस्वती और लक्ष्मी की मूर्तियाँ हैं।

मूर्ति के पीछे भी एक मण्डप है जो लगभग 15 फुट चौड़ा और 90 फुट लम्बा जान पड़ता है। इसका उपयोग मस्तकाभिषेक के समय सामग्री रखने के लिए किया जाता है। विद्युत्पात से मूर्ति को बचाने के लिए एक लाइटनिंग कण्डक्टर भी मूर्ति के पीछे लगा दिया गया है। मूर्ति के पास से ही ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं। मूर्ति के सामने के मण्डप की छत से भी मूर्ति का ऊपरी भाग देखा जा सकता है। किन्तु यह मार्ग सबके लिए खुला नहीं है। वहाँ से गोमटेश्वर

कॉलेज का हॉस्टल दिखाई देता है जो कि गाँव से कुछ दूरी पर है।

भगवान गोमटेश्वर की मूर्ति के सामने पत्थर का एक प्राचीन कटघरा है।

ललित सरोवर—गोमटेश्वर की मूर्ति के बाएँ पैर के पास पत्थर का एक छोटा-सा कुण्ड है जिसे 'ललित सरोवर' कहा जाता है। गन्धोदक का जल इसमें इकट्ठा होता है और अधिक हो जाने पर भूमिगत नाली के द्वारा परकोटे के नीचे से होता हुआ कुण्ड में पहुँच जाता है, ऐसा कहा जाता है। जो भी हो, पानी बाहर जाने की प्रणाली तो अवश्य होगी ही।

महामूर्ति के दोनों ओर इन्द्र और इन्द्राणी की भव्य मूर्तियाँ हैं। उनके हाथों में चँवर हैं।

भट्टारक जी का आसन—गोमटेश्वर की दाहिनी ओर भट्टारक जी का आसन है। पाद-पूजा के समय भट्टारक जी के चरण प्रक्षालित किए जाते हैं। उस समय वे आसन पर बैठकर कार्यकर्त्ताओं को नारियल वितरित करते हैं।

गोमटेश्वर बाहुबली

गोमटेश्वर भगवान बाहुबली की यह अतिशयसम्पन्न, चर्चित, विशाल एवं भव्य मूर्ति एक प्रफुल्ल पाषाण-कमल पर खड़ी हुई प्रदर्शित है (देखें चित्र क्र. 95)।

पूरे पर्वत-खण्ड में से इतनी विशाल मूर्ति का आकार कल्पना में उतारने और भारी हथौड़ी तथा छैनियों की नाजुक तराश से मूर्ति का अंग-अंग उकेरने का काम जितनी एकाग्रता और संयम-साधना से हुआ होगा, इसकी कल्पना करने पर रोमांच हो उठता है। नुकीली और संवेदनशील नाक, अर्धनिमीलित ध्यानमग्न नेत्र, सौम्य स्मित ओष्ठ, किंचित् बाहर को निकली हुई ठोड़ी, सुस्पष्ट कपोल, पिण्डयुक्त कान, मस्तक तक छाये हुए घुँघराले केश आदि इन सभी से दिव्य आभा वाले मुख-मण्डल का निर्माण हुआ है। बलिष्ठ विस्तृत पृष्ठभाग का कलात्मक निर्माण, आठ मीटर चौड़े बलशाली कन्ध, चढ़ाव-उतार रहित कुहनी और घुटनों के जोड़, संकीर्ण नितम्ब जिनकी चौड़ाई सामने से तीन मीटर है और अत्यधिक गोल है, ऐसे प्रतीत होते हैं मानो मूर्ति को संतुलन प्रदान कर रहे हों। भीतर की ओर उकेरी गई नालीदार रीढ़, सुदृढ़ और अडिग चरण, सभी उचित अनुपात में मूर्ति-कला की उन अप्रतिम परम्पराओं की ओर संकेत करते हैं जिनका शारीरिक प्रस्तुति से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि तीर्थंकर या साधु का अलौकिक व्यक्तित्व केवल भौतिक जगत् की कोई सत्ता नहीं, उसका निजत्व तो आध्यात्मिक तल्लीनता के आनन्द में है। त्याग की परिपूर्णता निरावरण नग्नता में है। सुदृढ़ निश्चय, कठोर साधना और आत्म-नियन्त्रण की परिचायक है यह खड्गासन मुद्रा।

इस मूर्ति का निर्माण किस महान् शिल्पी ने किया, यह ठीक से ज्ञात नहीं हो सका। कुछ विद्वान इसे 'त्यागद' की कृति मानते हैं तो कुछ अरिष्टनेमि की। 'त्यागद' नाम नहीं जान पड़ता, वह त्याग या दान का स्थान सूचित करता है। हाँ, अरिष्टनेमि का नाम सामने की पहाड़ी 'चन्द्रगिरि' पर भरतेश्वर की मूर्ति के पास एक शिला पर अंकित है।

मूर्ति के प्रतिष्ठा-काल को लेकर भी अनेक मत प्रचलित हुए। यदि त्यागद ब्रह्मदेव स्तम्भ के तीन ओर का शिलालेख नहीं घिसवा दिया गया होता तो शायद इसके निर्माण-काल का ठीक-ठीक पता चल जाता। अस्तु, कवि दोडय्य द्वारा रचित 'भुजबलीचरित' (1550 ई.) के

एक श्लोक से ज्ञात होता है कि इसकी प्रतिष्ठा कल्कि संवत् 600 में, चैत्र शुक्ल पंचमी को कराई गयी थी। इस तिथि और संवत् को लेकर भी विद्वानों ने भिन्न-भिन्न कालों का निर्धारण किया है। किन्तु अब अधिकांश विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि इस महामूर्ति की प्रतिष्ठा 13 मार्च 981 ई. को हुई थी। उस दिन चैत्र शुक्ल पंचमी, रविवार, मृगशिरा नक्षत्र, कुम्भ लग्न, सौभाग्य योग और विभव संवत्सर तथा कल्कि संवत् 601 था। प्रतिष्ठा के 1000 वर्ष पूरे होने पर वर्ष 1981 ईस्वी में इसी तिथि को आधार मानकर ही सहस्राब्दी महामस्तकाभिषेक का आयोजन बहुत विशाल स्तर पर किया गया था।

नामकरण—आचार्य जिनसेन (द्वितीय) के जिस 'आदिपुराण' में वर्णित भरत-बाहुबली आख्यान को सुनकर चामुण्डराय की माता काललदेवी को बाहुबली की प्राचीन मूर्ति के दर्शन की इच्छा हुई और जिसका अन्तिम परिणाम श्रवणबेलगोल में बाहुबली की मूर्ति का निर्माण हुआ, उस महाग्रन्थ में बाहुबली नाम के अतिरिक्त 'भुजबली' और 'दोर्बली' भी पाये जाते हैं। किन्तु यहाँ की एवं कर्नाटक के अन्य स्थानों की मूर्तियाँ गोमटेश्वर के रूप में ही प्रसिद्ध हुईं। यह ऐतिहासिक नाम स्वयं चामुण्डराय के समय से ही प्रचलित हुआ है। या फिर कन्नड़ के प्रसिद्ध कवि बोप्पण के 1180 ई. के उस शिलालेख के बाद प्रचलित हुआ जो गोमटेश्वर-द्वार के बाईं ओर एक पाषाण पर उत्कीर्ण है। इसमें कवि ने 'गोम्मट जिन', 'गोम्मटेश्वर' आदि के अतिरिक्त 'बाहुबली' और 'दक्षिण कुक्कटेश' नामों का भी प्रयोग किया है। संभवतः इसी के साथ चामुण्डराय का एक नाम 'गोम्मट' या 'गोम्मटराय' और श्रवणबेलगोल का 'गोम्मटपुर' नाम भी प्रचलित हो गया।

चामुण्डराय के गुरु आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने 'गोमटेस थुदि' और 'गोम्मटसार' की रचना की है। आचार्यश्री ने 'गोम्मटसार' ग्रन्थ के विषय में स्पष्ट लिखा है कि उन्होंने सिद्धान्तसागर का मंथन करके अपना यह 'गोम्मटसंग्रहसूत्र' उन गोम्मटराय के हितार्थ रचा है जिनके गुरु आर्यसेन के शिष्य भुवनगुरु अजितसेनाचार्य थे और जिन्होंने 'गोम्मटगिरि' (चन्द्रगिरि) के शिखर पर गोम्मटसंग्रह-जिन अर्थात् नेमिनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की थी तथा महाकाय 'दक्षिणकुक्कुटजिन' (विन्ध्यगिरि पर भगवान बाहुबली) की भी स्थापना की थी।

इस ग्रन्थ के कर्मकाण्ड भाग के अन्त में वह लिखते हैं—

> "गोम्मटसंग्रहसुत्तं गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य।
> गोम्मटरायविणिम्मिय-दक्खिणकुक्कुडजिणो जयदु ।। 968 ।।"

अर्थात् यह गोम्मटसार संग्रह गोम्मटराय द्वारा गोम्मटगिरि पर बनवाई गयी गोम्मट-जिन प्रतिमा (इन्द्रनीलमणि की नेमिनाथ की प्रतिमा) तथा उन्हीं के द्वारा ही बनवाई गयी 'दक्षिण-कुक्कुटेश्वर' (भगवान बाहुबली) की प्रतिमा जयवन्त हो।

इस महामूर्ति का निर्माण एक ही पत्थर से हुआ है। न तो यह मूर्ति कहीं बाहर से बनवाकर स्थापित की गयी है और न ही इसके विभिन्न अंगों को आपस में जोड़कर इस महान् शिल्प का निर्माण किया गया है। वास्तव में यह एक ही ठोस, चिकनी, सुदृढ़ और दोषरहित अखण्ड ग्रेनाइट शिला को छैनी से तराशकर बनाई गयी है।

गोम्मटेश्वर की इस मूर्ति की ऊँचाई नापने के समय-समय पर विभिन्न प्रयत्न किये गये हैं। सबसे पहले मैसूर महाराजा की आज्ञा से कवि शान्तराज पंडित ने 1820 ई. में इस मूर्ति को हाथ और अंगुल के नाप से 1/8 अधिक 38 हाथ ऊँची बताया। अनन्तर बुकनान ने 70 फीट, वेलेजली (जो वाइसराय बने) ने 60 फीट 3 इंच, 1871 ई. में मैसूर के लोक निर्माण विभाग ने 56 फीट, 1885 में मैसूर के कमिश्नर ने तथा 1923 में प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् नरसिंहाचारी ने उसे 57 फीट ऊँचा बताया। 1957 में मैसूर के पुरातत्त्व विभाग ने मूर्ति की नाप की और उसकी ऊँचाई 58 फीट निर्धारित की। सबसे अन्तिम प्रयास 1980 में कर्नाटक विश्वविद्यालय धारवाड़ के 'भारतीय कला इतिहास संस्थान' ने किया है। उसने थियोडोलाइट उपकरण की सहायता से इस मूर्ति की ऊँचाई 58 फीट 8 इंच निर्धारित की है।

वास्तुविदों के अनुसार, मूर्ति के अंग-प्रत्यंग सही अनुपात में निर्मित किये गये हैं। किन्तु उनकी दृष्टि में अंग-न्यूनता का एक स्थल उनकी तीक्ष्ण दृष्टि से नहीं बच सका। ध्यान से देखने पर बायें हाथ की एक अँगुली कुछ छोटी बनाई गयी है। अनुमान किया जाता है कि उस विनीत शिल्पी ने अपनी लघुता प्रदर्शित करने के लिए शायद ऐसा किया हो।

जैन मूर्तिशास्त्र का विधान है कि जिन-प्रतिमाओं का अंकन युवावस्था एवं ध्यानमग्न स्थिति का होना चाहिए। मूर्तिकार ने इसका पूरी तरह पालन किया है। आश्चर्य तो केवल इसी बात का है कि इतनी बड़ी शिला के तक्षण करने में उस प्रधान शिल्पी ने कितनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है! और भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि मूर्ति पर की गयी चमकदार पॉलिश के कारण वह हाल में ही बनी-सी लगती है।

मूर्ति की असाधारणता का परिचय देते हुए श्री के. आर. श्रीनिवासन् ने लिखा है : "यह अंकन किसी भी युग के सर्वोत्कृष्ट अंकनों में से एक है।"

गोम्मटेश्वर की यह महामूर्ति अब तक लाखों-करोड़ों जनकण्ठों की प्रशंसा, श्रद्धा एवं आश्चर्य का विषय रही है। सन् 1180 ई. के यहाँ स्थित कन्नड़ कवि बोप्पण द्वारा एक शिला-लेख में जो काव्यात्मक किन्तु वास्तविक मूल्यांकन किया गया है वह उचित ही है—

"अतितुंगाकृतियादोडागदद रोल्सौन्दय्यँमौन्नत्यमुं
नुत सौन्दय्यँमुमागेमत्तशितयंतानागदौन्नत्यमुं।
नुत सौन्दय्यँमुमूर्ज्जितातिशयमुं तन्नल्लि निन्दिर्द्दुवें
क्षिति संपूज्यमो गोम्मटेश्वरजिनश्रीरूपमात्मोपमं ।। 81 ।।"

(जब मूर्ति बहुत बड़ी होती है तब उसमें सौन्दर्य नहीं आ पाता। यदि बड़ी भी हुई और सौन्दर्य भी हुआ तो उसमें दैवी प्रभाव का अभाव हो सकता है। पर यहाँ इन तीनों के मिश्रण से गोम्मटेश्वर की छटा अपूर्व हो गई है।)

बाहुबली महामस्तकाभिषेक

मूर्ति का नित्य चरणाभिषेक और नैमित्तिक महामस्तकाभिषेक श्रवणबेलगोल की प्राचीन परिपाटी है। एक शिलालेख में यह उल्लेख मिलता है कि पण्डिताचार्य द्वारा 1398 ई. में मूर्ति का मस्तकाभिषेक कराया गया। इसी लेख में यह भी लिखा है कि पण्डिताचार्य ने इसके पूर्व भी

91. श्रवणबेलगोल—कल्याणी सरोवर। ऊपर की ओर चन्द्रगिरि।
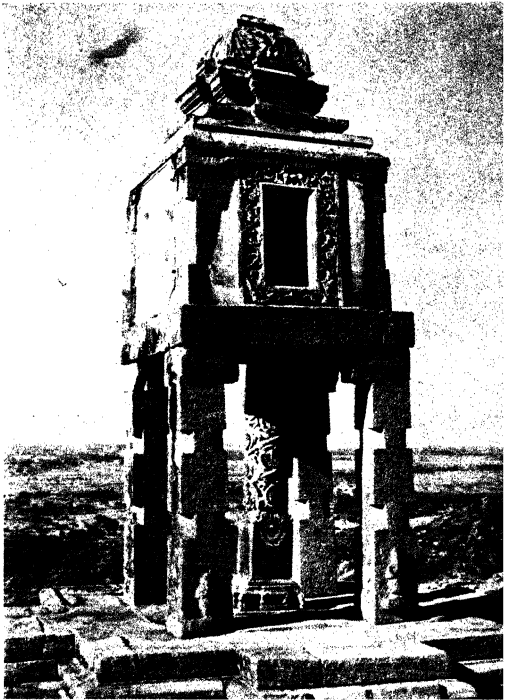
92. श्रवणबेलगोल— विन्ध्यगिरि या दोड्डबेट्ट।

93. श्रवणबेलगोल—विन्ध्यगिरि : त्यागदब्रह्मदेव—पांच स्तम्भों वाला प्रसिद्ध मण्डप ।

94. श्रवणबेलगोल—विन्ध्यगिरि पर गोमटेश्वर मन्दिर के सामने स्थापित गुल्लिकायज्जी की मूर्ति ।

95. श्रवणबेलगोल—गोमटेश्वर भगवान बाहुबली।
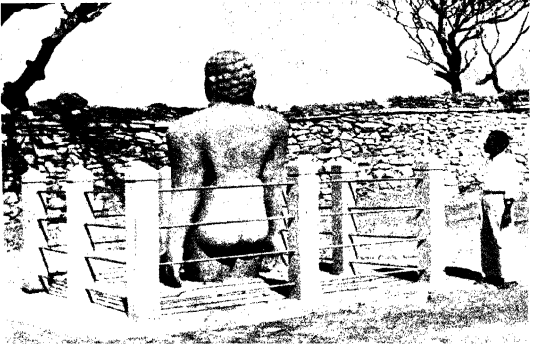
96. श्रवणबेलगोल—चन्द्रगिरि पर भरत चक्रवर्ती की विशाल मूर्ति का पृष्ठ भाग।
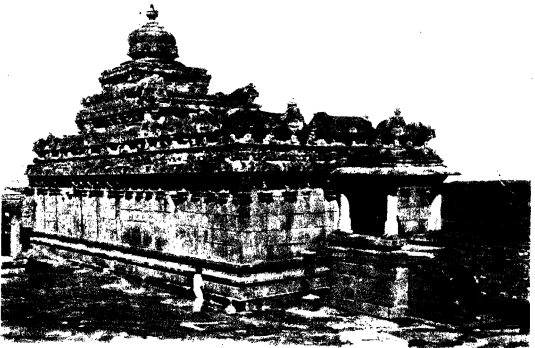
97. श्रवणबेलगोल—चामुण्डराय बसदि का बाह्य दृश्य।
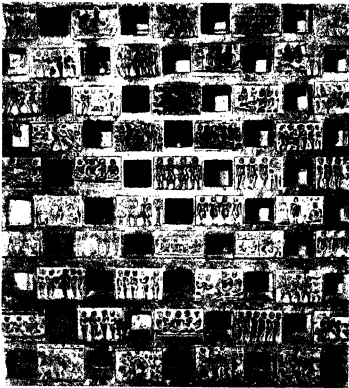
98. श्रवणबेलगोल—चन्द्रगुप्त-बसदि : जाली पर उत्कीर्ण भद्रबाहु-चन्द्रगुप्त कथा।
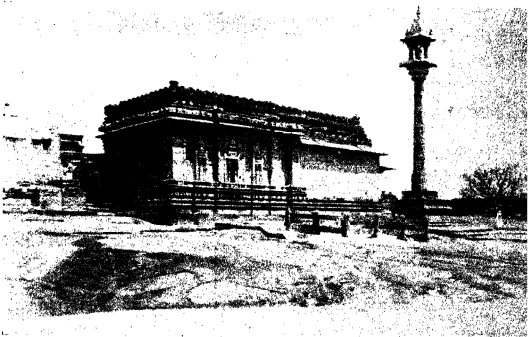
99. श्रवणबेलगोल—पार्श्वनाथ बसदि का बाह्य दृश्य।

100. श्रवणबेलगोल—चन्द्रगिरि : पार्श्वनाथ बसदि के समक्ष शिलालेख ।

101. श्रवणबेलगोल—चन्द्रगिरि पर भद्रबाहु गुफा में आचार्य भद्रबाहु के चरण-युगल ।

सात मस्तकाभिषेक सम्पन्न कराये थे। बाद के 600 वर्षों में भी कुछ महामस्तकाभिषेकों का प्रमुखता से उल्लेख है। 1871 ई. तक अनेक मस्तकाभिषेकों के बाद निम्नलिखित मस्तकाभिषेक बड़े पैमाने पर आयोजित किये गये : (1) 1887 ई. में कोल्हापुर के भट्टारक श्री लक्ष्मीसेन द्वारा, 1910 तथा 1925 में दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी द्वारा, 1940 तथा 1953 में मैसूर राज्य शासन द्वारा। इसके बाद 1967 में कर्नाटक शासन और श्रवणबेलगोल दिगम्बर जैन इंस्टीट्यूशन्स मैनेजिंग कमेटी द्वारा इस अभिषेक का विशाल स्तर पर आयोजन किया गया। अन्त में महामूर्ति की प्रतिष्ठा के एक हज़ार वर्ष पूर्ण होने पर, 1981 ई. में उक्त मैनेजिंग कमेटी के तत्त्वावधान में 'अखिल भारतीय भगवान बाहुबली प्रतिष्ठापना सहस्राब्दी महोत्सव एवं महामस्तकाभिषेक महोत्सव समिति' द्वारा अभिषेक का जो आयोजन हुआ था उस अवसर पर इस विशाल मूर्ति को संसार के अनेक देशों में अच्छी ख्याति प्राप्त हुई। जर्मनी में अभिषेक की फ़िल्म दिखाई गयी। न केवल भारत के, अपितु अमेरिका आदि देशों के पत्रकारों, छायाकारों ने भी इसकी छवियाँ प्रकाशित-प्रसारित कीं।

पिछले एक हज़ार वर्षों में अनेक राजा-महाराजाओं ने श्रवणबेलगोल और उसके आस-पास के प्रदेशों पर राज्य किया या आक्रमण किया। उनमें से कुछ धर्मद्वेषी भी थे, मूर्तिभंजक भी थे। उन्होंने नगर उजाड़ दिये, कुछेक मन्दिर भी नष्ट या अपवित्र किये, तबाही मचायी। वे श्रवणबेलगोल तक भी पहुँचे, किन्तु उनका विध्वंसक हाथ इस मूर्ति की ओर नहीं बढ़ा, और न ही उन्होंने इस नगर तथा यहाँ के मन्दिरों को नुकसान पहुँचाया। इसे इस महामूर्ति का विस्मयकारी प्रभाव ही माना जाय।

नये वर्ष के दिन गोमटेश्वर का दर्शन—भारतीय पंचांग के अनुसार चैत्र मास वर्ष का पहला महीना होता है। इस मास के पहले दिन गोमटेश्वर मूर्ति का सबसे पहले दर्शन करने के लिए बहुत से लोग विन्ध्यगिरि पर रात्रि में ही आ जाते हैं और सुबह 4 बजे उठकर, घण्टा बजाकर भगवान बाहुबली का दर्शन करते हैं। भगवान के शुभ दर्शन के बाद ही उस दिन वे अपने सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त होते हैं।

चन्द्रगिरि

श्रुतकेवली भद्रबाहु और सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य की तपस्या और सल्लेखनाविधि द्वारा इस छोटी पहाड़ी (चिक्कबेट्ट) पर शरीर त्यागने से यह स्थल एक तीर्थ बन गया। मुनिवर और सम्राट् का अनुकरण करते हुए समाधिमरण के लिए पवित्र स्थान के रूप में यह पहाड़ी इतनी प्रसिद्ध हुई कि यहाँ के सबसे प्रचीन 600 ई. के शिलालेख में इसे 'कटवप्र' या कलवप्पु (समाधिशिखर), तीर्थगिरि एवं ऋषिगिरि ही कहा गया। इसी शिलालेख में यह भी उल्लेख है कि आचार्य भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त (प्रभाचन्द्र) के बाद, इस पहाड़ी पर सात सौ अन्य मुनियों ने कालान्तर में समाधिमरण किया था। उसके बाद के सल्लेखना-विधि से शरीरत्याग के तो यहाँ इतने शिलालेख और चरण हैं कि आश्चर्य होता है। इस प्रकार यह पहाड़ी एक पवित्र तपोभूमि के रूप में प्रसिद्ध रही है। जो भी हो, सम्राट् चन्द्रगुप्त के नाम पर यह पहाड़ी पिछले 2300 वर्षों से 'चन्द्रगिरि' ही कहलाती है। (प्रसंगवश, यह भी उल्लेख किया जाता है कि एक चन्द्रगिरि और

है। इस समय वह आधुनिक केरल राज्य की सीमा में (मंगलोर के समीप) कासरगोड जिले में कबीना नदी के किनारे स्थित है। प्राचीन समय में वह मूडबिद्री, कारकल, मंगलोर प्रदेश की तुलु भाषा के कारण तुलुनाडु की सीमा थी और इस प्रदेश को केरल से पृथक् करती थी।)

चन्द्रगिरि समुद्र की सतह से 3052 फुट ऊँची और उसकी तलहटी के नीचे मैदान से लगभग 225 फुट ऊँची है। पहाड़ी पर जाने के लिए चट्टान में ही काटकर बनायी गई 222 सढ़ियाँ हैं। सीढ़ियों के दोनों ओर रेलिंग है। उनके बाद साफ, चिकनी और झाड़-झंखाड़ आदि किसी भी प्रकार की बाधा से रहित चट्टान पर चलना होता है। कुल मिलाकर चढ़ाई बहुत ही आसान है।

शिलालेखों के प्रसंग में हमने देखा कि सन् 600 ई. में या आज से 1400 वर्ष पूर्व यहाँ शेर, चीता, भालू, हरिण और सर्प तथा फल-फूलों से लदे वृक्षों का वन था। किन्तु अब यहाँ न ही वन है और न ही कोई काँटेदार झाड़ियाँ। इसके विपरीत, जामुन के पेड़ और चन्दन के पेड़ अवश्य हैं जो कि शीतलता प्रदान करते हैं। हाँ, भद्रबाहु गुफा के साथ लगी जो ऊँची पहाड़ी है उस पर तेज सनसनाती हवा चलती है और पत्तों की खड़खड़ाहट निर्जन स्थान का आभास देती है। वहाँ प्रायः यात्री नहीं जाते। अनुश्रुति है कि वहीं पर श्रुतकेवली भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मौर्य तपस्या किया करते थे। वहाँ भद्रबाहु स्वामी के चरण हैं। सबसे ऊँची उस जगह पर एक बार 1900 ई में, मैसूरनरेश कृष्णराज वाडियार गए थे और उन्होंने वहाँ अपना नाम खुदवा दिया था। अब वहाँ धातु का एक स्तम्भ देखा जा सकता है। उस पहाड़ी की दूसरी ओर की ढलान बहुत सीधी है। वहाँ से पहाड़ी लगभग खड़ी दिखाई देती है।

चन्द्रगिरि पर सल्लेखना सम्बन्धी लेखों और चरणों की संख्या बहुत अधिक है। श्री शेट्टर के अनुसार, "श्रवणबेलगोल में मिलने वाले 106 स्मारकों में 92 छोटे पहाड़ पर हैं जिनमें लगभग 47 संन्यासियों के, 9 संन्यासिनियों के और 5 गृहस्थों के हैं और ये सभी 7-8वीं सदियों के हैं।" यात्रियों को इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि वे पुण्यात्माओं के चरणों पर पैर रखते हुए नहीं चलें।

चामुण्डराय गुण्डु—अर्थात् चामुण्डराय शिला। सीढ़ियों का पहला दौर जहाँ समाप्त होता है वहाँ बायीं ओर कुछ शिलाओं को पारकर लगभग 18 फुट ऊँची दीवाल-जैसी एक शिला खड़ी है जो कि बीच में लगभग 15 फुट चौड़ी होगी। यही 'चामुण्डराय शिला' कहलाती है। यहीं खड़े होकर चामुण्डराय ने सामने की विंध्यगिरि पर तीर चलाया था। अब इस शिला से सामने की पहाड़ी पर प्रतिष्ठित गोमटेश्वर महामूर्ति के कन्धों से कुछ नीचे तक की भुजाएँ दिखाई देती हैं। शिला पर कायोत्सर्ग मुद्रा में सात प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। बीच की मूर्ति स्पष्ट है और छत्रयुक्त है।

चरण—पहाड़ी पर जाने के लिए बनी 114 सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद, बिना सीढ़ियों की एक शिला के समीप एक बहुत बड़ी चट्टान है। उस पर चरण हैं। ये चरण और ऊपर चढ़ने पर 180वीं सीढ़ी से दिखाई देते हैं।

तोरणद्वार—और ऊपर अर्थात् 192 सीढ़ियाँ चढ़ने पर एक साधारण तोरणद्वार मिलता है। वह दो स्तम्भों पर आधारित है और उस पर केवल एक शिला जमाई गई है। यह तोरण

नीचे तलहटी से भी दिखाई देता है।

कुल 222 सीढ़ियाँ चढ़ चुकने के बाद साफ़-सुथरी और सरल चट्टान पर चलना होता है। यहाँ से चन्द्रगिरि के मन्दिर-समूह का परकोटा और मानस्तम्भ दिखाई देते हैं। रास्ते में भी एक शिलालेख और चरण हैं। लेख शायद कन्नड़ में या किसी दक्षिण भारतीय लिपि में है। कुछ और आगे बढ़ने पर एक गोल-सी बड़ी चट्टान है। उस पर चरण हैं और उसके आस-पास कमल के फूल का घेरा है और कन्नड़ में लेख है। वहाँ जिसने भी समाधिमरण किया होगा उसने गोमटेश्वर महामूर्ति को देखते हुए शरीर त्यागा होगा, क्योंकि वहाँ से गोमटेश्वर स्पष्ट दिखाई देते हैं। इनके बाद आता है एक कुण्ड और उसके बाद हम परकोटे के समीप पहुँच जाते हैं।

परकोटा—चन्द्रगिरि मन्दिर-समूह एक परकोटे से घिरा हुआ है जिसकी लम्बाई 500 फुट और चौड़ाई 225 फुट है। इस परकोटे में तेरह मन्दिर, सात मण्डप, दो मानस्तम्भ और भरतेश्वर की एक मूर्ति हैं। इस परकोटा को 19वीं सदी के प्रारम्भ में पुट्टणसेट्टि ने बनवाया था।

परकोटे के प्रवेशद्वार के सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। द्वार के ऊपर शिखर है। सम्भवतः ब्रह्मयक्ष की मूर्ति है जिसके दोनों हाथ खण्डित जान पड़ते हैं।

कूगे ब्रह्मदेव स्तम्भ—उपर्युक्त द्वार से प्रवेश करते ही 30 फुट ऊँचा एक स्तम्भ दिखाई देता है जो कि कूगे ब्रह्मदेव स्तम्भ कहलाता है। इसके सामने कोई मन्दिर नहीं है, इसलिए इसे मानस्तम्भ कहना कठिन है। वास्तव में यह जैनधर्मावलम्बी गंगनरेश मारसिंह का स्मारक स्तम्भ है। इस नरेश ने अपने जीवन में अनेक जिनमन्दिर और मानस्तम्भ बनवाए थे तथा 'धर्मावतार' की उपाधि ग्रहण की थी। इस स्तम्भ के चारों ओर जो शिलालेख है उससे यह जानकारी मिलती है कि इस नरेश ने अपने अन्तिम समय में राज्य का परित्याग करके तीन दिन तक सल्लेखना व्रत का पालन करते हुए अजितसेन भट्टारक के समीप बंकापुर में अपना शरीर 974 ई. में त्यागा था। इन्होंने राष्ट्रकूट-नरेश इन्द्रराज (चतुर्थ) का राज्याभिषेक किया था, मान्यखेट के नृप कृष्णराज की सेना को, गुर्जरेश, बनवासीनरेश, नोलम्बशासक, चौड़नरेश, चेर, चोल, पाण्ड्य, पल्लव नरेशों को परास्त किया था तथा अनेक दुर्ग जीते थे। उनकी उपाधियाँ थीं—गंगचूड़ामणि, गंगसिंह, गंगकंदर्प, कोगणिवर्मधर्ममहाराज आदि। इन्हीं मारसिंह के उत्तराधिकारी थे—राचमल्ल (चतुर्थ) जिनके सेनापति और मन्त्री चामुण्डराय ने गोमटेश्वर महामूर्ति का निर्माण कराया।

उपर्युक्त स्तम्भ कलात्मक है। उसकी चौकी आठ हाथियों पर आधारित थी किन्तु अब कुछ ही हाथी शेष बचे हैं। चौकी चार स्तरों की है। सबसे ऊपर एक चौकोर आसन पर ब्रह्म-यक्ष की तीन फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। आसन से घण्टियाँ लटकती प्रदर्शित हैं।

उपर्युक्त स्तम्भ से बाएँ मुड़ने पर बलिपीठ है। उसकी एक शिला पर दो चरण एवं लेख हैं।

शान्तिनाथ बसदि—बायीं ओर यह सबसे पहला किन्तु छोटा मन्दिर है। इसके मूलनायक शान्तिनाथ हैं। उनकी खड्गासन प्रतिमा काले पाषाण की है और 12 फुट 10 इंच ऊँची है। फलक मूर्ति के घुटनों तक ही है। मूर्ति के पीछे या आस-पास किसी प्रकार का आधार नहीं है। इससे अनुमान होता है कि मूर्ति का कुछ आधार-भाग ज़मीन के अन्दर भी होगा। एक अनुश्रुति

यह भी है कि यह मूर्ति रामायण-काल की है। जो भी हो, मूर्ति प्रशान्त मुद्रा में भव्य एवं अच्छी हालत में है। गोमटेश्वर की मूर्ति के बाद जो ऊँची मूर्तियाँ श्रवणबेलगोल में हैं, उनमें इस मूर्ति का स्थान दूसरा है। इस मन्दिर का 1979 ई. में जीर्णोद्धार किया गया है। मन्दिर की छत और दीवालों पर सुन्दर चित्रकारी धुँधली एवं अस्पष्ट है। मन्दिर 10वीं-11वीं सदी का अनुमान किया जाता है।

महानवमी मण्डप—उपर्युक्त मन्दिर के पास ही दो महानवमी मण्डप हैं। ये चार-चार स्तम्भों पर आधारित हैं। इनकी ऊँचाई लगभग 15 फुट है। दोनों में शिलालेख हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उत्तरी मण्डप का निर्माण 1176 ई. में आचार्य नयकीर्ति के समाधि-मरण की स्मृति में मन्त्री नागदेव ने कराया था। दक्षिणी मण्डप में आचार्य देवकीर्ति का स्मारक है। सन् 1313 ई. में आचार्य शुभचन्द्र की स्मृति स्वरूप एक शिलालेख दक्षिणी मण्डप में जोड़ा गया।

दशहरे से पहले, नवमी के दिन यहाँ भगवान की पूजन की एक विशेष परम्परा रही है।

भरतेश्वर प्रतिमा—महानवमी मण्डप के पश्चिम में और उपर्युक्त कक्ष के पास एक खुले स्थान पर लगभग 9 फुट ऊँची एक मूर्ति (चित्र क्र. 96) है जो घुटनों से नीचे जमीन (चट्टान) में ही है। अनुश्रुति इसे बाहुबली के ज्येष्ठ भ्राता भरत की मूर्ति बताती है। मूर्ति के वक्षस्थल पर पाँच गोल निशान हैं और इसी प्रकार के गोल निशान मूर्ति के हाथों पर भी हैं। मूर्ति पर आघात करने से कांसे की-सी आवाज़ निकलती थी, इस कारण स्थानीय बच्चों ने इसे मूर्ति की आवाज़ सुनने का खेल बना लिया था। उन्हीं की शरारत के कारण ये निशान मूर्ति पर पड़ गए हैं। इसलिए अब मूर्ति के चारों ओर काँटेदार तार लगा दिए गए हैं।

भरतेश्वर की मूर्ति को लेकर विद्वानों ने तरह-तरह की अटकलें लगाई हैं। कुछ पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों का यह मत है कि मूर्ति अधूरी छोड़ दी गई। बात अविश्वसनीय लगती है। जिस चन्द्रगिरि की पार्श्वनाथ बसदि में पार्श्वनाथ की लगभग 15 फुट ऊँची सुन्दर मूर्ति गोमटेश्वर की मूर्ति से भी प्राचीन हो, जिस कर्नाटक में अत्यन्त भी सुन्दर और ऊँची बाहुबली मूर्तियाँ (ऐहोल, बादामी) गोमटेश्वर से भी पुरानी मौजूद हों, वहाँ इस मूर्ति के निर्माण के लिए क्या कोई ऐसा शिल्पी लगाया गया होगा जिसे अनुपात का ज्ञान ही न हो और वह इस प्रकार काम करे कि मूर्ति घुटनों तक ही बने? मामूली शिल्पी भी ऐसा नहीं करेगा। वह पहले अपना माप स्थिर करेगा। जैन मूर्ति-कला सम्बन्धी ग्रन्थों में भी अनुपात दिए रहते हैं। फिर कौन ऐसा श्रद्धालु होगा जिसने एक अनाड़ी शिल्पी को काम पर लगाकर अधूरी मूर्ति के कारण अपने को अभागी माना होगा? यदि घुटनों से नीचे पैरों, उनकी उँगलियों आदि का तक्षण शेष रह गया होता तो भी इसे अधूरी मान सकते थे। किन्तु घुटनों से नीचे तो पहाड़ी सतह की शिला आ गई है। इससे यह अनुमान सही है कि यह मूर्ति बनवाई ही घुटनों तक है।

मूर्ति से कुछ ही दूरी पर एक शिलालेख है उसमें इतना ही पढ़ा जाता है कि···"शिष्यर् अरिट्टोनेमिरु माडिसिद्द् सिद्धं" अर्थात् "···के शिष्य अरिष्टनेमि ने बनवाया।" इस लेख से कुछ विद्वानों ने अनुमान कर लिया कि शिल्पी का नाम अरिष्टनेमि था और उसने गोमटेश्वर की मूर्ति बनाने से पहिले भरतेश्वर की इस मूर्ति को प्रयोग के रूप में बनाया होगा। प्रश्न उठता

है कि क्या यह प्रयोग विंध्यगिरि की किसी शिला पर नहीं हो सकता था ? क्या प्रयोग के लिए नौ फुट ऊँची मूर्ति बनाना आवश्यक था ? और वह भी तो आदर्श मूर्ति नहीं बन सकी ! शिल्पी रूप-रेखा अवश्य बनाते हैं (जैसे खजुराहो के मन्दिरों में कहीं-कहीं पत्थरों पर देखने को मिलती हैं) किन्तु अथक श्रम करके नौ फुट ऊँची अधूरी प्रतिमा ही क्यों बनाते !

कुछ जैन विद्वान् या पर्यटक यह मान लेते हैं कि यह एक खण्डित मूर्ति है । किन्तु प्रस्तुत लेखक का यह सुविचारित मत है कि न तो यह मूर्ति अधूरी है और न ही खण्डित । इसका सम्बन्ध भरत-बाहुबली के आख्यान से है जिसके अनुसार बाहुबली ने भरत को धीरे से नीचे उतारकर ऊँची भूमि पर विराजमान कर दिया था (आदिपुराण), और उसका परिणाम यह हुआ था कि भरत शर्म से मानो जमीन में गड़ गए (हिन्दी भाषा में 'शर्म से जमीन में गड़ जाना' मुहावरा बहुत प्रचलित है) । इसलिए यह मूर्ति भरत की उपर्युक्त स्थिति को सूचित करने के लिए जान-बूझकर इसी प्रकार की बनाई गई है । और भी प्रमाण चाहिए तो मूर्ति के पास खड़े होकर देखिए। बाहुबली सामने की पहाड़ी पर बहुत ऊँचे खड़े हैं—वे भाई को क्षमाकर बहुत ऊँचे उठ गए—और भरत लज्जित हो गए ।

'महाभिषेक स्मरणिका' में डॉ. हरीन्द्रभूषण जैन ने पुण्यकुशलगणी के भरत-बाहुबली काव्यम् (वि. सं. 17वीं शदी) से एक श्लोक उद्धृत करते हुए लिखा है, "महाराज भरत के दण्ड-प्रहार से बाहुबली घुटने तक भूमि में धँस गये । जब बाहुबली ने दण्डप्रहार किया तब भरत की जो स्थिति हुई उसका अवलोकन कीजिए—

"आकण्ठं नरपतिर्विवेश भूमौ,
तद्घाताच्छरभ इवाद्रिकन्दरायाम् ॥"

(बाहुबली के तीव्र प्रहार से भरत गले तक भूमि में प्रवेश कर गये, जैसे शरभ पहाड़ की गुफा में प्रवेश कर जाता है ।)

अतः भरतेश्वर की यह मूर्ति प्रतीकात्मक है। विंध्यगिरि पर ऋषभदेव और उनके दीक्षित पुत्र, भरत और बाहुबली मन्दिर, गोमटेश्वर महामूर्ति तथा चन्द्रगिरि की भरत-मूर्ति—ये सब मिलाकर भरत-बाहुबली आख्यान के विभिन्न प्रसंगों-परिणामों [जैसे भरत का भी अन्त में मुनि हो जाना और बाहुबली के समान ही पूज्य होना—(भरत मन्दिर)] के दृश्य रूप में इस कथानक को हमारे सामने उपस्थित करते हैं।

पार्श्वनाथ बसदि (न कि सुपार्श्वनाथ बसदि)—उपर्युक्त भरतेश्वर मूर्ति से आगे लगभग 25 फुट लम्बा और 14 फुट चौड़ा एक छोटा मन्दिर है। वहाँ लिखा है 'सुपार्श्वनाथ बस्ती' । सम्भव है वहाँ किसी समय सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा रही हो। किन्तु वर्तमान में वहाँ पार्श्वनाथ की तीन फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है । तीर्थंकर पर सात फणों की छाया है और सर्पकुण्डली पृष्ठ भाग तक प्रदर्शित है । कमलासन पर प्रतिष्ठित मूर्ति के पीछे के फलक पर दोनों ओर दो-दो व्याल एक के ऊपर एक अंकित हैं और दोनों कन्धों से ऊपर आभूषणों से अलंकृत चँवरधारी बनाए गए हैं जो कि मूर्ति के मस्तक से ऊपर तक उत्कीर्ण हैं । उनका सुन्दर ऊँचा मुकुट भी देखने लायक है । यह ज्ञात नहीं है कि किसने और कब इस मन्दिर का निर्माण कराया ।

चन्द्रप्रभ मन्दिर (बसदि)—पार्श्वनाथ बसदि के निकट ही, यह बसदि 42 फुट लम्बी और 25 फुट चौड़ी है। इसके सामने बलिपीठ और सुन्दर सोपान-जँगला है। गर्भगृह में चन्द्रनाथ की तीन फुट पाँच इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। काले पाषाण की इस प्रतिमा का भामण्डल अलंकृत है और आसन का भार तीन सिंहों के कन्धों पर है। गर्भगृह के बाहर श्याम यक्ष और यक्षिणी ज्वालामालिनी स्थापित हैं। ये मूर्तियाँ भी सुन्दर हैं। मन्दिर के सामने की एक गोल चट्टान पर 'शिवमारन बसदि' उत्कीर्ण है। उससे ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस बसदि का निर्माण गंगवंशीय नरेश श्रीपुरुष के पुत्र शिवमार द्वितीय ने कराया था। इस प्रकार यह बसदि 800 ई. के लगभग निर्मित जान पड़ती है। मूर्ति पर लेख है : "श्री मूलसंघद देशीय गणद वक्रगच्छ बसदि।" इससे यह सूचित होता है कि यह मूर्ति मूलसंघ के देशीय गण के वक्रगच्छ से सम्बन्धित है।

चामुण्डराय बसदि—गोमटेश्वर महामूर्ति के निर्माता चामुण्डराय द्वारा 982 ई. में निर्मित माना जाने वाला यह मन्दिर चन्द्रगिरि पर सबसे सुन्दर और बड़ा मन्दिर माना जाता है (देखें चित्र क्र. 97)।

यह बसदि 68 फुट लम्बी और 36 फुट चौड़ी है। मन्दिर की ऊँचाई 44 फुट है। यहाँ एक सूचना-पट्ट लगा है कि यह मन्दिर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा एक संरक्षित स्मारक है। उसके पास चरण और लेख हैं। मन्दिर के सामने के निचले भाग में भी एक लेख है। बलिपीठ है और सोपान-जँगले पर कमल पुष्प का अंकन है। प्रवेश के लिए चन्द्रशिला और दस सीढ़ियाँ हैं। इस प्रकार यह मन्दिर ऊँचाई पर भी बना है। बाहरी द्वार के दोनों ओर शिलालेख है : "श्री चामुण्डराज माडिसिद" अर्थात् चामुण्डराय ने बनवाया। इससे सिद्ध है कि गोमटेश्वर महामूर्ति के निर्माण के बाद 982 ई. में यह मन्दिर बना। द्वार की चौखट पर सुन्दर उत्कीर्णन है। गर्भगृह में नेमिनाथ की चार फुट ऊँची काले पाषाण की पद्मासन मूर्ति छत्रत्रयी से युक्त है। चँवरधारी मस्तक से ऊपर अंकित हैं। मकर-तोरण की भी संयोजना है। कोणीय आसन पाँच सिंहों पर आधारित है।

नेमिनाथ की मूर्ति पर जो लेख (लगभग 1138 ई. का) है उससे ज्ञात होता है कि गंगराज के पुत्र एचण ने त्रैलोक्यरंजन मन्दिर बनवाया था। सम्भव है कि एचण द्वारा बनवाया गया मन्दिर नष्ट हो गया और उसमें प्रतिष्ठापित मूर्ति यहाँ लाकर विराजमान कर दी गई हो।

क्षेत्र की अधिष्ठात्री देवी कूष्माण्डिनी देवी की सुन्दर प्रतिमा भी लगभग चार फुट ऊँचे फलक पर है। देवी के ऊँचे मुकुट के ऊपर वन का आकर्षक अंकन है। उसमें मोर, चिड़ियाँ और शेर भी अंकित हैं। इसी प्रकार सर्वाह्न यक्ष की मूर्ति भी फलक सहित चार फुट के लगभग ऊँची है। यक्ष का मुकुट ऊँचा है और गोल घेरों में पत्रावली आकर्षक ढंग से उत्कीर्ण है।

अग्रमण्डप के अतिरिक्त, बसदि में 16 स्तम्भों का एक मण्डप और है। कुछ स्तम्भों पर कलश और कुम्भ का सुन्दर उत्कीर्णन है। ऊपर छत में पत्र-लता के घेरे में एक बड़ा कमल उत्कीर्ण किया गया है।

वैसे तो चन्द्रगिरि पर सभी मन्दिर द्रविड़ शैली के हैं किन्तु इस मन्दिर की द्रविड़ शैली अत्यन्त आकर्षक है। मन्दिर जितना विशाल है उतना ही उसका बाहरी भाग भव्य और आकर्षक है। चौड़ी शिलाओं से निर्मित बाहर की सादी दीवालों के होते हुए भी इसकी मुँडेर और दाक्षिणात्य

शैली के शिखर की रचना-शैली अत्यन्त उच्च कोटि की शिल्पकला का उदाहरण प्रस्तुत करती है। पद्मासन तीर्थंकरों की पंक्तियाँ, हँसों की शृंखला, हाथियों और सिंहों की व्याल रूप में कतार, मीन (मछली) का उत्कृष्ट अंकन, यक्ष-यक्षिणियाँ, सुघड़ देवकोष्ठ, छोटे-छोटे गुलाबों की सजावट, कुबेर की प्रतिमा, अगला पँजा खड़ा करके बैठे हुए सिंह, कहीं-कहीं दहाड़ते सिंह और भक्त नर-नारियों का उत्कृष्ट एवं आकर्षक अंकन है। अष्टकोणीय कम ऊँचा शिखर गुंबददार है। इस बसदि की मोहक अप्सराओं में से एक के बारे में श्री शेट्टर ने लिखा है : "मुंडेर के कई उभार-चित्र भारतीय कला इतिहास की सर्वोत्कृष्ट कृतियों में से हैं। यौवन, खूबसूरती तथा निष्कपटता से चमकती हुई कुमारी उनमें से एक है।"

इस बसदि की ऊपर की मंज़िल 'मेगल बसदि' (ऊपर का मन्दिर) का निर्माण चामुण्डराय के पुत्र जिनदेवन ने 995 ई. में कराया था ऐसा लेख से ज्ञात होता है। ऊपर जाने के लिए 20 सीढ़ियाँ हैं जिनमें से कुछ बहुत ही छोटी हैं। छोटी सीढ़ियों पर आवाज़ गूँजती है। ऊपर के मन्दिर के गर्भगृह में पार्श्वनाथ की 5 फुट ऊँची कायोत्सर्ग प्रतिमा है। उस पर सात फण और छत्रत्रयी हैं। सर्प-कुण्डली नीचे तक आई है। पादमूल में यक्ष-यक्षी भी अंकित हैं। एक सर्पफलक भी है। कुल मिलाकर चामुण्डराय बसदि एक उत्तम मन्दिर है।

सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसी मन्दिर में बैठकर आचार्य नेमिचन्द्र ने प्रसिद्ध जैन-ग्रन्थ 'गोम्मटसार' की रचना की थी।

एरडुकट्टे बसदि—कन्नड़ भाषा में एरडु का अर्थ है 'दो'। इस मन्दिर के चबूतरे के दोनों ओर सीढ़ियाँ हैं, इस कारण इसे 'एरडुकट्टे बसदि' कहा जाता है। बसदि की लम्बाई 45 फुट और चौड़ाई 26 फुट है। गर्भगृह में आदिनाथ की लगभग साढ़े तीन फुट ऊँची पद्मासन मूर्ति है। उस पर तीन बड़े छत्र हैं और दोनों ओर चँवरधारी मस्तक से भी ऊपर छत्र तक प्रदर्शित हैं। उनका मुकुट बहुत ऊँचा है। मूर्ति सुन्दर मकर-तोरण से अलंकृत है और उसका आसन पाँच सिंहों पर आधारित है। गर्भगृह से बाहर यक्षी चक्रेश्वरी का मुकुट ऊँचा है और वक्ष में छोटे-बड़े लटकते हुए फल दिखाए गए हैं। इसी प्रकार गोमेद यक्ष भी ऊँचा मुकुट धारण किए हुए है। पत्रावली और मकर-तोरण से यक्ष की मूर्ति भव्य दिखती है। मन्दिर की छत पर कमल का उत्कीर्णन है। नवरंग में 6 स्तम्भ हैं। इनमें जो घण्टाकार स्तम्भ हैं उनमें से एक में लेख मिला है जो इस मन्दिर का निर्माण 9वीं सदी या 10वीं सदी के प्रारम्भ में सिद्ध करता है। ऋषभदेव के सिंहासन पर उत्कीर्ण लेख से यह भी ज्ञात होता है कि 1117 ई. में गंगराज की पत्नी लक्ष्मीदेवी ने इस मन्दिर का निर्माण कराया था। यह सम्भव है कि यह मन्दिर उनके समय में जीर्ण अवस्था में रहा हो और उन्होंने पुराने स्तम्भों आदि का प्रयोग कर इसका जीर्णोद्धार करा दिया हो।

मन्दिर की सीढ़ियों से लगा एक शिलालेख भी है।

उपर्युक्त बसदि के बाहर चार स्तम्भों का मण्डप है जिसमें चार शिलालेख हैं।

सवतिगन्धवारण बसदि—इस मन्दिर का नाम ही मनोरंजक है। 'सवतिगन्धवारण' का अर्थ है—'सौत रूपी मत्त हाथी को नियन्त्रित करने वाली'। यह विशेषण यहाँ इस मन्दिर के निर्माण सम्बन्धी शिलालेख में होय्सलनरेश विष्णुवर्धन की पटरानी शान्तलादेवी (परिचय के लिए देखिए हलेबिड प्रकरण) के लिए प्रयुक्त हुआ है। उस अत्यन्त रूपवती, नृत्य-संगीत में

प्रवीण, कुशल राजनीतिज्ञ, परम जिनभक्ता रानी ने यह मन्दिर 1123 ई. में बनवाया था। उसने और भी जिनालय बनवाए थे। यह बसदि 69 फुट लम्बी और 35 फुट चौड़ी है। गर्भगृह में शान्तिनाथ की पद्मासन मूर्ति पाँच फुट ऊँची है। उस पर तीन बड़े छत्र हैं और ऊँचे मुकुट वाले चँवरधारी हैं। पाँच सिंहों के आसन और मकर-तोरण की भी संयोजना है। गर्भगृह के बाहर यक्ष किम्पुरुष और यक्षी महामानसी की मूर्तियों का फलक लगभग चार फुट ऊँचा है। छत पर कमल का उत्कीर्णन है। नवरंग में आठ स्तम्भ हैं जिन पर सुन्दर पॉलिश है।

'सवतिगन्धवारण बसदि' के पास भी चार स्तम्भों का एक मण्डप है। उसमें चारों ओर शिलालेख है। इसी प्रकार बायीं ओर पट्टमहिषी शान्तलादेवी का शिलालेख है जिसमें ऊपर तीर्थंकर और चँवर हैं।

तेरिन बसदि—कन्नड़ में रथ को तेरु कहते हैं। मूलनायक बाहुबली के 70 फुट लम्बे और 26 फुट चौड़े मन्दिर के सामने रथ के आकार जैसी एक रचना है। उस पर बावन जिन-मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं जो नन्दीश्वर की प्रतीक हैं। जो भी हो, यह रथाकार निर्मिति सामने होने के कारण इस बाहुबली मन्दिर का नाम 'तेरिन बसदि' पड़ गया। बाहुबली की मूर्ति लगभग चार-फुट ऊँची है। रथाकार रचना पर उत्कीर्ण लेख के अनुसार होय्सलनरेश के समय पोय्सलसेट्टि की माता माचिकब्बे और नेमिसेट्टि की माता शान्तिकब्बे ने नन्दीश्वर और बाहुबली मन्दिर दोनों को बनवाया था। बाहुबली की पाँच फुट ऊँची मूर्ति पर गोल घेरों में लताएँ बनी हैं। बाहुबली के हाथ और पैरों पर लताओं के दो वेष्टन (लपेट) हैं। सर्प या बाँबी आदि कुछ भी नहीं है। मूर्ति कमलासन पर स्थित है। छत पर कमल का उत्कीर्णन है। मण्डप में चार स्तम्भ हैं। इस मन्दिर में सर्वाह्न यक्ष और अम्बिका यक्षी की मूर्तियाँ भी हैं। मन्दिर पर शिखर है।

तेरिनबसदि के सामने या तो कमल के ऊपर बलिपीठ है या कोई मानस्तम्भ बनने से रह गया है। द्रविड शैली की इस रचना में 9 तल या स्तर हैं। छठे स्तर पर चारों ओर पद्मासन तीर्थंकर हैं।

शान्तीश्वर बसदि—ऊँचे स्थान पर बने इस मन्दिर में 21 सीढ़ियाँ चढ़कर जाना होता है। मन्दिर 56 फुट लम्बा और 30 फुट चौड़ा है। सीढ़ियों के बायीं ओर टेक (सपोर्ट) लगाए गए हैं ताकि चौकी को बचाया जा सके। मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ है। सीमेंट के भी कुछ नये स्तम्भ लगाए गए हैं। गर्भगृह में शान्तिनाथ की काले पाषाण की छह फुट के लगभग ऊँची मूर्ति है। फलक के पीछे हाथी पर इन्द्र-इन्द्राणी अंकित हैं। प्रतिमा के आस-पास यक्ष-यक्षी हैं। वे बाहर भी स्थापित किए गए हैं। मन्दिर का शिखर अन्य मन्दिरों की शैली के अनुसार द्रविड़ शैली का है। इस बसदि को गंगराज के ज्येष्ठ भ्राता बोम्मण के पुत्र एचिमय्य ने 1117 ई. में बनवाया था। उसने और भी अनेक स्थानों पर मन्दिर बनवाए हैं।

चन्द्रगिरि पर्वत के तीन ओर जलपूरित छोटे-छोटे कुण्ड हैं। एक ओर द्वार भी है। तेरिन बसदि के पीछे दो मण्डप हैं। एक में तीन शिलालेख हैं और दूसरे में एक। ये गंग-परिवार के सदस्यों तथा मुनि त्रैविद्यदेव की स्मृति में बनाए गए मण्डप में हैं। इनके निकट दो और मण्डप हैं। सन् 1145 ई. के मण्डप में पट्टमहिषी शान्तला की माता माचिकब्बे की समाधि (1131 ई.) का और दूसरे में उसके भाई बलदेव और सिंगिमय्य की मृत्यु का उल्लेख है। इसी प्रकार

एरडुकट्टे बसदि के पीछे दो फुट के चरण हैं।

मज्जिगण बसदि—सम्भवतः मज्जिगण नाम के किसी व्यक्ति ने इसे बनवाया होगा। शिलालेख के अभाव में इसका निर्माण-काल निश्चित नहीं किया जा सकता। एक चबूतरे पर निर्मित यह बसदि 32 फुट लम्बी और 18 फुट चौड़ी है। इसके प्रवेशद्वार के सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर हैं। मूलनायक अनन्तनाथ की लगभग चार फुट ऊँची कायोत्सर्ग प्रतिमा है जिस पर मकर-तोरण की संयोजना है। मूर्ति के पादमूल में यक्ष और यक्षी स्थापित हैं। नवरंग में गोलाकार स्तम्भ हैं। बाहरी दीवाल पर पुष्प और पूर्णकुम्भ का सुन्दर अंकन है।

इससे अगला मन्दिर 'शासन बसदि' है। चामुण्डराय बसदि और शासन बसदि के बीच में दाहिनी ओर के मण्डप में भी एक शिलालेख है।

शासन बसदि—इस मन्दिर के बायीं ओर मन्दिर से सटा एक शिलालेख (कन्नड़ में शासन) है। शायद उसी कारण यह बसदि 'शासन बसदि' कहलाती है। सन् 1137 ई. के इस शिलालेख में कहा गया है कि होय्सलनरेश विष्णुवर्धन के सेनापति (दण्डनायक) गंगराज ने अपनी वीरता के परितोषिक स्वरूप विष्णुवर्धन से 'परम' नाम का गाँव प्राप्त किया था। इस गाँव को उन्होंने अपनी माता पोचलदेवी तथा पत्नी लक्ष्मीदेवी द्वारा निर्मित श्रवणबेलगोल के मन्दिरों के लिए दान कर दिया। इन्हीं गंगराज ने गोमटेश्वर का परकोटा भी बनवाया था एवं अनेक स्थलों पर जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था। धन की रक्षा के लिए शासन में कहा गया है कि जो कोई इस दान-द्रव्य में हस्तक्षेप करेगा वह कुरुक्षेत्र एवं बनारस में सात करोड़ ऋषियों, कपिला गायों और वेदज्ञ पण्डितों के घात का भागी होगा। शिलालेख को उकेरने वाला शिल्पी वर्धमानाचारी था।

'शासन बसदि' की लम्बाई 55 फुट और चौड़ाई 26 फुट है। गर्भगृह में आदिनाथ की पाँच फुट उन्नत प्रतिमा छत्रत्रयी, मकर-तोरण एवं कीर्तिमुख से सज्जित है। वह पाँच सिंहों के आसन पर प्रतिष्ठित है। दोनों ओर पुरुष चँवरधारी छत्र तक ऊँचे हैं और ऊँचा मुकुट पहिने हैं। बाहर गोमेद यक्ष और यक्षी चक्रेश्वरी की मूर्तियाँ हैं। सभामण्डप में छह स्तम्भ हैं। प्रतिमा पर लेख से ज्ञात होता है कि यह 'इन्द्रकुलागृह' गंगराज ने बनवाया था।

कत्तले बसदि—चन्द्रगिरि पर यह सबसे बड़ा मन्दिर है। इसकी लम्बाई 124 फुट और चौड़ाई 40 फुट है। इतने लम्बे-चौड़े मन्दिर में केवल एक ही दरवाज़ा है। उसके अतिरिक्त न कोई खिड़की है और न ही कोई झरोखा। परिणाम—मन्दिर में अँधेरा। और कन्नड़ में अँधेरे को 'कत्तले' कहते हैं। इसलिए इस मन्दिर का नाम ही पड़ गया 'कत्तले बसदि' अर्थात् अँधेरेवाला मन्दिर। इसमें एक प्रदक्षिणापथ भी है जो किसी अन्य मन्दिर में नहीं है। गर्भगृह में आदिनाथ की लगभग चार फुट ऊँची पद्मासन मूर्ति पाँच सिंहों के आसन पर स्थापित है और मकरतोरण से अलंकृत है। ऊँचे मुकुटवाले चँवरधारी भगवान के मस्तक से ऊपर तक अंकित हैं। बाहर यक्ष-यक्षी भी हैं। विशाल सभामण्डप के स्तम्भों पर मौक्तिक मालाओं का उत्कीर्णन है। कुल 22 स्तम्भ हैं। छत में कमल भी उत्कीर्ण है।

इस मन्दिर के बाहर एक दीवाल भी है। उसके कारण जो एक ही दरवाज़ा है उससे भी पूरा प्रकाश अन्दर नहीं आ पाता (किन्तु अब गर्भगृह के भगवान के दोनों ओर की दीवाल

तोड़कर अँधेरा दूर कर दिया गया है और प्रदक्षिणा-पथ में भी झरोखा लगा दिया गया है) सम्भवतः इससे सटी 'चन्द्रगुप्त बसदि' में पद्मावती की प्रतिमा के कारण इसे पद्मावती बसदि भी कहा जाता है। मन्दिर पर शिखर नहीं है किन्तु स्थानीय जैन मठ में इसके नक्शे में शिखर भी दिखाया गया है। इसमें ऊपर का खण्ड भी है किन्तु जीर्ण होने के कारण अब बन्द कर दिया गया है। बताया जाता है मस्तकाभिषेक के समय वहाँ महिलाओं के बैठने का प्रबन्ध रहता था। डॉ. हीरालाल जी जैन द्वारा 1928 में संग्रहीत 'जैन शिलालेख संग्रह' भाग-1 में उल्लेख है कि इस बसदि की ऊपरी मंजिल में आदीश्वर की मूर्ति के सिंहपीठ पर 1118 ई. का एक लेख है जिसके अनुसार दण्डनायक गंगय्य ने अपनी माता पोचब्बे के लिए इस बसदि का निर्माण कराया था। इसी प्रकार मैसूर राजकुल की दो महिलाओं—देवीरम्मणि और केम्पमण्णि ने 1858 ई. के लगभग इसका जीर्णोद्धार कराया था। पुरातत्त्वविद् श्री के. वी. सौंदर राजन् ने 'जैन कला एवं स्थापत्य' में एक और नया तथ्य हमारे सामने रखा है। उनका कथन है, "कृष्णवर्ण के पाषाण से निर्मित होने के कारण 'कत्तले बसदि' के नाम से प्रसिद्ध यह मन्दिर चन्द्रगिरि पर सबसे बड़ा मन्दिर है।कहीं, ऐसा तो नहीं कि यह मन्दिर काले पत्थर के कारण भी कत्तले बसदि कहलाया। इसी प्रकार श्री शेट्टर (श्रवणबेलगोल) ने लिखा है, "कत्तले बसदि या अँधेरी बसदि को इतना बदला या परिवर्तित किया गया कि ज्यादा-कम उसके मूल अभिलक्षण खो गये हैं।"

चन्द्रगुप्त बसदि—यदि इस बसदि को एक पृथक् मन्दिर माना जाए तो चन्द्रगिरि पर यह सबसे छोटा मन्दिर कहा जा सकता है—मात्र 22 फुट लम्बा और 16 फुट चौड़ा। इसके गर्भगृह में पार्श्वनाथ की मूर्ति कायोत्सर्ग मुद्रा में नौ फणों की छाया में कमलासन पर प्रतिष्ठित है। उनके बायीं ओर पद्मावती की और दाहिनी ओर कूष्माण्डिनी देवी की प्रतिमाएँ हैं। इस प्रकार यहाँ तीन छोटे गर्भगृह कहे जा सकते हैं। गलियारे में धरणेन्द्र और पद्मावती की मूर्तियाँ हैं। इस मन्दिर के प्रवेशमण्डप के द्वार की चौखट पर बहुत सुन्दर उत्कीर्णन है। उसके दोनों ओर पत्थरों की जाली या जालरन्ध्र हैं। इसमें एक ओर पैंतालीस तथा दूसरी ओर पैंतालीस इस प्रकार कुल 90 पाषाण-चित्र हैं जिनमें गोवर्धनाचार्य, श्रुतकेवली भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मौर्य की दक्षिण-यात्रा से सम्बन्धित सेलखड़ी चित्र (देखें चित्र क्र. 98) बने हुए हैं जिनका धार्मिक एवं ऐतिहासिक बड़ा महत्त्व है। 'अन्तर्द्वन्द्वों के पार : गोम्मटेश्वर बाहुबली' के लेखक श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन ने श्रवणबेलगोल के भट्टारक चारुकीर्ति जी की सहायता से इनका पूरा विवरण क्रमबद्ध रूप से अपनी उपर्युक्त पुस्तक में दिया है। ये चित्र दासोज नाम के शिल्पी ने बारहवीं सदी में लगभग 1146 ई. में उत्कीर्ण किए गये थे। चित्रों की योजना भी वैज्ञानिक है। एक आयताकार चित्र के बाद लगभग वर्गाकार स्थान छोड़ा गया है ताकि हवा और रोशनी आ सके। बाहर से मन्दिर द्रविड़ शैली का है और उस पर गुम्बज जैसा शिखर भी है।

वर्तमान में यह मन्दिर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के अन्तर्गत एक संरक्षित स्मारक है।

मन्दिर की प्राचीनता के बारे में पुरातत्त्वविद् श्री के. आर. श्रीनिवासन् ने 'जैन कला एवं स्थापत्य' (खण्ड-2) हिन्दी संस्करण में लिखा है, "दक्षिण के सम्पूर्ण प्रस्तर निर्मित प्राचीन मन्दिरों में सर्वाधिक प्राचीन विद्यमान जैन मन्दिरों के रूप में तीन साधारण विमान-मन्दिरों का

समूह है जिसे 'चन्द्रगुप्त बसदि' कहा जाता है।···चन्द्रगुप्त से पारम्परिक रूप से जुड़े हुए ये तीनों विमान-मन्दिर या त्रिकूट श्रवणबेलगोल और उसके निकटवर्ती क्षेत्र के सर्वाधिक प्राचीन विद्यमान वास्तु-स्मारक हैं जो लगभग 850 ई. के कहे जा सकते हैं।" कत्तले बसदि और चन्द्रगुप्त बसदि के अतिरिक्त तीसरी कौन-सी बसदि इसमें शामिल है यह उन्होंने स्पष्ट नहीं किया।

चन्द्रगुप्त वसदि के सामने लगभग दो फुट लम्बे चरण एक वर्गाकार घेरे में हैं। बसदि के सामने बलिपीठ भी है।

पार्श्वनाथ बसदि— यह एक विशाल मन्दिर है जिसकी लम्बाई 59 फुट और चौड़ाई 29 फुट है (देखें चित्र क्र. 99)। यहाँ भगवान पार्श्वनाथ की लगभग 15 फुट ऊँची कायोत्सर्ग मूर्ति कमलासन पर प्रतिष्ठित है। गोमटेश्वर की महामूर्ति के बाद यही मूर्ति चन्द्रगिरि पर सबसे विशाल है। इसका निर्माण-काल तो ज्ञात नहीं है किन्तु चामुण्डराय सम्बन्धी वृत्तान्त में उल्लेख है कि उन्होंने महामूर्ति के निर्माण से पहले पार्श्वनाथ के दर्शन किए थे। मूर्ति भव्य और प्राचीन है। पार्श्वनाथ पर सात फणों की छाया है। सर्पकुण्डली पैरों तक उत्कीर्ण है। शायद मूर्ति को आधार प्रदान करने के लिए मूर्ति के पीछे कन्धों के पास एक शिला है। इसी प्रकार कन्धों के पास की दोनों ओर की शिलाएँ सम्भवत: अभिषेक में सुविधा के लिए हैं। मन्दिर द्रविड़ शैली का है और उसकी मुँडेर पर कारीगरी दर्शनीय है। सभामण्डप में बायीं ओर 1129 ई. का एक शिलालेख है जिसमें मल्लिषेण मलधारी की समाधि तथा अनेक आचार्यों की प्रशस्ति वर्णित है। यह लेख चन्द्रगिरि के लम्बे लेखों में से है। इसी लेख में भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त का उल्लेख है। यह शिलालेख 72 श्लोकों में है और यह कहा गया है कि वनदेवता भी चन्द्रगुप्त की सेवा किया करते थे। लेख कवि मल्लिनाथ द्वारा साहित्यिक शैली में लिखित है तथा गंगाचारी द्वारा उकेरा गया है। मन्दिर के सामने एक प्रवेश-मण्डप भी है। मन्दिर में कुछ दृश्य कमठ के उपसर्ग से सम्बन्धित भी हैं।

उपर्युक्त बसदि के पास एक मानस्तम्भ भी है जो 65 फुट 6 इंच ऊँचा है। यह श्रवण-बेलगोल में सबसे ऊँचा मानस्तम्भ है। उसमें सबसे ऊपर एक शिखरबन्द मण्डप में तीर्थंकर मूर्ति है। स्तम्भ के चारों ओर यक्ष और यक्षिणियाँ उत्कीर्ण हैं। सबसे नीचे ब्रह्मदेव और कूष्माण्डिनी देवी की मूर्तियाँ हैं। यह मानस्तम्भ सत्रहवीं सदी में पुटय्या नामक एक श्रेष्ठी ने बनवाया था ऐसा अनन्त कवि द्वारा रचित कन्नड़ काव्य 'बेलगोलद गोम्मटेश्वर चरित' में उल्लेख है।

पार्श्वनाथ बसदि के सामने क्षेत्र की रक्षा के लिए जटिंगराय यक्ष की मूर्ति है। सामने एक बलिपीठ भी है।

यह प्राचीन और विशाल मन्दिर इस समय भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा संरक्षित स्मारक घोषित किया गया है।

पार्श्वनाथ मन्दिर के पास एक घेरे में प्रसिद्ध जैन कन्नड़ कवि रन्न ('अजितपुराण' के लेखक) और चामुण्डराय के हस्ताक्षर बताए जाते हैं। इसी प्रकार अन्य कुछ शिलाओं पर कन्नड़ और तमिल में लेख हैं जिन्हें सुरक्षित करना आवश्यक है।

'पार्श्वनाथ बसदि' और 'महानवमी मण्डप' के बीच में एक प्राकार है, और उसी में स्थित है श्रवणबेलगोल का सबसे प्राचीन, 600 ईस्वी सन् का वह शिलालेख (चित्र क्र. 100)

जिसमें श्रुतकेवली भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मौर्य (मुनि प्रभाचन्द्र) के कटवप्र पर्वत पर तपस्या का उल्लेख है।

इरुवे ब्रह्मदेव मन्दिर—चन्द्रगिरि मन्दिरों के परकोटे से बाहर उत्तर में स्थित इस मन्दिर में ब्रह्मदेव की मूर्ति प्रतिष्ठापित है। अनुमान है कि इसका निर्माण दसवीं शताब्दी में हुआ होगा। इसके सामने की चट्टान पर हाथी, घोड़े, जिनप्रतिमाएँ आदि उत्कीर्ण हैं।

ऐसा विश्वास है कि ब्रह्मदेव की मनौती करने पर चीटियों का उपद्रव नहीं होता। यदि उपद्रव होता भी है तो ब्रह्मदेव की पूजा करने से शान्त हो जाता है।

भद्रबाहु गुफा और चरण—मन्दिरों के परकोटे से बाहर आने पर बायीं ओर भद्रबाहु गुफा के सामने का द्वार दिखाई देता है। यह द्वार 17वीं सदी में बनवाया गया, ऐसा अनुमान किया जाता है।

गुफा के दाहिनी ओर की एक शिला पर एक कायोत्सर्ग तीर्थंकर प्रतिमा छत्रत्रयी से युक्त, उसी प्रकार छत्रत्रयी युक्त पद्मासन तीर्थंकर तथा दो अस्पष्ट आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। यहाँ जो शिलालेख है वह घिस गया जान पड़ता है।

गुफा के मुखमण्डप के स्तम्भों पर लगभग 15 इंच के दो द्वारपाल बने हैं। गुफा प्राकृतिक है। उसके पीछे की शिला नीची है या हो गई है।

अनुश्रुति है कि श्रुतकेवली भद्रबाहु ने यहीं तपस्या की और समाधिमरण किया तथा यहीं चन्द्रगुप्त मौर्य ने उनकी सेवा की, तपस्या की और शरीर त्यागा। यहाँ श्रुतकेवली के कुछ बड़े चरण कमल के घेरे में बने हैं (देखें चित्र क्र. 101)। चरणों के घेरे के बाहर एक और घेरा है। एक छोटी-सी नाली भी है। उसमें चन्दन आदि का प्रक्षाल का पानी आता है और मस्तक पर लगाया जाता है। अन्दर शिला नीची होती गई है इसलिए झुककर वन्दना करना होती है तथा गन्धोदक लेना होता है। यहाँ आप देखेंगे कि गुफा की दीवाल या शिला पर चन्दन की अनेक बिन्दियाँ लगी हैं जो कि जैन या जैनेतर लोगों द्वारा अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए अड़तालीस दिनों तक दर्शन का व्रत लेने वाले लगा जाते हैं। इन 48 दिनों में मनोकामना पूर्ण होती है, ऐसा विश्वास है।

इसमें सन्देह नहीं कि यह प्राकृतिक गुफा अत्यन्त प्राचीन है। उसके प्रवेश-मण्डप आदि का जीर्णोद्धार अवश्य हुआ है। इस गुफा में 1110 ई. का एक लेख था जिसका आशय था 'जिनचन्द्र ने भद्रबाहु के चरणों में प्रणाम किया' ('श्रीभद्रबाहु स्वामिय पादमं जिनचन्द्र प्रणमतां' नागरी में)।

मलयाली ने तीर चलाया—परकोटे के बाहर तालाब की उत्तर की चट्टान पर लगभग 1246 ई. का शिलालेख है कि मलयाल अध्याडि नायक ने विन्ध्यगिरि से चन्द्रगिरि का निशाना लगाया। इसी प्रकार भद्रबाहु गुफा के पास की एक चट्टान पर उल्लेख है कि मळयाळ कोदयु शंकर ने इमली के वृक्ष के समीप की तीन शिलाओं पर बाण चलाए (बारहवीं सदी)।

कंचिन दोणे—यह एक कुण्ड का नाम है जो कि इरुवेदेव मन्दिर के बायीं ओर है। दोणे का अर्थ है 'प्राकृतिक कुण्ड' और कंचिन से आशय है 'कांसा'। इस कुण्ड का यह नाम क्यों पड़ा यह ज्ञात नहीं है। यहाँ अनेक लेख हैं। एक शिलालेख में यह उल्लेख है कि कदम्ब की आज्ञा से तीन शिलाएँ यहाँ लाई गई जिनमें से एक टूट गई और दो विद्यमान हैं। मानभ नाम के किसी व्यक्ति

ने इस कुण्ड को खुदवाया होगा ऐसा एक अन्य लेख से ज्ञात होता है।

लक्किदोणे—परकोटे से पूर्व की ओर स्थित यह भी एक कुण्ड है। सम्भवतः लक्कि नामक किसी श्राविका ने इस कुण्ड का निर्माण कराया होगा। इसके पास ही एक चट्टान है जिस पर लगभग तीस लेखों में यात्रियों के नाम खुदे हैं। इनमें कवि नागवर्म और कुछ आचार्यों द्वारा यहाँ की वन्दना किए जाने का उल्लेख है। कुछ नाम देखिए—बिद्दय्य, अकचेय, राजन चट्ट, बड़वर बण्ट, पुलिक्कलय्य आदि नाम और 'श्रीजिनमार्गन्नीतिसम्पन्नन्सर्प्पचूडामणि' तथा 'श्री कोपण तीर्त्थद' इत्यादि।

चन्द्रगिरि पहाड़ी से यहाँ का अत्यन्त प्राचीन कूष्माण्डिनी देवी का मन्दिर भी दिखाई देता है।

श्रवणबेलगोल के आस-पास, शिलालेखों के अनुसार, लगभग 50 तालाब-कुण्ड रहे हैं।

जिननाथपुर की ओर

पैदल यात्री यदि चाहे तो चन्द्रगिरि से ही जिननाथपुर जा सकता है जहाँ कलात्मक शान्तीश्वर बसदि दर्शनीय है। पैदल रास्ता इस प्रकार है—भद्रबाहु गुफा से नीचे की ओर जाकर लक्कि दोणे के पास से आसान शिलाओं पर से होते हुए पगडण्डी के रास्ते जाने पर जिननाथपुर गाँव दिखाई देता है। इस रास्ते पर चन्द्रगिरि नीची होती चली गई है। उतराई आसान है।

यदि सड़क-मार्ग से कोई जाना चाहे तो चन्द्रगिरि की दाहिनी ओर से सड़क जाती है। सड़क मार्ग से जैन मठ से यात्रा प्रारम्भ कर गाँव के मन्दिरों से होकर भी जिननाथपुर पहुँचा जा सकता है। सड़क की ओर से चन्द्रगिरि काफी ऊँची दिखाई देती है।

जिननाथपुर गाँव से पहले एक बड़ा तालाब पड़ता है जो कि सड़क के रास्ते में है। इस तालाब में अनेक खण्डित मूर्तियाँ विसर्जित की गई हैं।

चन्द्रगिरि के चारों ओर गाँवों में प्राचीन मन्दिरों के खण्हर भी पाए जाते हैं।

जिननाथपुर से पहले जो तालाब है उसके पास गाँव में एक चट्टान पर टूटा-फूटा एक शिलालेख है। उससे ज्ञात होता है कि होय्सलनरेश विष्णुवर्धन के प्रधान दण्डनायक गंगराज ने जिननाथपुर 1117 ई. में बसाया था।

अरेगल बसदि—कन्नड़ में अरेगल (कल्लु) अर्थ है चट्टान। यह बसदि एक चट्टान के ऊपर निर्मित है, इस कारण अरेगल बसदि कहलाती है। मन्दिर के मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ हैं। उनकी प्रभावलीयुक्त पाँच फुट ऊँची संगमरमर की पद्मासन प्रतिमा 1929 ई. में इस मन्दिर में प्रतिष्ठित की गई थी। मूल मूर्ति खण्डित हो गई थी इसलिए उसे पास के तालाब में ही विसर्जित कर दिया गया है। मन्दिर के निर्माण के सम्बन्ध में ज्ञातव्य है कि उसे गंगराज के भाई बर्म और हिरि-एचिमय्या ने बनवाया था। इस प्रकार यह भी एक प्राचीन मन्दिर है।

इस बसदि में पन्द्रहवीं सदी की कुछ कांस्य प्रतिमाएँ भी हैं जो सुन्दर एवं प्रभावोत्पादक हैं। इनमें चतुर्दशिका, पंचपरमेष्ठी और नवदेवता का अंकन विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है।

चतुर्दशिका का अर्थ है चौदह तीर्थंकरों का अंकन। ऊपर अलंकृत चाप में भरतक्षेत्र के पाँच, ऐरावत क्षेत्र के पाँच और जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में विद्यमान चार तीर्थंकरों का अंकन है।

पंचपरमेष्ठी—अंकन में भरत क्षेत्र के पाँच तीर्थंकर अंकित किए गए हैं। उनमें से तीन को कमण्डलु पीछी के साथ दर्शाया गया है।

चौबीस पंखुड़ियों से चौबीस तीर्थंकरों का आशय है। कमल की चार ऊपरी पंखुड़ियों और नीचे की एक पंखुड़ी से पाँच प्रकार के ज्ञान या पाँच महाव्रत दर्शाए गए हैं।

नवदेवता प्रतिमा बहुत सुन्दर है। उसका आधार कमल जैसा है। मकर और कीर्तिमुख से सज्जित इस प्रतिमा में आठ पंखुड़ियों वाले कमल द्वारा चार परमेष्ठी, जिनमन्दिर, जिनमूर्ति और जिनधर्म, तथा जिनवाणी (पुस्तक के आधार के रूप में) तथा सबसे नीचे सम्यक्त्व दर्शाया गया है।

इस बसदि में पन्द्रहवीं सदी की ही पार्श्वनाथ प्रतिमा तथा धरणेन्द्र और पद्मावती की मूर्तियाँ भी हैं।

शान्तिनाथ बसदि--होय्सल काल की अनुपम शिल्पकला अपने गौरवपूर्ण रूप में यहाँ देखी जा सकती है। यदि यह कहा जाए कि यह कर्नाटक का सबसे सुन्दर जैन मन्दिर (चित्र क्र. 102) है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसे 1200 ई. के लगभग वसुधैक-बान्धव रेचिमय्य सेनापति ने निर्माण कराकर सागरनन्दि सिद्धान्तदेव को सौंप दिया था। मन्दिर एक तारे की आकृति का है। उसके स्तम्भ गोल और मनोहारी हैं। किन्तु ऐसा लगता है कि कोई विघ्न आ गया और इस मन्दिर का काम अधूरा ही रह गया। अब भी शिलाएँ आदि पड़ी हैं। यहाँ तक कि इसकी चौकी का काम भी अधूरा रह गया। यह देखा जा सकता है कि अमुक स्थान पर छैनी चल रही थी। इसके प्रवेशद्वार और उसकी चौखट, सिरदल को ही लें। स्पष्ट पता चलता है कि नक्काशी अधूरी रह गई। इसके ऊपर और भी विपत्ति आई दिखती है। इसकी बाहरी दीवालों पर जो सुन्दर मूर्तियाँ अंकित थीं, उनके चेहरे विकृत कर दिए गये हैं। फिर यह मन्दिर उपेक्षित बना रहा। गाँव के बच्चों आदि ने इसकी सुन्दर मूर्तियों, उभारचित्रों आदि को और भी क्षति पहुँचाई। अब इसके चारों ओर पक्की दीवाल बना दी गई है और इसकी रही-सही सुन्दरता को बचाने का प्रयत्न किया गया है।

इस बसदि के अब भी जो सुन्दर अंकन बचे हैं, उनके लगभग 70 चित्र भारतीय ज्ञानपीठ के चित्र-संग्रहालय में हैं। आवश्यकता है इस मन्दिर के शिल्प को ध्यान से देखने की।

मन्दिरों की बाहरी दीवालों में आलों में तीर्थंकरों एवं यक्ष-यक्षिणियों (अधिकांश धरणेन्द्र पद्मावती, अम्बिका, चक्रेश्वरी) के अतिरिक्त सरस्वती, कामदेव और रति आदि के बहुत आकर्षक उत्कीर्णन हैं। विशेष रूप से नर्तकियों, अप्सराओं, मिथुनों के अंकन मन को लुभाते हैं। दोनों हाथों में फूलों का गुच्छा लेकर नृत्य करती किन्नरी, मृदंगवादिकों के साथ नृत्यांगना, केवल मेखला से अपनी नग्न-सी देह छिपाए शालभंजिका, दर्पण में अपना मुख देखती रूपगर्विता, सुन्दर जूड़ा प्रदर्शित करती एक और शालभंजिका, बहुत महीन वस्त्रों में अपना अंग प्रदर्शित करती सुन्दरी, फूलों के तीर हाथ में लिये रमणी किन्तु उसके पास ही बिच्छू (अधिक राग-रंग दुःख देता है इसका सूचक), बन्दर भी जिस पर मोहित होकर उसकी साड़ी का पल्लू खींच रहा हो ऐसी रूपसी, आदि नारी के अनेक मोहक रूपों की संयोजना यहाँ है। इसी प्रकार बाँसुरी बजाते गन्धर्व, चँवर ढुलाते गन्धर्व, चँवरधारी आदि भी आकर्षक मुद्रा में उत्कीर्ण हैं। उनके

आभूषण और वस्त्र, पहनावा, तथा वाद्य-यन्त्र आदि उस काल को हमारे समाने मूर्तिमान करते हैं। देवकुलिकाओं के शिखरों का दक्षिणी अंकन भी बहुत आकर्षक है।

मन्दिर के सभामण्डप की छतों में दिक्पाल और वर्गों में सुन्दर कमलों का अंकन भी देखने लायक है।

कुल मिलाकर यह मन्दिर किसी भी कलाप्रेमी के लिए एक अच्छा संग्रहालय है। यदि यह पूरा बन पाता और इसे क्षति नहीं पहुँचाई गयी होती तो यह सुन्दरतम मन्दिरों में प्रमुख होता।

उपर्युक्त मन्दिर के मूलनायक शान्तिनाथ की साढ़े पाँच फुट ऊँची मूर्ति यहाँ प्रतिष्ठित है।

और अब सड़क-मार्ग से श्रवणबेलगोल गाँव की ओर। रास्ते में खदान से पत्थर निकालने के प्रयत्न और चन्द्रगिरि या कटवप्र (समाधि-शिखर) की खड़ी दीवाल-जैसी देखी जा सकती है।

श्रवणबेलगोल गाँव के मन्दिर

अक्कन बसदि—गाँव के मन्दिरों में सबसे पहला मन्दिर है अक्कन बसदि। अक्कन का अर्थ है बड़ी बहन। इस मन्दिर के द्वार के पास एक बहुत लम्बा शिलालेख है जिसके अनुसार होय्सलनरेश बल्लाल द्वितीय के ब्राह्मणमन्त्री चन्द्रमौलि की जैनधर्मावलम्बी पत्नी अचियक्क (आचलदेवी) ने इस मन्दिर (चित्र क्र. 103) का निर्माण कराया था तथा राजा ने बम्मेयनहल्ली नामक गाँव दान में दिया था। इस मन्दिर में उच्च होय्सल कला देखी जा सकती है। यह बेलूर के मन्दिर के समान तारे की आकृति में बना है। मुखमण्डप के कोणीय स्तम्भ भी आकर्षक हैं। द्वार की चौखट कलापूर्ण है और सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। नवरंग में कसौटी पाषाण के, चमकदार पॉलिश वाले स्तम्भ हैं। उन पर चूड़ियों जैसे वलय हैं और बारीक मोतियों की मालाएँ उत्कीर्ण हैं। लगभग डेढ़ इंच की पट्टी में भी बड़ी कुशलतापूर्वक नक्काशी की गई है। पत्रावली और सूक्ष्म कमल मन मोह लेते हैं। गर्भगृह के बाहर पत्थर की जाली है। उसके प्रवेशद्वार के सिरदल पर पुन: पद्मासन तीर्थंकर विराजमान हैं। मूलनायक पार्श्वनाथ की पाँच फुट ऊँची कायोत्सर्ग प्रतिमा पर सात फणों की छाया है। प्रभावली में चौबीस तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। मन्दिर की छत पर अन्दरूनी सूक्ष्म नक्काशी है।

बसदि का बाहरी भाग और भी आकर्षक है। उस पर होय्सल शैली का उत्कीर्णन है। अलंकृत हाथी, अश्व, गाय-बछड़ा, सूर्य-चन्द्र, पत्रावली। पद्मासन तीर्थंकर, छत्रत्रयी, चँवरधारी, आदि की सुन्दर संयोजना है। बाहर यक्ष धरणेन्द्र और यक्षी पद्मावती की प्रतिमाएँ भी हैं।

शिखर लगभग 18 फुट ऊँचा है और वह एक महामेरु के समान बनाया गया है। यह शिखर अनेक तलों में है जिस पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ स्थापित हैं। विशेषकर त्रि-तीर्थिक (तीन तीर्थंकरों) वाला भाग कीर्तिमुख से मण्डित है और दर्शनीय है। मन्दिर ध्यान से देखने योग्य है। यह बसदि नीले रंग की शिलाओं से बनी है।

मन्दिर के बाहरी भाग को देखने से ऐसा लगता है कि इसकी नक्काशी का काम भी अधूरा रह गया। वर्तमान में यह मन्दिर भारतीय पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में है। यह मन्दिर श्रवणबेलगोल गाँव की उत्तरी सीमा सूचित करता है। इसके पास ही, एक मन्दिर के बरामदे

में खण्डित मूर्तियाँ रखी हैं।

दानशाले बसदि—सम्भवतः यहाँ दान दिया जाता होगा इस कारण यह बसदि दानशाले कहलाती है। छोटा-सा यह मन्दिर अक्कन बसदि के निकट ही स्थित है। इसमें पंचपरमेष्ठी की तीन फुट ऊँची प्रतिमाएँ हैं। कन्नड़ कवि चिदानन्द के काव्य 'मुनिवंशाभ्युदाय' में उल्लेख है कि मैसूर के चिक्क देवराज ओडेयर ने अपने पूर्ववर्ती नृप दोड्ड देवराज ओडेयर के समय (1659-1672 ई.) में श्रवणबेलगोल की यात्रा की थी। उन्होंने यहाँ की दानशाला बसदि के दर्शन किए और मैसूर-नरेश से 'मदनेय' नामक गाँव दान करवाया।

सिद्धान्त बसदि—इसकी प्रसिद्धि इस नाम से होने का कारण यह बताया जाता है कि यहाँ जैन धर्म के सिद्धान्त ग्रन्थ रखे जाते थे। धवला, जयधवला, महाधवला यहीं पर सुरक्षित थे किन्तु कभी किसी संकट के कारण मूडबिद्री में स्थानान्तरित कर दिए गए थे। अब ये ताडपत्र पर लिखित ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं और प्राचीन ग्रन्थों में उनकी गणना होती है।

उपर्युक्त मन्दिर में एक पाषाण पर चौबीसी उत्कीर्ण है जिसके मूलनायक पार्श्वनाथ हैं। एक अधूरे लेख से ज्ञात होता है कि 1698 ई. में 'तातीराव सुदीपरा पमघदेव' ने यह चौबीसी प्रतिष्ठापित करवाई थी।

नगरजिनालय या श्रीनिलय—इसके नाम से ही स्पष्ट है कि नगर के प्रमुख व्यापारी जन इस मन्दिर या तीर्थंकर-निलय की देखभाल करते थे। इस कारण यह मन्दिर नगर-जिनालय कहलाया। एक शिलालेख के अनुसार, होय्सलनरेश बल्लाल के 'पट्टणस्वामी' तथा नयकीर्ति सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य मन्त्री नागदेव ने सन् 1196 ई. में इसका निर्माण कराया था। यह भी उल्लेख है कि नागदेव ने कमठ पार्श्वनाथ बसदि (पार्श्वनाथ बसदि) के सम्मुख नृत्यरंग और अश्मकुट्टिम (पाषाण-भूमि) तथा अपने गुरु की निषद्या का भी निर्माण कराया था। इसी मन्त्री ने 'नाग सरोवर' नामक एक तालाब भी बनवाया था जो अब 'जिगणेकट्टे' कहलाता है।

नगरजिनालय एक छोटा मन्दिर है। इसका निर्माण गहरे नीले रंग की शिलाओं से हुआ है। इसके मूलनायक आदिनाथ थे किन्तु अब सुपार्श्वनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित है। यह मूर्ति भी प्राचीन है। यहाँ ब्रह्मदेव की भी प्रतिमा है। उनके एक हाथ में कोड़ा और दूसरे में फल है। वे पैरों में खडाऊँ पहने हैं। उनकी पीठिका पर घोड़े का चिह्न बना है जो कि उनका वाहन है।

उपर्युक्त मन्दिर के भीतरी द्वार के उत्तर में एक शिलालेख है। उसमें कहा गया है कि (1) इस जिनालय के पुजारियों ने बेलगोल के व्यापारियों को यह लिख दिया कि जब तक मन्दिर की भूमि में धान्य पैदा होता रहेगा, वे पूजा-अर्चना करते रहेंगे, (2) इस जिनालय के आदिनाथ के अभिषेक के लिए हुलिगेरे के सोवण्ण ने पाँच 'गद्याण' का दान दिया जिसके ब्याज से प्रतिदिन एक 'बल्ल' दुग्ध लिया जाए तथा (3) बेलगोल के जौहरियों ने जिनालय के जीर्णोद्धार तथा एक प्रतिशत आय दान करने की प्रतिज्ञा की। यह भी उल्लेख है कि जो भी इसमें कपट करे वह निस्सन्तान हो, और देव, धर्म तथा राज का द्रोही हो।

मंगायि बसदि—इसे त्रिभुवनचूडामणि भी कहते हैं। यह अन्तिम नाम भी शिलालेख में है। सन् 1325 ई. के शिलालेख में, जो कि प्रवेशमार्ग के बायीं ओर है, कहा गया है कि अभिनव चारुकीर्ति पण्डिताचार्य के शिष्य मंगायि ने इसका निर्माण कराया। एक विद्वान् के अनुसार
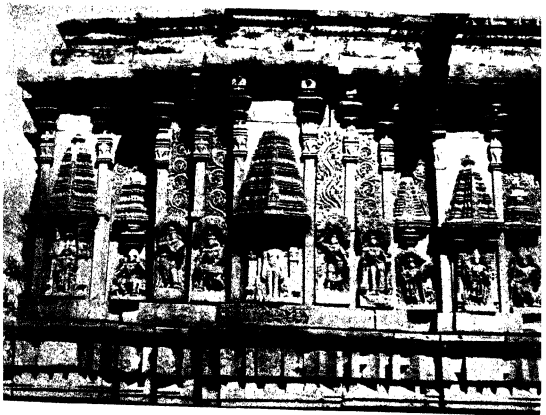
102. श्रवणबेलगोल—जिननाथपुर बसदि की एक बाह्य भित्ति का कलापूर्ण दृश्य ।
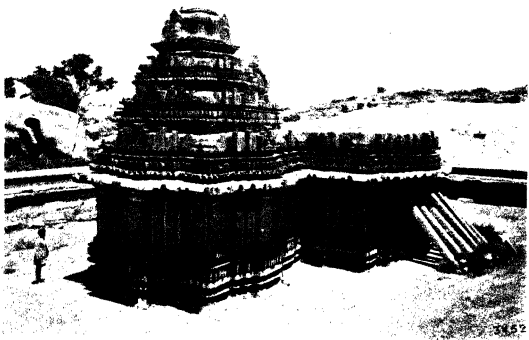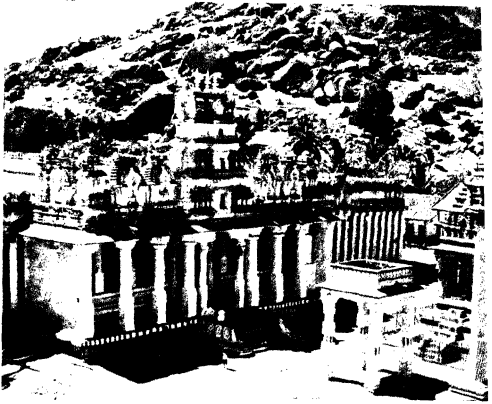
103. श्रवणबेलगोल—अक्कन बसदि का बाह्य दृश्य ।

104. श्रवणबेलगोल— क्षेत्र पर स्थित भण्डारी बसदि का सामने का दृश्य ।
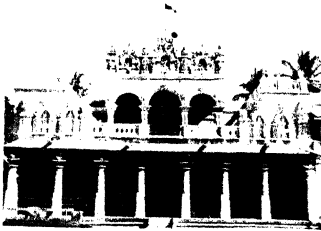
105. श्रवणबेलगोल—जैन मठ का सम्मुख दृश्य ।
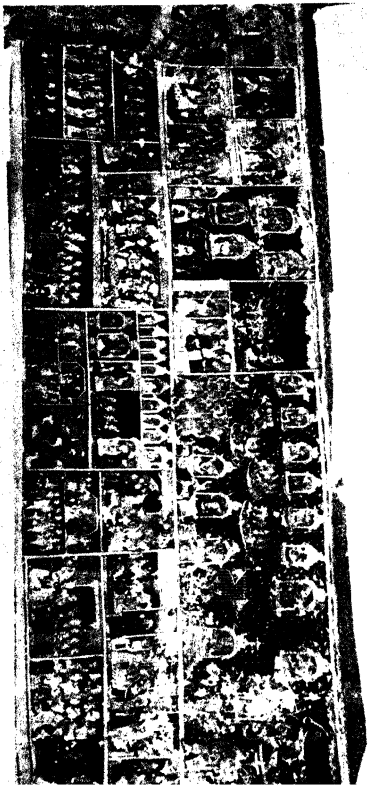
106 श्रवणबेलगोल—जैन मठ, भित्तिचित्रों में नागकुमार चरित तथा अन्य दृश्य ।

मंगायि एक नर्तकी थी । तीन और शिलालेखों में इस मन्दिर के लिए दान देने तथा जीर्णोद्धार कराने का उल्लेख है। इसकी प्रवेश-सीढ़ियों के दोनों ओर दो अत्यधिक अलंकृत हाथी प्रदर्शित हैं। उनके गले में मोतियों की पाँच-पाँच मालाएँ पड़ी हुई हैं। उनकी झूल भी बहुत अलंकृत है। गर्भगृह से बाहर लगभग पाँच फुट ऊँचे दो द्वारपाल हैं। वे ऊँचा मुकुट पहने हुए हैं। गर्भगृह में शान्तिनाथ की लगभग पाँच फुट ऊँची मूर्ति है। इसके अतिरिक्त महावीर स्वामी की लगभग साढ़े पाँच फुट उन्नत भव्य प्रतिमा भी यहाँ प्रतिष्ठित है।

शान्तिनाथ की प्रतिमा पर के लेख से ज्ञात होता है कि उसकी प्रतिष्ठा विजयनगर के शासक देवराज प्रथम (1406-1416 ई.) की रानी भीमादेवी ने कराई थी।

भण्डारी बसदि (भव्यचूड़ामणि मन्दिर)—इस बसदि (चित्र क्र. 104) का निर्माण होय्सलनरेश नरसिंह प्रथम के भण्डारी या कोषाध्यक्ष एवं मन्त्री हुल्लराज ने 1159 ई. में कराया था। इस कारण यह मन्दिर भण्डारी बसदि कहलाया। वास्तव में इसका नाम चतुर्विंशति (चौबीसी) मन्दिर था। जब यह विशाल एवं सुन्दर मन्दिर बनकर तैयार हुआ तो होय्सल-नरेश नरसिंह प्रथम हलेबिड (द्वारावती) से स्वयं वहाँ आया और मन्दिर को देखकर इतना प्रसन्न हुआ कि उसने इसका नाम 'भव्य चूड़ामणि' रख दिया। वैसे हुल्लराज की भी एक उपाधि 'सम्यक्त्वचूडामणि' थी।

भण्डारी बसदि श्रवणबेलगोल के मन्दिरों में सबसे बड़ा मन्दिर है। उसकी लम्बाई 266 फुट और चौड़ाई 78 फुट है। उसके चारों ओर लगभग 12 फुट ऊँचा एक परकोटा बना है। मन्दिर के सामने लगभग 35 फुट ऊँचा एक मानस्तम्भ भी है।

उपर्युक्त मन्दिर दिगम्बर जैन मठ के सामने स्थित है। इसकी सीढ़ियों के जँगले पर कमल के फूलों का सुन्दर अंकन है। प्रवेशमंडप में गजलक्ष्मी अंकित है अर्थात् दो हाथी लक्ष्मी का अभिषेक करते दिखाये गये हैं। प्रवेशद्वार पर पूर्णकुम्भ भी अंकित है। इसके सभामंडप में विशाल या मोटे स्तम्भों की संयोजना है। नवरंग में और उससे आगे तथा बरामदे में दस फट के चौकोर पत्थर फर्श में लगाए गए हैं। इन्हें किस प्रकार यहाँ लाया गया होगा यह भी एक आश्चर्य का विषय है। नवरंग के द्वार पर लता-वल्लरियों, मानवों और पशुओं का मनोहर उत्कीर्णन है।

इस मन्दिर में सुन्दर नक्काशीदार प्रवेशद्वार के ऊपर नृत्य करते हुए इन्द्र का अंकन सबसे सुन्दर कलाकृति है। इन्द्र के बारह हाथ दिखाए गए हैं और अन्य वादक-वृन्दों सहित इस अंकन में कितनी सूक्ष्म एवं आकर्षक तथा आश्चर्यकारी नक्काशी है यह चित्र से भलीभाँति जाना जा सकता है। इसी प्रकार स्तम्भों पर भी नृत्यांगनाओं के चित्र सुन्दर बन पड़े हैं। मन्दिर में तीन प्रवेशद्वार हैं जिनके कारण यह कई भागों में बँटा हुआ-सा जान पड़ता है।

गर्भगृह में एक ही वेदी पर चौबीस तीर्थंकरों की लगभग तीन फुट ऊँची काले पाषाण की अन्य मूर्तियाँ एक ही पंक्ति में विराजमान की गई हैं। वे भी मकर-तोरण से सज्जित हैं। छत में कमल का अंकन भी है। बसदि में आसीन मुद्रा में ब्रह्मयक्ष की मूर्ति है। पद्मावती एवं सरस्वती की भी सुन्दर प्रतिमाएँ हैं। यहाँ एक सहस्रकूट जिनबिम्ब भी है जो तीन स्तरों में विभाजित है। प्रत्येक स्तर में एक खड्गासन प्रतिमा भी है।

श्रवणबेलगोल का यह मन्दिर एक शिलालेख में 'सरस्वती मंडप' भी कहा गया है। इसी प्रकार एक और शिलालेख में इसे 'गोम्मटपुर (श्रवणबेलगोल) का मोहक आभूषण' कहा गया है।

भण्डारी बसदि के शिलालेख बहुत लम्बे, बहुत-सी जानकारी देने वाले और बड़े ऐतिहासिक महत्त्व के हैं।

उपर्युक्त बसदि में पूर्व की ओर के एक स्तम्भ पर सन् 1368 ई. का, विजयनगर शासक बुक्कराय का एक शिलालेख है। उसमें उल्लेख है कि वैष्णव धर्मानुयायी इस राजा के राज्य में जैनों और वैष्णवों में झगड़ा हो गया। तब इस राजा ने दोनों सम्प्रदायों में मेल कराया। (देखिए हम्पी प्रकरण)। श्रवणबेलगोल में जैन मन्दिरों की पुताई और जीर्णोद्धार के लिए किस प्रकार द्रव्य लिया जाएगा इसका भी विवरण है। उल्लंघन करने वाला 'गंगा तट पर एक कपिल गाय और ब्राह्मण की हत्या का भागी होगा।' दोनों संघों ने मिलकर बुसुवि सेट्टी को संघनायक बनाया था।

एक अन्य स्तम्भ पर 1158 ई. का एक लम्बा शिलालेख है। उसमें होय्सल वंश के नरेशों के प्रताप आदि के वर्णन के बाद होय्सलनरेश नरसिंह के मान्य मन्त्री एवं चमूप (सेनापति) हुल्ल द्वारा अनेक जैन मन्दिरों के निर्माण एवं पुनरुद्धार, पुराण सुनने में उनकी रुचि, आहारादि दान में उत्साह और बंकापुर एवं कोप्पण में मन्दिरों के निर्माण आदि का कथन है। इस शिलालेख के 22वें श्लोक में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारी है जो इस प्रकार है—

> स्थिर-जिन-शासनोद्धरणरादियोलारेने राचमल्ल भू-
> वर-वर-मन्त्रि रायने बलिक्के बुध-स्तुतनप्प विष्णु भू-
> वर-वर-मन्त्रि गंगणने मत्ते बलिक्के नृसिंह-देव-भू-
> वर-वर-मन्त्रि हुल्लने पेरंगिनितुल्लडे पेल्लागदे ॥

(यदि पूछा जाए कि जैन धर्म के सच्चे पोषक कौन हुए तो इसका उत्तर यही है कि प्रारम्भ में राचमल्ल नरेश के मन्त्री राय (चामुण्डराय) हुए, उनके पश्चात् विष्णुनरेश के मन्त्री गंगण (गंगराज) हुए और अब नरसिंहदेव के मन्त्री हुल्ल हैं। (अनुवाद—जैन शिलालेख संग्रह भाग-1)

एक अन्य शिलालेख में हुल्लराज द्वारा उपर्युक्त मन्दिर के लिए सवणेरु ग्राम का दान करने तथा मुनि चन्द्रदेव द्वारा चन्दा एकत्रित करने का उल्लेख है। एक बहुत लम्बे लेख में होय्सल नरेश द्वारा इस मन्दिर का नाम 'भव्यचूडामणि' रखने आदि का विस्तृत वर्णन है।

पाण्डुक शिला—भण्डारी बसदि के सामने एक भव्य पाण्डुक शिला है। उस पर द्रविड़ शैली का बहुत अच्छा उत्कीर्णन है।

जैन मठ

प्राप्त जानकारी के अनुसार यह मठ (चित्र क्र. 105) सम्भवतः चामुण्डराय के समय से स्थापित है। उन्होंने आचार्य नेमिचन्द्र से यहाँ की गोमटेश्वर महामूर्ति के संरक्षण करने का आग्रह किया था। कुछ विद्वानों के अनुसार, मठ बारहवीं सदी में निश्चित रूप से विद्यमान था।

होय्सलनरेश विष्णुवर्धन (बारहवीं सदी) के जैनों पर तथाकथित अत्याचारों के फलस्वरूप द्वारसमुद्र (हलेबिड) की धरती फटने, त्राहि-त्राहि मचने तथा श्रवणबेलगोल के भट्टारक चारुकीर्ति पण्डिताचार्य द्वारा कलिकुण्ड आदि आराधना द्वारा जमीन पाटने सम्बन्धी जनश्रुति का उल्लेख किया जा चुका है। इसी प्रकार राजा बल्लाल के व्याधिग्रस्त जीव की रक्षा करने के कारण यहाँ के भट्टारक जी को 'बल्लालजीवरक्षक' उपाधि प्राप्त होने का भी कथन पहले किया जा चुका है। कुछ और विद्वानों का अनुमान है कि जैन मठ एक अच्छे गुरुकुल के रूप में, गोमटेश्वर महामूर्ति की दसवीं सदी में स्थापना से पूर्व भी विद्यमान था और वह बहुत प्राचीन संस्था है। जो भी हो, जैन मठ का भवन तीन-चार सौ वर्ष प्राचीन तो है ही। भवन बदलते, पुनर्निर्मित होते ही रहते हैं। अब इसी पुराने मठ के पास ही एक नवीन भट्टारक-भवन भी बन गया है।

प्राचीन जैन मठ भट्टारकजी का निवास और एक अत्यन्त सुन्दर जिनालय दोनों ही था।

यह मठ प्राचीनता, प्राचीन जैन ग्रंथों के संरक्षण, श्रवणबेलगोल के जागरूक प्रहरी के रूप में प्रसिद्ध है ही, इसकी सबसे अधिक प्रसिद्ध आकर्षक रंग-बिरंगे भित्ति-चित्रों, गर्भगृह की सुन्दर एवं कलापूर्ण मूर्तियों एवं सिद्धान्त-दर्शन के लिए भी है।

जैन मठ के बाहर एक खुला प्रवेशमण्डप या बरामदा है जिसमें चित्रकारी और नक्काशी (उत्कीर्णन) दोनों का अनूठा सगम है। सामने से ही दक्षिण-शैली का शिखर भी दिखाई देता है। इस मंडप के स्तम्भों का उत्कीर्णन उच्च कोटि का एवं विविधता लिए हुए है। आपस में गुँथे हुए सर्प, मौक्तिक मालाएँ, विकसित कमल, गाय, व्याल, हंस, पक्षी, सूर्य, चन्द्र एवं नृत्यांगनाओं का आकर्षक अंकन यहाँ देखने लायक है। एक स्तम्भ पर वर्षा में भीगती महिला भी उत्कीर्ण की गई है। यहीं एक अन्य स्तम्भ पर नृत्यांगना पूरी मुड़ गई है। उसके दोनों हाथ नृत्य-मुद्रा में एक तरफ हैं तो चोटी दूसरी तरफ। उसकी वेणी पैरों तक लटक रही है।

प्रवेशद्वार की चौखट पर पीतल मढ़ा गया है। उसके सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा है। वह मकर-तोरण से अलंकृत है और दो हाथी माला लिये प्रदर्शित हैं। नीचे दो द्वारपालिकाएँ हैं। एक ओर द्वारपाल भी प्रदर्शित हैं। पद्मासन तीर्थंकर के नीचे तीर्थंकर की माता के सोलह स्वप्नों (चन्द्र, सूर्य, मीन आदि) का सुन्दर अंकन है। उससे नीचे एक यक्षी की मूर्ति प्रतिष्ठित है।

खुले प्रवेशमण्डप में ही लगभग छह फुट ऊँचे चौखटे में बाहुबली के जीवन से सम्बन्धित चित्र हैं। उनकी बाल-लीला, मन्मथावस्था (बाहुबली संगीत सुन रहे हैं), दक्षिणांक का संधान (बाहुबली सिंहासन पर बैठे हैं), तीन प्रकार का बाहुबली-भरत युद्ध, बाहुबली को वैराग्य, उनके सामने खड़े भरत, तपस्यारत बाहुबली से क्षमा माँगते हुए भरत, बाहुबली की कठोर तपस्या और केवलज्ञान सम्बन्धी अनूठे चित्र यहाँ शोभा बढ़ाते हैं।

मठ में प्रवेश करते ही एक चौक है। उसके चारों ओर बरामदे में भी भित्ति-चित्र हैं। दोनों स्थानों के चित्र संक्षेप में इस प्रकार हैं: (1) नागकुमार के जीवन से सम्बन्धित चित्र (देखें चित्र क्र. 106), (2) भरत-चक्रवर्ती के दृश्य, (3) वन का चित्रण, (4) छह लेश्याओं

का चित्रण जिसमें एक मनुष्य को वृक्ष काटते हुए और कुछ मनुष्यों को उस पर चढ़े हुए दिखाया गया है (5) श्रवणबेलगोल के रथोत्सव का चित्र, (6) मैसूरनरेश का दशहरा-दरबार जिसमें राजा कृष्णराज ओडेयर दरबार में बैठे दिखाये गये हैं, (7) पार्श्वनाथ और कमठ सम्बन्धी सुन्दर चित्र, पार्श्वनाथ के पहले काल से लेकर कमठ के उपसर्ग आदि तक के। एक चित्र में मन्त्रिगण कमठ के कदाचार की शिकायत करते दिखाये गये हैं, तो अन्य 5-6 चित्रों में कमठ को उसके कुकृत्यों के लिए दण्डित करते हुए चित्रित किया गया है। गर्भगृह की ओर के कुछ चित्र मिट-से गये हैं। अनुमान है कि ये चित्र 17वीं या 18वीं सदी में बनाए गये थे।

मठ के भीतरी भाग के स्तम्भों पर भी सुन्दर नक्काशी है। उन पर नर्तकियों की आकर्षक मुद्राएँ उत्कीर्ण हैं। एक स्तम्भ के चित्रण में गाय बछड़े को दूध पिला रही है तो एक अप्सरा पैर में चुभा काँटा निकाल रही है।

मठ के मन्दिर में तीन गर्भगृह हैं। उनके दरवाजों पर पीतल मढ़ा है और सिरदल पर कीर्तिमुख से अलंकृत पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। गर्भगृहों में पीतल और पाषाण की कलात्मक मूर्तियाँ हैं। तीर्थंकर मूर्तियों में प्रभावली से सज्जित नेमिनाथ की पीतल की मूर्ति दर्शनीय है। पार्श्वनाथ की धातु मूर्ति भी कलात्मक है। नवदेवता, धर्मचक्र, श्रुतस्कन्ध, ज्वाला-मालिनी और कूष्माण्डिनी यक्षियों के अतिरिक्त, शारदा (सरस्वती) की भी भव्य मूर्तियाँ हैं। चौक की मुँडेर पर देवियों की मूर्तियों की सज्जा है। पीतल से ही निर्मित नन्दीश्वर एवं सम्मेद-शिखर भी हैं।

उपर्युक्त मन्दिर में कुछेक दुर्लभ मूर्तियाँ हैं। उनका दर्शन विशेष प्रबन्ध द्वारा कराया जाता है। इसे सिद्धान्तदर्शन कहा जाता है।

जैन मठ के मन्दिर में ही भट्टारकजी की गद्दी है। वर्तमान भट्टारकजी का एक चित्र भी मठ में लगा है।

यह उल्लेख किया ही जा चुका है कि मठ के पास ही एक नवीन भट्टारक-निवास बन गया है। उसी में वर्तमान भट्टारक जी निवास करते हैं।

हमारा वन्दना-क्रम यहाँ समाप्त होता है।

विशेष कार्यक्रम—चन्द्रप्रभ मन्दिर में विशेष आरती होती है, कभी-कभी साधारण उत्सव भी मनाया जाता है। प्रतिदिन शाम को सात बजे प्रवचन होता है। उसके बाद आरती होती है। इसमें स्थानीय श्रावक-श्राविका सम्मिलित होते हैं। समय-समय पर भट्टारक जी प्रवचन करते हैं। यात्रियों के अनुरोध पर भी वे प्रवचन करते हैं एवं पण्डितों से यहाँ शास्त्रचर्चा भी करते हैं। हर मंगलवार को कूष्माण्डिनी देवी की विशेष शृंगारपूर्वक आरती की जाती है।

मठ के क्षेत्र में धर्मशालाएँ आदि

कलुत्तत्र धर्मशाला—यह पुरानी धर्मशाला का नाम है। यह मठ से कुछ ही दूरी पर स्थित है।

सरसेठ हुकमचन्द त्यागी निवास—इन्दौर के दानवीर स्व. सर सेठ हुकमचन्द जी की स्मृति में उनके पुत्र श्री राजकुमारसिंह द्वारा बनवाए गए इस शान्त निवास में दो कमरे, एक

सभाभवन और एक रसोईघर है।

पद्मश्री सुमतिबाई शाह आश्रम—यह आर्यिकाओं तथा महिला यात्रियों के लिए है। इसमें दो कमरे हैं।

श्री कानजी स्वामी यात्रिकाश्रम—यात्रियों के ठहरने के लिए इसमें चार कमरे हैं। स्नानघर भी है।

मुनि विद्यानन्द निलय—सन् 1975 ई. में निर्मित यह निलय या धर्मशाला यात्रियों के लिए बहुत सुविधाजनक है। अधिकांश यात्री यहीं ठहरते हैं। पर्यटक बसों के यात्रियों के लिए बड़े कमरे भी हैं। बस स्टैण्ड से लगभग सटी हुई इस धर्मशाला में 45 कमरों के साथ ही स्नानघर और रसोईघर की भी सुविधा है। दो-मंज़िले इस भवन में टेलीफोन की भी सुविधा है। इस धर्मशाला से गोमटेश्वर महामूर्ति का ऊपरी भाग सदा ही दिखाई देता है।

श्रेयांस प्रसाद अतिथि-निवास—यह उपर्युक्त निलय के पास में ही है और आधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न है। इसका उद्घाटन अप्रैल 1975 ई. में हुआ था। यह श्रवणबेलगोल का का पहला अतिथि निवास है। दो-मंज़िले इस निवास में सात कमरे, रसोईघर और एक वार्ता-कक्ष हैं।

भक्ति अतिथिगृह—श्रेयांसप्रसाद अतिथि-निवास के पास ही, सन् 1980 ई. में उद्घाटित यह अतिथिगृह सेठ वालचन्द हीराचन्द चेरिटेबिल ट्रस्ट की ओर से बनवाया गया है। इसमें तीन कमरे, रसोईघर तथा भोजनकक्ष हैं।

मध्यप्रदेश भवन—सन् 1981 ई. में जब जन-मंगल महाकलश ने इन्दौर से दक्षिण की ओर प्रस्थान किया था, तब मध्यप्रदेश सरकार के उस समय के मुख्यमन्त्री श्री अर्जुनसिंह ने सरकार की ओर से इस भवन के लिए ढाई लाख रुपये के अनुदान की घोषणा की थी।

गंगवाल गेस्ट हाउस—यह भी आधुनिक अतिथिगृह है और उपर्युक्त अतिथिगृह समूह में स्थित है। इसमें चार कमरे, रसोईघर तथा भोजन-कक्ष हैं।

पी. एस. जैन गेस्ट हाउस—इसी नाम के ट्रस्ट द्वारा निर्मित इस भवन का उद्घाटन 1981 ई. में किया गया था। इसमें चार कमरे, रसोईघर और भोजन-कक्ष है।

शान्तिप्रसाद कला मन्दिर—जैन साहित्य, कला एवं धर्म के अनन्य पोषक स्व. साहू शान्ति प्रसादजी की स्मृति में इसके निर्माण का उद्देश्य भित्तिचित्रों तथा अन्य अनुकृतियों के माध्यम से जैन संस्कृति के उन्नायक महापुरुषों के जीवन की झाँकी प्रस्तुत करना है।

आयुर्वेदिक चिकित्सालय—आसाम के श्री गणपतराय सरावगी के दान से इस चिकित्सालय का निर्माण किया गया है।

गुरुकुल भवन—प्रसिद्ध उद्योगपति सेठ लालचन्द हीराचन्द परिवार ने दो लाख रुपये का दान इसके निर्माण के लिए दिया है।

कुन्दकुन्द भवन—इसका उद्घाटन कर्नाटक के तत्कालीन राज्यपाल श्री गोविन्द नारायण ने किया था।

सिद्धोमल जैन अतिथिगृह—इसमें तीन कमरे और रसोईघर हैं। इसका निर्माण दिल्ली के श्री ललित कुमार जैन ने कराया है।

मंजुनाथ कल्याण मण्डप—धर्मस्थल के धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेगड़े ने विवाह (कल्याण) तथा बड़ी सभाएँ आयोजित करने में सुविधा की दृष्टि से इस विशाल भवन का निर्माण कराया है। इसमें रसोईघर, वर-वधू पक्ष के लोगों आदि के ठहरने के लिए कमरे हैं।

राजश्री गेस्ट हाउस—यह भी आधुनिक सुविधाओं से युक्त अतिथि-भवन है। निर्माण-कर्ता हैं श्री ताराचन्द बड़जात्या परिवार।

उपर्युक्त अतिथि-निवास आदि, जिनका निर्माण गोमटेश्वर सहस्राब्दी महोत्सव के अवसर पर हुआ है, इस तीर्थराज में ठहरने की आधुनिक सुविधाएँ प्रदान करते हैं।

स्थानीय बस स्टैंड—यह पक्का बना हुआ है, उसके साथ एक कैंटीन भी है। समय-सारणी केवल कन्नड़ लिपि में है। अनेक स्थानों की बसें मिलती हैं। यहाँ से चन्नरायपट्टन के लिए बहुत-सी बसें हैं।

प्रवासी उपकार गृह—कर्नाटक सरकार का यह कैण्टीन मुनि विद्यानन्द निलय के ठीक पीछे है।

श्री महावीर दिगम्बर जैन धर्मशाला—यह श्री महावीर कुन्दकुन्द भवन के पास ही में स्थित है।

जैन परिवार—श्रवणबेलगोल में लगभग सौ जैन परिवार हैं। अधिकांश खेती पर निर्भर हैं। इस तीर्थ के आसपास की भूमि पथरीली होने के कारण पैदावार कम होती है। अतः इन परिवारों की स्थिति अच्छी नहीं है। यदि कोई अच्छा उद्योग खुल जाए तो ये परिवार बड़े शहरों की ओर सम्भवतः नहीं जाएँ।

प्राचीन काल में अनेक दाताओं ने सिंचाई की समस्या को समझा और इसीलिए यहाँ के शिलालेखों में लगभग 50 सरोवरों या कुण्डों के निर्माण या जीर्णोद्धार के उल्लेख पाए जाते हैं। इनमें जक्किकट्टे और चेन्नण्णा कुण्ड प्रसिद्ध हैं। जक्किकट्टे में पाषाण पर जिन-प्रतिमाएँ हैं।

वार्षिक रथोत्सव

एक बहुरंगी कार्यक्रम के रूप में श्रवणबेलगोल में प्रतिवर्ष रथ-यात्रा महोत्सव चैत्र शुक्ल पंचमी से वैशाख कृष्ण द्वितीया तक बड़ी धूमधाम से जैन और जैनेतर जनता के उल्लासपूर्ण एवं स्वैच्छिक सहयोग के साथ मनाया जाता है। इसका आरम्भ चैत्र मास की उपर्युक्त पंचमी से करने का कारण यह है कि इसी दिन गोमटेश्वर की महामूर्ति की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी।

उत्सव का प्रारम्भ पंचमी के दिन ध्वजारोहण से होता है। उसके बाद भगवान की मूर्ति की शोभायात्रा सर्पराज, अश्व, देवेन्द्र और ऐरावत के रथों पर निकाली जाती है। इन दिनों उत्सवमूर्ति की पालकी जैनेतर लोग ही अपने कन्धों पर सहज भक्ति-भाव से उठाते हैं। प्रसाद रूप में उन्हें नारियल भेंट किया जाता है।

पूर्णिमा के दिन अर्थात् 11वें दिन रथोत्सव की धूमधाम अधिक होती है। उस दिन सुबह 10 बजे ही रथ भण्डारी बसदि की परिक्रमा करता है। इस समय आधी दूरी तक जैनेतर रथ खींचते हैं और शेष आधी दूरी तक जैन लोग। इस प्रकार यह सभी सम्प्रदायों का परम्परागत रथोत्सव हो जाता है।

सूचना

श्रवणबेलगोल से कुछ प्रमुख स्थानों की दूरी इस प्रकार है—हासन 48 कि. मी., बेलूर 83 कि. मी., हलेबिड 75 कि. मी., मैसूर 80 कि. मी. तथा बंगलोर 142 कि. मी.। यहाँ से हासन होते हुए मूडबिद्री 257 कि. मी. है। क्षेत्र का पता है—

श्री दिगम्बर जैन मठ,
पो. श्रवणबेलगोल (Shravanabelagola) पिन—573135
ज़िला—हासन, कर्नाटक
टेलीफोन नं. है—श्रवणबेलगोल 35

श्रवणबेलगोल के आसपास के स्थल

श्रवणबेलगोल के आसपास के गाँव भी जैन धर्म से अत्यधिक प्रभावित रहे जान पड़ते हैं। उनमें से कुछ में आज भी अनेक जैन मन्दिर अच्छी हालत में या ध्वस्त अवस्था में हैं। कला की दृष्टि से भी वे बहुमूल्य हैं।

जिननाथपुर

इस गाँव की कलापूर्ण बसदि शान्तिनाथ बसदि एवं अरेगल बसदि का विवरण वन्दना-क्रम में ऊपर आ चुका है।

हलेबेलगोल

यह स्थान श्रवणबेलगोल से लगभग 6 कि. मी. की दूरी पर है। यहाँ एक जैन मन्दिर ध्वस्त अवस्था में है। मन्दिर होय्सल शैली की अच्छी कारीगरी है। मन्दिर में पार्श्वनाथ की 5 फुट ऊँची मूर्ति है जिस पर सप्तफणी नाग की छाया है। छत में अष्ट दिक्पालों का अच्छा अंकन है। धरणेन्द्र की भी एक प्रतिमा है जिस पर पाँच फणों की छाया है। इस बसदि का निर्माण लगभग 1094 ई. में हुआ होगा। यहाँ तालाब की नहर में मन्दिरों की सामग्री लगी है जिससे अनुमान होता है कि यहाँ किसी समय अनेक जैन मन्दिर या अन्य धर्मों के भी मन्दिर थे।

साणेहल्ली

यह गाँव श्रवणबेलगोल से लगभग 5 किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ भी एक ध्वस्त जैन मन्दिर है। इसे विष्णुवर्धन के सेनापति गंगराज की भाभी ने 1120 ई. में बनवाया था।

कम्बदहल्ली

यह स्थान मण्ड्य ज़िले में श्रवणबेलगोल से लगभग 11 कि. मी. की दूरी पर है। श्रवणबेलगोल के साथ ही इसका उल्लेख किया जाता है, इसलिए यहाँ उसका परिचय प्रस्तुत

है। यहाँ एक सुन्दर ऊँचा स्तम्भ है। उस पर ब्रह्मयक्ष की मूर्ति है। इसी स्तम्भ (कम्बद) के कारण इस स्थान का यह नाम पड़ा। यहाँ के शान्तिनाथ मन्दिर में शान्तिनाथ की 12 फुट ऊँची भव्य मूर्ति है। महावीर स्वामी की भी एक सुन्दर मूर्ति है जिसका भामण्डल कलात्मक है। कुबेर और द्वारपाल (चित्र क्र. 107) एवं यक्षी की भी आकर्षक प्रतिमाएँ हैं।

इस स्थान की पंचकूट बसदि (चित्र क्र. 108) का कुछ भाग ध्वस्त हो गया है। इस मन्दिर के पाँच शिखर हैं इसलिए इसे पंचकूट बसदि कहा जाता है। इसके प्रवेशद्वार के बायीं ओर पद्मावती की मूर्ति है। यहाँ आदिनाथ की काले पाषाण की लगभग साढ़े तीन फुट ऊँची (लगभग 900 ई. की) तथा पार्श्वनाथ की साढ़े पाँच फुट ऊँची मूर्तियाँ हैं। सर्वाह्णी यक्ष और कूष्मांडिनी देवी की भी प्रतिमाएँ हैं। नेमिनाथ के यक्ष-यक्षिणी भी प्रतिष्ठित हैं। इसके शिखरों में विविधता है जो अन्यत्र नहीं देखी जाती। वर्गाकार, गोल, अष्टकोणीय शिखर एवं अन्य सूक्ष्म अंकन (दिक्पाल आदि) इसे अच्छी कारीगरी का मन्दिर सिद्ध करते हैं। होय्सलनरेश के सेनापति गंगराज (परिचय पहले आ चुका है) के पुत्र बोप्पण ने 12वीं सदी में इसका निर्माण कराया था।

हासन जिले के अन्य जैन स्थल

अरसीकेरे

बम्बई-बंगलोर रेलवे लाइन पर यह एक जंक्शन है। यहाँ से भी यात्री हासन होते हुए श्रवणबेलगोल जाते हैं। यहाँ एक सहस्रकूट जिनालय है। यह ध्वस्त अवस्था में है। इसमें नक्काशी का सुन्दर काम है। बसदि में बाहुबली की धातु की प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ है। होय्सल राजवंश के समय में यहाँ अनेक जैन मन्दिर थे।

हासन

श्रवणबेलगोल और मूडबिद्री जाने के लिए यह एक प्रमुख सड़क केन्द्र है। यहाँ से रेल-मार्ग द्वारा मैसूर और मंगलोर भी जा सकते हैं।

इस नगर में बस स्टैण्ड से लगभग आधे किलोमीटर की दूरी पर दो मन्दिर हैं। 'चिक्क बसदि' नामक नवीन मन्दिर में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की भव्य प्राचीन प्रतिमा है (देखें चित्र क्र. 109) उस पर सात फणों की छाया है और सर्पकुण्डली के सात वेष्टन मूर्ति के मस्तक के एकदम पीछे से शुरू होकर एड़ियों तक प्रदर्शित हैं। मूर्ति मकर-तोरण और यक्ष-यक्षणियों से भी अलंकृत है। तीर्थंकर आदिनाथ की भी छत्रत्रयी से युक्त एक प्राचीन प्रतिमा है। उसके साथ, चँवरधारी मस्तक से ऊपर तक प्रदर्शित हैं।

यहाँ की दोड्डबसदि भी एक आधुनिक मन्दिर है। उसमें भगवान पार्श्वनाथ की मकर-तोरण युक्त भव्य प्रतिमा पर सात फणों की छाया है। सर्पकुण्डली कन्धों से प्रारम्भ होकर घुटनों तक है। केवल तीन वेष्टन हैं और घुटनों के नीचे सर्प की पूँछ प्रदर्शित है।

107. कंबदहल्ली—शान्तिनाथ बसदि : द्वारपाल ।
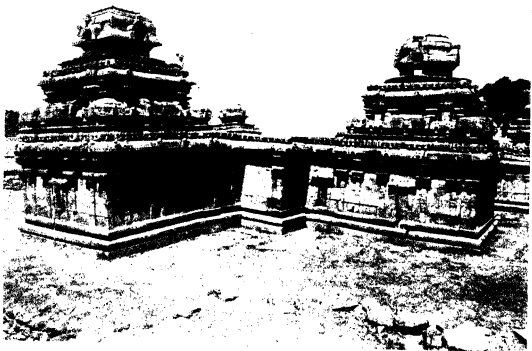
108. कंबदहल्ली—पंचकूट बसदि का बाह्य दृश्य ।

109. हासन—चिक्क बसदि : तीर्थंकर पार्श्वनाथ की खड्गासन मूर्ति ।

110. मर्कुली—त्रिकूट बसदि (? पंचकूट) : चक्रेश्वरी यक्षी ।
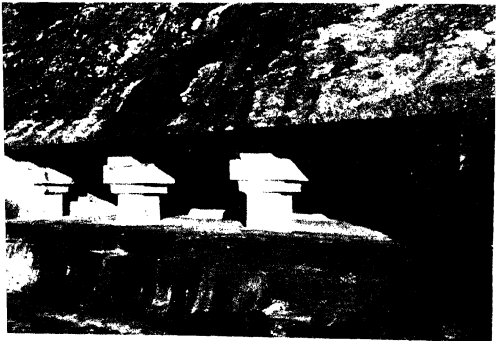
111. मेलकोट—नायनार गुफा मन्दिर, सामने का दृश्य ।

हेरगु

हासन ज़िले के आलूरु तालुक में स्थित इस स्थान पर भी एक प्राचीन ध्वस्त जैन मन्दिर है। उसका निर्माण होय्सलनरेश नरसिंहदेव के सेनापति चाविमय्या की पत्नी जक्कव्वा ने 1155 ई. में कराया था। पार्श्वनाथ की एक मूर्ति भी प्रतिष्ठापित की थी। खण्डहर होते हुए भी यह अपनी सूक्ष्म कला के कारण आकर्षक है।

होलेनरसीपुर

हासन-मैसूर रेलमार्ग पर स्थित इस स्थान में 1115 ई. में मुनि प्रभाचन्द्र के उपदेश से कोंगाल्वदेव ने 'सत्यवाक्य जिनालय' का निर्माण कराके होण्णेगडलु नामक गाँव दान में प्राप्त किया था, ऐसा शिलालेख से ज्ञात होता है।

होनगेरी

इस स्थान में एक 'महावीर बसदि' है। उसमें भगवान महावीर की खड्गासन प्रतिमा के साथ केवल चँवर का अंकन है। इसी प्रकार एक फलक पर अन्य पाँच तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। सम्भवतः ये पाँच बालयति (वे तीर्थंकर जिन्होंने विवाह नहीं किया था) हों।

होसहोल्लु (होसहल्ली)

यहाँ छत्रत्रयी से अलंकृत नेमिनाथ की पद्मासन प्रतिमा है। पाँच सिंहों के आसन पर प्रतिष्ठित इस मूर्ति के पास चँवरधारी मस्तक से ऊपर तक अंकित हैं। यक्ष-यक्षी भी प्रदर्शित हैं। 1125 ई. में होय्सलनरेश विष्णुवर्धन के शासनकाल में शुभचन्द्र सिद्धान्तदेव के श्रावक शिष्य नोलबि शेट्टि ने 'त्रिकूट जिनालय' का निर्माण कराया था तथा अनेक बाग-बगीचों के अतिरिक्त 'अर्हन् हल्ली' नामक ग्राम भी दान में दिया था। यहाँ भगवान पार्श्वनाथ की भी सुन्दर प्रतिमा है। इस मन्दिर का समय-समय पर जीर्णोद्धार भी हुआ है।

इस स्थान पर जक्कुलम्मा (?) का भी एक मन्दिर है।

मर्कुलि

यहाँ एक पंचकूट बसदि (अर्थात् पाँच गर्भगृहों का मन्दिर) है। उसमें आदिनाथ, सुपार्श्वनाथ, पुष्पदन्त, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। यह बसदि भी होय्सल काल की कलात्मक शैली की प्रारम्भिक स्थिति में बतायी जाती है। मन्दिर छोटा है फिर भी सामने से भव्य लगता है। उसके गर्भगृह में प्रवेशद्वार पर स्वस्तिक का अंकन है। चार भुजावाला गो-मुख यक्ष भी उत्कीर्ण है। इसी प्रकार इसमें सोलह भुजाओं वाली चक्रेश्वरी यक्षिणी की मूर्ति (चित्र क्र. 110) भी दर्शनीय है।

उपर्युक्त स्थान शान्तिग्राम (हासन-श्रवणबेलगोल मार्ग) के पास स्थित है। यहाँ ग्राम के क़िले के अन्दर मन्दिर है। सन् 1172 ई. में होय्सलनरेश वीरबल्लाल के मन्त्री बूचिराज और उनकी पत्नी ने इसका निर्माण कराया था तथा द्राविड़ संघ के श्रीपाल त्रैविद्य के शिष्य

वासुपूज्य सिद्धान्तदेव के चरणों में समर्पित कर दिया था।

मगलूरु

हासन ज़िले का यह गाँव होय्सलनरेश के समय में एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र था। इस वंश के शासक विष्णुवर्धन के समय में यहाँ सात क़िले वाला (एव्वकोटे) जिनालय विद्यमान था। बारहवीं सदी में यहाँ नन्दिसंघ-पीठ था जिसके अधिकारी श्रीपाल त्रैविद्य के शिष्य वासुपूज्य थे।

शान्तिग्राम

इतिहास-प्रसिद्ध होय्सलनरेश विष्णुवर्धन की पटरानी शान्तला देवी (देखिए, हलेबिड प्रकरण) के नाम पर बसाया गया यह ग्राम हासन से श्रवणबेलगोल जानेवाले मार्ग (राजमार्ग क्रमांक 48) पर, सड़क के किनारे स्थित है। यहाँ वर्तमान में चार मन्दिर हैं जिनमें से एक जैन मन्दिर है। मन्दिर छोटा है। प्रवेशद्वार के सिरदल पर तीर्थंकर की मूर्ति है। आसपास सिंहों का अंकन है। भीतर तीर्थंकर सुमतिनाथ की छत्रत्रयी से युक्त खड्गासन प्रतिमा के साथ यक्ष-यक्षिणी भी अंकित हैं। मकर-तोरण की सज्जा भी है। पार्श्वनाथ की नौ फणों से आच्छादित प्रतिमा भी है।

इस स्थान के 'केशव देवालय' से प्राप्त शिलालेख से ज्ञात होता है कि बारहवीं सदी में प्रभु हेग्गड़े वासुदेव के जिनभक्त पुत्र उदयादित्य ने सूरस्थगण के गुरु चन्द्रनन्दि के उपदेश से 'वासुदेव जिनमन्दिर' का निर्माण कराया था। इसके साथ ही ग्राम-निवासी होन्नशेट्टि और अन्य भक्तों ने तीर्थंकर सुमतिनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठापित की थी।

अंगडि

यह स्थान इस समय यद्यपि चिक्कमंगलूर ज़िले में है और मूडिगेरे-सकलेशपुर मार्ग पर स्थित है तथापि हासन ज़िले के बेलूर और हलेबिड से इसका अत्यन्त निकट का सम्बन्ध होने के कारण यहाँ हासन ज़िले के अन्तर्गत कुछ परिचय दिया जा रहा है। यह बेलूर से लगभग 23 कि. मी. की दूरी पर स्थित है।

प्राचीन काल में इसकी ख्याति एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान के रूप में रही है। कुछ शिलालेखों से ज्ञात होता है कि 10वीं शताब्दी में यह एक प्रमुख जैन केन्द्र था। इस स्थान का प्राचीन नाम शशकपुर या सोसेवूर था।

अंगडि की सबसे अधिक प्रसिद्धि यहाँ पर होय्सल राजवंश की स्थापना के कारण है। कर्नाटक और विशेषकर कर्नाटक में जैन धर्म के इतिहास में इस राजवंश का बहुत बड़ा योगदान रहा है। जैन धर्म से सम्बन्धित सबसे अधिक शिलालेख इसी वंश के राजाओं, सेनापतियों आदि के हैं। श्रवणबेलगोल के शिलालेखों में भी सबसे अधिक शिलालेख इस वंश से सम्बन्धित हैं। इस वंश के नरेश विष्णुवर्धन और पटरानी शान्तला तो अब इतिहास एवं साहित्य के विषय बन गये हैं।

पश्चिमी घाट की सह्याद्रि श्रेणी के दक्षिण में, रम्य वनप्रदेश में स्थित यह स्थान होय्सलों का 'पीहर' कहलाता है। शिलालेख के अनुसार, होय्सल वंश का मूल पुरुष 'सल' था। कथन है कि एक बार जब वह अपनी पुत्रवधू के गाँव में अपनी कुलदेवता 'वासंतिका' की पूजन के लिए गया हुआ था, तब मुनि सुदत्त वहाँ उपदेश कर रहे थे। उसी समय एक शेर दहाड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा। तब मुनिराज ने हाथ में डण्डा देकर सल से कहा, "पोय् सल" (अर्थात् व्याघ्र को मार भगाओ)। सल ने ऐसा ही किया और व्याघ्र को मार भगाया। तभी से उसका वंश पोय्सल (या होय्सल) कहलाया। अनुश्रुति है कि मुनि ने उसे राजा बनाने के लिए ही पद्मावती को व्याघ्र के रूप में प्रकट किया था। यहाँ 'वासंतिका अम्मा' का घर आज भी है। कहा जाता है कि देवी की मूर्ति एक हजार वर्ष प्राचीन है। मिट्टी की बनी होने पर भी वह ज्यों की त्यों है। (होय्सल वंश का अन्त ही 12वीं सदी में हो गया था)।

होय्सल राजधानी बेलूर में स्थानान्तरण कर दी गयी थी। जब यहाँ विजयनगर के शासकों का राज्य हुआ तो उन्होंने इसे 'अंगडि' नाम दिया।

वर्तमान में अंगडि एक छोटा-सा गाँव है जहाँ चावल, कॉफी और इलायची की पैदावार होती है।

वासंतिका देवालय से एक फर्लांग जाने पर बीहड़ जंगल में 40 फुट उन्नत छोटी पहाड़ी पर तीर्थंकर नेमिनाथ का मन्दिर है। यह 20 फुट ऊँचा तथा 8 फुट चौड़ा है। इसका निर्माण विनयादित्य ने कराया था। मूर्ति काले पाषाण की है किन्तु उसकी सूक्ष्म कारीगरी चित्ताकर्षक है। यह मूर्ति पद्मासन में आठ फुट ऊँची है। उनके दोनों ओर चँवरधारी हैं।

उपर्युक्त मन्दिर से थोड़ी ही दूरी पर 'रत्नत्रय बसदि' है। लगभग चालीस फुट ऊँचे और 25 फुट चौड़े इस मन्दिर का निर्माण भी राजा विनयादित्य ने 1050 ई. में कराया था। गर्भ-गृह में अरहनाथ, मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकरों की भव्य प्रतिमाएँ 'रत्नत्रय' के रूप में विराजमान हैं।

गर्भगृह की बायीं ओर लगभग 4 फुट ऊँची सर्वाह्ण यक्ष की प्रतिमा है। यक्ष के हाथ में 'मादल' फल (कर्नाटक में पाया जाने वाला एक फल) और दूसरे हाथ में पाश है। इसी प्रकार इतनी ही बड़ी कूष्मांडिनी देवी की भी सुन्दर प्रतिमा है। देवी के हाथ में फलगुच्छ है और मस्तक पर छतरी के समान आम का एक वृक्ष चित्रित है जिसमें फल लगे हैं। फलों को खाने के लिए आये हुए तोता, मोर, बन्दर आदि का शिल्पी ने बड़ा ही सुन्दर उत्कीर्णन किया है। मूर्ति के तलभाग में सिंह के ऊपर आसीन होय्सल का चित्रांकन है।

यहाँ 990 ई. में द्राविड़ संघ के मुनि विमलपण्डित ने सल्लेखना विधि से शरीर त्यागा था।

उपर्युक्त बसदि से लगभग एक फर्लांग की दूरी पर केशव, ईश्वर और गणपति देवालय हैं। सर्वधर्म-समन्वयभावी बल्लाल नरेश ने 12वीं शती में, एक ही स्थान पर इन तीन मन्दिरों का निर्माण कराया था।

लगभग दो किलोमीटर की दूरी पर 'हंयूरु' नामक एक गाँव है। इस स्थान पर राजा द्वारा न्याय किया जाता था। यहाँ भी पार्श्वनाथ जिनालय है और मूर्ति के दोनों ओर धरणेन्द्र

और पद्मावती का अंकन है।

जैन धर्म, एक जैन तीर्थ और होय्सलवंश की राजनीति—इन तीनों कारणों से कर्नाटक के इतिहास में अंगडि का बहुत अधिक महत्त्व है।

मण्ड्य जिले में जैनधर्म

हासन और बंगलोर ज़िलों के बीच में स्थित, कर्नाटक के मण्ड्य ज़िले में भी जैनधर्म का प्रचार था और वहाँ अनेक जैन मन्दिर थे। कुछ का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है। इस ज़िले में यात्रा या पर्यटन के लिए कोई स्थल इस पुस्तक में नहीं बताया गया है। यात्री को श्रवणबेलगोल से सीधे बंगलोर जाने की अनुशंसा पहले ही की जा चुकी है।

अबलवाडि

यह स्थान मण्ड्य तालुक के 'कोप्प होब्बडि' नामक गाँव के पास है। होय्सलनरेश विष्णुवर्धन के शासनकाल में 1131 ई. में मूलसंघ देशीयगण पुस्तकगच्छ के नयकीर्तिदेव और भानुकीर्तिदेव के शिष्य हेग्गडे मल्लिनाथ नाम के श्रावक ने यहाँ एक विशाल जिनमन्दिर का निर्माण कराके भूमिदान किया था।

बेल्लूरु

उपर्युक्त ज़िले के नागमण्डल तालुक में यह स्थान है। सन् 1680 ई. में दिल्ली, कोल्हापुर, जिनकांची, पेनुगोण्डे के सिंहासनाधीश्वर श्री लक्ष्मीसेन भट्टारक की प्रेरणा से मैसूर-नरेश श्री देवराज ओडेयर ने मन्दिर-निर्माण के लिए भूमि दान की थी एवं भट्टारकजी के शिष्य हुलिकल्लु पूदमण्णशेट्टि के पौत्र, दोड्डादण्ण शेट्टि के सुपुत्र, सक्करे शेट्टि ने अपने अभ्युदय के लिए यहाँ श्री 'विमलनाथ चैत्यालय' का निर्माण कराया था।

भोगादि (भोगवदि)

यह स्थान भी मण्ड्य ज़िले में है। होय्सलनृप बल्लालदेव के महाप्रधान हेग्गडे बलय्या ने सन् 1173 ई. में यहाँ 'पार्श्वनाथ जिनालय' के लिए भूमि दान की थी। इस मन्दिर के प्रमुख अधिकारी अकलंकदेव परम्परा के श्री पद्मस्वामी थे।

बडग

यह स्थान भी उपर्युक्त ज़िले में ही अवस्थित है। यह स्थान पहिले 'दडिगन केरे' कहलाता था। यहाँ एक पंचजिनालय था। उसमें 'बाहुबलिकूट' नामक जिनालय का निर्माण होय्सल-नरेश विष्णुवर्धन के दण्डनायक (सेनापति) मरियाने और भरतमय्या ने कराया था तथा भूमि आदि अनेक प्रकार का दान देकर अपने गुरु मेघचन्द्र को सौंपा था। इन बन्धुओं ने ही हलेबिड के शान्तीश्वर मन्दिर का निर्माण कराया था।

बंगलोर

कर्नाटक की राजधानी बंगलोर को शीतल, स्वास्थ्यवर्धक एवं एक उद्यान-नगर के रूप में सभी जानते हैं। सांस्कृतिक, साहित्यिक और औद्योगिक नगरी के रूप में भी इसकी ख्याति है। दक्षिण भारत की यात्रा में यह दर्शनीय नगरी होने के साथ ही साथ, कर्नाटक की प्राचीन कला एवं स्थापत्य के लिए भी प्रवेशद्वार है। बहुत-से पर्यटक अब यहीं से कर्नाटक की यात्रा प्रारम्भ करते हैं।

अवस्थिति एवं मार्ग

बंगलोर रेलमार्ग द्वारा भारत के सभी प्रमुख नगरों से जुड़ा हुआ है। दिल्ली, बम्बई, अहमदाबाद, कलकत्ता, गुवाहाटी, मद्रास और त्रिवेन्द्रम तथा मंगलूर से सीधी गाड़ियों द्वारा यहाँ पहुँचा जा सकता है।

हवाई जहाज द्वारा यहाँ दिल्ली, कलकत्ता, हैदराबाद, मद्रास, बम्बई, मंगलोर, कोयम्बटूर और कोचीन से यहाँ पहुँचना आसान है।

सड़क-मार्ग द्वारा अब दूर-दूर के स्थानों से आरामदायक बसों में यहाँ पहुँचना सरल हो गया है। जहाँ हैदराबाद से रेल द्वारा बंगलोर पहुँचने में कुछ कष्ट ही होता है वहाँ आराम-दायक बसें एक ही रात में यह यात्रा सम्पन्न करा देती हैं। ये बसें कर्नाटक एवं सम्बन्धित सरकारों के अतिरिक्त निजी बसवालों द्वारा भी चलाई जाती हैं।

कर्नाटक सरकार का पर्यटन सूचना केन्द्र बंगलोर सिटी रेलवे-स्टेशन पर भी है। अनेक स्थानों के लिए पर्यटन बसों में यहाँ रिजर्वेशन कराया जा सकता है। एक ही दिन में पर्यटक बस श्रवणबेलगोल, बेलूर और हलेबिड की यात्रा करा देती है। कमी सिर्फ़ यह रहती है कि श्रवण-बेलगोल में पर्यटक केवल गोमटेश्वर महामूर्ति के ही दर्शन कर पाता है। गैर-सरकारी लोग भी अनेक पर्यटक बसें विभिन्न स्थानों के लिए चलाते हैं। पर्यटकों को परामर्श दिया जाता है कि वे समय से पहले, जहाँ तक सम्भव हो, लम्बी दूरी की यात्रा के लिए सरकारी बसों में ही रिजर्वेशन कराएँ।

बंगलोर का रेलवे स्टेशन बड़ा है किन्तु भीड़-भाड़ आदि की दृष्टि से इतना सुविधाजनक नहीं है।

स्टेशन से बाहर आने पर सामने ही कर्नाटक सरकार का बस स्टैण्ड है। उसके दो भाग हैं—एक बंगलोर शहर में चलने वाली बसों के लिए है (ओवर ब्रिज के पास) और दूसरा बंगलोर से बाहर जाने वाली बसों के लिए। यहाँ का बस स्टैंड बड़ा, साफ-सुथरा, व्यवस्थित और सुविधाजनक है। इसी स्टैण्ड पर शहर की बस-गाइड और कर्नाटक बस-मार्गों का नक्शा, ये दोनों मिलते हैं। इन्हें ले लेने से बहुत-सी परेशानी बच जाती है। यहाँ बसों में सीट का अग्रिम आरक्षण भी होता है। शहर में पर्यटन की बसें भी यहाँ से मिलती हैं।

जो यात्री होटल में ठहरना चाहते हैं, उनके लिए बस स्टैण्ड के तीनों ओर फैली होटलों की श्रृंखला है। भोजन के लिए शाकाहारी होटल ही है यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए। वैसे

पास ही में स्थित चिकपेट में कुछ अच्छे होटल भी मिल जाएँगे।

बंगलोर सोलहवीं शताब्दी में एक छोटा-सा स्थान था जिस पर येलहन्का प्रभु शासन करते थे। उन्होंने यहाँ 1537 ई. में यहाँ एक छोटा-सा शहर बसाया। विजयनगर के सम्राट् ने यहाँ के केम्पगोडा सामन्त को बहुत-सी ज़मीन उपहार में दी थी। उसकी आय से केम्पगोडा ने इस शहर को बसाया और विकास किया। आज भी केम्पगोडा का नाम यहाँ मार्ग आदि के रूप में सुरक्षित है। उसके बाद यहाँ टीपू सुलतान का शासन हुआ और फिर मैसूर के राजवंश ओडेयर का। इनके समय में इस नगर ने खूब प्रगति की। स्वतन्त्र भारत में, इसके आस-पास वायुयान बनाने वाला कारखाना, टेलिफोन करखाना आदि एवं अनेक कार्यालयों के कारण, इस नगर का आशातीत विकास हुआ है। आज यह भारत के प्रमुख नगरों में से एक है।

बंगलोर महानगरी की यात्रा पर निकलने से पहले हम परिचय प्राप्त करते हैं यहाँ के जैन मन्दिरों का।

वृषभदेव दिगम्बर जैन मन्दिर एवं सीमंधर स्वामी दिगम्बर जैन मन्दिर

रेलवे स्टेशन से बाहर सड़क पर आने पर दाहिनी ओर यदि आप देखें तो इस मन्दिर का शिखर दिख जाएगा। तात्पर्य यह कि यह मन्दिर रेलवे स्टेशन और बस स्टैण्ड के बिलकुल पास करीब आधा किलोमीटर की दूरी पर है।

यह मंदिर रंगस्वामी टेम्पल स्ट्रीट बलेपेट क्रॉस (चौराहा) पर स्थित है। इसका निर्माण भगवान महावीर 2500 वें निर्वाण महोत्सव के समय हुआ था। इसका एक दिगम्बर जैन ट्रस्ट है। मन्दिर बहुत भव्य है। वह लगभग पूरा का पूरा ही संगमरमर का बना है।

मन्दिर की संगमरमर की चौखट पर सुन्दर कलाकारी है। नीचे की ओर द्वारपाल बने हैं। सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। उनसे ऊपर ऋषभदेव के आहार का दृश्य है। गर्भगृह में आदिनाथ की लगभग पाँच फुट ऊँची प्रतिमा कमलासन पर विराजमान है। पंचधातु की पद्मप्रभ और महावीर स्वामी की प्रतिमाएँ भी प्रतिष्ठित हैं। गर्भगृह से बाहर तीनों ओर संगमरमर के फ्रेम में बने आलों में चौबीस तीर्थंकर विराजमान हैं।

ऊपर की मंज़िल में सीमंधर स्वामी का बहुत ही सुन्दर समवसरण है। उसमें गन्धकुटी में तीर्थंकर की चौमुखी प्रतिमा स्थापित है। (समवसरण में गन्धकुटी में कमलासन पर विराजमान होकर भगवान उपदेश करते हैं तो उनका मुख चारों तरफ हर किसी को दिखाई देता है। उसी की अनुकृति में चौमुखी प्रतिमाएँ बनाई जाती हैं।) यहाँ के समवसरण की रचना संगमरमर से की गई है इसीलिए वह बहुत सुन्दर लगती है। समवसरण मन्दिर के प्रवेशद्वार के सिरदल पर कायोत्सर्ग तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। द्वार की चौखट में गोल घेरे संगमरमर के ही बने हैं। उनमें सोलह स्वप्नों का मनोहारी अंकन है। इसके अतिरिक्त द्वारपाल भी बनाए गए हैं।

मन्दिर के तहखाने में स्वाध्याय-मन्दिर है। यह आधुनिक ढंग का बना है। उसमें लगभग 100 ताडपत्रीय ग्रन्थ और इतने ही हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। यहीं पर Jain Literature Research Centre भी है।

यहीं पर वीतराग विज्ञान विद्यापीठ (परीक्षा बोर्ड) भी है। उसके द्वारा कर्नाटक राज्य

में दस पाठशालाएँ चलाई जा रही हैं।

ठहरने की उत्तम सुविधा—मन्दिर के सामने ही यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक ढंग की व्यवस्था है। इस धर्मशाला में दो विस्तरोंवाले सोलह कमरे डनलप गद्दों से सज्जित हैं। उनमें से प्रत्येक के साथ स्नानघर भी है। एक रसोईघर भी अलग से है। चौबीस घण्टे पानी की व्यवस्था के अतिरिक्त एक कुआँ भी है। नीचे तलघर में एक हॉल भी है जिसमें पूरी बस के यात्री ठहर सकते हैं। धर्मशाला के रख-रखाव के व्यय के लिए दान के रूप में कुछ नियत शुल्क लिया जाता है। जैन यात्रियों के लिए बंगलोर में ठहरने की इससे अधिक अच्छी व्यवस्था अन्यत्र नहीं है।

मन्दिर और स्वाध्यायमण्डल का पता नीचे लिखे अनुसार है—

श्री वृषभदेव दिगम्बर जैन मन्दिर,
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मण्डल ट्रस्ट,
14, रंगस्वामी टेम्पल स्ट्रीट (Rangaswamy Temple street)
बलेपेट क्रॉस (Balepet cross) बंगलोर—560053

श्री महावीर स्वामी दिगम्बर जैन मन्दिर (Temple) **चिकपेट**

रेलवे स्टेशन से तीन-चार किलोमीटर की दूरी पर यह मन्दिर यहाँ के प्रमुख बाजार में स्थित है। मन्दिर और श्री दिगम्बर जैन संघ का नाम बाहर भी अंग्रेज़ी में लिखा है। यह एक गली में है और टैक्सी भी मुश्किल से जाती है। ए. एम. लेन, चिकपेट के इस मन्दिर के लिए सबसे अच्छा रास्ता अय्यंगार (Iyengar) रोड होकर है। मन्दिर प्राचीन है।समय-समय पर इसका जीर्णोद्धार भी हुआ है। सबसे पहले एक तीन-मंजिला गोपुर (प्रवेशद्वार) है। उसमें ऊपर यक्ष-यक्षी, सिंह आदि की आकृतियाँ द्रविड़ शैली में उत्कीर्ण हैं। मन्दिर के सामने बलिपीठ है और प्रवेश-मण्डप है जो कि एक ही ओर से खुला है। सभामण्डप के प्रवेशद्वार के सिरदल पर तीर्थंकर मूर्ति के दोनों ओर दो हाथी अंकित हैं। तीर्थंकर छत्रत्रयी से युक्त हैं। सबसे ऊपर पाँच तीर्थंकर पद्मासन में प्रदर्शित हैं। नीचे की ओर द्वारपाल बने हैं। गर्भगृह से पहले के मण्डप में द्वार के दोनों ओर धरणेन्द्र और पद्मावती प्रतिष्ठित हैं। गर्भगृह में तीन छोटी वेदियाँ हैं। बीच की वेदी में महावीर स्वामी की धातु-प्रतिमा है। पार्श्वनाथ की काले पाषाण की लगभग ढाई फुट ऊँची मूर्ति मकर-तोरण से अलंकृत है। इनके अतिरिक्त यक्षी ज्वालामालिनी और पद्मावती देवी की मूर्तियाँ भी हैं। मन्दिर की ऊपर की मंज़िल में भी एक हॉल में तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। तीसरी मंज़िल पर बाहुबली की लगभग चार फुट ऊँची संगमरमर की प्रतिमा है जिस पर सर्पों की बाँबी और लताओं का आकर्षक अंकन है।

उपर्युक्त मन्दिर के पीछे एक कुलिका में ब्रह्मदेव की प्रतिमा है। मन्दिर के पीछे के भाग में ऊपर भी महावीर स्वामी की संगमरमर की भव्य प्रतिमा विराजमान है।

मन्दिर के दोनों ओर कमरे बने हैं जो कि मुनियों या भट्टारक आदि त्यागियों के ठहरने के लिए हैं। मन्दिर का शिखर द्रविड़ शैली का है। उसके चारों ओर पद्मासन तीर्थंकर और सिंहों आदि का अंकन है। उस पर तीन कलश भी हैं।

ठहरने की व्यवस्था—चिकपेट मन्दिर में एक ओर नीचे दूकानें हैं और ऊपर सात छोटे-छोटे कमरे हैं। सभी के लिए एक छोटा-सा स्नानघर है।

रेशमी साड़ियाँ और अन्य प्रकार के कपड़ों के लिए प्रसिद्ध चिकपेट बाज़ार में स्थित होने के कारण यहाँ बहुत भीड़ रहती है।

उपर्युक्त मन्दिर के पास ही श्वेताम्बर मन्दिर भी है। वहाँ पहले से सूचना देने पर यात्रियों के लिए भोजन की व्यवस्था भी हो जाती है।

मन्दिर के बिलकुल पास में 'सावित्रम्मास दिगम्बर जैन धर्मशाला' भी है किन्तु वह अधिक उपयोगी नहीं है, जगह भी मिलना मुश्किल है।

मन्दिर और उपर्युक्त धर्मशाला कटरा जैसी गली में है। बस तो वहाँ तक जा ही नहीं सकती, कार भी मुश्किल से जा पाती है। यात्रियों को परामर्श दिया जाता है कि वे रंगस्वामी स्ट्रीट के मन्दिर की आधुनिक सुविधाओं से युक्त धर्मशाला में ठहरें।

मन्दिर का पता है—

श्री महावीर स्वामी दिगम्बर जैन मन्दिर (टेम्पल)
29, डी. के. लेन, चिकपेट क्रॉस, बंगलोर—560053.

बंगलोर के गान्धीनगर में भी संगमरमर का एक सुन्दर मन्दिर है।

संस्थाएँ—बंगलोर में अनेक संस्थाएँ हैं जिनमें प्रमुख हैं—श्रमण भारती (जयनगर), महावीर संघ (चिकपेट मन्दिर में), कूष्माण्डी महिला समाज, महावीर मिशन और एम. टी. जैन बोर्डिंग (कृष्णराजेन्द्र रोड पर) तथा जैन मिलन।

जैन परिवार—अनुमान है कि बंगलोर में लगभग एक हज़ार जैन परिवार हैं। चिकपेट में ज्यादातर श्वेताम्बर भाई निवास करते हैं तो दिगम्बर परिवार राजाजीनगर, मागडी रोड, विजयनगर, जयनगर तथा वसन्तगुडी जैसे उपनगरों में रहते हैं।

चिकपेट सिल्क की साड़ियों आदि का बहुत बड़ा केन्द्र है। यहाँ राजस्थानी और गुजराती जैनों की अनेक दूकानें हैं। बहुत से तंग रास्तेवाले कटरे या बाज़ार भी यहीं हैं। कन्नड़भाषी परिवार भी बहुत काफी संख्या में हैं।

बंगलोर के अन्य दर्शनीय स्थल

1. विधान सौध—रेलवे स्टेशन से तीन-चार किलोमीटर की दूरी पर तथा कब्बन पार्क के उत्तर में सफेद ग्रेनाइट की यह भव्य इमारत है। इसमें कर्नाटक विधान सभा और राज्य के सचिवालय हैं। इस भवन पर रविवार और छुट्टियों के दिन रोशनी की जाती है जो अच्छा दृश्य प्रस्तुत करती है।

2. लालबाग—यह एक वनस्पति उद्यान (Botanical Garden) है। इसका निर्माण हैदर-अली और टीपू सुलतान ने लगभग दो सौ वर्ष पूर्व कराया था। लगभग 240 एकड़ में फैले इस उद्यान में करीब एक हज़ार प्रकार के पेड़-पौधे हैं। यहाँ का मुख्य आकर्षण काँच का एक मण्डप है जिसमें बागवानी सम्बन्धी प्रदर्शनियाँ आयोजित की जाती हैं।

3. कब्बन पार्क (Cubbon Park)—लगभग तीन सौ एकड़ में फैला यह पार्क विधान

सौध के सामने हाईकोर्ट के अहाते से लगा हुआ है। यह पार्क भी 1864 में बना था। इसी में पब्लिक लायब्रेरी और हाईकोर्ट (अत्तार कचेरी—अठारह कचहरी) भी हैं। संध्या समय 'फेयरी फाउण्टेन' पर रोशनी होती है।

4. टीपू सुलतान का महल और क़िला—मुख्य रूप से लकड़ी का बना टीपू का महल इस सुलतान का ग्रीष्मकालीन निवास था। क़िला पहले पहल केम्पगोडा ने बनवाया था और हैदर-अली तथा टीपू सुलतान ने इसका पुनर्निर्माण कराया था।

5. संग्रहालय—कस्तूरबा रोड पर स्थित और 1886 ई. में स्थापित यहाँ का संग्रहालय काफी पुराना है। उसमें मोहेंजोदड़ो से लेकर विभिन्न युगों की प्राचीन वस्तुओं का अच्छा संग्रह है। पुरातत्त्व का यहाँ सुन्दर प्रदर्शन है।

6. कुछ अन्य संग्रहालय—यहाँ कुछ अन्य संग्रहालय आदि भी दर्शनीय हैं। विश्वेश्वरैया इण्डस्ट्रियल एण्ड टेक्नॉलॉजिकल म्यूज़ियम, वेंकटप्पा आर्ट गैलरी और न्यू आर्ट काम्प्लेक्स (अशोक होटल) इनमें प्रमुख हैं।

खरीदारी—बंगलोर सिल्क प्रसिद्ध है। उसका सबसे अच्छा केन्द्र चिकपेट है। शीशम, चन्दन, हाथीदाँत आदि की दस्तकारी की वस्तुएँ यहाँ अच्छी मिलती हैं। चन्दन की पार्श्वनाथ मूर्ति, बाहुबली मूर्ति और महावीर की मूर्तियाँ बंगलोर का हमेशा स्मरण दिलाती रहेंगी। अगरबत्तियाँ, सेन्ट, चन्दन साबुन आदि बहुत-सी वस्तुएं शुद्ध रूप में सरकारी 'कावेरी एम्पोरियम' से खरीदना सबसे अच्छा है।

कुछ दूरियाँ

बंगलोर से कुछ प्रमुख स्थानों की किलोमीटर में दूरी इस प्रकार है—आगुम्बे 357, ऐहोल 510, बादामी 499, बेलगाँव 502, बेलूर 222, बीदर 669, बीजापुर 579, धर्मस्थल 349, धारवाड़ 428, हलेबिड 216, हम्पी 350, हासन 185, जोग-झरने (फॉल्स) 377, कारकल 378, कोलार स्वर्ण खदानें 98, मंगलोर 357, मरकारा 253, मूडबिद्री 391, मैसूर 140, नंजगुड 164, पट्टदकल 514, श्रवणबेलगोल 158, श्रीरंगपट्टन 125 और वेणूर 383 (ये आँकड़े कर्नाटक सरकार के टूरिस्ट मेप से लिये गये हैं।)

और भी, कुछ अन्य स्थानों की भी बंगलोर से दूरी कि. मी. में नीचे लिखे अनुसार है—विजयवाड़ा 637, त्रिवेन्द्रम 728, तिरुपति 248, पाण्डिचेरी 328, मदुरै 422, मद्रास 336, हैदराबाद 563, कोचीन 520, कोयम्बटूर 333, कांचीपुरम् 230, ऊटी 299, रामेश्वरम् 584, कालीकट 344, शोलापुर 710, पणजी 590, नागपुर 1100, पूना 840, बम्बई 1025, औरंगाबाद 1681, अहमदाबाद 1580, और दिल्ली 2044 कि. मी.।

बंगलोर के बाद यात्रा का अगला चरण मैसूर है। मैसूर यहाँ से लगभग 140 कि. मी. की दूरी पर है। वहाँ जाने के लिए दिन में पाँच एक्सप्रेस रेलें चलती हैं। सड़क-मार्ग से जाने की सबसे अच्छी सुविधा यह है कि हर 20 मिनट के बाद बंगलोर से मैसूर के लिए बस छूटती है जो कि मैसूर जाकर ही रुकती है, बीच में कहीं नहीं रुकती।

मैसूर-यात्रा से पहिले बंगलोर ज़िले के कुछ जैन स्थलों का भी परिचय प्राप्त कर लिया जाए जो कि यात्रा-क्रम में सम्मिलित नहीं हैं।

बंगलोर जिले के अन्य जैन केन्द्र

शान्तिगत्त

यहाँ वर्धमान वसदि नाम का एक जिनमन्दिर है। इसमें पद्मावती, ज्वालामालिनी, सरस्वती, पंचपरमेष्ठी, नवदेवता आदि की धातु-निर्मित आसीन मूर्तियाँ हैं। भगवान महावीर की मूर्ति पर एक शिलालेख है जिसमें विनयादित्य से नरसिंह प्रथम (1141-73 ई.) तक के होय्सल राजाओं की वंशावली दी गई है। इससे यह जान पड़ता है कि इस मन्दिर का निर्माण बारहवीं सदी में हुआ होगा। मूर्ति लगभग तीन फुट ऊँची है और सुन्दर प्रभावली से अलंकृत है।

मण्णे (मात्यनगर)

नेलमंगल तालुक में स्थित इस स्थान के शिलालेख से ज्ञात होता है कि गंगकुल के लिए सूर्य के समान महाराजाधिराज परमेश्वर शिवमार के पुत्र मारसिंग के राज्य-काल में इस शासक के सेनापति श्रीविजय ने यहाँ 997 ई. में एक जिनमन्दिर बनवाया था और उस मन्दिर के लिए 'रिप्टवेक्कूरु' नामक गाँव भी दान में प्राप्त किया था।

यह भी उल्लेख है कि उपर्युक्त स्थान के पास के शालवली ग्राम के श्रावक वप्पय्या ने मात्यपुर के दक्षिण में स्थित जिनमन्दिर के लिए 'पेर्वडियूरु' गाँव दान में दिया था। यहीं पर देवेन्द्र भट्टारक की शिष्या भारब्बेकन्ति की भी समाधि है।

नन्दि

बंगलोर ज़िले के चिक्कबळ्ळापुर तालुक में स्थित यह स्थान प्रसिद्ध विश्रामधाम है। यहाँ के गोपीनाथ पर्वत पर स्थित गोपालस्वामी मन्दिर के प्रांगण में एक शिलालेख है। उसमें उल्लेख है कि द्वापरकाल में दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्रजी ने यहाँ पर अर्हन्त परमेष्ठी का एक चैत्यालय बनवाया था और उसमें पूजन की थी। शिलालेख यह भी कथन करता है कि पाण्डवों के समय कुन्ती ने उसका जीर्णोद्धार कराया था। इस बसदि के विषय में शिलालेख में कहा गया है कि वह भूदेवी के तिलक के समान है, स्वर्ग-मोक्ष के लिए सीढ़ी है, पर्वतों में श्रेष्ठ है और जिनबिम्ब के सान्निध्य से पवित्र है। मुनियों की तपस्या के लिए यहाँ गुफाओं का भी निर्माण किया गया था। यहाँ का 'श्री कुन्दपर्वत' पूजा, तप, और अध्ययन के पवित्र वातावरण के कारण सदा हरा-भरा रहता था। कुछ विद्वानों ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि कुंदकुंदाचार्य ने यहाँ भी तपस्या की होगी।

मैसूर

बंगलोर से सड़क या रेलमार्ग द्वारा मैसूर पहुँचना सबसे अधिक सुविधाजनक है। रेल-मार्ग से बम्बई का सीधा सम्बन्ध मैसूर से है। बम्बई से आनेवाली गाड़ियाँ मिरज तक बड़ी लाइन पर आती हैं और वहाँ से मीटर गेज की दूसरी गाड़ी यात्रियों को बंगलोर तक ले जाती हैं। कुछ गाड़ियों में मैसूर का डिब्बा लगता है (पणजी से भी मीटर गेज की गाड़ी का डिब्बा भी मैसूर के लिए लगने लगा है) जो अरसीकेरे में कटकर दूसरी गाड़ी में लगकर हासन जाता है और वहाँ से मैसूर की गाड़ी में लगता है। कुल मिलाकर इसमें कुछ असुविधा ही होती है। यात्रियों को यह स्मरण रखना चाहिए कि मैसूर छोटी लाइन पर ही है और मैसूर से बंगलोर तक भी छोटी लाइन है किन्तु इस मार्ग पर अच्छी, तेज और सुविधाजनक एक्सप्रेस गाड़ियाँ भी चलती हैं। रेलमार्ग से बंगलोर से मैसूर 139 कि. मी. की दूरी पर है।

सड़क-मार्ग द्वारा भी मैसूर और बंगलोर की दूरी 140 कि. मी. है और जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दोनों शहरों के बीच हर बीस मिनट के बाद एक्सप्रेस बसें चलती हैं जो बीच में कहीं नहीं रुकती हैं। मैसूर बसों द्वारा कर्नाटक एवं अन्य राज्यों के साथ जुड़ा हुआ है। श्रवण-बेलगोल के लिए भी यहाँ से सीधी बस मिलती है। कर्नाटक सरकार की पर्यटक बसें भी आस-पास के दर्शनीय स्थानों की यात्रा कराती हैं। इनमें से एक बस श्रवणबेलगोल, हलेबिड और बेलूर की यात्रा एक-ही दिन में करा देती है। गैर-सरकारी पर्यटक बसें भी खूब चलती हैं।

यहाँ का रेलवे स्टेशन और बस स्टैण्ड दोनों एक दूसरे से दो-तीन किलोमीटर की दूरी पर हैं।

मैसूर में बाहर जाने वाली बसों का स्टैण्ड अलग है जो कि यहाँ के घण्टाघर से कुछ दूरी पर है। शहर में चलने वाली बसों का स्टैण्ड यहाँ के प्रसिद्ध राजमहल और घण्टाघर के पास है।

सबसे पास का हवाई अड्डा बंगलोर ही है।

मैसूर एक साफ़-सुथरा, शान्त और गरिमामय स्थान है। स्वतन्त्र भारत में सम्मिलित होने से पहले यहाँ ओडेयर शासक राज्य करते थे। कुछ लोगों को यह बंगलोर से भी अच्छा शहर लगता है।

जैन मन्दिर

शहर के अन्य दर्शनीय स्थलों से पहले यहाँ के मन्दिरों का परिचय प्राप्त कर लिया जाए।

1. श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर—यात्री जब बाहर आने-जाने वाली बसों से बाहर आता है तो उसे थोड़ी ही दूर (एक किलोमीटर से भी कम) पर चन्द्रगुप्त रोड मिलता है। उसी पर 'श्री एम. एल. वर्धमानय्य जैन बोर्डिंग होम' है। संगम सिनेमा के सामने इस बोर्डिंग होम (जैन छात्रावास) में उपर्युक्त मन्दिर है। उसके अहाते में प्रवेश करते ही ऊपर की मंज़िल में पार्श्वनाथ की पद्मासन प्रतिमा दिखाई देती है। मूर्ति एक प्रतीक के रूप में है न कि प्रतिष्ठित। ऊपर की मंज़िल में मन्दिर है। उसमें पीतल मढ़ी वेदी है और द्वार पर भी पीतल मढ़ा है। मन्दिर छोटा-सा है और मूलरूप से विद्यार्थियों के लिए निर्मित है। उसमें काले पाषाण

की लगभग डेढ़ फुट ऊँची मकर-तोरण एवं छत्रत्रयी से सज्जित तीर्थंकर प्रतिमा है। उसके दोनों ओर पद्मासन तीर्थंकर हैं जिन्हें मिलाकर चौबीसी बनती है। और भी प्रतिमाएँ हैं। गर्भगृह के बाहर धरणेन्द्र और पद्मावती भी प्रतिष्ठित हैं।

ठहरने की सुविधा—यह बोर्डिंग होम विद्यार्थियों के लिए है। इस कारण यदि कोई विद्यार्थी आए तो उसे पहले जगह दी जाती है, बाद में यात्रियों को। जब छुट्टियाँ होती हैं तब भी यात्रियों को जगह देने का प्रयत्न किया जाता है। वास्तव में, यहाँ ठहरने की पक्की सुविधा नहीं है यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। मैसूर में अन्यत्र जैन यात्रियों के लिए धर्मशाला जैसी अन्य कोई सुविधा नहीं है। उन्हें आस-पास के होटलों में (बाज़ार के आस-पास की) ठहरना पड़ता है। वैसे इसी बोर्डिंग हाउस के पास 'चामुण्डी वसनिगृह' नामक लॉज है जो जैन स्वामित्व की है। वहीं से गोम्मटगिरि सम्बन्धी पूरी जानकारी, वाहन की सुविधा और शहर के दर्शनीय स्थलों के भ्रमण का भी प्रबन्ध हो जाता है। जैसी भी स्थिति हो, गोम्मटगिरि के लिए यहाँ से पर्याप्त मार्गदर्शन उपलब्ध होगा।

उपर्युक्त मन्दिर के पास, संगम सिनेमा के पास ही, तीर्थंकर रोड है। इस मार्ग पर सुमतिनाथ श्वेताम्बर मन्दिर दूसरी मंजिल पर है। गर्भगृह संगमरमर का है और वेदी चाँदी की है।

2. एक साधारण-सा दिगम्बर जैन मन्दिर स्थानीय नगरपालिका कार्यालय के पास है। यह स्थान मुख्य बाज़ार और घण्टाघर चौक के पास ही है।

3. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर (महल के सामने)—मैसूर महाराजा के राजमहल के सामने (सिटी बस स्टैण्ड के नजदीक) सड़क पार करके, चोल राजाओं के जमाने (दसवीं सदी) का प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है। केन्द्रीय तारघर और स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के निकट वनमय्या कॉलेज के ही अहाते में कोने पर यह मन्दिर स्थित है। उसके आस-पास लगभग नौ फुट ऊँची पाषाण की कंगूरेदार दीवाल है। अनुश्रुति है कि किसी समय यह मन्दिर राजमहल की सीमा या परकोटे के अन्दर था। उस समय जैन मन्त्री आदि हुआ करते थे किन्तु किसी समय उसे महल की सीमा से बाहर कर दिया। बताया जाता है कि कुछ समय बाद महल में आग लग गई और आगे चलकर वर्तमान नया महल बनवाया गया। मंदिर के सामने ही महल का परकोटा दिखाई देता है। इसकी मुंडेर पर सरस्वती की मूर्ति है इसका शिखर छोटा है किन्तु है द्रविड़ शैली का। उसके तीन स्तर हैं। उनमें पद्मासन तीर्थंकर और सिंह आदि प्रदर्शित हैं।

मन्दिर के प्रवेश का जो सबसे पहला द्वार है उसके सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर विराजमान हैं। पाषाण निर्मित द्वारपाल हैं। उसके बाद खुला आँगन है। दूसरे प्रवेशद्वार पर भी पद्मासन तीर्थंकर अंकित हैं। नीचे की ओर इन्द्र-इन्द्राणी बनाए गए हैं। उसके बाद अनेक स्तम्भों वाला सभामण्डप है। गर्भगृह के प्रवेशद्वार पर मूँछोंवाले द्वारपाल हैं। धरणेन्द्र-पद्मावती की भी मूर्तियाँ हैं। प्रथम कोष्ठ में पीतल की प्रतिमाएँ हैं। मुख्य गर्भगृह में शान्तिनाथ की छत्रत्रयी, मकर-तोरण और कीर्तिमुख से अलंकृत लगभग ढाई फुट ऊँची कायोत्सर्ग प्रतिमा है। मन्दिर पाषाण-निर्मित है।

मैसूर के अन्य दर्शनीय स्थल

राजमहल—सिटी बस-स्टैण्ड और मुख्य बाज़ार से लगा हुआ यहाँ का राजमहल अवश्य देखना चाहिए। यह महल 1911 ई. में बयालीस लाख की लागत से बना था। उसका दरबार हॉल, रत्नजटित राजसिंहासन आदि स्वयं देखने की वस्तुएँ हैं। रोशनी के समय इसकी अद्भुत छटा होती है। इसमें सुनहरी काम और दीवालों पर चित्रकारी-नक्काशी आदि बहुत ही सुन्दर हैं। छुट्टियों के दिन इस पर रोशनी की जाती है। रात्रि के समय थोड़ी रोशनी में भी यह सुन्दर दिखता है। यह सुबह साढ़े दस से साढ़े पाँच तक खुला रहता है।

चामुण्डी पहाड़ी पर नन्दी—यहाँ सार्वजनिक बसें भी ऊपर चामुण्डेश्वरी मन्दिर तक जाती हैं। यहाँ इस मन्दिर के सामने लगभग 15 फुट ऊँचा पाषाण का एक नन्दी है जिसके गले की मालाएँ तथा घण्टियाँ सुन्दर हैं। चढ़ने के लिए लगभग एक हज़ार सीढ़ियाँ हैं। इस पहाड़ी पर से मैसूर शहर का अच्छा दृश्य दिखाई देता है।

कावेरी एम्पोरियम—यह भी मुख्य बाज़ार के बिलकुल करीब है। यहाँ चन्दन, शीशम, हाथी दांत, रेशम, चन्दन का सेंट, अगरबत्तियाँ आदि खरीदी जा सकती हैं। यहाँ तथा बाज़ार में चन्दन की बाहुबली और पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ भी मिलती हैं।

मैसूर विश्वविद्यालय—कुछ ऊँची पहाड़ी पर स्थित यह विश्वविद्यालय एक सुन्दर परिसर है। दृश्यों की दृष्टि से यहाँ का भ्रमण भी किया जा सकता है।

मैसूर, बंगलोर आदि स्थानों में खानपान के बड़े-बड़े होटल 'भवन' के नाम से जाने जाते हैं। इनमें से कुछ राजस्थानी स्वामित्व के हैं और साफ़-सुथरे हैं। यहाँ दक्षिण भारतीय चावल के भोजन को 'मद्रास खाना' और रोटी तथा चावल के भोजन को 'बम्बई खाना' बोलते हैं। बाज़ारों आदि में हिन्दी भाषा से काम चलता है।

वृन्दावन गार्डन्स—मैसूर से 19 कि. मी. की दूरी पर वृन्दावन गार्डन्स हैं। यहाँ कावेरी नदी पर एक बाँध बनाया गया है जिसे कृष्णराजसागर बाँध कहते हैं। इसी बाँध की तलहटी में एक उद्यान स्थित है। एक क्रम से नीची होती चली गई जमीन पर रंग-बिरंगे फूलों, सुन्दर पौधों और अनेक प्रकार के छोटे-बड़े फव्वारों के कारण यह उद्यान अत्यन्त आकर्षक है। सिनेमा-प्रेमी यह खूब जानते हैं कि यहाँ अनेक फ़िल्मों की शूटिंग होती है। इस उद्यान में हर शाम एक घण्टे के लिए और रविवार एवं छुट्टियों के दिन दो घण्टे के लिए रोशनी की जाती है। रंग-बिरंगी रोशनी में फव्वारे अपूर्व दृश्य उपस्थित करते हैं। रोशनी से सूर्य, तितलियाँ, भारत का नक्शा आदि विभिन्न आकृतियाँ बनती हैं और मन को आकर्षित करती हैं। इतने थोड़े समय में सभी छवियाँ देख लेना कभी-कभी मुश्किल भी हो जाता है। इसी उद्यान में नौकाविहार की भी सुविधा है। अब इस उद्यान में नृत्य और संगीत का आनन्द देने वाले फव्वारे भी लगाए गए हैं। कम्प्यूटर द्वारा नियन्त्रित ये फव्वारे रोशनी और संगीत की लय के साथ उठते-गिरते या नृत्य करते दिखाए देते हैं।

उपर्युक्त उद्यान के लिए मैसूरनगर बस स्टैण्ड से बसें मिलती हैं जो कि बाँध से पहले उतार देती हैं। इसका लाभ यह होता है कि पर्यटक बाँध के ऊपर की सड़क पैदल पार करते समय पानी

की सुमधुर कल-कल आवाज़ सुनकर आनन्द का अनुभव करता है। पर्यटक बसें पर्यटक को ठेठ उद्यान में पहुँचा देती हैं और वह बाँध के जल के दृश्य का आनन्द नहीं ले पाता। ये प्राय: संध्या समय ही आती हैं। जो इस उद्यान में फोटोग्राफी करना चाहें उन्हें दिन के तीन बजे तक वहाँ अवश्य पहुँच जाना चाहिए। जो भी हो, मैसूर की यात्रा पर आने वाले हर यात्री को यह उद्यान अवश्य देखना चाहिए।

श्रीरंगपट्टन (दर्शनीय स्थल)

अवस्थिति एवं मार्ग

मैसूर की यात्रा पर आनेवाले यात्री प्राय: इस स्थान की भी यात्रा करते हैं। मैसूर-बंगलोर रेल-मार्ग और सड़क-मार्ग दोनों पर स्थित यह स्थान मैसूर से केवल 16 कि. मी. की दूरी पर है। यहाँ की यात्रा रेल से अधिक सुविधाजनक है। आबादी स्टेशन से लगी है। जैन मन्दिर भी पास पड़ता है। यदि सड़क-मार्ग से मैसूर से यात्रा की जाए तो श्रीरंगपट्टन से लगभग दो किलोमीटर पहले ही हिन्दी और अंग्रेजी में सड़क के किनारे 'श्रीरंगपट्टन जैन मन्दिर' का बोर्ड लगा है। कुछ बसवाले यात्री को वहाँ उतार भी देते हैं।

स्थानीय जैन मन्दिर

स्थानीय जैन मन्दिर का पाषाण का अहाता लगभग 1200 फुट लम्बा है। उसमें एक भीतरी अहाता और है। मन्दिर के सामने 'श्री दिगम्बर जैन मन्दिर-आदिनाथ मन्दिर' (हिन्दी और अँग्रेजी में लिखा है। बताया जाता है कि यह मन्दिर लगभग 850 वर्ष पुराना है। मन्दिर के प्रथम हॉल की दीवाल के पास लगे एक स्तम्भ पर छोटा शिलालेख पुरानी कन्नड़ में है। यहीं के नौवीं सदी के शिलालेख में उल्लेख है कि श्रवणबेलगोल की चन्द्रगिरि पर चन्द्रगुप्त और भद्रबाहु के चरण हैं। मन्दिर पाषाण-निर्मित है और अनेक स्तम्भों से युक्त है। मन्दिर के द्वार की चौखट पर द्वारपाल अंकित हैं किन्तु सिरदल पर यक्ष का अंकन है। प्रवेशमण्डप के बाद के कोष्ठ में चाँदी की चौखट में दोनों ओर धरणेन्द्र और पद्मावती की मूर्तियाँ हैं। उसके बाद के कोष्ठ में काले पाषाण की, मकरतोरण से अलंकृत एक चौबीसी है। गर्भगृह में पाँच सिंहों के आसन पर आदिनाथ की काले पाषाण की लगभग ढाई फुट ऊँची मूर्ति मकरतोरण और छत्रत्रयी से अलंकृत है।

मन्दिर के अहाते में ही एक अर्चक का घर है। यहाँ ठहरने की कोई व्यवस्था नहीं है।

उपर्युक्त जैन मन्दिर के सामने की सीधी सड़क रंगनाथ स्वामी मन्दिर को जाती है। यह रेलवे स्टेशन के पीछे एक बहुत बड़ा मन्दिर है। कहा जाता है कि यहाँ के एक शिलालेख के अनुसार, नागमण्डल के शासक हब्बर ने 101 जैन मन्दिरों को नष्ट करके इसका निर्माण कराया था। जो भी हो, यह मन्दिर विशाल किन्तु साधारण है और इसे भी देखने के लिए यात्री आते

हैं। इसमें शयनावस्था में विष्णु की मूर्ति है। इसका गोपुर पाँच मंज़िल ऊँचा है। यह भी कहा जाता है कि इसका निर्माण विजयनगर शासकों, अलवार सन्तों, आचार्यों ने अनेक चरणों में कराया था। इसी प्रकार यहाँ के पतलंकण (Pathalankana) मण्डप का निर्माण हैदरअली ने कराया था।

श्रीरंगपट्टन 1799 ई. में टीपू सुलतान की पराजय के बाद अंग्रेज़ों के अधिकार में आ गया। यहाँ टीपू सुलतान का क़िला कावेरी नदी के बीच में बना हुआ है। यहाँ का दरिया दौलत सिंह (बाग़) टीपू सुलतान का ग्रीष्म महल और एकाध मस्जिद देखने लायक हैं।

यदि यात्री बस स्टैण्ड से जैन मन्दिर आता है तो उसे काफी चलना पड़ेगा। क़िले के प्रवेशद्वार से होकर आने पर दो ऊँची मीनारें सामने दिखाई देती हैं जो कि सुनहरी हैं। सबसे पहले जामियाए टीपू सुलतान नामक कॉलेज है। यात्री को पूछते-पूछते जाना होगा। इस कारण यहाँ रेल से यातायात करने में भी सुविधा होगी। जैन मन्दिर भी श्रीरंगनाथ स्वामी मन्दिर से थोड़ी ही दूरी पर है।

गोम्मटगिरि (श्रवणगुड्डा)

कर्नाटक के दिगम्बर जैन तीर्थों और स्मारकों की सूची में (इस पुस्तक के यात्रा-क्रम के अनुसार) सबसे अन्तिम नाम है गोम्मटगिरि का।

गोम्मटगिरि का दूसरा नाम श्रवणगुड्डा भी है। श्रवण का तो सीधा सम्बन्ध 'श्रमण' या जैन साधु से है जबकि 'गुड्डा' का अर्थ है छोटी पहाड़ी। इस प्रकार श्रवणगुड्डा का अर्थ हुआ जैन साधु या श्रमण की पहाड़ी।

अवस्थिति एवं मार्ग

जहाँ तक रेल-मार्ग का प्रश्न है, यह स्थान मैसूर-अरसीकेरे-हुबली छोटी लाइन पर सागरकट्टे नामक रेलवे स्टेशन से लगभग छह किलोमीटर की दूरी पर है। किन्तु रेलमार्ग से वहाँ जाने में कठिनाई हो सकती है।

गोम्मटगिरि के लिए सबसे अच्छा साधन बस है। यह गिरि मैसूर से केवल 26 कि. मी. की दूरी पर है। मैसूर-हुनसुर-मडिकेरी (कुर्ग) मार्ग पर या संक्षेप में मैसूर से सोलह कि. मी. की दूरी पर येलवाल नामक स्थान आता है। वहाँ से सड़क गोम्मटगिरि के लिए मुड़ती है और दस किलोमीटर चलने पर गोम्मटगिरि पहुँचा जा सकता है। मैसूर से चलनेवाली बसें मैसूर-गोम्मट-गिरि और गोम्मटगिरि कृष्णराजनगर की होती हैं। ये बसें गोम्मटगिरि होते हुए कुछ गाँवों को भी जाती हैं।

तीर्थक्षेत्र

यहाँ की 18 फुट ऊँची काले पाषाण की मूर्ति भुला दी गई थी। सन् 1950 ई. में

धर्मानुरागी श्री सी. वी. एम. चन्द्रय्या और उनके साथ के अन्य श्रावक बन्धुओं ने तीर्थयात्रा से लौटते हुए इस उपेक्षित प्रतिमा को अचानक देखा और तभी से वे भक्तिभाव से प्रेरित होकर इस गोम्मटगिरि की प्रसिद्धि के लिए सतत प्रयत्नशील हैं।

दक्षिण भारत की सुप्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रिका 'हिन्दू' (Hindu) के 26 सितम्बर 1976 ई. के अंक में इसका कुछ विवरण छापा था। उसके अनुसार इस मूर्ति का निर्माण इस प्रदेश के जैनधर्मानुयायी चंगाल्व राजाओं के समय में (ग्यारहवीं शताब्दी) में हुआ था। ये राजा चामुण्डराय के वंशज थे। उन्होंने ही इस मूर्ति का निर्माण कराया था। मूर्ति इस समय कर्नाटक सरकार के पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में एक स्मारक है। वैसे पुरातत्त्वविदों का यह मत है कि यह मूर्ति कम-से-कम 800 वर्ष प्राचीन अवश्य है। इस स्थान के आस-पास 800 वर्ष पुराने भवनों के अवशेष भी मिले हैं। मूर्ति की निर्माण-शैली को देखते हुए कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि यह चौदहवीं शताब्दी की हो सकती है।

उपर्युक्त पहाड़ी के पास ही एक तालाब है। उसमें एक स्तम्भ पर शिलालेख है जो घिस गया है। फिर भी उस पर बाहुबली और ब्रह्मदेव की मूर्तियाँ पहचानी जा सकती हैं।

यह भी अनुश्रुति है कि किसी समय यह स्थान गोम्मटपुर कहलाता था और आस-पास के लोग यहाँ गोमटेश्वर के अभिषेक के लिए एकत्र होते थे। किसी समय यह क्षेत्र प्रसिद्ध जैन प्रदेश रहा होगा। इस अनुमान का आधार यह है कि आज भी आस-पास के गाँवों के नाम जैनधर्म से सम्बन्धित हैं; जैसे जिन्नहल्ली (Jinnahalli), हलेबीड़ु (Halebeedu), बिलिकेरे (Bilikere), तथा मल्लिनाथपुर (Mallinathpur) आदि। कन्नड़ कवि मंगरस ने भी अपनी 'नेमिजिनेश संगति' में भी इस स्थान का नाम निर्दिष्ट किया है। इसके अतिरिक्त लगभग 20 कि. मी. की दूरी पर बस्ती होस्कोटे नामक स्थान पर कावेरी नदी के किनारे लगभग दस फुट ऊँची एक प्राचीन बाहुबली मूर्ति है जो कि गारे की बनी हुई है। वह किसी पहाड़ी पर नहीं, अपितु जमीन पर ही प्रतिष्ठित है। वह अच्छी हालत में नहीं है। वहाँ अच्छी सड़क भी नहीं जाती है, केवल जीप से पहुँचा जा सकता है। आशय यह है कि इस जैनधर्मप्रिय प्रदेश में बाहुबली की मान्यता बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है और उसका क्षेत्र भी काफी व्यापक था।

गोम्मटगिरि का नाम सुनते ही कोई भयानक या खड़ी चढ़ाई वाली पहाड़ी यात्री या पर्यटक के ध्यान में आ सकती है किन्तु उसे यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह पहाड़ी लगभग सौ फुट ऊँची है और लगभग तीस फुट ही चौड़ी है। न कोई झाड़ झंखाड़ और न तीखी ढलान। कुल 80-85 सीढ़ियाँ हैं जो कि नवनिर्मित हैं और केवल 71 सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद ही बाहुबली मन्दिर का प्रवेशद्वार आ जाता है।

आकाशीय बिजली गिरने से सम्भवतः इस छोटी-सी सीढ़ीनुमा पहाड़ी में दरार पड़ गई ऐसा जान पड़ता है। किसी समय यहाँ घना जंगल रहा होगा। चारों ओर की जमीन पथरीली अवश्य है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, 71 सीढियाँ चढ़ने के बाद पाषाण-निर्मित प्रवेशद्वार है। उसके सिरदलपर पद्मासन तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। नीचे चार भुजावाली यक्ष मूर्ति है जिसके आभूषण सुन्दर हैं और मुकुट ऊँचा है।

प्रवेशमण्डप के बाद दोनों ओर छोटे-छोटे मण्डप हैं। उनके बीच में सीढ़ियां हैं और फिर लगभग 15 फुट चौड़ा और 25 फुट लम्बा खुला आंगन है। उसके बाद मूर्ति के दोनों ओर मण्डप हैं जो कि कुहनी तक ऊँचे हैं। मूर्ति दोनों मण्डप के बीच में खड़ी है। उसके पीछे एक शिला भी है किन्तु उससे मूर्ति को आधार नहीं मिल रहा है। प्रवेशमण्डप और स्तम्भ प्राचीन हैं किन्तु अन्य सभी निर्माण-कार्य नवीन हैं। इस मन्दिर का व्यवस्थित रूप श्री चन्द्रय्या और उनके सहयोगियों के प्रयत्नों का परिणाम है। मूर्ति में मस्तक पर भी गारे का एक आच्छादन जीर्णावस्था में था। उसे पुरातत्त्व विभाग के परामर्श पर हटा दिया गया है, अन्यथा मूर्ति को क्षति पहुँच सकती थी। मूर्ति के सामने अश्वारोही ब्रह्मदेव की मूर्ति भी थी जो अब नहीं है, केवल अश्व बचा है।

काले पाषाण से निर्मित यह मूर्ति 18 फुट ऊँची है। मूर्ति की मुख-मुद्रा प्रशान्त किन्तु कुछ हास्य लिये हुए है। बाहुबली के दोनों पैरों और भुजाओं पर माधवी लता दो बार लिपटी हुई दिखाई गई है। मस्तक पर सुन्दर घुंघराले (छल्लेदार) बाल अंकित हैं। मूर्ति की एक विशेषता यह है कि बाहुबली के दोनों हाथ सर्पों की फणावली (पूरे चौड़े फणों) को छू रहे हैं। ये सर्प बाँबियों से भी निकलते हुए नहीं दिखाए गए हैं। सर्पों को हाथों के नीचे दबाने का अर्थ यह हो सकता है कि बाहुबली ने अपनी तपस्या के समय जहरीले सर्पों के रूप में अष्टकर्मों का नाश किया था। सर्प-कुण्डली हाथ की अँगुलियों से टखने तक अंकित की गई है। मूर्ति पर शारीरिक गठन सुन्दर ढंग से उत्कीर्ण है। नाभि से नीचे एक गहरा वलय है। उससे नीचे एक और वलय है जो स्वाभाविकता का आभास देते हैं।

यह मूर्ति और कहीं से बनवाकर यहाँ प्रतिष्ठित की गई जान पड़ती है। आश्चर्य यही है कि इतनी संकरी और लगभग सीढ़ीनुमा इस पहाड़ी पर इतनी वजनी मूर्ति किस प्रकार चढ़ाई गई होगी।

मूर्ति के दोनों ओर जो मण्डप हैं, उनका उपयोग मस्तकाभिषेक के समय किया जाता है। 'मस्तकाभिषेक पूजा' नामक इस वार्षिक उत्सव या अभिषेक का आयोजन पर्यूषण-क्षमावणी के बाद सितम्बर मास में एक घोषित तिथि को किया जाता है। इसमें मैसूर तथा आसपास के काफी संख्या में जैन-अजैन लोग भाग लेते हैं। लगभग पाँच-छह हजार व्यक्तियों की उपस्थिति हो जाती है। मेला एक प्रकार से पिकनिक का रूप भी धारण कर लेता है।

पहाड़ी सीढ़ियाँ जहाँ प्रारम्भ होती हैं वहाँ दाहिनी ओर प्राचीन चरण हैं और बायीं ओर मुनि निर्मलसागर जी के चरण हैं। वे यहाँ एक दिन के लिए आये थे किन्तु प्रकृतिरम्य स्थान को देखकर यहाँ लगभग एक सप्ताह रहे।

पहाड़ी पर से आस-पास का दृश्य बड़ा ही सुन्दर दिखाई देता है। सामने ही कृष्णराज-सागर दिखाई देता है और सागरकट्टे का रेलवेपुल भी। बड़ी शान्त जगह है। दो-तीन मील के घेरे में आस-पास गाँव भी हैं। लगभग पाँच-छह किलोमीटर की दूरी पर भारत सरकार का 'भारत इलेक्ट्रॉनिक उद्योग' बन रहा है। इससे इस क्षेत्र की और भी उन्नति हो जाएगी।

कर्नाटक सरकार ने 'श्री गोम्मटगिरि क्षेत्र' के लिए 810 एकड़ भूमि आरक्षित कर दी है—इस आशय का बोर्ड लगा है।

ठहरने की व्यवस्था

यहाँ प्रशान्त वातावण में ठहरने की बड़ी सुन्दर आधुनिक व्यवस्था है। एक बड़ा सभा-भवन या हॉल, आठ कमरे, रसोईघर, भण्डारगृह (स्टोर) और एक बड़ा भोजनालय यहाँ पक्के बनाए गए हैं। बोरवेल (गहरे किए गए कुएं) से दस हज़ार गैलन पानी की व्यवस्था की गई है जिसका लाभ गाँवों के लोग भी लेते हैं। नल और बिजली की सुन्दर व्यवस्था है। इस आधुनिक विश्रामगृह का निर्माण और बिजली की व्यवस्था 'गोम्मटगिरि सेवा समिति' की ओर से 1975ई. (महावीर निर्वाण 2500वाँ वर्ष) में चार लाख रुपयों की लागत से कराया गया है। यहाँ ठहरने में केवल एक ही कठिनाई है कि यहाँ कोई दूकान या आबादी नहीं है। इसलिए अपना भोजनादि लेकर जाने वाले या वहीं अपने सामान से बनाने वाले यहाँ ठहर सकते हैं। अन्य यात्रियों को वापसी की बस का समय भी पता कर लेना चाहिए, अन्यथा कठिनाई हो सकती है।

कुछ गतिविधियाँ

इस क्षेत्र पर निर्मित उपर्युक्त विश्राम-धाम धीरे-धीरे लोकप्रिय होता चला जा रहा है। आस-पास के गाँवों के लोग बाहुबली के सम्मुख विवाह-कार्य सम्पन्न कराना शुभ मानने लगे हैं। कर्नाटक सरकार भूमि अनुसंधान और संरक्षण से सम्बन्धित विद्यार्थियों के वर्ष में चार शिविर यहाँ लगाती है। इसी प्रकार ध्यान, योगाभ्यास आदि से सम्बन्धित संस्थाएँ भी यहाँ तीन-तीन सप्ताह के शिविर लगाती हैं। कर्नाटक सरकार के वन-विभाग ने यहाँ यूकिलप्टस के पेड़ लगाकर इस स्थान को और भी आकर्षक बना दिया है। लोकनिर्माण विभाग ने यहाँ पक्की सड़क बना दी है और पुरातत्त्व विभाग ने इस मूर्ति को संरक्षित स्मारक घोषित कर दिया है।

क्षेत्र की व्यवस्था के लिए 'श्री गोम्मटगिरि क्षेत्र सेवा समिति' है जिसका पता इस प्रकार है—श्री गोम्मटगिरि क्षेत्र सेवा समिति, चामुण्डी बसतिगृह, चन्द्रगुप्त रोड, मैसूर—।

वास्तव में, इस क्षेत्र के लिए अथक प्रयत्न करने वाले प्रमुख वयोवृद्ध श्रावक हैं श्री सी. बी. एम. चन्द्रय्या। ये हर यात्री की हर सम्भव सहायता करने के लिए तत्पर रहते हैं और उनका एक ही काम है—गोम्मटगिरि क्षेत्र की उन्नति। उपर्युक्त पते पर वे उपलब्ध रहते हैं। उनके टेलिफोन नं. हैं—चामुण्डी वसतिगृह 21536, कार्यालय 23541 और निवासस्थान 21209। ये ही फोन नं. सेवा समिति के समझने चाहिए।

क्षेत्र का पता नीचे लिखे अनुसार—

Shri Gommatgiri Kshetra
P. O. Halebeedu
Bilikere Hobli, Hunsur Taluk
Dist.—Mysore, Karnatak

गोम्मटगिरि से यात्री को वापस मैसूर लौट जाना चाहिए।

नोट—

गोम्मटगिरि की यात्रा के बाद कर्नाटक के जैन तीर्थों और स्मारकों की यात्रा समाप्त होती है। अब आगे के पृष्ठों में मैसूर जिले के अन्य जैन स्थलों का संक्षिप्त परिचय दिया

जाएगा। कर्नाटक के तुमकुर, कोलार, मडिकेरी (कुर्ग) और चित्रदुर्ग जिलों के जैन स्मारक यात्रा-क्रम में शामिल नहीं है फिर भी उनकी संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है।

मैसूर से हम केरल की यात्रा प्रारम्भ करेंगे। चाहें तो ऊटी होकर केरल की सीमा में प्रवेश कर सकते हैं या बस द्वारा सीधे ही केरल में कॉफ़ी की पहाड़ी पर स्थित 'रत्नत्रय विलास' के अद्भुत दर्पणमन्दिर (Mirror Temple) को देखने के लिए सीधे प्रस्थान कर सकते हैं।

मैसूर जिले के अन्य जैन स्थल

मैसूर ज़िले में जैनधर्म का व्यापक प्रसार था, यह बात उपर्युक्त स्मारकों के अतिरिक्त निम्नलिखित स्थानों के परिचय से भी प्रमाणित होती है।

बस्तिपुर (Bastipur)

इस स्थान पर केतगौड, शम्भुगौड आदि 'कूडिगन हल्ली' नामक गाँव के निवासी समस्त गौड समाज ने यहाँ 1393 ई. में एक पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण कराया था और उसे सकल-चन्द्रदेव को सौंपा था।

बेल्लूर (Bellur)

बेल्लूर में एक विमलनाथ बसदि है। उसमें विराजमान लगभग ढाई फुट ऊँची विमल-नाथ की प्रतिमा पर लेख से ज्ञात होता है कि यह मूर्ति तेरहवीं सदी से पहले की है।

चामराजनगर (Chamarajanagar)

चामराजनगर मैसूर से 61 कि. मी. की दूरी पर स्थित तथा मैसूर-चामराजनगर बड़ी रेलवे लाइन पर यह स्थान है। होय्सलनरेश विष्णुवर्धन के महादण्डनायक (सेनापति) पुणिश-मय्या ने कोंगु, नीलगिरि और मलेयाळ प्रदेशों को जीतकर होय्सल राज्य में मिला दिया था। उसी विजय की स्मृति में उपर्युक्त सेनापति ने 1117 ई. में एण्णेनाड अरकोतार (चामराजनगर का पुराना नाम) में एक त्रिकूट मन्दिर का निर्माण कराया था और उसमें पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। इस सेनापति ने गंगवाडी के अनेक जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार भी कराया था। वर्तमान चामराजनगर में एक जैन मन्दिर और भी है। यहाँ लगभग चालीस जैन परिवार हैं।

होस होल्लु (Hos Hollu)

होस होल्लु में होय्सल शासकों के समय का एक प्राचीन मन्दिर है किन्तु अब वह ध्वस्त अवस्था में है। उसके नवरंग में यक्ष धरणेन्द्र और यक्षी पद्मावती की मूर्तियाँ हैं।

हनसोगे (Hansoge)

मैसूर जिले के कृष्णराजनगर तालुक में सालिग्राम से लगभग आठ किलोमीटर की दूरी पर यह ऐतिहासिक महत्त्व का प्राचीन जैन केन्द्र है। इसकी गिनती जैनतीर्थों में होती थी। बताया जाता है कि यहाँ 64 जिनमन्दिर थे। ये मन्दिर अब खण्डहर हैं। यह स्थान ग्यारहवीं शताब्दी से पहले ही एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र के रूप में विख्यात हो चुका था। सन् 1060 ई. के लगभग यहाँ चंगाल्व नरेश राजेन्द्र चोल नन्नि चंगाल्व ने आदिनाथ बसदि का निर्माण कराया था। इन शासकों ने ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में इस प्रदेश पर शासन किया था। आगे चलकर इसी स्थान पर होय्सलों और चोलों में युद्ध हुआ था। यहाँ के जैन गुरुओं का कर्नाटक में किसी समय बड़ा प्रभाव था। इनकी एक शाखा हनसोगेबलि नाम से प्रसिद्ध थी। इसी स्थान के मुनि ललितकीर्ति के उपदेश से 1432 ई. में कारकलनरेश पाण्ड्यराय ने गोमटेश्वर की 41 फुट 5 इंच ऊँची प्रतिमा कारकल में प्रतिष्ठित कराई थी जो आज भी वंदित-पूजित है।

कुछ शिलालेखों में यहाँ का कुछ विचित्र-सा इतिहास मिलता है। उनके अनुसार यहाँ की बसदियों के मूल प्रतिष्ठापक मूलसंघ, देशीगण, होत्तगेगच्छ के रामस्वामी थे, जो कि दशरथ के पुत्र, लक्ष्मण के भाई (राम), सीता के पति थे, जो कि इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए थे। अर्थात् यहाँ श्री रामचन्द्रजी ने मन्दिर बनवाए थे। हो सकता है कि लेख लिखाने में उपमालंकार का प्रयोग किया गया हो या इसी तरह का कोई आशय रहा हो। इस समय यहाँ 'त्रिकूट' नामक मन्दिर है जो कि जीर्णावस्था में है। उसमें आदिनाथ, शान्तिनाथ एवं नेमिनाथ की मनोज्ञ मूर्तियाँ हैं। किन्तु अब हनसोगे में एक भी जैनघर नहीं है। सालिग्राम के श्रावकों ने इस मन्दिर के जीर्णोद्धार का प्रयत्न किया था।

हनसोगे के आस-पास के गाँवों में भी प्राचीन जैन मन्दिर हैं—(1) आनेवाळु में ब्रह्मदेव और पद्मावती मन्दिर (सन् 1430 ई.), (2) रावन्दूरु में सुमतिनाथ चैत्यालय का जीर्णोद्धार (1384 ई. में), (3) होन्नेनहल्लि में गंधकुटी का निर्माण (1303 ई. में) और (4) कल्लहल्ली में आदिनाथ मूर्ति की प्रतिष्ठापना तथा (5) दसवीं शताब्दी में भुवनहल्ली में जिनमूर्ति की प्रतिष्ठापना।

एचिगन हल्ली (Achigan Halli)

मैसूर से लगभग 30 कि. मी. की दूरी पर यह स्थान है। यहाँ गाँव के निकट कपिला नदी बहती है। उसके ऊपर अत्यन्त सुन्दर नेमिनाथ मन्दिर है। वहाँ ब्रह्मदेव की अतिशयपूर्ण मूर्ति है। अपनी मनोकामना पूर्ण करने के लिए अनेक भक्त यहाँ मनौतियाँ मनाते हैं। यहाँ तेरहवीं सदी में निर्मित मुनि मेघचन्द्रदेव की एक समाधि भी है।

मलेयूर (Maleyuru)

चामराजनगर तालुक का यह स्थान किसी समय जैनधर्म का एक सुदृढ़ गढ़ (मठ) था। यहाँ की कनकगिरि पर अनेक जैन बसदियाँ थीं, यह बात यहाँ के 14वीं शताब्दी से लेकर 19वीं सदी तक के लेखों से विदित होती है। सन् 1181 ई. में यहाँ की पार्श्वनाथ बसदि के लिए

किन्नरीपुर नामक गाँव दान में दिया गया था। इससे नित्यपूजा, मुनियों को अहारदान और शास्त्र-दान किया जाता था।

मेलकोटे (Melkote)

यह स्थान मैसूर से 54 कि. मी. की दूरी पर है। यहाँ एक गुफा-मन्दिर है (देख चित्र क्र. 111)।

गुफा शिला के निचले भाग में है। सामने ही तीन बड़े-मोटे स्तम्भ हैं जो सम्भवत: गुफा के ऊपर की शिला को आधार प्रदान करते हैं।

सालिग्राम (Saligram)

मैसूर से यह स्थान लगभग 90 कि. मी. की दूरी पर है। यहाँ बारहवीं शताब्दी में होय्सल शासकों के युग में निर्मित 'अनन्तनाथ मन्दिर' है। ग्राम-निवासी इसे 'कोटे बसदि' कहते हैं। मूलसंघ बलात्कार गण के माघनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य शम्भुदेव की पत्नी बोम्मब्बा ने 'अनन्तनेमि उद्यापना' नामक व्रत के समय यहाँ अनन्तनाथ की मूर्ति स्थापित की थी। इसी स्थान पर एक और अनन्तनाथ मन्दिर है। ग्रामवासी इसे प्राचीन मन्दिर से भिन्न दिखाने के लिए इसे होस बसदि (नया मन्दिर) कहते हैं। इस नये मन्दिर का निर्माण सन् 1878 ई. में हुआ था। इसी गाँव में तीन और जिनमन्दिर हैं। ये पाँचों ही मन्दिर भव्य एवं दर्शनीय हैं। दीपावली के समय यहाँ प्रतिवर्ष तीर्थंकर पुष्पदन्त का पंचकल्याणक मनाया जाता है। इस उत्सव में आस-पास के लोग भी सम्मिलित होते हैं।

सरगूरु (Sarguru)

मैसूर से लगभग 100 कि. मी. की दूरी पर स्थित इस गाँव की दक्षिण दिशा में पंचबसदि नामक मन्दिर है। उसके शिलालेख से ज्ञात होता है कि सन् 1424 ई. में विजयनगर में जब बुक्कराय का शासन था तब उसके महामन्त्री 'अर्हन्नपादपद्माराधक' बैचय्या दण्डनाथ के अधीन होय्सल राज्याधिपति नागण्णा रहता था। उसके अधीन वयिनाडु मयनेहल्ली ग्राम का निवासी केम्पण्णा गौड था। ये पण्डितदेव के शिष्य थे। स्वर्ग-सुख की प्राप्ति के लिए इन्होंने श्रवणबेलगोल के गोमटेश्वर को 'अंगरंग भोग संरक्षणार्थ' वयिनाडु के बाग-बगीचे एवं भूमिदान कर उस गाँव का नाम 'गोमटपुर' रखा था किन्तु आज इस मन्दिर में कोई मूर्ति नहीं है।

उपर्युक्त गाँव में लगभग 75 वर्ष प्राचीन 'अनन्तनाथ स्वामी चैत्यालय' है। ग्रामीण जनता इसकी अच्छी तरह देख-भाल करती है।

यहाँ जैनों के लगभग 35 घर हैं।

तुमकूरु जिले के जैन स्थल

बंगलोर से उत्तर की ओर स्थित इस जिले में भी जैनधर्म का व्यापक प्रसार रहा है। कुछ स्थानों का परिचय प्रस्तुत है।

गुब्बि (Gubbi)

यह स्थान तुमकूरु से लगभग 20 कि. मी. की दूरी पर है। यहाँ एक सुन्दर जिनालय है। उसके सामने का मानस्तम्भ दर्शनीय है। इस स्थान पर ब्रह्मदेव की एक प्रतिमा अतिशयपूर्ण व प्राचीन है। सन् 1970 ई. में यहाँ बाहुबली की अमृतशिला की एक भव्य मूर्ति प्रतिष्ठापित की गई है।

हट्टण (Hattan)

तिपटूरु तालुक के इस स्थान की बसदि की चन्द्रशाला में यहाँ एक पाषाण पर 1078 ई. का एक शिलालेख है। उसके अनुसार होय्सलनरेश वीर बल्लाल (यह शासनकाल विनयादित्य का है) के शासन काल में उसके मन्त्री मरियाने दण्डनायक ने 'नरवर जिनालय' का निर्माण कराया था और कुछ अन्य सेट्टियों ने भी दान दिया था। इस बसदि का हाल ही में जीर्णोद्धार होकर पंचकल्याणक हुआ है।

कुच्चंगि

यह तुमकूरु जिले में स्थित है। यहाँ 1180 ई. में बम्मिसेट्टि के पुत्र केसरि सेट्टि ने पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण कराया था। सन् 1970 ई. में तुमकूरु के जैन बन्धुओं ने इसका जीर्णोद्धार कराया है।

मधुगिरि (Madhugiri)

यह भी तुमकूरु जिले में है। यहाँ तीर्थंकर शान्तिनाथ का एक मन्दिर है। इस स्थान के शिलालेख से ज्ञात होता है कि सन् 1531 ई. में गोविदानमय्या की पत्नी जयम्मा ने मल्लिनाथ तीर्थंकर की पूजा के लिए भूमिदान किया था।

मन्दरगिरि (Mandargiri)

तुमकूरु से यह लगभग 12 कि. मी. की दूरी पर है। तुमकूरु-बेंगलूरु रेल-मार्ग पर हिरेहल्ली रेलवे स्टेशन से लगभग 2 कि. मी. है। इस स्थान को 'बसदि बेट्ट' (जैन मन्दिरों की पहाड़ी) भी कहा जाता है। इसकी प्रसिद्धि एक क्षेत्र के रूप में भी है। पहाड़ी पर सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ और पार्श्वनाथ के चार मन्दिर हैं। इनमें चन्द्रनाथ का मन्दिर प्राचीन एवं कलामय है। मन्दिरों के चारों ओर प्राकार है। इस परकोटे के पीछे एक गहरा तालाब है जिससे तुमकूरु को पानी भेजा जाता है। पर्वत पर जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं। उस पर जाते समय सबसे पहले

दायें भाग में ब्रह्मदेव का स्थान है। इस पहाड़ को दक्षिण की तरफ से देखने पर वह एक हाथी जैसा लगता है। गिरि के चारों ओर का प्राकृतिक दृश्य सुहावना है।

यहाँ के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि उपर्युक्त जिनालयों का निर्माण बारहवीं सदी में हुआ था। उस समय यह स्थान होय्सलनरेश बल्लाल नरसिंहराज के सेनापति यतियंग के अधीन था। प्राचीन समय में यह पुण्यक्षेत्र माना जाता था। लगभग 60-70 वर्ष पूर्व जब मुनि पायसागर यहाँ पधारे, तब उन्होंने तुमकूरु के जैन बन्धुओं को इन मन्दिरों के जीर्णोद्धार की प्रेरणा दी। ऐसा ही किया गया और नित्य पूजा की व्यवस्था भी की गई। तुमकूरु के जैनबन्धु प्रतिवर्ष चन्द्र-प्रभ का जन्माभिषेक बड़े उत्साह और उल्लास के साथ यहाँ सम्पन्न करते हैं।

निट्टूरु (Nitturu)

तुमकूरु ज़िले के इस स्थान पर बारहवीं सदी के मध्य में निर्मित एक शान्तीश्वर बसदि है। उसमें अब मूलमूर्ति नहीं है किन्तु अन्य मूर्ति स्थापित कर दी गई है। इस बसदि की छत में अष्ट दिक्पाल कोष्ठों में उत्कीर्ण हैं। बाहर की भीत पर पद्मासन एवं खड्गासन अधूरी (अधिकांश) मूर्तियाँ हैं। कुछ देवकोष्ठ भी हैं।

इस स्थान पर चन्द्रप्रभ की यक्षिणी ज्वालामालिनी प्रतिष्ठित है। प्रत्येक बृहस्पतिवार को यहाँ ज्वालामालिनी की विशेष पूजन होती है। उसमें दूर-दूर से आकर लोग सम्मिलित होते हैं। गुब्बी और अदलगिरे गाँव के निवासी इस क्षेत्र की अभिवृद्धि में रुचि लेते हैं।

हेग्गेरे (Heggere)

यहाँ की पार्श्वनाथ बसदि काले पाषाण से निर्मित है। इस बसदि का निर्माण 1160 ई. के लगभग हुआ था ऐसा अनुमान किया जाता है। होय्सल कला से सज्जित यह एक सुन्दर मन्दिर है। उसके मण्डप और नवरंग अभी सुरक्षित हैं। नवरंग चार स्तम्भों पर आधारित है तथा शुकनासा से युक्त है। बाहर की दीवालों पर पुष्पवल्लरी की सुन्दर पट्टियाँ बनाई गई हैं।

कोलार जिला

तमिलनाडु की सीमा को छूता, बंगलोर से पूर्व की ओर स्थित यह ज़िला आजकल अपनी स्वर्ण खदानों के लिए प्रसिद्ध है। इसका प्राचीन नाम कुवलालपुर है। इस क्षेत्र के जैनस्थलों का विधिवत् सर्वेक्षण नहीं हुआ है। अरकेरी गाँव के बसवण्ण मन्दिर में एक पत्थर पर प्राचीन कन्नड़ में 940 ई. का एक कुछ-कुछ स्पष्ट शिलालेख है जिसमें कुवलालपुरवेश्वर पेर्मानिडि का उल्लेख है। उसमें कोपणक्षेत्र का निर्देश करते हुए शापात्मक श्लोक हैं और भोगपति (शासनाधिकारी) गाँव दान की सुरक्षा करे ऐसी प्रार्थना की गई है। इससे इस ज़िले में जैनधर्मानुयायी पदाधि-कारियों द्वारा दान आदि का पता चलता है।

जैन साहित्य में व्यापक रूप से प्रचलित 'जीवंधर चरित' में हेमांगद देश के राजा जीवंधर द्वारा भगवान महावीर के समवसरण में जाने और दीक्षित होने की कथा प्राचीन काल से चली आ रही है। कुछ विद्वान हेमांगद देश की स्थिति कर्नाटक में मानते हैं। वैसे हेमांगद का शाब्दिक अर्थ 'सोने का बाजूबंद' होता है। कौन जानता है कि स्वर्ण से सम्पन्न इसी प्रदेश को हेमांगद सम्बोधित किया जाता रहा हो !

चित्रदुर्ग जिले के जैन स्थल

आन्ध्रप्रदेश की सीमा से लगे इस जिले में भी जैनधर्म अच्छी स्थित में था। जो कुछ सीमित जानकारी शिलालेखों आदि से मिलती है, उससे इस तथ्य की पुष्टि होती है।

बालेहल्ली

चालुक्यसम्राट द्वितीय जगदेकमल्ल के शासनकाल में 1145 ई. में बम्मिशेट्टि ने यहाँ पर पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण कराके उसके संरक्षण हेतु कुंदकुंदान्वय देशीयगण पुस्तकगच्छ के मलधारिदेव को कुछ दान दिया था।

बेतूर

वर्तमान समय के प्रसिद्ध नगर दावणगेरे से तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित इस स्थान पर सिद्धेश्वर मन्दिर के पार्श्वभाग से प्राप्त शिलालेख के अनुसार रामदेव भूपाल के पादपद्मोपजीवि तथा पद्मसेन मुनि के शिष्य कूचिराज ने अपनी पत्नी लक्ष्मीदेवी का स्वर्गवास होने पर यहाँ 'लक्ष्मी जिनालय' का निर्माण 1271 ई. में कराया था और उसमें पार्श्वनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठापित की थी। इस अवसर पर अनेक भक्तों ने पान-सुपारी के बगीचे भी दान में दिए थे। यह जिनालय मूलसंघ सेनगण पोगलगच्छ मुनि की देख-रेख में था।

होल्लकेरे

यहाँ के सेट्टर नागप्प से एक ताम्रपत्र 1154 ई. को प्राप्त हुआ था। उसमें उल्लेख है कि यहाँ पर उस समय का शान्तिनाथ का एक ध्वस्त मन्दिर था। लेख में यह सूचना भी है कि पारिश्वसेन भट्टारक स्वामी ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था। इसके लिए जो दान रुक गया था उसके लिए यहाँ के सामंत प्रताप नायक को प्रार्थनापत्र भेंट सहित दिया गया था। उस समय भट्टारकजी ने हिरियकेरे के पीछे की जमीन, लोगों से प्राप्त भेंट सभी करों से मुक्त करवा के देव-पूजा और गुरुओं के आहार आदि की व्यवस्था के लिए दान में दीं थीं।

उपर्युक्त ताम्रपत्र से कुछ विधियों और उत्सवों की भी सूचना मिलती है। जीर्णोद्धार के समय के विधान—वास्तुविधि, नान्दी मंगल, ध्वजारोहण, भेरी-ताडन, अंकुरार्पण, बृहत्-

शान्तिमन्त्रन्यास, अंगन्यास, केवलज्ञान महाहोम, महास्नपनाभिषेक, अग्रोदक प्रभावना, और कलश प्रभावना। दान का उपयोग इन उत्सवों में किया जाए—प्रतिवर्ष अक्षय तृतीया से होने वाले महोत्सव, अष्टाह्निका पर्व, श्रावण पूर्णिमा उत्सव, भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को अनन्त कलश प्रभावना और महा आराधना। कार्तिक मास में कृत्तिकोत्सव और माघबहुल चतुर्दशी को जिन-रात्रिमहोत्सव।

मडिकेरि जिला

मैसूर से पश्चिम की ओर स्थित इस जिले की सीमा केरल के कण्णूर (Cannanore) प्रदेश को छूती है। मडिकेरि नया नाम है। वैसे यह प्रकृतिरम्य, हरा-भरा प्रदेश कुर्ग (Coorg) क्षेत्र या कुर्ग रियासत के नाम से भी जाना जाता था। कोडगु भी मडिकेरि का नाम है।

कोडगु या कुर्ग

प्रसिद्ध प्राचीन भूगोलशास्त्री श्री नन्दलाल डे के अनुसार कोडगु या कुर्ग का प्राचीन नाम कोलगिरि था। कन्नड़, तमिल और तेलुगु में 'कोल्लि (Kolli)', या 'कोलै (Kollai) का अर्थ वन-प्रदेश, घाटी या शुष्क भूमि होता है। चूँकि यह वन-प्रदेश सुन्दर घाटियों से युक्त है यह देखते हुए यह नाम सम्भव हो सकता है।

कुर्ग में प्राप्त 888 ई. के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि यहाँ सर्वनन्दि नामक एक जैनाचार्य थे।

मर्करा

अविनीत (कोंगणि द्वितीय) का मर्करा ताम्रपत्र बहुत प्रसिद्ध है। यह प्राचीन ताम्रपत्र संस्कृत और कन्नड़ में है। यह मर्करा के खजाने से प्राप्त हुआ था। इसमें चेर राजाओं की वंशावली दी गई है। उसके अनुसार अविनीत महाराजाधिराज कदम्बकुलसूर्य कृष्णवर्म की प्रिय बहन के पुत्र थे। इन्हीं से देशीयगण कोण्डकुन्द-अन्वय के चन्दणन्दि भट्टारक को तलवन नगर के श्रीविजय जिनालय के लिए बदणेगुप्पे नाम का गाँव प्राप्त कर अकालवर्ष पृथ्वीवल्लभ के मन्त्री ने भेंट किया था।

मुल्लूर

कोडगु जिले के इस स्थान की प्रसिद्धि पन्द्रहवीं शताब्दी तक एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र के रूप में थी। किसी समय इस स्थल में कोंगाल्ववंश के राजा राज्य करते थे। यहाँ शान्तीश्वर बसदि, पार्श्वनाथ बसदि और चन्द्रनाथ बसदि नामक तीन जिनमन्दिर थे।

यहाँ कन्नड़ में लगभग 1050 ई. का एक शिलालेख पार्श्वनाथ बसदि के प्रांगण में एक

पाषाण पर है जिसके अनुसार नागकुए को गुणसेन पण्डितदेव ने नकर यानी व्यापारी संघ के धर्म के रूप में खुदवाया। इसी प्रकार 1058 ई. के पार्श्व बसदि के तीन और लेखों में उल्लेख है कि (1) द्रविड़-गण, नन्दिसंघ, तथा इरुंगलान्वय के गुणसेन पण्डित की गृहस्थ शिष्या राजाधिराज कोंगाल्व की माता पोचब्बरसि ने पार्श्वनाथ बसदि बनवाई। (2) राजेन्द्र कोंगाल्व ने अपने पिता द्वारा निर्मित बसदि के लिए तीन गाँव दान दिए और इसी राजा की माता ने अपने गुरु गुणसेन पण्डित की प्रतिमा बनवाकर जलधारापूर्वक समर्पित की। (3) गुणसेन पण्डित को रहने के लिए···राजेन्द्र कोंगाल्व ने दिया। इसी प्रकार चन्द्र बसदि में एक लेख कोंगाल्व सुगुणिदेवी द्वारा प्रतिमा स्थापित करने और गाँव दान देने का उल्लेख है। इन्हीं मन्दिरों के बीच के मन्दिर में एक शिला पड़ी है जिसके ऊपरी भाग पर महावीर स्वामी की मूर्ति उत्कीर्ण है।

उपर्युक्त जिले का भी जैन दृष्टि से सम्पूर्ण सर्वेक्षण नहीं हुआ है तदपि वहाँ भी जैनधर्म की व्याप्ति के साक्ष्य तो उपलब्ध हैं ही।

□□

परिशिष्ट

चित्र-सूची

1. बीदर—पार्श्वनाथ बसदि : चौबीसी में तीर्थंकर आदिनाथ; लगभग दसवीं शती।
2. कमठान—पार्श्वनाथ बसदि : अर्ध पद्मासन मुद्रा में तीर्थंकर पार्श्वनाथ; लगभग ग्यारहवीं शती।
3. बसव कल्याण—संग्रहालय : एक तीर्थंकर मूर्ति का मस्तक; लगभग ग्यारहवीं शती।
4. बसवकल्याण—संग्रहालय : नाग-युगल, ग्यारहवीं शती।
5. गुलबर्गा—संग्रहालय : जटाधारी पार्श्वनाथ; लगभग दसवीं शती।
6. मलखेड—नेमिनाथ बसदि : मन्दिर की लघु आकृति, कांस्य निर्मित; ग्यारहवीं शती।
7. जेवर्गी—शान्तिनाथ बसदि : यक्षी पद्मावती की कांस्य मूर्ति; लगभग चौदहवीं शती।
8. बीजापुर—सहस्रफण पार्श्वनाथ बसदि : पार्श्वनाथ की प्रसिद्ध मूर्ति; लगभग चौदहवीं शती।
9. बीजापुर—पुरातत्त्व संग्रहालय : तीर्थंकर पार्श्वनाथ, फणावली के कारण उल्लेखनीय; अभिलिखित, सं० 1232
10. स्तवनिधि—पंचकूट बसदि : नवखण्ड पार्श्वनाथ; लगभग दसवीं शती।
11. बेलगाँव—कमल बसदि : बाह्यदृश्य; लगभग दसवीं शती।
12. बेलगाँव—कमल बसदि : नवग्रह तीर्थंकर का पाषाणपट्ट; अठारहवीं शती।
13. रायबाग—आदिनाथ बसदि : तीर्थंकर आदिनाथ; लगभग ग्यारहवीं शती।
14. ऐहोल—मेगुटी बसदि : परिदृश्य; छठी शती।
15. ऐहोल—जैन गुफा : आधार के लिए निर्मित दो-तल्ले का सम्मुख भाग; नौवीं शती।
16. एहोल—मीन बसदि (गुफा) : भगवान बाहुबली; नौवीं शती।
17. एहोल—शिव मन्दिर : आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की यक्षी ज्वालामालिनी; लगभग ग्यारहवीं शती।
18. पट्टदकल—जैन बसदि : दक्षिण-पश्चिम से बाह्य दृश्य।
19. बादामी—जैन गुफा : बाह्यदृश्य, गुफा का सम्मुख भाग; नौवीं शती।
20. बादामी—जैन गुफा : शैलोत्कीर्ण बाहुबली; नौवीं शती।
21. लक्कुण्डि—ब्रह्म जिनालय : उत्तर-पूर्व से बाह्य दृश्य; दसवीं शती।
22. लक्कुण्डि—कन्नड़ शोध संस्थान, धारवाड़ के संग्रहालय में प्रदर्शित तीर्थंकर आदिनाथ; बारहवीं शती।
23. कोप्पल—पार्श्वनाथ बसदि : सिद्धेश्वर मठ के पास की गुफा का बाहरी दृश्य।
24. हम्पी—हेमकूटम् : मन्दिरों की पंक्ति; पन्द्रहवीं शती के आसपास।
25. चिप्पगिरि—जैन बसदि : पर्वत पर स्थित बसदि का बाह्य दृश्य।
26. बागली—स्थानीय संग्रहालय में तीर्थंकर तथा अन्य मूर्तियाँ; बारहवीं शती के आस-पास।
27. हरपनहल्ली—होस बसदि : नाग प्रतीक; लगभग तेरहवीं शती।
28. हरपनहल्ली—होस बसदि : भगवान बाहुबली; लगभग बारहवीं शती।
29. उज्जैनी—शैवों द्वारा अधिकृत जैन बसदि : छत का दृश्य; लगभग ग्यारहवीं शती।
30. हुबली—अनन्तनाथ बसदि : तीर्थंकर पार्श्वनाथ; दसवीं शती।

31. हुबली—अनन्तनाथ बसदि : एक जैन यक्षी, स्थानीय नाम कालाम्बा (?); सोलहवीं शती।
32. धारवाड़—कन्नड़ शोध संस्थान में प्रदर्शित तीर्थंकर मूर्ति का मस्तक।
33. धारवाड़—कन्नड़ शोध संस्थान में प्रदर्शित ब्रह्मदेव।
34. लक्ष्मेश्वर—शंख-जिनालय : सहस्रकूट जिनालय की लघु आकृति; लगभग ग्यारहवीं शती।
35. लक्ष्मेश्वर—शंख जिनालय का पूर्व की ओर से बाह्य दृश्य; लगभग ग्यारहवीं शती।
36. कोटुमचगी—पार्श्वनाथ बसदि, तीर्थंकर पार्श्वनाथ; ग्यारहवीं शती।
37. नरेगल—नारायण मन्दिर नामक जैन बसदि का बाह्य दृश्य; लगभग दसवीं शती।
38. नवलगुंड—आदिनाथ बसदि : अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ।
39. कलसापुर—जैन बसदि के खण्डहर : कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर मूर्ति।
40. बुदरसिंगी—एक भव्य चौबीसी का परिकर; ग्यारहवीं शती।
41. डंबल (जि. धारवाड़)—पार्श्वनाथ बसदि का बाह्य दृश्य; सत्रहवीं शती।
42. गुडिगेरी (जि. धारवाड़)—महावीर बसदि में एक तीर्थंकर मूर्ति, दसवीं शती।
43. आरट्टवाल (जि. धारवाड़)—पार्श्वनाथ बसदि में कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर मूर्ति; लगभग ग्यारहवीं शती।
44. गुत्तल (जि. धारवाड़)—तीर्थंकर पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्ति; लगभग दसवीं शती।
45. हवेरी (जि. धारवाड़)—मुद्दु-माणिक्य बसदि में पार्श्वनाथ की परिकर सहित आसीन मूर्ति; लगभग दसवीं शती।
46. अम्मिनबावि (जि. धारवाड़)—पार्श्वनाथ बसदि में तीर्थंकर आदिनाथ। अति सुन्दर चौबीसी; लगभग ग्यारहवीं शती।
47. गेरुसोप्पा (जि. उत्तर कनारा)—चतुर्मुख बसदि में सर्वतोभद्र प्रतिमा।
48. गेरुसोप्पा (जि. उत्तर कनारा)—ज्वालामालिनी बसदि में यक्षी ज्वालामालिनी की कांस्य मूर्ति; लगभग चौदहवीं शती।
49. गेरुसोप्पा (जि. उत्तरा कनारा)—ज्वालामालिनी बसदि में एक भव्य चौबीसी; लगभग तेरहवीं शती।
50. हाडुबल्ली (जि. उत्तर कनारा)—चौबीसी बसदि में त्रिकाल-चौबीसी की कांस्य मूर्ति; लगभग पन्द्रहवीं शती।
51. बीलगि (जि. उत्तर कनारा)—रत्नत्रय बसदि का बाह्य दृश्य। यह बेसर शैली के मन्दिर का उदाहरण है।
52. गुण्डबल (जि. उत्तर कनारा)—रत्नत्रय बसदि में तीर्थंकर आदिनाथ की अर्धपद्मासन मूर्ति। लगभग ग्यारहवीं शती।
53. गुण्डबल (जि. उत्तर कनारा)—सूरस्थ बसदि में कायोत्सर्ग आसन में तीर्थंकर पार्श्वनाथ;
54. मनकी (जि. उत्तर कनारा)—शान्तिनाथ बसदि के समीप स्थित सात फीट ऊँचे स्तम्भ पर रामकथा के दृश्यों का अंकन; लगभग पन्द्रहवीं शती।
55. हुमचा (जि. शिमोगा)—पार्श्वनाथ बसदि का सामने का दृश्य। इसके पीछे शैलोत्कीर्ण शिल्प सातवीं शती का है।

56. हुमचा (जि. शिमोगा)—पद्मावती वसदि : गर्भगृह में यक्षी पद्मावती की प्रसिद्ध मूर्ति।
57. हुमचा (जि. शिमोगा)—बोगार बसदि में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की परिकर सहित आसीन मूर्ति; लगभग ग्यारहवीं शती।
58. बकोड (जि. शिमोगा)—हनेमने वसदि में तीन खण्डागसन तीर्थंकरों की कांस्य-मूर्तियाँ; लगभग ग्यारहवीं शती।
59. बन्दलिके (जि. शिमोगा)—सोमेश्वर (शान्तिनाथ ?) बसदि का खण्डहर, मुखमण्डप का दक्षिण-पूर्व की ओर से दृश्य।
60. चिक्कमागुडी (जि. शिमोगा)—वसवण्णा वसदि का सामने का दृश्य। विशाल शिलालेख दर्शनीय; लगभग बारहवीं शती।
61. उद्रि (जि. शिमोगा)—उद्रि बसदि का बाह्य दृश्य। शिखर की विशिष्ट शैली दर्शनीय; लगभग बारहवीं शती।
61 A. उद्रि (जि. शिमोगा)—उद्रि बसदि; कमल के आकार में उत्कीर्णित छत।
62. नरसिंहराजपुर (जि. चिक्कमंगलूर)—ज्वालामालिनी बसदि में यक्षी ज्वालामालिनी की पुष्प-मालाओं से अलंकृत मूर्ति।
३. कुन्दाद्रि—पार्श्वनाथ बसदि : तीर्थंकर पार्श्वनाथ की एक बड़ी तथा एक छोटी मूर्ति।
. वरंग—केरे बसदि : जलाशय में स्थित मन्दिर का दृश्य।
. वरंग—केरे बसदि : तीर्थंकर नेमिनाथ की कायोत्सर्ग मूर्ति। अष्ट प्रातिहार्यों का अंकन अतिविशेष।
66. वरंग—नेमिनाथ बसदि का पूर्व की ओर का दृश्य।
67. कारकल—चतुर्मुख बसदि : दक्षिण-पश्चिम से बाह्य दृश्य।
68. कारकल—गोम्मटेश्वर बसदि : गोम्मटेश्वर की विशाल मूर्ति।
69. कारकल—गोम्मटेश्वर बसदि : गोम्मटेश्वर के सम्मुख ब्रह्मदेव-स्तम्भ।
70. मूडबिद्री—त्रिभुवनतिलकचूडामणि मन्दिर का बाह्य दृश्य।
71. मूडबिद्री—चन्द्रनाथ बसदि : भैरोदेवी मण्डप के स्तम्भ।
72. मूडबिद्री—गुरु बसदि : मूलनायक तीर्थंकर पार्श्वनाथ।
73. मूडबिद्री—सिद्धान्त बसदि : प्राचीन ताडपत्रीय पाण्डुलिपियाँ।
74. मूडबिद्री—अम्मनवार बसदि : चौबीस तीर्थंकरों की पंक्तिबद्ध मूर्तियाँ।
75. मूडबिद्री—चौटर महल : काष्ट-स्तम्भ पर उत्कीर्ण नव-नारी-कुंजर।
76. मूडबिद्री—गांव के बाहर समाधियों की कतार
77. वेणूर—बाहुबली बसदि : बाहुबली की विशाल मूर्ति।
78. वेणूर—शान्तेश्वर बसदि : विशाल शिलाफलक पर अंकित कन्नड़ अभिलेख।
79. वेणूर—शान्तेश्वर बसदि (कल्लु बसदि): मानस्तम्भ।
80. मंगलोर—श्री मन्तीबाई स्मारक संग्रहालय : तीर्थंकर पार्श्वनाथ की धातु-मूर्ति।
81. मंगलोर—श्रीमन्तीबाई स्मारक संग्रहालय : पार्श्वनाथ की धातुमूर्ति का पृष्ठभाग।
82. धर्मस्थल—भगवान बाहुबली की नवस्थापित 39 फीट उत्तुंग मूर्ति।

83. धर्मस्थल--धर्माधिकारी के निवास-स्थान के मन्दिर में मूलनायक तीर्थंकर आदिनाथ तथा अन्य मूर्तियाँ।
84. गुरुवायनकेरे—शान्तेश्वर वसदि का दक्षिण-पूर्व से बाह्य दृश्य।
85. गुरुवायनकेरे—अनन्तनाथ वसदि : तीर्थंकर अनन्तनाथ की धातुमूर्ति।
86. गुरुवायनकेरे—शान्तेश्वर वसदि के सामने पंचकंबम् अर्थात् पाँच स्तम्भों वाला मण्डप।
87. नेल्लिकरु--पार्श्वनाथ बसदि : कायोत्सर्ग आसन में एक तीर्थंकर-मूर्ति; चौदहवीं शती।
8०. हलेबिड--शान्तेश्वर बसदि : नवरंग का एक दृश्य।
89. हलेबिड—होयसलेश्वर बसदि के सामने का दृश्य।
90. हलेबिड—होयसलेश्वर बसदि के कलापूर्ण स्तम्भ।
91. श्रवणबेलगोल—कल्याणी सरोवर। ऊपर की ओर चन्द्रगिरि।
92. श्रवणबेलगोल—विन्ध्यगिरि या दोड्डबेट्ट।
93. श्रवणबेलगोल--विन्ध्यगिरि : त्यागद ब्रह्मदेव—पाँच स्तम्भों वाला प्रसिद्ध मण्डप।
94. श्रवणबेलगोल—विन्ध्यगिरि पर गोमटेश्वर मन्दिर के सामने स्थापित गुल्लिकायज्जी की मूर्ति
95. श्रवणबेलगोल—गोमटेश्वर भगवान बाहुबली।
96. श्रवणबेलगोल—चन्द्रगिरि पर भरत चक्रवर्ती की विशाल मूर्ति का पृष्ठभाग।
97. श्रवणबेलगोल—चामुण्डराय बसदि का बाह्य दृश्य।
98. श्रवणबेलगोल—चन्द्रगुप्त बसदि : जाली पर उत्कीर्ण भद्रबाहु-चन्द्रगुप्त कथा।
99. श्रवणबेलगोल—पार्श्वनाथ बसदि का बाह्य दृश्य।
100. श्रवणबेलगोल—चन्द्रगिरि : पार्श्वनाथ बसदि के समक्ष शिलालेख।
101. श्रवणबेलगोल--चन्द्रगिरि पर भद्रबाहु गुफा में आचार्य भद्रबाहु के चरण-युगल।
102. श्रवणबेलगोल—जिननाथपुर में शान्तिनाथ बसदि की एक बाह्य भित्ति का कलापूर्ण दृश्य।
103. श्रवणबेलगोल—अक्कन-बसदि का बाह्यदृश्य।
104. श्रवणबेलगोल—क्षेत्र पर स्थित भण्डारी बसदि के सामने का दृश्य।
105. श्रवणबेलगोल—जैन मठ का सम्मुख दृश्य।
106. श्रवणबेलगोल--जैन मठ : भित्तिचित्रों में नागकुमारचरित तथा अन्य दृश्य।
107. कम्बदहल्ली—शान्तिनाथ बसदि : द्वारपाल।
108. कम्बदहल्ली—पंचकूट वसदि का बाह्य दृश्य।
109. हासन—चिक्क वसदि : तीर्थंकर पार्श्वनाथ की खड्गासन मूर्ति।
110. मर्कुली—पंचकूट बसदि : चक्रेश्वरी यक्षी।
111. मेलकोट—नायनार गुफा मन्दिर के सामने का दृश्य।